गुरु नानक

गुरु नानक फाउंडेशन पंच जन्म-शताब्दी स्मृति-ग्रन्थ

गुरु नानक

जीवनी, युग एवं शिक्षाएं

आमुख

डॉ० जाकिर हुसैन

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति

भूमिका

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति

प्रधान सम्पादक

गुरमुख निहालसिंह

गुरु नानक फाउंडेशन, नई दिल्ली

के लिए

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

द्वारा प्रकाशित

आमुख

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली-४

१४ अप्रैल, १९६९

गुरु नानक की पंचम जन्म-शताब्दी के शुभावसर पर, गुरु नानक फाउंडेशन की इच्छा के अनुरूप, पंच जन्म-शताब्दी स्मृति-ग्रंथ का आमुख लिखते हुए मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है।

पंचम जन्म-शताब्दी सिख धर्म के उस प्रवर्त्तक के प्रति उपयुक्त श्रद्धांजलि है जो शान्ति, एकता, प्रेम और मानव भ्रातृ-भाव के प्रतीक थे और जो अपनी मानवतावादी दृष्टि के कारण, सभी धर्मावलम्बियों द्वारा प्रशंसित और सम्मानित थे।

नानक शाह फकीर।
हिन्दू का गुरु,
मुसलमान का पीर।

पंचम जन्म-शताब्दी स्मृति-ग्रंथ की विशिष्टता को यहाँ लक्षित किया जा सकता है। सामान्य स्मृति-ग्रंथों के समान यह ग्रंथ सार्वजनिक जीवन में प्रसिद्धि-प्राप्त व्यक्तियों की व्यक्तिगत श्रद्धांजलियों का संकलन मात्र नहीं है। इस ग्रंथ की परिकल्पना इस प्रकार की गई है कि गुरु नानक के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश पड़े और उनके सन्देश के विभिन्न रूप खासे विस्तार से विवेचित हो सकें। गुरु नानक के धर्म का तुलनात्मक अध्ययन, विशेष रूप से विश्व-धर्मों—जैसे हिन्दू-धर्म, इस्लाम, बौद्ध-धर्म, ईसाई-धर्म आदि के सन्दर्भ में, करने का भी प्रयत्न किया गया है। यह अध्ययन विद्वानों और विभिन्न धर्मावलम्बियों द्वारा किया गया है। सभी लेख, जो संख्या में २३ हैं, विख्यात और विषय के विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा लिखे गए हैं।

ये विशिष्ट बातें इस स्मृति-ग्रंथ को अन्यतम बना देती हैं। इस ग्रंथ में गुरु नानक के जीवन, युग और शिक्षाओं का अध्ययन किया गया है। मुझे विश्वास है कि धार्मिक साहित्य की अभिवृद्धि में यह ग्रंथ उपयोगी सिद्ध होगा और अत्यधिक रुचि और उपयोगिता से पढ़ा जायेगा। इस ग्रंथ का महत्त्व इस बात से बढ़ा है कि यह एक साथ अंग्रेज़ी, हिन्दी और पंजाबी में प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि यह ग्रंथ अन्य कई भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं में शीघ्र प्रकाशित होगा।

मैं इस ग्रंथ के प्रयोजकों को बधाई देता हूँ और बाबा नानक के अद्वितीय व्यक्तित्व के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—ज़ाकिर हुसैन

उपर्युक्त पंक्तियों के लिखे जाने के कुछ ही दिन बाद अपने राष्ट्रपति जी के आकस्मिक निधन का समाचार सुनकर हम स्तब्ध रह गए। डॉ० ज़ाकिर हुसैन के देहान्त से मानवता को जो अपूरणीय क्षति पहुंची है, उससे फाउंडेशन सारे राष्ट्र के साथ शोक-संतप्त है।

भूमिका

गुरु नानक फाउंडेशन की स्थापना और पंजीकरण[1] इस तात्कालिक उद्देश्य से किया गया था कि गुरु नानक की पाँचवीं जन्म-शताब्दी मानवता के चिरन्तन हित में मनाई जा सके।

फाउंडेशन एक स्थायी, असाम्प्रदायिक और अराजनीतिक संस्था है। कोई भी वयस्क जाति, मतवाद, वर्ण, लिंग, धर्म या राष्ट्रीयता के भेदभाव के बिना इसकी सदस्यता ग्रहण कर सकता है। यह संस्था सिख गुरुओं की शिक्षाओं के प्रचार तक सीमित नहीं है। इसका उद्देश्य उन तमाम सन्तों, फकीरों, पैगम्बरों और आध्यात्मिक गुरुओं की जीवनियों और शिक्षाओं का अध्ययन करना है जिन्होंने मानवता के नैतिक और आध्यात्मिक अभ्युदय में योग दिया हो।[2] गुरु नानक फाउंडेशन एक विश्व-व्यापी संस्था है। देश के विभिन्न भागों में और विदेशों में भी इसकी शाखाएँ खोली गई हैं और खोली जा रही हैं।

फाउंडेशन ने गुरु नानक की पंच जन्म-शताब्दी मनाने के लिए जो योजना तैयार की है, उसमें एक महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि २३ नवम्बर, १९६९ को गुरु नानक की पाँचवीं जन्म-शताब्दी के अपूर्व अवसर पर, उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए पंच जन्म-शताब्दी स्मृति-ग्रंथ तैयार किया जाए। इस ग्रंथ की योजना फाउंडेशन की कार्य-समिति द्वारा बनाई गई है। फाउंडेशन भारत के राष्ट्रपति के प्रति अत्यन्त आभारी है कि उन्होंने इस ग्रंथ का महत्त्वपूर्ण आमुख लिखने की कृपा की है। मैं उनका, व्यक्तिगत रूप से, अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

यह ग्रंथ इस अर्थ में एक सहयोगी प्रयास है कि इसमें हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, ईसाई और सिख सभी धर्मों के प्रसिद्ध विद्वानों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया है। सहयोगी लेखकों के नाम और विवरण इस भूमिका के बाद दिये गए हैं। फाउंडेशन की प्रकाशन समिति की ओर से और मैं व्यक्तिगत रूप से सभी सह-

---

१. फाउंडेशन इंडियन सोसायटीज एक्ट के अधीन पंजीकृत है और इसका कार्यालय २, जोर बाग, नई दिल्ली में स्थित है।

२. फाउंडेशन के अन्य प्रमुख उद्देश्य हैं :

(i) गुरुओं, शहीदों और सन्तों के जीवन-चरित्र लिखवाना।

(ii) गुरुवाणी और अन्य धर्म-ग्रंथों का भारतीय, अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद-कार्य कराना।

(iii) सिख धर्म-ग्रंथों, अन्य पवित्र ग्रंथों, तुलनात्मक धर्म, संगीत और ललित कलाओं के अध्ययन और शोध के लिए संस्थाओं की स्थापना करना।

योगियों के प्रति, सहयोग प्रदान करने के लिए, विनम्र आभार व्यक्त करता हूँ। विशेष सहयोगियों के नामोल्लेख करना अनुपयुक्त होगा क्योंकि वे सभी प्रतिष्ठित विद्वान् हैं और जिन विषयों पर उन्होंने लिखा है उन विषयों में उनकी गहरी पैठ है। तो भी, दो महान् व्यक्तियों के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करना मेरा कर्तव्य है। फाउंडेशन डॉ० राधाकृष्णन के प्रति, जो विख्यात दार्शनिक, सन्त, राजनीतिज्ञ, भारतवर्ष के भूतपूर्व राष्ट्रपति और फाउंडेशन के प्रधान संरक्षक हैं, उनके अत्यधिक मूल्यवान सहयोग के लिए आभारी है। प्रकांड विद्वान् तथा धर्म-तत्त्वज्ञ डॉ० भाई जोधसिंह के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता और विशेष आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी गुरुबाणी की व्याख्या, सामान्यत:, सर्वाधिक प्रामाणिक मानी जाती है। वे पंजाबी यूनिवर्सिटी के उपकुलपति थे। पंजाबी भाषा और साहित्य के प्रति उनकी अनन्य सेवा के कारण ही उन्हें हर बार सर्वसम्मति से, पंजाबी साहित्य अकादमी का अध्यक्ष चुना जाता है। फाउंडेशन आकाशवाणी के महानिदेशक के सौजन्य के लिए भी आभारी है कि उन्होंने सरदार खुशवन्तसिंह की नवम्बर, १९६८ में प्रसारित 'गुरु नानक : कवि के रूप में' वार्ता को इस ग्रंथ में संकलित करने की अनुमति दी।

मैं डॉ० नरेन्द्रमोहन शर्मा, डॉ० महीपसिंह और डॉ० जसवन्तसिंह जस के प्रति भी आभारी हूँ कि उन्होंने क्रमशः हिन्दी और पंजाबी संस्करणों का सम्पादन किया और मुद्रण के दौरान उनकी देख-रेख की।

इस अवसर पर, मैं प्रकाशन समिति के सभी सदस्यों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। पंजाबी यूनिवर्सिटी के उपकुलपति सरदार कृपालसिंह नारंग के प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूँ कि उन्होंने विशेष रूप से पंचम शताब्दी ग्रंथ के लिए लेख उपलब्ध कराने की दिशा में, मूल्यवान सहायता और सुझाव दिए। प्रकाशन समिति के एक अन्य सदस्य—पंजाबी यूनिवर्सिटी के पंजाबी विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष डॉ० सुरेन्द्रसिंह कोहली ने अनथक सहयोग और मूल्यवान सहायता की है, अत: उनका नाम उल्लेख-योग्य है। वे समिति की प्रत्येक बैठक में उपस्थित रहे यद्यपि इसके लिए उन्हें विशेष रूप से चण्डीगढ़ से आना पड़ता था। उन्होंने स्वेच्छा से और अविलम्ब मूल्यवान सहायता दी। मैं फाउंडेशन की कार्यकारिणी समिति के प्रति अपना प्रशंसा-भाव और कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, विशेष रूप से पदाधिकारियों के प्रति जिन्होंने बहुत-सी कमियों और मेरी लम्बी बीमारी के कारण पैदा हुए विलम्ब के बावजूद मुझ पर पूरा विश्वास रखा और मुझे इस कार्य में पूरी छूट और हर प्रकार का सहयोग दिया।

इस ग्रंथ के और फाउंडेशन के अन्य प्रकाशनों के सम्पादक की हैसियत से

मुझे लेखों में काफी परिवर्तन और परिवर्द्धन करने पड़े हैं जिनके लिए मैं लेखकों से विनम्रतापूर्वक क्षमाप्रार्थी हूं। तो भी, इतना विश्वास दिला सकता हूं कि मैंने लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों में हस्तक्षेप नहीं किया है। यदि किसी खास स्थल पर मतभेद व्यक्त करना मैंने आवश्यक समझा है, मैंने एक अलग टिप्पणी दे दी है। मेरे लिए, भेद-निदर्शक चिह्न देने की वैज्ञानिक पद्धति की अनभिज्ञता एक बहुत बड़ी बाधा रही है। सम्पादक के रूप में अपनी अन्य कमियों का भी मुझे एहसास है और इसके लिए मैं पाठकों और लेखकों के प्रति क्षमा-याचना करता हूं।

अन्त में, मैं इस ग्रंथ के सहयोगियों के साथ मिलकर गुरु नानक को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और पंच जन्म-शताब्दी के समारोहों के अपूर्व अवसर पर पाठकों के प्रति शुभ-कामनाएं व्यक्त करता हूं। मुझे आशा है कि यह पुस्तक विश्व के विभिन्न भागों में सभी धर्मों और जातियों के एक बहुत बड़े समुदाय में पहुंचेगी—विशेष रूप से जब इसे कई भारतीय और विदेशी भाषाओं में प्रकाशित करने के प्रबन्ध किये जा रहे हैं जिससे कि अधिक से अधिक लोग गुरु नानक की सार्वभौम और उदात्त शिक्षाओं से लाभान्वित हो सकें। शुरू में, इस ग्रंथ को तीन भाषाओं—अंग्रेजी, हिन्दी और पंजाबी में प्रकाशित किया जा रहा है।

चूंकि विख्यात विद्वानों ने गुरु नानक के जीवन, युग और सन्देश के विभिन्न पक्षों पर योग्यता और संपूर्णता से विचार किया है, मुझे यह जरूरी नहीं लगता कि मैं बतौर व्याख्या या संवर्द्धन के यहां कुछ कहूं।

मैं आशा और कामना करता हूं कि गुरु नानक के उदात्त सन्देश से मानवता का हित होगा। यह सन्देश, जो गुरु नानक ने सोलहवीं शताब्दी में दिया था, आज भी विश्व के सभी भागों में व्याप्त स्थितियों के सन्दर्भ में प्रासंगिक है।

गुरु नानक फाउंडेशन
२, जोर बाग
नई दिल्ली-३

गुरमुख निहालसिंह
प्रधान सम्पादक

लेखकों के संबंध में

१. डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, दार्शनिक, द्रष्टा और राजनीतिज्ञ, भारतवर्ष के भूतपूर्व राष्ट्रपति ।

२. डॉ० भाई जोधसिंह, एम० ए०, डी० लिट्०, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला के भूतपूर्व उपकुलपति ।

३. डॉ० हरिराम गुप्त, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०, पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ में इतिहास के भूतपूर्व प्रोफेसर।

४. डॉ० तारनसिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला में गुरु ग्रंथ साहिब अध्ययन विभाग में प्रोफेसर ।

५. प्रिंसिपल गुरबचनसिंह तालिब, एम० ए०, कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी में अंग्रेजी के रीडर; श्री गुरु तेगबहादुर खालसा कॉलेज और खालसा कॉलेज, बम्बई के भूतपूर्व प्रिंसिपल ।

६. डॉ० त्रिलोचनसिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०, सिख-धर्म, इतिहास, धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र के विख्यात विद्वान ।

७. डॉ० एम० मुजीब, एम० ए०, पी-एच०डी० (कन्टेब), जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली के उपकुलपति ।

८. डॉ० के० एल० एस० राव, एम० ए०, पी-एच० डी०, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, धर्मशिक्षा विभाग ।

९. डॉ० एल० एम० जोशी, एम० ए०, पी-एच० डी०, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, बौद्ध शिक्षा विभाग ।

१०. डॉ० सी० एच० लोयलिन, एम० ए०, पी-एच० डी०, बारिंग क्रिश्चियन कॉलेज, बटाला (पंजाब) के भूतपूर्व प्रिंसिपल ।

११. सरदार बलवंतसिंह आनन्द, एम० ए० (कन्टेब), कई कॉलिजों के भूतपूर्व प्रिंसिपल, आकाशवाणी के कार्यक्रम निदेशक के रूप में १९६८ में अवकाश-प्राप्त ।

१२. डॉ० सीताराम बाहरी, एम० ए०, पी-एच० डी०, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, भाषा-विज्ञान विभाग ।

१३. डॉ० मोहनसिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०, अध्यात्मस्वरूपी, कवि तथा भाषा-वैज्ञानिक, सिख इतिहास, धर्म एवं दर्शनशास्त्र के लेखक ।

१४. डॉ० गुरबख्शसिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला के पंजाब इतिहास शोध विभाग में सहायक निदेशक।

१५. डॉ० आर० के० दासगुप्त, एम० ए०, पी-एच० डी०, दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली के आधुनिक भारतीय भाषाओं के विभागाध्यक्ष।

१६. सरदार खुशवन्तसिंह, एम० ए०, बार-एट-ला, सिख धर्म, इतिहास तथा कथा-साहित्य के विख्यात लेखक। 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के सम्पादक।

१७. डॉ० महीपसिंह, एम० ए०, पी-एच० डी०, श्री गुरु तेग़बहादुर खालसा कॉलेज (दिल्ली यूनिवर्सिटी) के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक और विख्यात कहानी-लेखक।

१८. कुंवर मृगेन्द्रसिंह, सिख धर्म और दर्शनशास्त्र के लेखक तथा आकाशवाणी के कलाकार, संगीतकार और संगीतज्ञ।

१९. प्रिंसिपल सन्तसिंह सेखों, एम० ए०, पंजाबी और अंग्रेजी के नाटककार और कथा-लेखक। धर्मशास्त्र के लेखक। प्रिंसिपल, खालसा कॉलेज, जंडियाला (जालन्धर)।

२०. प्रो० प्रकाशसिंह, एम० ए०, खालसा कॉलेज, अमृतसर में सिख इतिहास शोध विभाग के अध्यक्ष।

२१. डॉ० सुरेन्द्रसिंह कोहली, एम० ए०, पी-एच० डी०, पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़ में पंजाबी विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष।

२२. डॉ० शेरसिंह, एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन), प्रिंसिपल, मालवा सेन्ट्रल कॉलेज ऑफ एजुकेशन, लुधियाना।

क्रम

गुरु नानक :
जीवनी, युग एवं शिक्षाएँ

: १ :

गुरु नानक देव : एक भूमिका

डा० राधाकृष्णन

गुरु नानक देव का पंचम जन्म-शताब्दी समारोह मनाना हमारे लिए उचित ही है। उन्होंने अपने देश के ही नहीं, वरन् विश्व के धार्मिक जीवन पर भी अमित प्रभाव अंकित किया है।

निश्चित भारतीय परम्परा के अनुसार नानक देव धर्म का स्वरूप अनुभूति-जन्य मानते हैं। इस मत को स्वीकार करने वाले आनुष्ठानिक क्रियाओं को हेय तथा परिभाषाओं को अनावश्यक समझते हैं। नानक देव हिन्दू तथा मुसलमान के बीच के अन्तर को अन्तिम स्थिति नहीं मानते। वे इस भेद-भाव से इतर आत्मा के धर्म को प्रोत्साहन देते हैं, जोकि सार्वलौकिक स्वभाव का तथ्य है।

जब हम धार्मिक जीवन की गहराइयों में प्रवेश करते हैं, तो हमारे सिद्धान्त वैशिष्ट्य-रहित हो जाते हैं; और हम आध्यात्मिक जगत का अनुभव करने तथा परम इन्द्रियातीत देवाधिदेव में विश्वास संजोने लगते हैं :

ईश्वर एक है, (१ ओंकार)
उसका नाम पूर्ण सत्य है; (सतिनाम)
वह सर्वस्व का स्रष्टा है, (करता-पुरख)
वह किसी का मीत नहीं, न ही उसकी किसी से शत्रुता है, (निरभउ, निरवैर)
[निर्भय, निर्वैर]
उसका विम्ब कालातीत है; (अकाल-मूरति)
वह प्रजात नहीं, अपना जनक वह स्वयं ही है; (अजूनी, सैभं) [अयोनि, स्वयम्भू]
मनुष्य उसे केवल गुरु-कृपा से ही जान सकता है। (गुरु-परसादि)[1]
प्रभु का 'शबद' पहचानने वाले,
सब लोग उसकी महानता का गान करते हैं;
केवल साक्षात् करने वाला ही,
उसके बड़प्पन को जान सकता है।
कौन उसकी गुणावली की कल्पना कर सकता है
अथवा उसे कौन व्याख्यायित करने में समर्थ है ?

---

१. दि सेक्रिड राइटिंग्ज ऑफ़ दि सिख्स (१९६०), पृ० २८।

तुम्हारी गुणावली-चर्चा का दम भरने वाले,
तुम्हारी गहनताओं में खो जाते हैं ।[1]

नानक देव सब धर्मों में पावन जीवन की सम्भावना को स्वीकार करते हैं। एकता-वर्धक विचार-धारा, जोकि आजकल पर्याप्त लोकप्रिय हो रही है, सिख गुरुओं द्वारा पूर्वाभासित थी । अतः सिखों की धर्म पुस्तक आदि-ग्रंथ में हिन्दुत्व तथा इस्लाम, दोनों के संत-महात्माओं की वाणी का संग्रह कोई विलक्षणता नहीं है।

सिख गुरु अन्य धार्मिक परम्पराओं के मूल्यवान् तत्त्वों के प्रशंसक रहे हैं। वे ऐक्य के प्रवक्ता थे । एकता भारत की धार्मिक परम्परा है । यहाँ परम की एक सत्ता स्वीकार की गई है, यद्यपि उसे अनेक संज्ञाएँ दी जाती हैं । यथार्थ तत्त्व के अनेकधा प्रस्तुत होने की पुष्टि उपनिषदों और गीता में भी उपलब्ध है। मनु कहते हैं :

एतद्देशप्रसूतस्य साकाशादग्र जन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः । २:२०, मनुस्मृति

विश्व-भर के लोगों ने भारतीय-प्रज्ञा से ही अपने आचरण सिद्धान्तों की शिक्षा पाई है । धर्म साधन है, अपने में साध्य नहीं । यदि हम इसे साध्य-रूप स्वीकार कर लें, तो हम जड़-पूजक कहलाएँगे ।

समूचे संसार को अपना मंच बनाकर एकता के नवयुग का उदय हो रहा है। विरोधी धर्मानुयायी विश्व धर्म परिषद् में एक दूसरे के निकट आ रहे हैं । अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-लब्ध पोप जॉन तेईसवाँ तथा उसके उत्तराधिकारियों के निर्देशन में रोमन कैथोलिक चर्च धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना का प्रयास कर रहा है । 'पासेम इन टेरिस' (Pacem in Terris) में यह कहा गया है, "मानव-परिवार में एकता सदैव विद्यमान रही है, क्योंकि इसके सब सदस्यों में मानवीय समता की प्राप्ति निसर्ग नियमानुसार है। अतः, सम्पूर्ण मानव परिवार के समान कल्याण की 'सर्व-जन-हिताय' भावना की पर्याप्त परिमाण में वृद्धि करने की यथेष्ट आवश्यकता नित्य बनी रहती है ।" मुसलमानी जगत में भी आधुनिकता का प्रसार हो रहा है तथा गैर-मुसलमानी सांस्कृतिक परम्पराओं से सम्बन्ध बनाने के प्रयत्न भी हुए हैं ।

धर्मों के क्षितिज पर आदि ग्रंथ वास्तविक संवाद प्रस्तुत करता है । इस संवाद ने आदि ग्रंथ में कभी विवाद का विकृत रूप धारण नहीं किया। एक-दूसरे के खण्डन में हमारी कोई रुचि नहीं, वरन् अपनी भयानक दुर्दशा की इस स्थिति में हम विद्वानोचित-स्तर पर सहयोग तथा अंतर्दृष्टियों का उपभोग करना चाहते हैं ।

एकता-वर्धन का दृष्टिकोण विविधता से संसार को सुरक्षित करता है।

---

१. वही, पृ० ५२ ।

इस प्रकार के ऐक्य की स्थापना अपनी धार्मिक परम्परा के निराकरण से नहीं हो सकती; इसके लिए अपने ही धर्म की उन गहराइयों तक झाँकने की अपेक्षा है, जहाँ धार्मिक विलगता का वैशिष्ट्य समाप्त हो जाता है। तब हमें आध्यात्मिक स्वतंत्रता मिलती है और हम मानव-अस्तित्व के अर्थ की अन्य अभिव्यंजना को भी स्वीकार करने लगते हैं। तभी हमें महसूस होता है कि परम सत्य की समुचित अभिव्यक्ति शब्दों अथवा तर्कों द्वारा सम्भव नहीं। सद्‌विश्वास की सुनिश्चित जाँच विनम्रता से होती है। सब राष्ट्रों के उत्तम लोग अनन्त जीवन में सहभागी हैं। पावनता सब धर्मों के अनुयायियों में पाई जाती है।

सिख गुरु अपने को मानव मानते थे, दैवी नहीं। बुद्ध मानव थे और उन्होंने उत्कट आध्यात्मिक प्रयत्नों द्वारा दिव्य ज्योति को प्राप्त किया। यहाँ तक कि ईसा भी दृढ़ एकेश्वरवादी थे, और परमात्म-पद पर किसी मनुष्य का उत्थान उन्हें कदापि स्वीकार न था। उन्होंने कहा कि सर्वप्रथम आदेश था "सुनो रे इज़राइल, प्रभु हमारा परमात्मा, एक मात्र प्रभु है।"

परमोपलब्धि का मार्ग आत्म-समर्पण में है, आनुष्ठानिक पावनता या तीर्थ-प्रक्षालण में नहीं। हमारी यात्रा अन्तर्मुखी है। सन्त-महात्मा लक्ष्य-प्राप्ति के लिए इसी पथ पर चले थे। नानक देव कहते हैं, "विभूति रमाना योग नहीं है, दाढ़ी-मूँछ मुँडवाने तथा कानों में मुद्रा पहनने, शंख फूँकने में भी योग नहीं, केवल मलिनता में निर्मल रहने में ही योग का वास्तविक रूप पाया जा सकता है।" वे अहिंसा तथा जीवन को कष्ट न पहुँचाने की भावना में विश्वास रखते थे। पीड़ितों की सहायता अपने प्राणों के मोल पर भी उपेक्षणीय नहीं।

समय से पलायन उत्तम जीवन का लक्षण नहीं है। संसार को देव-अनुप्राणित जानकर उसमें रहना चाहिए। हमें निश्चय ही परस्पर सहयोग द्वारा आत्म-चेतना का पुनर्जागरण और संवेदनशीलता का नवीनीकरण करना चाहिए।

सिख गुरुओं ने जिन प्रतिबन्धों का अन्त करना चाहा था, वे पुनर्निमित हो रहे हैं। अनेक घातक प्रथाएँ हमारे जीवन में पैठ रही हैं।

समस्त प्रगतिवादी धार्मिक संस्थाओं में सहिष्णुता की यह परम्परा सजीव रखी गई है। शान्ति निकेतन आश्रम के नियमों की एक झलक देखने मात्र से उसका असाम्प्रदायिक रूप स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि निर्देश इस प्रकार है कि "निराकार तथा एक ब्रह्म की उपासना के अतिरिक्त किसी अन्य देवी-देवता, पशु, जड़, मानव, मूर्ति, चित्र अथवा साम्प्रदायिक चिह्न की पूजा, अनुष्ठान अथवा बलि की आज्ञा नहीं होगी," इसमें साथ ही यह भी अंकित है, "किसी धर्म अथवा मानवोपासना की वस्तु की आलोचना और अनादर नहीं किया जा सकेगा" और कि "मात्र ऐसे उपदेश या भाषण ही होंगे, जो विश्व-भ्रातृत्व के लक्ष्य का पोषण करें।"

: २ :

गुरु नानक की शिक्षाएं

डा० भाई जोधसिंह

'भारतीय रिक्थ' (The Legacy of India) के प्रथम संस्करण की भूमिका में मार्क्विस ऑफ़ ज़ेतलैंड का कथन "हिन्दुओं के सर्वेश्वरवाद पर इस्लाम के एकेश्वरवाद का प्रभाव ही कालक्रमानुसार सिख-पंथ के उदय का कारण है," हमारी वर्तमान चर्चा का विषय नहीं है, और न ही भारतीय लेखकों के इस दावे पर, कि सिख-धर्म के प्रणेता गुरु नानक एक हिन्दू सुधारक थे, जिन्होंने भूसे में से कण बीनकर पुरातन हिन्दू ऋषियों की ज्योतिर्मान् शिक्षाओं को ही प्रचारित किया है, हमें कुछ कहना है। मैं यथासम्भव गुरु नानक के निजी शब्दों में ही परम-सत्य, मानवात्मा, सृष्टि-रचना, मोक्ष, कर्म-सिद्धान्त, आवागमन, मानव-जीवन का उद्देश्य तथा उसकी प्राप्ति के साधनों आदि के सम्बन्ध में उनके विचार प्रस्तुत करूँगा। गुरु नानक ने सांसारिक कर्मशीलता को त्यागने तथा जंगलों और गुफ़ाओं में जा बसने का प्रचार नहीं किया; उन्होंने समाज-सुधार के विचार भी प्रदान किए हैं, तथा तत्कालीन शासन की सबल वाणी में आलोचना भी की है। उनके कतिपय पदों में बाबर के मुग़ल दलों के द्वारा सैदपुर (वर्तमान ऐमनाबाद ज़िला गुजराँवाला) में स्वदेश-वासियों की लूट और हत्या के दृश्यों की साक्षी में उपजी राष्ट्रीय भावनाओं तथा तीव्र-व्यथा का अति-संवेदनशील तथा ओजस्वी चित्रण हुआ है। वे ऐसे एकान्त-चेता नहीं थे, जिनका लक्ष्य केवल निजी मोक्ष ही होता है। वे तो जन-सामान्य से यथार्थ आध्यात्मिक जीवन जीने की आकांक्षा रखते थे तथा उन्हें एक ऐसे सामाजिक-प्रतिमान पर एकाग्र कर लेना चाहते थे, जिससे दूसरों की विचारधाराओं के प्रति सहिष्णुता तथा मानव-मात्र के कल्याण की कामना को जागृत किया जा सके।

१. ईश्वर-तत्त्व

सिखों की धर्म-पुस्तक, पवित्र गुरु ग्रंथ, गुरु नानक देव की प्रसिद्ध रचना 'जपुजी' से आरम्भ होती है; प्रत्येक सिख के लिए प्रतिदिन प्रातःकाल उसके पाठ का विधान है। 'जपुजी' के आरम्भ में मूल-मंत्र है, जोकि सिख-पंथ का मूल मंतव्य है। उसका भावार्थ इस प्रकार है:

'ईश्वर मात्र एक है; उसका नाम सत्[1] है; वह सर्व-व्यापक रचयिता है, निर्भय है, निर्वैर है, उसका अस्तित्व काल से अप्रभावित है, वह कभी जन्म नहीं लेता, स्वम्भू है; (और उसकी उपलब्धि) गुरु की कृपा से सम्भव है"।[2] संख्या '१' इस मूल-मन्त्र का प्रथमाक्षर है। समय व्यतीत होने के साथ शब्द तो अपना अर्थ बदल सकते हैं, किन्तु संख्या के स्वगुणार्थ सदैव निश्चित बने रहते हैं। अतः इस प्रकार समारम्भ में ही ईश्वर के ऐक्य पर बल डाला गया है, ताकि अनुयायियों को हिन्दू सर्वेश्वर-धारा के असंख्य देवी-देवताओं से मुक्त रखा जा सके। अपने अनेक पदों में गुरुजी ने इस ऐक्य को बड़ी मार्मिक शब्दावली में चित्रित किया है। "सब कहते हैं कि वह एक है, किन्तु फिर भी 'मैं', 'मेरा' के अभिमान से भरे हुए हैं। केवल वे ही जीव उसके दैवी सदन तथा परम-धाम तक पहुँचते हैं, जो भीतर (अपनी आत्मा में) तथा बाहर उसी का दर्शन करते हैं। ईश्वर निकटतर है, उसे दूर मत जानो; वह तो समूची सृष्टि में व्याप्त है। नानक कहते हैं कि जो जीव एक ईश्वर को पहचानता तथा द्वैत का त्याग करता है, वह उसी में लीन हो जाता है।"[3]

"मार्ग एक ही है; जल, वायु एवं अग्नि में एक ही सत्य और सुन्दर प्रकाशित है। एक ही भंवरा ब्रह्मांड में भ्रमता है। इस ऐक्य का समझने वाला ही सम्माननीय है, किन्तु मात्र कुछ गुरमुख (ईश्वराभिमुख) जीव ही इसे पहचानते हैं। वे अपने ज्ञान तथा साधना का उपयोग इसी साम्यावस्था हेतु करते हैं। जिसे कृपापूर्वक इसकी प्राप्ति हुई है, वह आनन्दित होता है। उसके (ईश्वर के) प्राप्त्यर्थ मार्ग की उपलब्धि गुरु के द्वारा होती है।"

"समूचा दृश्य जगत तुम्हारा शरीर है, हम जो कुछ सुनते हैं, तुम्हारी ही वाणी है। तुम स्वयं सबमें व्याप्त हो और सबका आनन्द भी लेते हो। ऐ माँ! मैं किसी दूसरे की बात ही कैसे कर सकता हूँ? मेरा स्वामी एक है, ऐ माँ! वह एक ही है। वह स्वयं रक्षक और विनाशक है। वही (जीवन) देता है, और लौटाता भी है। वह हमारी देख-भाल करता तथा चतुर्दिक् खिलता है। वह स्वेच्छा से कृपा-वर्षण करता है। वह यथेच्छा सब कुछ करता है, उसकी

---

१. सत् (सं. सत्यम्) वह तत्व है. जो था, है तथा सदा रहेगा।

२. १ ओंकार सतिनामु करता-पुरखु निरभउ निरवैरू
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।

३. एको एक कहै सभु कोई हउमै गरबु विआपै।
अंतरि बाहरि एकु पछाणै इउ घरू महलु सिआपै।
प्रभु नेड़ै हरि दूर न जाणहु एको सिसटि सबाई।
एकंकारू अवरू नहीं दूजा नानक एकु समाई। ५. आअंकार, रामकली म० १. आ० ग्रं० पृ० ९३०।

इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता। तुम हम पर जैसा प्रकट करते हो, हम वैसी ही व्याख्या करते हैं। यह सब तुम्हारी महनीयता है।"[१]

"वह चिर-स्थायी सत्य है। वह जीवनोदय से भी पूर्व विद्यमान था, अब भी है तथा सदैव रहेगा भी।"[२] ईश्वर अगोचर, अगाध, सर्व-शक्तिमान स्रष्टा तथा दयालु है। समूचा संसार आवागमन का शिकार है, परन्तु वह करुणाशील चिर-स्थिरता लिये हुए है। स्थायित्व उसका मूल अधिकार है, क्योंकि वह किसी नियति द्वारा शासित नहीं। धरती और आकाश, सब नश्वर हैं; मात्र एक ईश्वर ही अपरिवर्तनीय रहता है। सूर्य दिन में चलता है, चन्द्र रात्रि में घूमता है तथा कोटि-कोटि ग्रह अपने कक्ष में घूमते रहते हैं। नानक का यह दावा कि एकमात्र ईश्वर ही अटल है, पूर्ण सत्य है।[३] "सौर मण्डल अथवा चन्द्र मण्डल नहीं रहेंगे, सातों महाद्वीप नष्ट हो जायँगे, जल तथा पवन भी नहीं बचेंगे, किन्तु तुम अकेले (चिर-स्थायी हो), तुम अकेले।"[४]

वह स्रष्टा है, इस सम्बन्ध में गुरु नानक हिन्दू चिन्तन के छः शास्त्रों से मतभेद रखते हैं। योग-शास्त्र का दावा है कि ईश्वर, आत्मा तथा प्रकृति सम-सामयिक हैं। सांख्य शास्त्र ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करता है; उसकी मान्यता है कि प्रकृति सृष्टि का निर्माण करती है, पुरुष (आत्मा) केवल साक्षी (द्रष्टा) है। न्याय तथा वैशेषिक शास्त्र ईश्वर को "संसार का प्रथम कर्त्ता-कारण (Efficient cause) मानते हैं, इसका भौतिक-कारण नहीं मानते, अर्थात् वे ईश्वर को विहित विश्व का वास्तुकार अथवा विश्वकर्मा समझते हैं। यद्यपि संसार को उसका शरीर कहा जाता है, वह संसार में ही सीमित नहीं है। वह विश्व का नियंता भी है, हमारे कर्मों के फल का निष्पक्ष वितरक तथा हमारे हर्षविसादों का परम निर्णायक है।"[५]

पूर्व-मीमांसा के लेखक जेमिनी ईश्वर को कर्म-फल का वितरक नहीं मानते। उनके मतानुसार स्वयं 'अपूर्व'—कर्म की सूक्ष्म अन्तःशक्ति—फलोत्पादन सम्पन्न करता है। पुनः "पूर्व-मीमांसा की मान्यता है कि इस विश्व का आदि-अन्त कोई नहीं, यह वर्तमान में जैसा है, ऐसा ही अतीत में था और भविष्य में भी रहेगा। संसार का कभी निर्माण नहीं हुआ, न ही इसका कभी पूर्ण विलयन अथवा विघटन होता है। अतः ईश्वर को विश्व-अस्तित्व का कारण स्वीकार नहीं किया जा सकता।"[६]

---

१. गउड़ी अष्ट, ३ : ५।
२. जपुजी ५ : १।
३. गउड़ी अष्ट, ८ : १७।
४. वार माझ ५.५, पृ० १३।
५. हिस्ट्री आफ फिलासफी ईस्टर्न एण्ड वेस्टर्न, प्रथम संस्करण, पृ० २२८।
६. वही, पृ० २६७।

उत्तर-मीमांसा की शांकर व्याख्यानुसार "पर-ब्रह्म को जब संसार का निर्माता और नियंता मान लिया जाता है, तो वह सगुण ब्रह्म अथवा वैयक्तिक ईश्वर कहलाता है। ब्रह्म के दोनों रूप (निर्गुण और सगुण) मान्य हैं। सगुण ब्रह्म अथवा ईश्वर चिदात्मा है, समूची विषयगत सामग्री का योग है।"[1] जीवों तथा सृष्टि के सृजन की व्याख्या के लिए शंकर ने 'माया' नामक सत्ता को स्वीकार किया है तथा उसे सत्-असत् और अनिवारणीय कहा है।

दूसरी ओर, गुरु नानक कहते हैं, "तू धन्य है, जिससे माया, संसार और ब्रह्मा का स्रवण हो रहा है, तथा समस्त प्रशंसनीय परम तत्त्वों का उदय हुआ है और हृदय में चिरानन्द की ज्योति फैल गई है।"[2] "तुम अगम्य सर्जक पुरुष हो। तुम्हीं ने अनेक वर्णावर्ण तथा भाँति-भाँति की सृष्टि की रचना की है। तुम्हीं जानते हो कि वह सब कैसा बना, क्योंकि वह सब तुम्हारा ही 'खेल' है।"[3] "स्वयं प्रभु ने ललित तत्त्वों का निर्माण किया है तथा सत्य के शरीर को अलंकृत किया है।"[4]

"तुमने ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं अन्य देवी-देवताओं का सृजन किया है। तुम्हारे चेतन अंश द्वारा निर्मित वस्तुएँ अपरिमित हैं। इस सबका यथार्थ मूल्यांकन तो स्वयं कर्त्ता ही कर सकता है।"[5] गुरु नानक के सिद्धान्तानुसार ईश्वर सबका मूलभूत कारण है। वास्तव में स्रष्टा ही समस्त कारणों का नियंता है, वही अपनी शक्ति द्वारा सृष्टि को सम्बल दिए हुए है।"[6]

वह निर्भय तथा शत्रुता-रहित है। स्रष्टा अपनी सृष्टि से क्योंकर डर सकता है ? सब वस्तुएँ उसी के निर्देश पर चालित तथा कार्य-रत होती हैं। "उसी के भय से समीर चलता तथा हवाएँ बहती हैं। शत-सहस्र नदियां उसके भय से स्रवित होती हैं, धरती उसके भय से बोझ ढोती है, बादल भी जल का भार लिये उसी के भय से उड़ा फिरता है। सूर्य तथा चन्द्र उसी के भय से लाखों मील के अनन्त-पथ पर दौड़े चले जा रहे हैं। सिद्ध, बुद्ध तथा देवराज इन्द्र भी उसी के भय में रहते हैं। अधर का आकाश भी उसी के भय से स्थित है, शक्तिशाली तथा सबल योद्धा भी उससे डरते हैं। जीव-समूहों का संसार में आना-जाना उसी के भय के कारण होता है—सबके मस्तक पर उसके भय के

---

१. वही, पृ० २७६।

२. सुअसति आथि बाणी बरमाउ। सति सुहाणु सदा मनि चाउ। पउड़ी २१, जपुजी।

३. तूं करता पुरखु अंगमु है आपि स्रिसटि उपाती। रंग परंग उपारजना बहु बहु बिधि भाती। तूं जाणहि जिनि उपाई ऐ सभु खेलु तुमाती। वार माझ, पउड़ी १।

४. पंच भू नाइको आपि सिरंदा जिनि सचु का पिंडु सवारिआ। सूही छंत ३.२.५।

५. राग बिलावल थित्ती ४।

६. श्लोक सहसकृति २।

उसकी दीप्ति विद्यमान है। वह सर्व-पोषक और प्रकाशक तीनों लोकों में व्याप्त है। वह अपने को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करता है; जिस पर वह कृपा करता है, उसका उद्धार हो जाता है। 'शबद' द्वारा वह उसको निर्मल बनाता एवं निरन्तर उसपर कृपा-वर्षन करता है। (कृपा-पात्र) जीव उस परम के रहस्यों को जानता तथा उसके स्रष्टा और अनुकूल उपास्य होने का ज्ञान रखता है।"[१]

२. सृष्टि-रचना

सृष्टि-निर्माण की व्याख्या हेतु कतिपय भारतीय विचारकों ने प्रकृति अथवा माया की कल्पना कर ली है। गुरु जी ऐसा कोई अनुमान स्वीकार नहीं करते। "उसकी आज्ञा (हुक्म)[२] से ही समस्त रूप-आकार अस्तित्व में आते हैं, किन्तु हुक्म अनिर्वचनीय है। संसार में जीवों का आगमन उसी की आज्ञा से होता है और उसी से उनमें उत्कृष्टता जागृत होती है।"[३] गुरुजी के मतानुसार वर्तमान विश्व के विकास से पूर्व यहाँ अपरिमित शून्य था। "असंख्य युगों तक वहाँ पूर्ण अंधकार था। स्वयं परम नियंता के अतिरिक्त कोई स्वर्ग या नरक नहीं था। न सूर्य था, न चन्द्र; रात और दिन भी न थे...अपनी प्रसन्नता से उसने विश्व की रचना की और बिना किसी सम्बल के उसने गगन को अधर में स्थिर कर दिया। उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव की सृष्टि की तथा सांसारिक संभ्रान्तियों के प्रति मोह जागृत किया (माइआ मोहु वधाइदा)। कोई विरल जीव ही गुरु-शब्द श्रवण करता तथा इस तथ्य का ज्ञान प्राप्त करता है कि समूचे विश्व का निर्माण तथा पोषण उसके हुक्म पर ही आश्रित है।"[४]

गुरु मतानुसार, वह ऐसा कैसे हो सका, यह हमारी बुद्धि से परे का विषय है। "सृष्टि का सर्जक स्वयं ही इसके 'क्यों और कैसे' को जानता है, कोई अन्य इसकी व्याख्या नहीं कर सकता।"[५] "केवल तुम ही जानते हो कि तुमने इसका (विश्व का) प्रवर्त्तन कैसे किया, यह सब तुम्हारा ही खेल है।"[६] यह विश्व कब बना, यह भी ज्ञातव्य नहीं ?

"संसार किस युग में अस्तित्व में आया, वह कौन-सा समय था, चन्द्र अथवा सूर्य पक्ष में कौन-सा दिन था, कौन-सी ऋतु या महीना था; पण्डित लोग उस युग से अभिज्ञ नहीं, अन्यथा पुराणों में इसका वर्णन हुआ होता! काज़ी भी

---

१. रामकली दक्खणी, ओअंकार ८।

२. 'हुकम' फारसी शब्द है, जिसके अनेक अर्थ निर्दिष्ट हैं—स्वेच्छा, विधान, नियम, आज्ञा आदि।

३. 'हुकमी' होवनि आकार हुकमुन कहिआ जाई। हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई। पउड़ी २, जपुजी।

४. मारू सोलहे १६.३,१५।

५. वडहंस अलाहणिया १:४।

६. वार माझ पउड़ी १।

इससे अपरिचित हैं, अन्यथा कुर्आन में इसका उद्धरण मिल जाता। योगी भी चन्द्र अथवा सूर्य-पक्षी दिन का ज्ञान नहीं रखते। किसी को भी ऋतु या महीना ज्ञात नहीं। केवल रचयिता ही, जिसने विश्व की रचना की है, ये सब बातें जानता है।"[१]

उसके सृजन की सीमाएँ भी अज्ञात हैं। "आकाश पर लाखों आकाश, तथा पाताल से परे लाखों पाताल हैं; वेद भी अन्ततः इसकी गहनता को जानने में असमर्थ रहे हैं, कुर्आन आदि सभी पुस्तकें, जो अठारह हज़ार लोकों की चर्चा करती हैं, दावा करती हैं कि 'यदि सम्भव हुआ तो हम मूल सत्य द्वारा प्रवर्त्तित प्रत्येक वस्तु का विवरण देंगे', किन्तु विवरण लिखते-लिखते ही जीवन की लघु कालावधि समाप्त हो जाती है।"[२]

यह संसार स्वप्न अथवा मरीचिका नहीं। "तुम्हारी सब विधियाँ-पद्धतियाँ सत्य हैं, तुम्हारे बनाए लोक भी सत्य हैं। तुम्हारे विभिन्न विश्व तथा निर्मित विषय सत्य हैं। तुम्हारे कार्य एवं प्रत्यय सत्य हैं...ऐ चिर-सत्य सम्राट् तुम्हारी प्रकृति ही सत्य है।"[३] परन्तु कभी-कभी 'गुरु ग्रंथ' में हमें ऐसे पद भी मिल जाते हैं, जिनमें विश्व को 'घूम-पर्वत' तथा 'स्वप्न' कहा गया है। हाँ, किन्तु ऐसे कथनों का अर्थ यह है कि हमारा दृश्य जगत परिवर्तन-शील है; यह चिर-स्थायी नहीं, जैसाकि हम इसे समझते हैं। संसार यथार्थ है, किन्तु निरन्तर परिवर्तित हो रहा है। विगलन तथा मृत्यु इसमें अन्तर्निहित हैं। उस दृष्टि से यह एक चलता हुआ दृश्य है।

एक पद में गुरु नानक ने सृजन की प्रकिया का चित्रण किया है। "परम-सत्य में से पवन और पवन से जल की उत्पत्ति हुई। जल से तीनों लोकों का निर्माण किया गया। घर-घर में उसकी ज्योति व्याप्त है, किन्तु इस सम्पर्क के कारण विशुद्धता अशुद्धता को आत्मसात् नहीं करती। 'शबद' में आसक्ति द्वारा ही जीव सम्मान पाता है।"[४]

यह सृष्टि क्यों रची गई, इस प्रश्न के अनेक उत्तर सुझाए गए हैं। कपिल मुनि का कथन है कि प्रकृति इसलिए यह सब काण्ड रचती है ताकि पुरुष अपनी यथार्थ सत्ता को पहचान ले, और आवागमन-चक्र में निवद्ध करने वाले अज्ञा-नान्धकार को छिन्न कर कैवल्य स्थिति को प्राप्त कर सके।

गुरु नानक इस धरती को 'धरमसाल' कहकर पुकारते हैं, अर्थात् एक ऐसी पाठशाला जहाँ धर्म की शिक्षा उपलब्ध होती है। 'सिद्ध गोष्ठी' में वे कहते हैं, "गुरमुखों (ईश्वर-प्रेमियों) की उत्क्रान्ति के लिए ही परम सत्य ने धरती रची,

---

१. जपुजी पउड़ी २३।
२. जपुजी पउड़ी २२।
३. वार आसा श्लोक १, पउड़ी २।
४. सिरी राग ३ : १५।

उसकी दीप्ति विद्यमान है। वह सर्व-पोषक और प्रकाशक तीनों लोकों में व्याप्त है। वह अपने को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करता है; जिस पर वह कृपा करता है, उसका उद्धार हो जाता है। 'शबद' द्वारा वह उसको निर्मल बनाता एवं निरन्तर उसपर कृपा-वर्षन करता है। (कृपा-पात्र) जीव उस परम के रहस्यों को जानता तथा उसके स्रष्टा और अनुकूल उपास्य होने का ज्ञान रखता है।"[१]

२. सृष्टि-रचना

सृष्टि-निर्माण की व्याख्या हेतु कतिपय भारतीय विचारकों ने प्रकृति अथवा माया की कल्पना कर ली है। गुरु जी ऐसा कोई अनुमान स्वीकार नहीं करते। "उसकी आज्ञा (हुक्म)[२] से ही समस्त रूप-आकार अस्तित्व में आते हैं, किन्तु हुक्म अनिर्वचनीय है। संसार में जीवों का आगमन उसी की आज्ञा से होता है और उसी से उनमें उत्कृष्टता जागृत होती है।"[३] गुरुजी के मतानुसार वर्तमान विश्व के विकास से पूर्व यहाँ अपरिमित शून्य था। "असंख्य युगों तक वहाँ पूर्ण अंधकार था। स्वयं परम नियंता के अतिरिक्त कोई स्वर्ग या नरक नहीं था। न सूर्य था, न चन्द्र; रात और दिन भी न थे...अपनी प्रसन्नता से उसने विश्व की रचना की और बिना किसी सम्बल के उसने गगन को अधर में स्थिर कर दिया। उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव की सृष्टि की तथा सांसारिक संभ्रान्तियों के प्रति मोह जागृत किया (माइआ मोहु वधाइदा)। कोई विरल जीव ही गुरु-शब्द श्रवण करता तथा इस तथ्य का ज्ञान प्राप्त करता है कि समूचे विश्व का निर्माण तथा पोषण उसके हुक्म पर ही आश्रित है।"[४]

गुरु मतानुसार, वह ऐसा कैसे हो सका, यह हमारी बुद्धि से परे का विषय है। "सृष्टि का सर्जक स्वयं ही इसके 'क्यों और कैसे' को जानता है, कोई अन्य इसकी व्याख्या नहीं कर सकता।"[५] "केवल तुम ही जानते हो कि तुमने इसका (विश्व का) प्रवर्त्तन कैसे किया, यह सब तुम्हारा ही खेल है।"[६] यह विश्व कब बना, यह भी ज्ञातव्य नहीं?

"संसार किस युग में अस्तित्व में आया, वह कौन-सा समय था, चन्द्र अथवा सूर्य पक्ष में कौन-सा दिन था, कौन-सी ऋतु या महीना था; पण्डित लोग उस युग से अभिज्ञ नहीं, अन्यथा पुराणों में इसका वर्णन हुआ होता! काज़ी भी

---

१. रामकली दक्खणी, ओअंकार ८।

२. 'हुकम' फारसी शब्द है, जिसके अनेक अर्थ निर्दिष्ट हैं—स्वेच्छा, विधान, नियम, आज्ञा आदि।

३. 'हुकमी' होवनि आकार हुकमुन कहिआ जाई। हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई। पउड़ी २, जपुजी।

४. मारू सोलहे १६.३,१५।

५. वडहंस अलाहणिआ १:४।

६. वार माझ पउड़ी १।

इससे अपरिचित हैं, अन्यथा कुर्आन में इसका उद्धरण मिल जाता। योगी भी चन्द्र अथवा सूर्य-पक्षी दिन का ज्ञान नहीं रखते। किसी को भी ऋतु या महीना ज्ञात नहीं। केवल रचयिता ही, जिसने विश्व की रचना की है, ये सब बातें जानता है।"[1]

उसके सृजन की सीमाएँ भी अज्ञात हैं। "आकाश पर लाखों आकाश, तथा पाताल से परे लाखों पाताल हैं; वेद भी अन्ततः इसकी गहनता को जानने में असमर्थ रहे हैं, कुर्आन आदि सभी पुस्तकें, जो अठारह हज़ार लोकों की चर्चा करती हैं, दावा करती हैं कि 'यदि सम्भव हुआ तो हम मूल सत्य द्वारा प्रवर्त्तित प्रत्येक वस्तु का विवरण देंगे', किन्तु विवरण लिखते-लिखते ही जीवन की लघु कालावधि समाप्त हो जाती है।"[2]

यह संसार स्वप्न अथवा मरीचिका नहीं। "तुम्हारी सब विधियाँ-पद्धतियाँ सत्य हैं, तुम्हारे बनाए लोक भी सत्य हैं। तुम्हारे विभिन्न विश्व तथा निर्मित विषय सत्य हैं। तुम्हारे कार्य एवं प्रत्यय सत्य हैं...ऐ चिर-सत्य सम्राट् तुम्हारी प्रकृति ही सत्य है।"[3] परन्तु कभी-कभी 'गुरु ग्रंथ' में हमें ऐसे पद भी मिल जाते हैं, जिनमें विश्व को 'धूम-पर्वत' तथा 'स्वप्न' कहा गया है। हाँ, किन्तु ऐसे कथनों का अर्थ यह है कि हमारा दृश्य जगत परिवर्तन-शील है; यह चिर-स्थायी नहीं, जैसाकि हम इसे समझते हैं। संसार यथार्थ है, किन्तु निरन्तर परिवर्तित हो रहा है। विगलन तथा मृत्यु इसमें अन्तर्निहित हैं। उस दृष्टि से यह एक चलता हुआ दृश्य है।

एक पद में गुरु नानक ने सृजन की प्रकिया का चित्रण किया है। "परम-सत्य में से पवन और पवन से जल की उत्पत्ति हुई। जल से तीनों लोकों का निर्माण किया गया। घर-घर में उसकी ज्योति व्याप्त है, किन्तु इस सम्पर्क के कारण विशुद्धता अशुद्धता को आत्मसात् नहीं करती। 'शबद' में आसक्ति द्वारा ही जीव सम्मान पाता है।"[4]

यह सृष्टि क्यों रची गई, इस प्रश्न के अनेक उत्तर सुझाए गए हैं। कपिल मुनि का कथन है कि प्रकृति इसलिए यह सब काण्ड रचती है ताकि पुरुष अपनी यथार्थ सत्ता को पहचान ले, और आवागमन-चक्र में निबद्ध करने वाले अज्ञा-नान्धकार को छिन्न कर कैवल्य स्थिति को प्राप्त कर सके।

गुरु नानक इस धरती को 'धरमसाल' कहकर पुकारते हैं, अर्थात् एक ऐसी पाठशाला जहाँ धर्म की शिक्षा उपलब्ध होती है। 'सिद्ध गोष्ठी' में वे कहते हैं, "गुरमुखों (ईश्वर-प्रेमियों) की उत्क्रान्ति के लिए ही परम सत्य ने धरती रची,

---

१. जपुजी पउड़ी २३।
२. जपुजी पउड़ी २२।
३. वार आसा श्लोक १, पउड़ी २।
४. सिरी राग ३ : १५।

जन्म और मृत्यु तो उसके खेल हैं।"[1] एक अन्य पद में भी उन्होंने यही विचार अभिव्यक्त किया है। साधु-सन्तों के लिए ही ईश्वर विश्व को सुरक्षित रखे हुए है। वे (साधु-सन्त) अपने को पहचानते तथा सत्य का चिन्तन करते हैं। ईश्वरीय सत्य और प्रेम उनके पावन हृदय में निवसित हैं। नानक कहते हैं कि वे ऐसे (साधु-सन्त) के दास हैं।"[2] वे इस विश्व को 'संघर्ष-क्षेत्र' के सदृश भी मानते हैं। "उसने स्वयं इस संघर्ष-क्षेत्र का निर्माण किया है। पाँच विकारों[3] ने खूब ढोल-धमाके के साथ इसमें प्रवेश किया है। गुरुमुख (उन्हें दलित कर) आनन्द मनाते हैं। परन्तु मूर्ख, गँवार मनमुख उनके सम्मुख पराजित हो जाते हैं।"[4] अस्तु:, आत्मा का विकास ही सृष्टि का उद्देश्य बताया गया है।

३. मानवात्मा और इसका स्वरूप

संसार के लगभग सभी धर्म आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। तथापि आत्मा के स्वरूप सम्बन्धी प्रश्न पर वे अपने-अपने विश्वासानुसार दो वर्गों में बँट सकते हैं। एक वर्ग का विश्वास है कि ईश्वर ने विभिन्न स्वभावों की आत्माओं की रचना की, तथा वे ईश्वरीय अनुज्ञा से मिट्टी से सर्जित शरीरों में प्रवेश कर गईं। जन्म से मृत्यु तक आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं आता। आत्माओं के पथ-प्रदर्शन के लिए ईश्वर ने अपने दूतों एवं पैगम्बरों के माध्यम से आदेश भी प्रस्तुत किए हैं। प्रदत्त आदेशों की परिभाषानुसार उत्तम कार्य करने वाले जीवों को, शरीर के विसर्जन हो जाने पर, स्वर्ग अथवा बहिश्त प्राप्त होगा, जहाँ वे विभिन्न प्रकार का आनन्दास्वादन करेंगे। निकृष्ट कर्म क़रने वाले लोगों की आत्माओं को पाताल अथवा कुएँ में फेंक दिया जायगा; वहाँ उन्हें कष्टकर दण्ड भोगना होगा। इस प्रकार का विश्वास रखने वाले धर्मों में प्रायः स्वर्ग की व्याख्या एक ऐसे स्थान के रूप में की गई है, जहाँ उत्तम कृत्य करने वाले जीव दीर्घवर्षीय आनन्द का लाभ पाते हैं, और कुआँ एक ऐसा स्थान है, जहाँ बुरी आत्माएँ नित्य उत्पीड़न सहन करती हैं।

दूसरे वर्ग में लगभग वे सब धर्म आते हैं, जिनका उदय भारतवर्ष की धरती पर हुआ है। इस वर्ग के मतानुसार समस्त आत्माएँ सार रूप में समान हैं, विभिन्न सम्पर्कों में वे अलग-अलग स्वभाव का विकास करती हैं। मनुष्य जिस विन्दु पर विचार करता है, जिस भी शब्द का उच्चारण करता है या जो भी कार्य करता है, वे सब उसके मन पर प्रतिविम्ब बनाते हैं। जब ये विचार, शब्द तथा कार्य पुनः-पुनः आवृत्त होते हैं, प्रतिविम्ब गहरा जाते तथा अन्ततो-

---

१. रामकली सि० गो० ३०।
२. गउड़ी अष्ट, ६ : ८।
३. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार।
४. वार मलार, पउड़ी ४।

गत्वा स्वभाव में परिवर्तित हो जाते हैं। इन स्वभावों से प्रकृति निर्मित होती है तथा उसका मानसिक धरातल उन विचारों, शब्दों और कृत्यों के परिणाम स्वरूप दिन-प्रति-दिन परिवर्तित होता चलता है। जब बाह्य वातावरण की तरंगें हमारे मानसिक संयन्त्र से टकराती हैं, तो परिणामतः उदित होने वाली प्रतिक्रिया ही पीड़ा और आनन्द का कारण बनती है। इसे एक उदाहरण द्वारा चित्रित किया जा सकता है। मैं दूर से एक व्यक्ति को आते देखता हूं। जब तक मैं उसे पहचान नहीं लेता, मेरा मन निर्विकार रहता है। किन्तु जब वह निकट आ जाता है और मैं उसे मित्र अथवा शत्रु रूप में पहचान लेता हूं, तो उसके प्रति मेरे मन में क्रमशः प्रसन्नता या घृणा उत्पन्न होने लगती है। यदि कोई व्यक्ति बाहरी छायाओं से उदित मानसिक प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित कर सकता, अथवा दूसरे शब्दों में, मन को संयमित कर सकता हो, तो उसके जीवन से दुःख एवं अवसाद का अन्त होता है, क्योंकि घृणा, क्रोध एवं द्वेष की धारणाओं से ही दुःख पनपता है। असन्तुष्ट वाञ्छाएँ भी अवसाद का कारण बनती हैं। जब इन तथा अन्य सम्बद्ध प्रदोषों को मन से विसर्जित कर दिया जाता है, आत्मा इन त्रुटियों से मुक्त हो जाती है तो परिणामतः शान्त और उल्लसित जीवन उपलब्ध होता है। अतः, इस वर्ग के विचारक यह नहीं सिखाते कि कोई बाह्य माध्यम अथवा यमदूत मानवात्मा को स्वर्ग या नरक में ले जायँगे। उनका आग्रह है कि स्वर्ग या नरक आत्मा की मानसिक स्थितियाँ मात्र हैं, और मनुष्य को स्वर्गादि के लिए मृत्यु तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। वह जीवन्मुक्ति अर्थात् इस संसार में रहते-रहते ही मुक्ति लाभ कर सकता है।

गुरु नानक ने जपुजी में अध्यात्म-विकास के विभिन्न खण्डों—धर्म-खण्ड, ज्ञान-खण्ड, सरम (श्रम)-खण्ड, करम-खण्ड तथा सच-खण्ड—की व्याख्या करते हुए ठीक यही बात कही है। शरीरांत के साथ आत्मा का अस्तित्व नष्ट नहीं हो जाता। "आत्मा मरती नहीं, न ही तैरती या डूबती है। अपने अतीत के संस्कारों से प्रभावित वह निजी सामर्थ्यानुसार कर्म करती तथा ईश्वरेच्छा से (संसार में) आती और जाती है। यहाँ जगत में तथा इसके उपरांत जगतेतर स्थितियों में उसकी इच्छा ही सर्वोपरि है।"[१]

पवन, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश आदि पंच-तत्त्वों के संगम से शरीर निर्मित होता है, और यह स्थिर एवं अस्थिर बुद्धि की क्रीड़ा-स्थली होता है। इसके नौ (बाहरी) द्वार हैं,[२] दशम द्वार (आन्तरिक)[३] है, ज्ञानवादी भली-भान्ति

---

१. गउड़ी २ : २।

२. दो कान, दो आंखें, दो नासिका-छिद्र, मुँह तथा नीचे के दोनों मल-विसर्जक अंग—ये नौ द्वार हैं।

३. अन्तर्बोध का।

इस रहस्य को जानता है। आत्म-चिन्तन करने वाला जीव ज्ञानी बनता है, तथा जान लेता है कि आत्मा ही बोलती, व्याख्यायित करती तथा सुनती है। शरीर तो मृत्तिका है, पवन स्वर का कारण बनता है। तो बताओ, ऐ ज्ञानी, मरता क्या है ? वास्तव में बुद्धि, अहंकार तथा 'हउमै' मरते हैं, द्रष्टा कभी नहीं मरता।"[१]

बाईबल में कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि अपने ही प्रतिरूप में की है। यह कथन शरीर के लिए, जो कि मृत्तिका है, न होकर आत्मा के लिए है, जिसमें प्रभु की ज्योति विद्यमान है। "समस्त आत्माएँ ज्योतिर्मान हैं, और वह ज्योति ही ब्रह्म है। उसी की दीप्ति से सबको प्रकाश मिलता है।"[२] "वह सर्वव्यापक आत्मा में विद्यमान है, और आत्मा उसमें निहित है। इस बात का ज्ञान गुरु के आदेशों का पालन करने से ही सम्भव है। गुरु की अमृतमयी शिक्षाओं का परिचय मैंने 'शबद' के माध्यम से प्राप्त किया है। मेरे दुःखों का अन्त हो गया तथा 'हउमै'-नाश हुआ। नानक कहते हैं कि 'हउमै' विकट रोग है। यह व्याधि सबमें व्याप्त है। ईश्वर स्वयं गुरु-'शबद' के माध्यम से इसका उपचार करता है।"[३]

"वह आत्माओं की आत्मा है। वह घट-घट वासी है। गुरु-कृपा से हृदय ज्योतित होता, तथा जीव सहज में ही शान्ति लाभ करता है।"[४]

उपरि-उद्धरित कतिपय पदों में एक प्रकार से मानव-जीवन का उद्देश्य इंगित है। 'हउमै' के दीर्घ रोग से पीड़ित आत्मा को स्वस्थ बनाना ही व्यक्ति का लक्ष्य है। 'हउमै' द्वारा प्रेरित व्यक्ति स्वार्थोन्मुख होता है; ऐसी क्रियाएँ वैयक्तिकता का पोषण करती तथा उसे सुदृढ़तर बनाती हैं। वैयक्तिकता मनुष्य में ममत्व-भावना अर्थात् सांसारिक पदार्थों पर अधिकार की सबल कामना सजग करती हैं; मनुष्य सोचता है कि इससे जीवन प्रसन्न होगा। अधिकार के लिए संघर्ष करते हुए, उसमें वासना, मोह, क्रोध और लोभ आदि उत्पन्न होते हैंऔर कालक्रमानुसार ये दुर्गुण दृढ़ बंधन बन जाते हैं। पीड़ा और अवसाद उसके अपने कर्मों का परिणाम है। "दूसरों को दोषी मत कहो, दोषी तो तुम्हारे कर्म हैं। हम अपने ही कर्मों का फल बीनते हैं, इसलिए दूसरों पर दोष मत लगाओ।"[५] "हमारे कर्मानुसार ही आदेश-पत्र तैयार होता है। कोई नियमविधान इसे बदल नहीं सकता। हम इसे यथोल्लिखित रूप में ही पढ़ते हैं, इसमें विक्षेप नहीं जोड़े जा सकते।"[६] "अपनी शक्ति द्वारा विश्व को सम्बल देने तथा प्रत्येक वस्तु को

---

१. गउड़ी ४ : ४।
२. धनासरी कीर्तन सोहिला ३ : ३।
३. भैरउ अष्ट ४।४।
४. मलार अष्ट ७ : १।
५. आसा पट्टी २०।
६. आसा ४ : २ : ३६।

सार्थक करने वाली सत्ता ही मनुष्यों के लिए उनकी सामर्थ्यानुसार प्रदेय प्रस्तुत करती है, किन्तु इस देन का निर्णय व्यक्ति के कर्मों पर होता है।"[1]

राग मारू के अन्तर्गत एक पद में गुरु नानक ने हमारे कर्मों द्वारा उत्पन्न होने वाली पीड़ा का सुन्दर रूपकात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। "मन कागज़ है, कर्म स्याही है, तथा अच्छे और बुरे लेख नित्य लिखे जा रहे हैं। हम ऐसे मार्ग पर अग्रसर हैं जहाँ हमारे पूर्वकर्म फलित होते हैं। हे प्रभु, तुम्हारी शक्ति असीम है। 'तुम क्यों उसे स्मरण नहीं करते, ऐ मूर्ख मनुष्य ! उसे विस्मृत करने से तुम्हारे सद्‌गुण भी गलित हो जाते हैं। रात्रि एक जाल है, दिवस उससे भी बड़ा जाल है, और बीतने वाले क्षण उसमें लगने वाली ग्रंथियाँ हैं; तुम सहर्ष उसके नीचे बिछे दाने को चुगते एवं दिन-दिन उसमें अधिक फँसते जाते हो। अरे मूर्ख, किस गुण से तुम अपने को मुक्त करवाओगे। शरीर भट्ठी है, मन उसमें तप्त हो रहा लोहा है तथा उसके गिर्द पांच अग्नियां (पंच विकार) प्रज्वलित हैं। उस पर पापों का कोयला ढाला जा रहा है, मन जलता है तथा (उसे थामने के लिए) चिंता की संसी है। इस प्रकार जलकर मन लोहमल (कूड़ा-कचरा) बन गया है; किन्तु यदि अब भी तुम किसी सच्चे गुरु की शरण लो, तो वह पुनः स्वर्ण बन सकता है। वह तुम्हारे मुंह में नामामृत उँडेल देगा, जिससे शरीर की अग्नियाँ शान्त हो जायँगी।[2] सारतः, गुरु नानक कहते हैं कि मूल स्वीकृत तथ्य यह है कि चाहे कोई कुछ कहे, कैसा भी दावा करे, निर्णय हमारे कर्मों पर ही आश्रित होगा।"[3] मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है, परन्तु जीवन-पथ में परिवर्तन के लिए उसे ऐसे गुरु का पथ-प्रदर्शन अपेक्षित है, जिसने परमानन्द-प्राप्ति के मार्ग को पहले से तय किया हो।

४. गुरु

संसार के लगभग समस्त धर्मों ने गुरु की आवश्यकता पर बल दिया है; यद्यपि विभिन्न मतों में उसे पृथक्-पृथक् संज्ञा दी गई है। कुछ, उसे अपने इष्टदेव का अवतार मानते हैं। दूसरों के लिए वह वुद्ध (अनुभवी जीव), पैगम्बर अथवा ईश्वर-दूत है, तथा उनके द्वारा सम्मानित पुस्तकों को वही प्रस्तुत करता है। सिख शिक्षाओं के अनुसार ईश्वर अजन्मा है, अतः सिख गुरु ईश्वर के अवतार नहीं माने जाते। वे, अपने लिये, अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त जीव के अतिरिक्त किसी विशेष पद का दावा नहीं करते—उन्होंने उस लक्ष्य को पाया है, जिसे सब खोजते हैं तथा उनमें अन्य गवेषकों के पथ-प्रदर्शन की सामर्थ्य

---

१. आसा पट्टी २२।
२. राग मारू ४:३।
३. वार सारंग, श्लोक २, पउड़ी २।

भी है। अन्ततोगत्वा, गुरु के आदेशों का पालन करने वाला शिष्य भी आध्यात्मिक उन्नति के उसी शिखर पर पहुँचता एवं परमानन्द का भोग करता है, जो गुरु को उपलब्ध हुआ होता है। अन्तिम अवस्था में, जैसाकि गुरु रामदास कहते हैं. "गुरु के आदेशों का पालन करने वाला सिख गुरु के साथ एकत्व स्थापित कर लेता है। फिर गुरु और शिष्य में कोई अन्तर महसूस नहीं होगा।"[१]

अतः, सिख से गुरु में पूर्ण विश्वास की आशा की जाती है। इस सिद्धान्त पर कोई आपत्ति कर सकता है और प्रश्न उठाया जा सकता है कि मनुष्य को गुरु के सम्मुख पूर्ण समर्पण की अपेक्षा अपनी विवेक-बुद्धि से क्यों नहीं चलना चाहिए ? परन्तु क्या हमारे दैनिक जीवन में सभी कार्य तर्कपूर्ण होते हैं ? आधुनिक मनोविज्ञान का अध्ययन इसे प्रतिकूल सिद्ध कर चुका है।

"मनुष्यों तथा उच्च श्रेणी के जन्तुओं के मानसिक धरातल के निर्माण में संस्कार रूप में उपलब्ध (जन्म-जात) प्रवृत्तियाँ अधिकांशतः बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन मूल-प्रवृत्तियों से मन की वे विशिष्ट तथा जन्म-जात प्रकृतियाँ अभिप्रेत हैं, जो किसी एक जाति के सभी प्राणियों में समान होती हैं। ये सहज संवेदनाएँ ही हमारी समूची क्रियाशीलता का उद्देश्य निश्चित करती हैं तथा प्रेरणाशक्ति देती हैं जिससे सक्रियता बनी रहती है।"[२]

"इसकी (मन की) मूल क्रियाएँ अधिकतर अतार्किक तथा अचेतन होती हैं। चेतन-तर्क की शक्ति बाद की उपज है, जो सहज-वृत्तियों, संवेगों एवं इच्छाओं से बने मानसिक प्रासाद पर, अति सुविकसित मानव प्राणियों में भी, मात्र बाह्य रूप से सतही प्रभाव ही डालती हैं। अधिकांश दशाओं में तर्क-शक्ति का प्रत्यक्ष महत्त्व भ्रामक होता है और वह गहराई में स्थित सहज-वृत्तियों तथा इच्छाओं द्वारा प्रेरित कार्यों पर आवरण डाल देती है।"[३]

इस विश्लेषण से पता चलता है कि हमारे बहुत कम कार्य तर्क-संगत होते हैं। दूसरी ओर, तर्क तो हमारी सहज-वृत्तियों तथा इच्छाओं से प्रेरित कृत्यों का औचित्य सिद्ध करता है।" मन तो विकारों, कुप्रवृत्तियों एवं द्वंद्व के प्रभाव में है,"[४] ऐसा गुरु नानक का कथन है, साथ ही वे कहते हैं, "तर्क सद्गुण-दुर्गुण का दावा करने वाले मन के संकेतों पर चलता है।"[५] अतः, नवजीवन आरम्भ करने तथा पुरातन-चक्र से मुक्त होने के लिए मनुष्य को पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है। सत्य के गवेषक कहीं वेषधारियों से छले न जायँ, इसलिए

---

१. आसा छंत ८:७:९।

२. ए० जी० तांरले, दि न्यू साइकॉलोजी एण्ड इट्स रिलेशन टु लाइफ़, पृ० ३४।

३. वही, पृ० २४।

४. गउड़ी गुआरेरी १ : ३।

५. बिलावल अष्ट, ३:२।

गुरु नानक ने सद्गुरु के गुणों का निर्देश भी दिया है।

५. गुरु के गुण (लक्षण)

"जो महत् अनुभव तुम्हें सत्य में स्थिर कर सके, अनिर्वचनीय की चर्चा करवाए तथा 'शवद' के माध्यम से तुम्हें परमात्मा में लीन करवा सके, उसे गुरु स्वीकार करो। ईश्वरीय जीवों का अन्य कोई अधिभोग नहीं। सच्चा स्वामी केवल सत्य से ही प्रेम करता है। जो व्यक्ति इस शरीर में रहते हुए अपने मन को सत्य में प्रतिपादित करते हैं, वे ईश्वर से प्रेम करने लगते तथा स्वयं सत्य का विम्व वन जाते हैं। जव मनुष्य किसी सच्चे गुरु से मिलता है, तो वह उसे प्रभु-चरणों में ले जाता एवं उसकी सेवा में प्रवृत्त करता है। अन्ततः, वह उसे ईश्वर में ही विलीन कर देता है।"[१] "सद्गुरु एक में सर्व तथा सर्व में एक देखता है एवं उसने मुझे भी ऐसा ही दिखाया है। जिस प्रभु ने लोकों और उपलोकों की रचना की है, वह अज्ञातव्य है। एक दीप ने दूसरे दीपक से ज्योति प्राप्त की और मैंने त्रिलोक में 'उसके' प्रकाश को व्याप्त देखा।"[२]

गुरु नानक नहीं चाहते कि उनका शिष्य गुरु में अन्ध-विश्वास रखे। वे तो उसे व्यापार से पूर्व, अपनी सूझ-बूझ से सामग्री की सर्वांग जाँच कर लेने का आदेश देते हैं। "ऐ मृगाक्षी, इस गहन तथा महत्त्वपूर्ण वचन को स्मरण रख, कि व्यापार से पूर्व सामग्री की सर्वांगीण पहचान अनिवार्य है।"[३] धार्मिक जीवन एक अनुभव है। जब तक व्यक्ति गुरु की शिक्षाओं का अभ्यास न करे, वह गुरु का महत्त्व नहीं जान सकता। "जिसने गुरु-निर्दिष्ट मार्ग का अभ्यास किया, वह व्यापार में लाभ उठाकर घर लौटा। गुरु-शब्दों से उसने उस विश्वात्मा को जान लिया जो सामान्यतः वचनातीत है।"[४] गुरु मनुष्य को ईश्वर के सदन तक ले जाने वाला निर्देशक है। "प्रभु स्वयं एक अति सुन्दर प्रासाद है, जिसमें माणिक, लाल, मुक्ता, जवाहर तथा हीरे भरे हैं और जो कंचन-निर्मित होने से मनोहारी है। परन्तु सीढ़ी के बिना उस दुर्ग पर क्यों कर चढ़ा जाय ? तुम गुरु के सहयोग एवं हरि में मन लीन करके उस अपूर्व सौंदर्य को देख सकते हो। वहाँ के लिए गुरु ही सीढ़ी है। गुरु ही नाव तथा हरि-नाम से भरा व्यापारिक-वेड़ा है। संसार-सागर से पार होने के लिए गुरु ही संतरण है। इस चिर-स्रवित नदी के तट पर वही एकमात्र पावन तीर्थ है। जब उसकी (प्रभु की) अनुज्ञा होती हैं, आत्मा उस तीर्थ में स्नान करती एवं पावनता लाभ करती है।"[५]

---

१. धनासरी अष्ट. ३:२।
२. रामकली दखणी ३:८।
३. श्लोक वारां ते वधीक, श्लोक २।
४. सूही अष्ट. ७:१:३।
५. सिरी राग २-३:६।

"गुरु उपकारक है, पूर्ण शान्ति उसमें निहित है। वह त्रैलोक्य में उजाला करने वाला प्रकाश-पुंज है। गुरु से प्यार करने वाला व्यक्ति चिर-शान्ति प्राप्त करता है।"[1] "सच्चे गुरु से साक्षात् होने पर व्यक्ति सत्यानुशासित जीवन अपनाता है। गुरु रूपी सोपान पर चढ़ते हुए मनुष्य ऊँचे से ऊँचा उठता है। परन्तु गुरु की उपलब्धि मात्र उसकी (प्रभु की) कृपा से ही सम्भव है, और उसके मिलन से मृत्यु-भय विनष्ट हो जाता है।"

६. सब के लिए एकमात्र मार्ग

गुरु नानक के उदय-काल में हिन्दुओं का विश्वास था कि विभिन्न वर्णों के धर्म भी भिन्न हैं। मुसलमान हिन्दुओं को काफ़िर समझते थे और पैगम्बर मुहम्मद पर विश्वास न करने वाले के नरक-गामी होने का दावा करते थे। गुरु नानक ने स्वीकार किया "कि धर्म केवल एक ही है, कोई भी सत्य का अभ्यास कर सकता है। प्रत्येक युग में परम-स्थिति की प्राप्ति गुरु की इन शिक्षाओं से 'कि निरन्तर प्रवाहमान तथा चिर-स्थायी शब्द की साधना करने वाला प्रभु-प्रेरित व्यक्ति ही अज्ञातव्य और परम को प्राप्त करता है',[2] ही सम्भव हो पाती है। सम्प्रदाय-विशेष का स्वरूप मात्र स्वीकार कर लेना अथवा किसी मत के स्मृति-चिन्हों को धारण करना बेकार है।" जब कोई हिन्दू हिन्दू-समाज में प्रवेश पाता है, वे उसके गले में सूत का धागा पहनाते हैं। अधिष्ठापन के पश्चात् भी यदि वह दुष्कर्म करता है, तो उसके तीर्थ और प्रक्षालन किसी काम नहीं आएँगे। मुसलमान अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा करता है तथा उसकी मान्यता है कि पैगम्बर मुहम्मद में विश्वास बनाए बिना किसी भी व्यक्ति को स्थान (उसके दरबार में) नहीं मिलता। किन्तु बहुत कम लोग पैगम्बर के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का आचरण करते हैं। बिना उत्तम कर्मों के कोई बहिश्त (स्वर्ग) में नहीं जा सकेगा। जोगियों की पद्धति में जो मार्ग निर्दिष्ट है, उसके प्रतीक रूप में वे कानों में मुद्राएँ पहनते हैं। कानों में मुद्राएँ पहनकर वह स्थान-स्थान पर भटकना शुरु कर देता है। (वह भूलता है) कि स्रष्टा तो यहाँ, वहाँ सब जगह विद्यमान है। सब मनुष्य पथिक हैं, परमादेश मिलते ही वे अविलम्ब चल पड़ेंगे। जो व्यक्ति यहीं उसकी जानकारी प्राप्त कर लेता है, वही मृत्यु-परांत भी उसे जानता है। शेष, हिन्दू अथवा मुसलमान होने की डींगें मारना व्यर्थ है। उसके सम्मुख तो सबको हिसाब चुकाना ही होगा। उत्तम सत्कर्मों के बिना कोई मुक्ति नहीं पा सकेगा। कोई विरल जीव ही सत्यों में परम-सत्य की चर्चा करता है। इसके पश्चात्, गुरु नानक कहते हैं, उससे कोई प्रश्न पूछना

---

१. वार माझ, श्लोक १, पउड़ी १।   २. वसन्त अष्ट, ४ : ३।

शेष नहीं रह जाता।"[१]

गुरु नानक सम्प्रदायों, वर्णों, जातियों अथवा देशों के आश्रय मनुष्यों का वर्गीकरण नहीं करते। उनके मतानुसार मनुष्य दो प्रकार के हैं—गुरुमुख (ईश्वरोन्मुख) तथा मनमुख (अहमन्य)। पूर्व-कथित प्रकार के जीव भगवान् की ओर उन्मुख रहते, सत्य का अभ्यास करते तथा समूची मानवता के लाभार्थ कार्य करते हैं। उत्तर-कथित जीव अपने ही मन की सनक का अनुसरण करते तथा छल, क्रूरता, मिथ्यात्व एवं स्वार्थ का व्यवहार करते हैं। मनुष्य अपने को कुछ भी समझे, किन्तु यदि उसे मानव-जीवन के दुःखों और कष्टों से छुटकारा पाना है, तो उसी निश्चित पथ पर कदम बढ़ाना होगा। यह नियन्त्रण सबके लिए समान है।

"मार्ग की जानकारी होना तथा गुरु-कृपा से ईश्वर-लब्धि ही सच्चे योगी के गुण हैं। अपने को अन्तर्मुखी करने तथा गुरु-कृपा से वर्तमान जीवन में 'स्व' को मारने वाला व्यक्ति काजी है। ब्रह्म का चिन्तन करने वाला ही ब्राह्मण है। वह अपनी तथा अपनी कई पीढ़ियों की सुरक्षा करता है। अपने हृदय को पवित्र करने वाला जीव ही ज्ञानी है। अपावनता का विनाशक ही मुसलमान है। शास्त्रों को पढ़कर अभ्यास में लाने वाला व्यक्ति ही उसे स्वीकार्य होता है, और वही उसके दरबार का पद-चिह्न शिरोधार्य करता है।"[२]

"जो ब्रह्म को पहचाने, उसके लिए जप, तप एवं संयम का अभ्यास करे तथा संतोष और सद्भाव पर दृढ़ आचरण करे, वही ब्राह्मण है। वह सब बंधनों को भंग करता तथा मुक्ति-लाभ करता है। ऐसा ब्राह्मण पूजने-योग्य है।"[३]
"खत्री वीरता के कर्म करता तथा उदारता और सद्भावना का मूर्त्त रूप होता है। दान देते हुए वह पात्र की योग्यता की जाँच करता है। ऐसा खत्री उस (ईश्वर) के दरबार में स्वीकार्य है। किन्तु यदि वह लोभ और लोलुपता से मिथ्या व्यवहार करता है, तो उसे अपने दुष्कर्मों का दण्ड भुगतना पड़ेगा।"[४]

"मुसलमान कहलवाना कठिन है, परन्तु यदि कोई सचमुच मुसलमान है, तो उसे ऐसा कहलवाने का अधिकार है। इसके लिए पहली शर्त धर्म-प्रेम है, फिर सम्पत्ति का त्याग कर हृदय को (पापों के) धब्बों से निर्मल करना अपेक्षित है। जब व्यक्ति मुसलमान बनता तथा धर्म को अपना (जीवन-नौका का) कर्ण-धार स्वीकार करता है, तो उसे अपने जीवन-मरण की चिन्ता त्याग देनी चाहिए। उसे ईश्वरेच्छा के सम्मुख नतमस्तक होना, स्रष्टा का आज्ञा-पालन करना तथा आत्म-प्रेम अपेक्षित है। जब वह सब जीव-धारियों पर दया करना

---

१. वार रामकली, श्लोक २, पउड़ी ११।
२. धनासरी ४ : ५ : ७।
३. श्लोक वारां ते वधीक १६।
४. श्लोक वारां ते वधीक १७।

सीखता है, तभी मुसलमान कहलवा सकता है।"[1]

जैसे पेड़ की पहचान उसपर उपजने वाले फल से होती है, वैसे ही मनुष्य का धर्म उसके कर्मों से जाना जाता है। ऐसे परिधान, चिह्न, आकार, अनुष्ठान, धर्मविधियाँ तथा रीति-रिवाज, जो उत्तम कर्मों की प्रेरणा न दें, मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर दूर तक ले जाने में पूर्णत: असमर्थ हैं। वास्तविक समस्या मन को अनैतिक प्रवृत्तियों से मुक्त करने की है। यदि वह लक्ष्य पूर्ण न हुआ, तो हमारा सब जप-तप व्यर्थ है।

"कुछ लोग जंगलों में रहते तथा कंद-मूल पर निर्वाह करते हैं। कुछ भगवा धारण कर इधर-उधर भ्रमते तथा योगी-संन्यासी कहलाते हैं। वे प्राय: अन्तर से तृष्णावान् होते हैं तथा भोजन-वस्त्र की चिन्ता में समय नष्ट करते हैं—न वे गृहस्थी रहते हैं, न पूर्णत: उदासीन ही बन पाते हैं। वे तीन गुणों से उपजने वाली कामनाओं तथा मृत्यु से बच नहीं पाते। गुरु के आदेशों का पालन करने वालों तक यम की कोई पहुँच नहीं। वह (यम) उनके दासों का भी दास बना रहता है। सच्चे 'शबद' पर विश्वास रखते तथा हृदय में सत्यता लिए हुए वे गृहस्थ में रहकर भी विरक्ति का अभ्यास करते हैं। नानक कहते हैं, जो गुरु की सेवा में आता है, वह सब कामनाओं से मुक्त हो जाता है।"[2]

"वे दूसरों में त्याग-भावना का प्रचार करते हैं, परन्तु अपने मठ स्थापित करते हैं। अपना आवास छोड़कर वे सत्य को क्योंकर पा सकते हैं? उनमें ममता तथा स्त्री-आकर्षण तो बना ही रहता है। वे न तो अवधूत बन पाते हैं, न गृहस्थी ही रहते हैं। ऐ योगी! भ्रम के दु:खों को दूर करने हेतु अपने ठिकाने पर स्थिर रहो। क्या द्वार-द्वार पर भिक्षा माँगने में तुम्हें लाज नहीं लगती? तुम स्तोत्र गाते हो, किन्तु अपने को भी नहीं पहचानते। इस पर तुम्हारे कष्टों का अन्त कैसे हो? भिक्षा-वृत्ति से प्राप्त भोजन की अपेक्षा यदि तुम प्रेम-भरे हृदय से 'गुरु-शबद' में विश्वास जगाओ, तो तुम्हें उच्चतम विचारों का भोजन प्राप्त होगा। जो भस्म लगाते और फिर भी पाखण्ड करते हैं, उन्हें माया से बंधे होने के कारण यम-दण्ड सहना ही पड़ेगा। टूटे हुए प्याले (विभ्रान्त हृदय) में प्रेम का उपहार रह ही नहीं सकता। कर्मों से बंधकर तुम्हें सदैव आना-जाना पड़ेगा। तुम यति कहलवाते हो, फिर भी संयम नहीं रखते। भिक्षा माँगते हुए स्त्रियों को माई अर्थात् 'माता' कहते हो, परन्तु तुम्हारी आँखों में वासना भरी रहती है। ऐसे लोग क्रूर हैं, उनमें परम-ज्योति की दीप्ति विद्यमान नहीं। वे सिर से पाँव तक सांसारिक बंधनों में फंसे हैं। वे अपने वर्ग का परिधान—कफ़नी—पहनते और अभिनेता की भान्ति मिथ्या अभिनया-

---

१. वार माझ श्लोक १, पउड़ी ८। २. वार माझ पउड़ी ५।

चरण करते हैं। उनके अन्तर में कामना की अग्नि जल रही है; अतः, सत्कर्मों के अभाव में उनका मोक्ष किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? वे कानों में काँच की मुद्राएँ पहनते हैं, किन्तु यथार्थ ज्ञान के बिना मुक्ति कहाँ ! उनकी जिह्वा स्वादिष्ट भोजन के लोभ में पड़ी है। वे पशु बन गए हैं और पशुता का त्याग नहीं कर सकते। संसार के सब लोग तथा योगी भी, तीन गुणों के प्रभाव में हैं। 'शब्द' के प्रतिपादन से ही शोक का अन्त सम्भव है। जो जीव सच्चे 'शबद' द्वारा अपने को पवित्र बनाता है, वही वास्तविक योग का जानकार है। हे ईश्वर, नौ निधियों पर तुम्हारा अधिकार है, तुममें निर्माण और विनाश की शक्तियाँ निहित हैं। जो तुम्हारी इच्छा होती है, वही होता है। हृदय में जब सत्य का वास होता है, तब ब्रह्मचर्य, सद्भाव तथा आत्म-संयम अपने-आप उदित होते हैं। नानक कहते हैं, ऐसा योगी तीनों लोकों का हितैषी होता है।"[१]

"हम तीर्थों पर जाकर निवास करें, अथवा मौन साधना या जप, तप, संयम, सद्भावना तथा अन्य उत्तम कर्मों का अभ्यास करें, परन्तु परमसत्य से (प्रेम के) अभाव में ये सब व्यर्थ हैं। जो कुछ मनुष्य बीजता है वही वह काटता हैं; सद्गुणों की प्राप्ति के बिना जीवन निरर्थक है। ऐ साधक ! केवल वही (आत्मा) शान्ति-लाभ करती है, जो सद्गुणों से युक्त है। जो अपने दुर्गुणों का त्याग कर स्वयं को उसमें (प्रभु में) लीन कर लेती है, वही गुरु की परम शिष्या है।"[२]

आध्यात्मिक जीवन का आधार नैतिक आचरण है। हृदय से पवित्र जीव ही ईश्वर को पाएगा। "सत्य पवित्र पात्र (हृदय) में ही स्थिर रहता है, किन्तु शुद्ध आचरण अपनाने वाले व्यक्ति बहुत कम होते हैं। मेरी हृत्तन्त्री के तार अब उस परम-तन्त्री (दिव्य यथार्थता) के साथ स्वरैक्य स्थापित कर चुके हैं। नानक को प्रभु की शरण प्राप्त हो गई है।"[3] "अधमता का त्याग कर सद्गुणों का अनुसरण करो; जो लोग पाप करते हैं, उन्हें अन्ततः पछताना होगा। जो लोग उचित और अनुचित अवसर में भेद नहीं कर सकते, वे पुनः-पुनः (पापों के) कीचड़ में मलिन होते हैं। अपने भीतर लोभ की धूल तथा जिह्वा पर मिथ्या भाषण रखकर, शरीर के प्रक्षालन का क्या लाभ ? गुरु की सहायता से पवित्र नाम का स्मरण करो, केवल तभी तुम्हारा अन्तर्मन शुद्ध हो सकेगा। लोलुपता छोड़, निंदा तथा मिथ्यावाद का निराकरण करो; तब गुरु-शिक्षाओं से तुम्हारा कल्याण सम्भव होगा। हे प्रभो, जैसा तुम्हें सुहाए, मुझे वैसा ही रखो; तुम्हारा दास, नानक, तुम्हारे नाम की महिमा का सदैव गान करता रहेगा।"[४]

---

१. रामकली अष्टपदी २।
२. सिरी राग, अष्ट १ : ६।
३. सोरठ ५ : ६।
४. सोरठ ४ : ६।

निर्विकार भाव से प्रभु का स्मरण करने से हृदय पवित्र होता है। "जब हमारे खाद्य, हाथ, शरीर अथवा कोई अन्य भाग मलिन हो जाते हैं, तो जल से धोकर उनकी धूल साफ़ कर ली जाती है। जब कपड़े मल से अपवित्र हो जाते हैं, तो उन्हें साबुन से धोकर शुद्ध कर लिया जाता है। इसी प्रकार, जब हमारी मति पापों से भ्रष्ट हो जाती है, तो उसे नाम के प्यार से धोया जा सकता है।"[1] "अपने हृदय की शिला पर मैं नाम का चन्दन रगड़ूँगा। उसे सत्कर्मों के केशर में मिश्रित कर मैं मन में तुम्हारी आराधना करूँगा। 'नाम' का ध्यान और मनन करने से ही भक्ति होती है, उसके बिना भक्ति का कोई स्थान नहीं। बाहर के देवी-देवताओं को स्नान करवाने का कोई लाभ नहीं, अपने अन्तर्मन को धोओ। आत्मा को सर्व-मलिनता से स्वच्छ करने से ही तुम्हें मोक्ष-मार्ग की प्राप्ति होगी।"[2]

सम्प्रदाय के सूत्रों तथा चिह्नों का महत्त्व तभी होता है, जब हम उनमें निहित अर्थ को समझते हैं। "जब तक उनमें अर्थ सजग है, वे न केवल लाभ-प्रद हैं, बल्कि सार्थक और जीवन-दायी भी हैं। जब हम यह विचारते हैं कि इनमें (सूत्रों-चिह्नों आदि में) कोई भौतिक और चमत्कारक गुण भी है, तब परिणामतः हम ईश्वर से दूर हटते तथा लगभग नास्तिक बनते जाते हैं।"[3] एक हिन्दू चुंगी मुहरर की भर्त्सना करते हुए गुरु नानक कहते हैं कि वह हिन्दू धार्मिक-चिह्नों को धारण करता है, किन्तु उसका आचरण उनके वास्तविक अभिप्राय से बिल्कुल विपरीत है। उसने चुंगी-कर चुकाए बिना एक ब्राह्मण तथा उसकी गाय को पार नहीं जाने दिया था, और फिर उसी गाय के गोबर से उसने अपनी रसोई में लिपाई की थी, एवं उस स्थान को पवित्र मानकर वहाँ भोजन बनाने लगा था।

"तुम गो-ब्राह्मण पर तो कर लगाते हो, गोबर तो तुम्हें पार नही पहुँचा सकता। तुम धोती, माला और तिलक का परिधान बनाते हो, परन्तु म्लेच्छों का अन्न खाते हो। घर में तुम पूजा (हिन्दू ढंग की साधना) करते हो, और बाहर तुर्कों की धर्म-पुस्तकें पढ़ते तथा उन्हीं सरीखा आचरण करते हो। यह पाखण्ड छोड़ दो! केवल नाम-स्मरण से ही तुम्हारी रक्षा होगी। उधर मानव-भक्षी नमाज़ पढ़ते हैं। इधर जो उनके लिए छुरी चलाते हैं, वे जनेऊ पहनते हैं तथा ब्राह्मण उनके यहाँ भोजन पाते हैं। वे भी इसपर प्रसन्न हैं। उनकी पूँजी तथा व्यापार दोनों मिथ्या हैं, और मिथ्या वचनों से ही वे भोजन प्राप्त करते हैं। शील-धर्म उनके आवास से दूर हैं; नानक कहते हैं, "सब ओर मिथ्यात्व

---

१. जपुजी २० पउड़ी। २. राग गूजरी २ : १।
३. फ्रॉउद : शॉर्ट स्टडीज़, भाग १, पृ० ६०।

व्याप्त है।"[1] "सच्चे नाम के बिना तिलक-जनेऊ सब व्यर्थ हैं।"[2]

मुसलमान को उन्होंने कहा, "पाँच नमाज़ें हैं, उनके पाँच पृथक् समय हैं और पांच विभिन्न नामों से उन्हें पुकारा जाता है। प्रथम सत्य है, द्वितीय आजीविका के सम्यक् साधन, और तीसरे प्रभु-नाम से प्रेम है। चौथी नमाज उचित संकल्प तथा पाँचवीं नमाज़ सर्वशक्तिमान् का गुणगान है। (ये पाँचों नमाज़ें अदा करो, तथा) सत्कर्मों का क़लमा पढ़ो, तब तुम मुसलमान कहलवाओगे।"[3]

इसी प्रकार उन्होंने योगी को सम्बोधन किया है। "मन में गुरु के 'शबद' की मुद्राएँ पहनो तथा धीरज की कफ़नी धारण करो। उसके सब कृत्यों को अनुकूल-भाव से जानो, और इस तरह सहज-योग को प्राप्त करो। बाबा, परम सत्य के साथ संगठित आत्मा युग-युग तक योगी बनी रहती है। वह आत्मा, नाम का अमृत पान कर पावन होती है, तथा उसका शरीर ज्ञान-गंध से सुवासित हो उठता है। सब शोक-संताप तथा वाद-विवाद को छोड़कर वह आत्मा के यथार्थ खण्ड में स्थान प्राप्त कर लेता है। 'शबद' ही उसकी सिंगी (सींग का बाजा) है, जिसका सुमधुर संगीत दिन-दिन गुंजरित होता है। चिन्तन ही उसका पात्र है, वह विवेक-बुद्धि का दण्ड धारण करता तथा वर्तमान में स्थित-प्रज्ञता की विभूति रमाता है। हरि-गुण-गान ही उसका कीर्तन है, गुरमुख (आत्मा) का मार्ग सर्वाधिक विरक्ति का रास्ता है। अनेक वर्णों में उसी प्रभु की ज्योति देखना ही उसकी बैरागिन[4] है। नानक कहते हैं, "ऐ भरथरी योगी, सुनो, परम-सत्य की साधना ही एकमात्र लक्ष्य है।"[5]

गुरु नानक ने सब मनुष्यों में समानता का प्रचार किया। "मैं सब मनुष्यों को उत्तम मानता हूँ, किसी को अधम नहीं समझता। सब घटों को एक निर्माता ने समान रूप दिया है, समूची सृष्टि में एक ही ज्योति व्याप्त है। मनुष्य इस सत्य की जानकारी उसकी कृपा से ही प्राप्त करता है, उसके उपकारों को कोई नहीं भुला सकता।"[6] "जन्मगत जाति व्यर्थ है, इससे तुम सत्य के जानकारों का नैकट्य प्राप्त नहीं कर सकते। मनुष्य की जाति अथवा मत उसके कृत्यों द्वारा निश्चित होता है।"[7] "जाति से कोई लाभ सम्भव नहीं। वहाँ अन्तर्मन के सत्य की जांच होगी। विष का सेवन करने वाले सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ध्यान

---

१. वार आसा, श्लोक १, पउड़ी १६।   २. वार आसा, श्लोक १, पउड़ी ८।
३. वार माझ ६ : ३, पउड़ी ७।
४. वैरागिन आधारी को कहते हैं; यह लकड़ी का आश्रय होता है, जिसे ध्यान लगाते समय योगी भुजाओं के नीचे रखते हैं।
५. राग आसा ४ : ३ : ३७।   ६. सिरी राग अष्ट ६ : १४।
७. राग प्रभाती ४ : १०।

दो, ईश्वर युग-युग का शासक है। उसके दरबार में केवल वे ही सम्मानित होंगे, जो उसका 'हुकम' मानेंगे। मुझे प्रभु ने भेजा तथा इस कार्य को करने की आज्ञा दी है। नगाड़ची (गुरु) ने 'शबद' द्वारा विचार प्रतिपादित किया है।"[१]

अतः, उन्होंने सब मनुष्यों को यही शिक्षा दी है कि 'नाम' का संयमन ही ईश्वर-कृपा तथा मोक्ष का आधार है। "यदि मुझे किसी पवित्र स्थान पर जाना अपेक्षित है, तो वह स्थान 'नाम' है। 'शबद' का प्रतिपादन ही तीर्थ है, जो आत्म-ज्ञान का कारण बनता है। गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान ही यथार्थ तीर्थ है, और उसमें स्नान करना सदैव कल्याणप्रद है। मैं सदैव हरि-नाम की याचना करता हूँ; ऐ धरणी-धर प्रभु, मुझे यही प्रदान करो। संसार रुग्ण है और नाम उसकी औषधि है। सत्य पर धूल की परत चढ़ी है। गुरु का 'शबद' सदैव निर्मल प्रकाश का उत्स है, (जो अनुसरण करते हैं) प्रतिदिन सत्य के पावन जल में स्नान करते हैं।"[२] नाम सर्व-व्यापक है, सम्पूर्ण सृष्टि का आधार यही है। "सृष्टि में नाम भरपूर है, कोई स्थान नाम-रहित नहीं।" नाम-चिन्तन का अर्थ परम-सत्य के सर्व-व्यापक एवं सर्वाश्रय पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करना है। इससे अन्ततोगत्वा हम जान लेते हैं कि हमारा रहना, चलना-फिरना तथा जीना उसी में निहित है।" उसकी उपस्थिति के बोध से हमारे समस्त दुर्गुणों का विसर्जन हो जाता है; किन्तु नाम-निधि की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब हमारे अहम् का अन्त हो चुका होता है। (अग्नि, जलादि) तत्त्वों से बने इस शरीर में पवन से उग्र सम्भाषण होता है। जिह्वा तथा अन्य इन्द्रियों की पृथक्-पृथक् रुचि है, हमारे नेत्र दर्शन-सुख के इच्छुक हैं, तथा प्रेम और ईश्वरीय-भय का हमें कोई ध्यान नहीं रहता। किन्तु नामोपलब्धि तो अहम्-त्याग से ही सम्भव है।"[३] इससे कामना की अग्नि बुझती तथा हृदय में शान्ति भरती है। "हृदय में नाम को धारण करने तथा मुख में नामामृत पान करने वाले व्यक्ति को ईश्वर अपने ही समान अनाकांक्षी बना लेता है।"[४]

"दुर्गुणों का अन्त कैसे हो? मिलन की तड़प को कैसे पुनर्जीवित किया जाये? (यही वास्तविक समस्या है।) कान विंधवाने तथा भिक्षाटन करने का कोई लाभ नहीं। मन को स्थिर करने वाला 'शबद' कौन-सा है? केवल 'नाम' ही हमें नरकवास से चिर-स्थायी जीवन की ओर प्रेरित करता है। जब मनुष्य के लिए हर्ष-शोक समान हो जाता है, नानक कहते हैं, तभी वह गुरु की शिक्षाओं की यथार्थ अनुभूति प्राप्त करता है। छः शास्त्रों का अनुकरण करने वाले श्रम-साधक न तो गृहस्थी हैं, न संन्यासी। किन्तु जिसने निराकार में लीनता का

---

१. वार माझ, पउड़ी १०।
२. धनासरी छंत १ : १।
३. राग गउड़ी २ : ७।
४. गउड़ी १ : ६।

लक्ष्य पा लिया हो, वह भिक्षाटन को क्यों जायगा !"[1]

हम अपने प्रिय को स्मरण करते हैं। स्मृति प्रेम को बनाती और बढ़ाती है। इसीलिए गुरु नानक का संदेश है कि निरन्तर ईश्वर का स्मरण हमारे मन में प्रभु-प्रेम जागृत करता तथा आन्तरिक मलिनता का नाश करता है। अतः कहा जा सकता है कि हमारे सब कष्टों का एकमात्र उपचार 'नाम-स्मरण' ही है। यदि व्यक्ति नाम की भूख अनुभव करे, तो उसके सांसारिक दुःख ही उसको भोजन बनकर सन्तोष देते हैं।"[2]

जब संसार को माया अथवा प्रकृति का सृजन माना जाने लगा, तथा लोगों को माया या प्रकृति के फंदों से मुक्त होने की शिक्षा दी गई, तब स्वभावतः ही आध्यात्मिक उन्नति के लिए उत्सुक लोगों ने सांसारिक क्रिया-कलाप का त्याग कर दिया और जंगलों अथवा पर्वतीय गुफ़ाओं में जाकर रहने लगे। गुरु नानक इससे सहमत नहीं थे। उनके मतानुसार मनुष्य सांसारिक कर्म करते हुए भी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। "सत्य का चिन्तन करने से ज्योति का उदय होता है, तब ऐन्द्रिय सुखों के बीच भी मनुष्य विरक्त बना रहता है। गुरु की यही महिमा है कि उसकी शरण में आया जीव स्त्री-पुत्रों संग रहता हुआ भी मोक्ष लाभ करता है।"[3]

लोहारीपा ने, जो गोरखनाथ का शिष्य कहलाता था, गुरु नानक को योगी बनकर उन्हीं की जीवनचर्या अपना लेने का सुझाव दिया।

"हाट-बाट से दूर संन्यासी जंगल में झाड़ियों और पेड़ों में रहता है। भोजनार्थ वह कंद-मूल का सेवन करता तथा ज्ञान-चर्चा में मग्न रहता है। तीर्थों पर स्नान करने से उसे मानसिक शान्ति मिलती तथा मन निर्मल होता है। गोरख का शिष्य लोहारीपा कहता है कि यही योग-मार्ग है।"[4] गुरु नानक ने उत्तर दिया, "हाट-बाट में मनुष्य को सावधान रहना चाहिए तथा अपने मन को पर-स्त्री की ओर आकर्षित नहीं होने देना चाहिए। नाम के आधार के बिना मन को कोई सम्बल प्राप्त नहीं और न ही उसकी भूख (सांसारिक वस्तुओं की) शान्त होती है। गुरु ने मुझे वह दुकान, तथा घर दिखाया है, जहाँ मैं शान्तिपूर्वक सत्य का व्यापार करता हूँ। नानक कहते हैं, मेरी निद्रा (प्रमाद की) टूट चुकी है और अब मैं अल्पाहार तथा तत्त्व-विचार का प्रतिपादन करता हूँ।"[5]

उन्होंने अपने शिष्यों को भिक्षाटन की नहीं, बल्कि परिश्रम से अर्जन करने एवं दरिद्रों को दान में कुछ देने की सम्मति दी है। नानक कहते हैं, "जो अपना

---

१. वार रामकली श्लोक ७, पउड़ी १२।
२. रहिरास १ : ३।
३. धनासरी राग २ : २ : ४।
४. रामकली सि० गोष्ठी, पउड़ी ७।
५. रामकली सि० गोष्ठी, पउड़ी ८।

जीविकोपार्जन स्वयं करता तथा दूसरों को भी बाँटकर देता है, वही वास्तविक पथ को पहचानता है।"[१]

'गुरु नानक की शिक्षाओं' पर लिखे इस लेख को, मैं गुरु नानक के ही शब्दों में 'आदर्श पुरुष' की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए, समाप्त करता हूँ :

ऐसे जन विरले जग अंदरि परखि खजाने पाइआ।
जाति वरन ते भए अतीता ममता लोभु चुकाइआ।
नामि रते तीरथ से निरमल दुखु हउमै मैलु चुकाइआ।
नानकु तिन के चरन पखालै जिन गुरमुखि साचा भाइया॥[२] ८ : ७।

---

१. वार सारंग, श्लोक १, पउड़ी २२।

२. प्रभाती अष्टपदी ८ : ७।

(इस जगत में कोई-कोई ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिनकी सर्वाङ्गीण जांच करके ईश्वर ने उन्हें अपने मुक्त-कोष में संग्रह कर लिया है।

उन्होंने जाति-वर्ण के बन्धनों से मुक्ति पा ली है, तथा लोभ और ममता का त्याग कर दिया है।

'नाम' में आसक्त होने से वे निर्मल तीर्थ के समान बन गए हैं और उनमें से दुःख तथा अहंकार की मलिनता का अन्त हो गया होता है।

नानक ऐसे गुरमुख सन्तों के चरण धोता है, जिनके हृदय में परम-सत्य निवसित है।)

गुरु नानक : एक जीवन-चित्र

डा० हरिराम गुप्त

समकालीन घटनाएं

गुरु नानक का जीवन-काल (१४६९-१५३९) युगांतरकारी था। उस समय भारत तथा यूरोप, दोनों स्थानों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुईं।

१४८५ में इंग्लैण्ड में ट्युडर शासन की स्थापना के साथ ही न केवल वहाँ, प्रत्युत सामान्य रूप से सारे यूरोप में ही आधुनिक युग का आविर्भाव हुआ। यह **पुनर्जागरण**[1] (रेनासाँ), साहसिक कृत्यों तथा **खोजों**[2] और **धार्मिक सुधार**[3] का काल था। भारत में भी यह धार्मिक 'रेनासाँ' युग था। भक्ति आन्दोलन अपने उत्कर्ष पर था। उत्तर प्रदेश में रामानन्द तथा कबीर; महाराष्ट्र में नामदेव तथा एकनाथ जैसे प्रमुख नायकों ने ईश्वर की एकता, प्रेम तथा शांति का संदेश प्रचारित कर देश के विभिन्न भागों में सराहनीय कार्य किए थे।

गुरु नानक के समसामयिकों में जिनका उल्लेख किया जा सकता है वे हैं : (१) **वल्लभाचार्य**[4] (जन्म १४४९) जिनके अनुयायी गुजरात तथा राजस्थान में बहुत थे। (२) **चैतन्य महाप्रभु** (१४८६-१५३३) जिनका प्रभाव बंगाल में था। वह बंगाल के एक महान् सन्त तथा कृष्ण के परम उपासक थे। ईश्वर में अपने विश्वास और भक्ति के कारण उन्होंने लोगों में महत् धार्मिक उत्साह को जगाया। गीतों तथा नृत्यपूर्ण कीर्तनों द्वारा उनके अनुयायी ईश्वर दर्शन के निमित्त आत्मविभोर हो जाते थे। (३) **मीराबाई**, जो १४४९ में जोधपुर में

---

१. इंग्लैण्ड में कोलेट ने १५१० में संत पॉल के प्रसिद्ध ग्रामर स्कूल की स्थापना की। इरैस्मस ने १५१६ में ऑक्सफ़ोर्ड में कोर्पस खीस्टी कॉलेज खोला जिसमें यूनानी भाषा पढ़ाने के लिए यूनान से शिक्षक बुलाये गए।

२. १४९२ में कोलम्बस ने अमरीका की खोज की, वास्को द गामा ने भारत की दिशा में समुद्री मार्ग का पता लगाया, तथा फ़र्डीनेन्ड मागेल्लन ने विश्व की प्रथम जहाज़ यात्रा की।

३. मार्टिन लूथर ने जर्मनी में १५१७ में जो धार्मिक सुधार किए उससे प्रोटैस्टेंट विचारों की स्थापना हुई। सोसाइटी ऑफ़ जीजस अथवा ईसू-व्यवस्था का जन्म १५३९ में हुआ।

४. वल्लभाचार्य ने सत्, चित तथा आनन्द का महत्त्व बताते हुए एक भक्ति पद्धति की स्थापना की, जिसमें कठिन नैतिकता तथा आत्मत्याग के स्थान पर आत्मतोष तथा जीवानन्द पर ज़ोर डाला गया। यह थी कृष्ण-भक्ति धारा।

जन्मी थीं, भगवान् कृष्ण की उपासिका तथा महान् संत, कवियित्री और भक्ति-गीतों की गायिका थीं। इनके भजन आज भी लोकप्रिय हैं तथा देश के सभी भागों में गाए जाते हैं। (४) कवि **तुलसीदास**, जिनका जन्म १५३२ में हुआ, राम उपासना के महान् प्रवर्तक थे। ये अमर ग्रन्थ 'रामचरित मानस' के रचनाकार थे। यह आज भी संसार की सबसे अधिक पढ़ी तथा सुनी जाने वाली पुस्तक है।

पूर्व मुग़लकालीन भारत की अवस्था

१४६९ में जब गुरु नानक का जन्म हुआ, उत्तर भारत का शासक बहलोल लोदी (१४५१-१४८९) था। उसके उत्तराधिकारी का नाम सिकन्दर लोदी (१४८९-१५१७) था। इसके बाद इब्राहीम लोदी (१५१७-१५२६) शासक बना। गुरु नानक के समय में बाबर ने मुग़ल साम्राज्य की नींव रखी, तथा बाद में उन्हीं के समय में बाबर के बाद उसका पुत्र हुमायुँ उसका उत्तराधिकारी हुआ।

दसवीं शताब्दी के साथ ही मध्य एशिया से मुसलमान आक्रमणकारियों के लगातार धावे होने लगे। दिल्ली का मुख्य मार्ग पंजाब से गुज़रता था, इसलिए इसी प्रांत के लोगों को सबसे अधिक कष्ट भोगने पड़े। अफ़ग़ानों तथा तुर्कों ने अपने राज्य क़ायम किये, तथा विभिन्न मुस्लिम देशों ने उत्तरी भारत पर राज्य किया। विदेशी शासकों तथा उनके विदेशी प्रतिनिधियों ने सैन्यबल के आधार पर शासन किया। उन्होंने जनता का शोषण किया तथा उसे चूस लिया। उन्होंने अनगिनत अत्याचार किये, ग़ैर-मुसलमानों पर जज़िया नामक व्यक्तिगत टैक्स लगाया तथा यूँ भी उन पर भारी कर लगाये। सिवाय छोटे पदों के बाक़ी सारे ऊँचे पदों पर हिन्दुओं की नियुक्ति के मार्ग बन्द थे। हिन्दू मंदिरों को ध्वस्त कर बड़ी संख्या में मस्जिदों का निर्माण हो रहा था। हिन्दू विद्यालयों को बन्द किया जा रहा था, और हिन्दू सभ्यता तथा संस्कृति को नष्ट[1] करने का हर उपाय किया जा रहा था।

तलवार के ज़ोर पर बहुत-से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया, तथा जनता के विश्वास को तोड़ा गया। शासकों और शासित के बीच ज़बर्दस्त खाई थी, तथा हिन्दू और मुसलमान आबादियों में भी भेद वर्ता जाता था, यहाँ तक कि हिन्दू फ़क़ीरों को सभी तरह के अपमान सहने पड़ते थे, और उन्हें मुसलमान

---

१. 'द जेयूईस्टस् एण्ड द ग्रेट मुग़ल्स' नामक अपनी पुस्तक में सर एडवर्ड मैक्लागन लिखते हैं (पृ० २८) कि "किनारे से फ़तेहपुर (आगरा) तक की सारी यात्रा के दौरान पादरियों ने पाया कि मुसलमानों ने हिन्दू मंदिरों को बर्बाद कर डाला है। पश्चिम तथा पश्चिमोत्तर इलाक़ों में तो स्थिति और भी ख़राब थी।"

फ़क़ीरों से अलग क़िस्म के कपड़े पहनने पड़ते थे। हिन्दू मुसलमानों के रीति-रिवाजों तथा संस्कारों में और उनके रहन-सहन में पूरा भेद[1] था। जनता साहस खो बैठी थी तथा पुंसत्वहीन थी। विगत पाँच सदियों से एक भी उच्चकोटि का हिन्दू नेता सामने नहीं आया था। इस अवधि में, हिन्दुओं का बहुत निम्न दर्जा था। उन्हें बाध्य किया जाता कि वे अपने मस्तक पर टीका लगायें अथवा अपने वस्त्रों पर पहचान के लिए कोई चिह्न[2] लगायें। अच्छी क़िस्म का अन्न खाना, उत्तम वस्त्र पहनना, घोड़े, पालकी अथवा गाड़ियों में चढ़ना उनके लिए मना था। डेरागाज़ी खाँ ज़िले में हिन्दू केवल गधे की सवारी ही कर सकते थे। धर्मनिन्दा क़ानून को बड़ी सख्ती से लागू किया गया तथा इस्लाम की आलोचना के लिए प्राणदंड मिलता। बोधन ब्राह्मण को सिकन्दर लोदी (१४८९-१५१७) ने इसलिए प्राणदंड दिया कि उसने कहा था कि जैसा इस्लाम है वैसा ही हिन्दू धर्म भी है। हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन अक्सर होता रहता था; लेकिन विशेष अवसरों पर तथा देश के कुछ भागों में तो सामूहिक रूप से धर्म-परिवर्तन कराया जाता था।

जैसा कि प्रो० आर्नल्ड ट्यान्बी ने "द सैकरेड राइटिंग्स ऑफ़ द सिक्ख" (यूनेस्को प्रकाशन, पृष्ठ १०) में कहा है—"हिन्दू धर्म तथा इस्लाम का मुख्य मिलन स्थल भारत है, जहाँ इस्लाम ने हिन्दू धर्म पर हिंसात्मक प्रहार किये हैं। कुल मिलाकर, भारतीय भूमि में इन दो महान् धर्मों का पारस्परिक सम्बन्ध संशय तथा शत्रुता की एक दुःखद कहानी है।"

---

१. हिन्दुओं-मुसलमानों के बीच बहुत से भेदभाव थे—मुसलमान एक ईश्वर में विश्वास करते, जबकि हिन्दुओं की आस्था बहुत से देवी-देवताओं में थी; कम से कम सैद्धान्तिक रूप से तो पैग़म्बर के अनुयायियों में एकता थी, किन्तु हिन्दू जातियों तथा उपजातियों में विभाजित थे, और वे सोपानिक व्यवस्था में विश्वास रखते थे; पूजा के समय हिन्दू पूर्वोन्मुख होते तो मुसलमान पश्चिमोन्मुख; हिन्दू-उपासना में संगीत का विशिष्ट स्थान था, तो मुसलमानी उपासना में वर्जन; हिन्दुओं के लिए गो-पूजक तो मुसलमान थे गो-भक्षक; हिन्दू यज्ञोपवीत धारण करते, मुसलमान खतना करवाते; हिन्दू सामान्यतः एक पत्नी वाले होते तो मुसलमान बहुविवाहित; दोनों जातियों के लोग अपने बाल तथा वस्त्र दूसरे ढंग से संवारते; मुसलमान हिन्दुओं को 'काफ़िर' कहते, इधर हिन्दू इन्हें 'मलेच्छ' की संज्ञा देते।

२. अकबर के शासन काल में भी, लाहौर के सूबेदार, हुसैनक़ुली खाँ ने घोषणा की थी कि "हिन्दुओं को अपने कंधों या आस्तीन पर ख़ास रंग के निशान लगाने होंगे ताकि ग़लती से कोई मुसलमान उन्हें अदब दिखाकर शर्मिन्दा न होवे।" उसने हिन्दुओं को यह आज्ञा भी दी कि वे अपने घोड़ों पर ज़ीन न कसें बल्कि घोड़ों की सवारी के समय जीन को [illegible] कर लें। (देखिए श्रीरामकृत "रेलिजस पॉलिसी ऑफ़ द मुग़ल एम्परर्स" पृ० १४)।

३. तवारीख़े फ़रिश्ता (२८१)।

सिकन्दर लोदी के गद्दी पर बैठने के समय गुरु नानक २० वर्ष के थे। शाहजादा के रूप में भी सिकन्दर एक धर्मान्ध मुसलमान था। उसने उन सभी हिन्दुओं को मार देना चाहा था जो थानेश्वर के पवित्र तालाव[१] में स्नान के लिए इकट्ठे हुए थे। 'तारीखे दाऊदी' का लेखक अब्दुल्ला, सिकन्दर लोदी की प्रशंसा में लिखता है "वह इतना पक्का मुसलमान था कि उसने काफ़िरों के विभिन्न स्थानों को सम्पूर्णतया नष्ट कर दिया, और उनकी कोई निशानी न छोड़ी। उसने मूर्ति-पूजा के प्रमुख स्थल मथुरा के मठों को नष्ट कर दिया, तथा उपासना के मुख्य स्थानों को कारवाँ सरायों तथा मकतवों में बदल दिया। पत्थर की प्रतिमाओं से बूचड़ गोश्त तोलने का काम निकालने लगे, तथा सभी हिन्दुओं को सख्त मनाही की गई कि वे सिर या दाढ़ी न मुंडायें तथा आचमन-स्नान आदि न करें। इस तरह उसने मूर्तिपूजा सम्बन्धी सारे रस्मों का खात्मा कर दिया; किसी भी हिन्दू को, यदि वह दाढ़ी या सर मुंडाना चाहता, नाई नहीं मिलते। इस प्रकार हर नगर, जैसा वह चाहता था, इस्लाम[२] के रिवाजों का पालन करने लगा।" नागरकोट तथा ज्वालामुखी की प्रसिद्ध मूर्तियाँ टुकड़े-टुकड़े कर बूचड़ों में बाँट दी गईं।

धर्म का ह्रास

गुरु नानक के आगमन के समय हिन्दू तथा इस्लाम, ये दोनों धर्म भ्रष्ट तथा अवनत हो चुके थे। वे अपनी पुरानी शान तथा पवित्रता खो चुके थे। लोगों के लिए वेद अब कठिन ग्रन्थ बन चुके थे तथा उनकी जगह तांत्रिक साहित्य ने ले ली थी। जाति व्यवस्था कठोर बन चुकी थी तथा कई उपजातियाँ भी बन गई थीं। हिन्दू धर्म की आत्मा तो लुप्त हो चुकी थी और उसका बाह्य आवरण भर ही रह गया था। केवल वही रीति-रिवाज बच रहे थे जिनसे विशेष रूप से ब्राह्मणों का कोई निजी लाभ होता था। इस्लाम में भी यही हालत थी। 'रामकली दी वार' में गुरुनानक ने इन स्थितियों पर दुःख प्रकट करते हुए कहा है:

"हिन्दू का पुत्र हिन्दू कहलाया
धारण किया पवित्र जनेऊ
धारण किया पर पाप न रोका
फिर क्यों कर हुआ पवित्र !

---

१. Elliot and Dawson : Abdulla's "Tareekhe Daudi" 1872, Vol. IV, p. 439-40.

२. वही, पृष्ठ ४४७।

मुसलमान, धर्म पर गर्व करे,
बिना गुरु सद्‌मार्ग न पावे,
भटके घुप्प अंधेरे में,
बिना किए सतकार्य वही
क्यों जाए फिर जन्नत में ?
जोगीपुत्र जोगी बन आया,
कानों में डाली बाली
घर-घर घूम अलख जगाया।
साईं सब ठौर है, सबका निर्माण करे।
जो यह पहचाने सच्चा हिन्दू, सच्चा मुसलमान वही है।
बाक़ी सब नक़ली हैं,
कर्मों का जवाब देना होगा।
सत्कर्मों से ही मुक्ति मिलेगी—
अन्त में जीत सत्य की होगी।
रब के सामने सत्य छोड़
कुछ और नहीं टिकेगा।"[1]
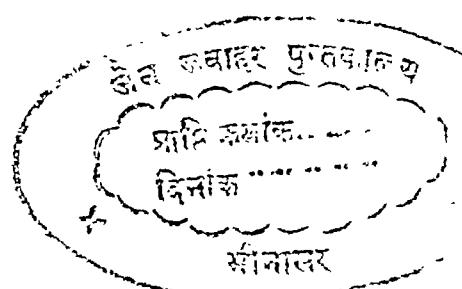
राजनीतिक स्थितियाँ

राजनीतिक अवस्था तो और खराब थी। जैसा गुरु नानक ने कहा—"यह काल तलवार-सा है। शासक तथा राजे बूचड़ों के समान हैं। अच्छाई पर लगा-कर उड़ चुकी है।" वह फिर कहते हैं—"कोई ऐसा नहीं है जो घूस लेता या देता न हो। बादशाह की जब तक मुट्ठी गर्म न हो, वह न्याय नहीं सुनाता।"[3]

१५२१ में मुग़ल आक्रमणकारियों ने लोगों के साथ जो व्यवहार किया उसे

---

१. हिन्दू कै घरि हिन्दू आवै। सूत जनेऊ पड़ि गलि पावै।
सुतु पाइ करे बुरिआई। नाता धोता थाइ न पाई॥
मुसलमानु करे वडिआई। विणु गुरु पीरै को थाइ न पाई॥
राहु दसाइ ओथै को जाइ। करणी बाझहु भिसति न पाइ॥
जोगी कै घरि जुगति दसाइ। तित कारणि कनि मुंद्रा पाई॥
मुंद्रा पाइ फिरै संसारि। जिथै किथै सिरजणहारु॥
जेते जीअ तेते वाटाऊ। चीरी आई ढिल न काऊ॥
एथै जाणै सु जाइ सिञाणै। होरु फकड़ हिन्दू मुसलमाणै॥
सभना का दरि लेखा होइ। करणी बाझहु तरै न कोइ॥
सचो सचु वखाणै कोइ। नानक अगै पुछ न होइ॥ (रामकली की वार म० १)

२. कलि काती राजे कासाई धरमु पंखु करि उडरिआ (माझ की वार म० १)

३. मैकालिफ : "दि सिख रिलीजन" जिल्द १, पृष्ठ ५।

भी गुरु नानक ने देखा। मुसलमान देशों की यात्रा से गुरु नानक वापस आ रहे थे। उन्हें अफ़ग़ानिस्तान में ही पंजाब के ऊपर किए जाने वाले बाबर के आक्रमण का, जो उसने १५१९ में दो बार किया, कुछ तो पता चल गया होगा। इन दोनों अवसरों पर नानकदेव पंजाब में नहीं थे। वे पैदल लौट रहे थे किन्तु इरानी तथा इराक़ी घोड़ों पर आने वाले आक्रमणकारियों से बहुत पीछे नहीं थे। घर पहुँचने के पहले वे अपने प्रिय शिष्य लालो के साथ, गुजरांवाला ज़िला में लाहौर से पचास मील दूर सैय्यदपुर (अब ऐमनाबाद) में रुके। जब लालो ने अफ़ग़ान अधिकारियों और सैनिकों के अत्याचारों की बात कही तो गुरु नानक ने जवाब दिया :

हे लालो, बाबर पाप की बारात लेकर काबुल से चढ़ आया है और जबर्दस्ती दान माँग रहा है। शर्म और धर्म दोनों ही छिप गए हैं और झूठ प्रधान होकर फिर रहा है। काजियों-ब्राह्मणों की बात समाप्त हो गयी है और विवाह के मंत्र शैतान पढ़वाता है।[1]

कुछ ही बाद में बाबर सैय्यदपुर पहुँचा। नानक वहीं थे। उस नगर में मुख्यतया धनिक हिन्दू व्यापारी तथा ज़मींदार थे। उन्होंने अपने धन तथा स्त्रियों के रक्षार्थ आक्रमणकारियों का काफ़ी प्रतिरोध किया। बाबर इस कारण नाराज़ हो गया और उसने वहाँ कत्लेआम का फ़रमान जारी किया। सभी युवा स्त्रियाँ दासी बना ली गईं। दूसरी स्त्रियों को ज़बर्दस्ती सैनिकों के लिए अन्न पीसना तथा भोजन बनाना पड़ा। नगर को लूटकर वहाँ आग लगा दी गई। नानक और लालो को लूट में ली गई सम्पत्ति के भारी बोझों को उठाकर सैनिक शिविरों में लाना पड़ा तथा उन्हें अन्न पीसने पर मजबूर किया गया।[2] शिविर में बंदियों पर, खास तौर से स्त्रियों पर किये गए अमानुषिक अत्याचार ने गुरु नानक का कोमल दिल तोड़ दिया। इस कठिन पीड़ा तथा चोट को वह न सह पाये। इसी वेदना में उन्होंने ईश्वर की भी आलोचना की और कहा—

"खुरासान की तुमने रक्षा की
और हिन्दुस्तान का दिल भयभीत कर दिया,

---

१. पाप की जंजु लै कावलहु धाइआ जोरी मंगे दान वे लालो।
सरमु धरमु दोइ छपि खलोए कूड़ु फिरै परधानु वे लालो॥
काजीआ बामणा की गलि थकी अगदु पड़ै सैतानु वे लालो॥ (तिलंग म० १)

२. मोहसिन फ़ानी ने, जो पाँचवें, छठें तथा सातवें गुरु के समकालीन थे, लिखा है— "नानक ने अफ़ग़ानों से क्रुद्ध होकर उनके ऊपर मुग़लों को नियुक्त कर दिया," अर्थात् अफ़ग़ानों को सज़ा देने के लिए उन्होंने देश में मुग़लों को बुला लिया। (दबिस्ताने मज़ाहिब, पृष्ठ २२३) । मोहसिन फ़ानी के इस गलत निर्णय का कारण अफ़ग़ानिस्तान से तक़रीबन एक साथ ही बाबर और नानक का पंजाब में आना है।

पर हे परम निर्माता, फिर भी
तुम निर्लिप्त क्यों हो ?
महान् मुग़ल बाबर के रूप में
तुमने स्वयं यम को भेजा है।
भयानक क़त्लेआम ने, लोगों
के शोकाकुल ऊँचे स्वरों ने,
क्या तेरे मन में किंचितमात्र
दया नहीं उपजायी, मेरे दाता ?

ओ निर्माता तू सार्वभौम शक्ति है,
सभी देशों औ मनुष्यों का
तू ख्याल कर।
यदि शक्तिवान् प्रहार करे समान शक्तिवान् पर,
फिर दुःख काहे का, शिकवा किसका ?
पर ग़रीब भेड़ों पर भयंकर शेर झपटे
तो गड़रिया चुप खड़ा क्यों देखे, बोलो!

रतन-सा राज बरबाद हुआ
कुत्तों के तीखे दाँतों से।
कोई रोने वाला नहीं इस बात पर!
धन्य हो प्रभु! कि तुम हमें जोड़ते
हो तो तोड़ते भी तुम्हीं हो।[1]

बन्दी स्त्रियों की दर्दनाक अवस्था का वर्णन नानक इस प्रकार करते हैं :—
"प्रिय सिरों को आच्छादित करने वाले केश
जिनके बीचोंबीच सिन्दूर रेखा होती थी
अब निर्मम कैंची से क़तर दिये गए।

---

१. खुरासान खसमाना कीआ हिन्दुसतान डराइआ।
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चड़ाइआ।
एती मार पई करलाणै तैं की दरदु न आइआ ॥१॥
करता तू समना का सोई।
जे सकता सकते कउ मारे ता मनि रोसु न होई ॥१॥ रहाउ ॥
सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई।
रतन विगाड़ि विगोए कुतीं मुइआ सार न काई।
आपे जोड़ि विछोड़े आपे वेखु तेरी वडिआई ॥२॥ (आसा म० १)

महलों में सुख से रहने वाली बहुएँ
सड़कों पर भीख माँग रही हैं,
उनका कोई शरणस्थल आज नहीं ।
हे महिमामय, धन्य हो तुम,
कौन जान सका तुम्हारी लीलाओं को ?
तुम्हारी माया अपरम्पार है प्रभो !

मुंडित मस्तक वाली ये नारियाँ
विवाह के समय कितनी सुन्दर थीं,
पति के साथ बैठी गजदन्त पालकियों में
जब निज गृह आयीं, पवित्र जल गगरियाँ
इन्हीं सरों पर शुभ वर्षा करतीं, स्वागत होता,
सज्जित पंखे, इन्हीं सरों पर डोल रहे थे ।
प्रथम गृह प्रवेश पर लक्ष एक रुपया मिलता,
पुनः एक लक्ष जब गृहिणी बनती ।
गरी-छुहारे तथा अन्य मृदु फलों
का सेवन करतीं ।
वे आसन सुन्दर हो उठते जिन पर
होतीं ये आसीन ।
अब गलों में रस्सी बाँधे, इन्हें
पशुवत् खींचा जा रहा आज ।
गले की माला टूट गयी, बिखरे मोती;
सौंदर्य, धन इनका सबसे कटु शत्रु;
बर्बर सैनिकों ने बनाया वन्दी
इन्हें, और अस्मत लूटी ।
जिसको चाहे प्रभु उठाये !
जिसको चाहे प्रभु गिराये !!
इस वर्बरता से कुछ थोड़े से
बचकर लौट घर आते,
फिर दूसरे उनसे अपने-अपनों का
हाल पूछ-पूछ ग़म खाते ।
कितने तो खो जाते सदा के लिए,
जो बच जाते उन्हें जीवन-भर रोना
और पीड़ा सहना है ।

आह नानक, मानव कितना बेवस है सचमुच,
सदा-सदा ही प्रभु की मरज़ी ही
सबसे ऊपर है, सबसे ऊपर है !![1]

भक्ति पद्धति के सुधारक

इन्हीं परिस्थितियों में भक्ति पद्धति के भारतीय सुधारकों ने हिंदू धर्म तथा इस्लाम के अनुयायियों के बीच कटुता को दूर करने का आन्दोलन चलाया। मुसलमान हिन्दुओं को उनकी मूर्ति पूजा तथा जाति व्यवस्था के कारण पीड़ित करते थे। भक्ति उपासक सन्तों ने इन दोनों के विरुद्ध उपदेश दिए। उन्होंने ईश्वर के पितृत्व तथा मानव के भ्रातृत्व पर जोर दिया। इन्होंने बताया कि इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि ईश्वर को मुसलमान अल्लाह या खुदा कह कर पुकारे और हिन्दू परमेश्वर और राम कहे। असली कसौटी यह नहीं कि कोई किसमें विश्वास करता है, बल्कि कोई काम किस प्रकार के करता है। कुरान

---

१. जिन सिरि सोहनि पटीआ मांगी पाइ संधूर ।
से सिर काती मुंनीअन्हि गल विचि आवै धूड़ि ।
महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलन्हि हदूरि ॥१॥
आदेसु बाबा आदेसु ॥
आदि पुरख तेरा अंतु न पाइआ करि करि देखहिं वेस ॥१॥ रहाउ ॥
जदहु सीआ वीआहीआ लाड़े सोहनि पासि ।
हीडोली चढ़ि आईआ दंद खंड कीते रासि ॥
उपरहु पाणी वारीऐ झले झमकनि पासि ॥२॥
इकु लखु लहन्हि बहिठीआ लखु लहन्हि खड़ीआ ॥
गरी छुहारे खांदीआ माणन्हि सेजड़ीआ ।
तिन्ह गलि सिलका पाईआ तुटन्हि मोतसरीआ ॥३॥
धनु जोबनु दुइ वैरी होए जिन्हीं रखे रंगु लाइ ।
दूता नो फुरमाइआ लै चले पति गवाइ ॥
जे तिसु भावै दे वडिआई जे भावै देइ सजाइ ॥४॥
अगो दे जे चेतीऐ तां काइतु मिलै सजाइ ।
साहां सुरति गवाईआ रंगि तमासै चाइ ॥
बाबर वाणी फिरि गई कुइरु न रोटी खाइ ॥५॥
इकना वखत खुआईअहि इकन्हा पूजा जाइ ।
चउके विणु हिंदवाणीआ किउ टिके कढ़हि नाइ ॥
रामु न कबहू चेतिओ हुणि कहणि न मिलै खुदाइ ॥६॥
इकि घरि आवहि आपणै इकि मिलि मिलि पुछहि सुख ।
इकन्हा एहा लिखिआ बहि बहि रोवहि दुख ॥
जो तिसु भावै सो थीऐ नानक किआ मानुख ॥७॥११॥ (आसा म० १)

और पुराण दोनों ही मानव प्रेम की सीख देते हैं। वे इस पर बल देते है कि ईश्वर की नज़र में कोई ऊँचा या नीचा, बड़ा या छोटा, महान् या क्षुद्र, अमीर या ग़रीब नहीं है। मुसलमान सूफ़ी सन्तों ने भी लोगों को इसी प्रकार के सिद्धान्त समझाये तथा शांति का प्रचार किया, तथा अपने प्रेम तथा समानता के संदेशों द्वारा उन्होंने बहुत से हिन्दुओं को इस्लाम में ले लिया। मुख्य सूफ़ी केन्द्र मुल्तान, पाकपट्टन तथा सरहिन्द में थे। भक्तों ने जनसाधारण की भाषा में तीक्ष्ण गद्य तथा अर्थभरे पद्यों में प्रचार किया ताकि उनकी सीख का प्रभाव श्रोताओं के दिल पर पड़े। जनता से इनका सम्पर्क गाँव के कुओं; बरगद वृक्ष के नीचे जहाँ लोग दोपहर के बाद आराम करते; मेलों-त्योहारों तथा शादी और शोक के मौकों पर होता था। प्रायः ये एक जगह से दूसरी जगह घूमते ही रहते और हर प्रकार ईश्वरीय प्रेम का अपना सन्देश फैलाते।

गुरु नानक का जीवन

गुरु नानक का जन्म सन् १४६९ के पन्द्रह अप्रैल[1] को एक बेदी क्षत्रीय (खत्री) परिवार में लाहौर से ६५ किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में तलवंडी नामक स्थान पर हुआ जो आज ननकाना साहब के नाम से प्रसिद्ध है। उनके जीवन को तीन भागों में बाँट सकते हैं: (१) १४६९-१४९६ अर्थात् २७ वर्षों का गार्हस्थ्य जीवन अथवा आत्मबोध और ज्ञान का काल (२) १४९७ से १५२१ अर्थात् २५ वर्षों का पर्यटन काल अथवा दूसरे धर्मों का अध्ययन तथा अपने विचारों की व्याख्या का काल; (३) १५२२-१५३९ अर्थात् १८ वर्षों तक रावी किनारे कर्तारपुर में अवकाश का जीवन-काल जब सिख धर्म की नींव डाली गई।

नानक के पिता एक ग्राम पटवारी अथवा गुमाश्ता, मेहता कालूचन्द थे। नानक ने एक ब्राह्मण शिक्षक से हिसाब तथा बहीखाते का काम लंडे महाजनी

---

१. चार 'जनम साखियों' में अर्थात् विलायत वाली, मेहरबान वाली, भाई मनीसिंह वाली, तथा खालसा समाचार, अमृतसर से प्रकाशित, साथ ही महिमा प्रकाश में गुरु नानक की जन्मतिथि वैसाख सुदी ३, सम्वत् १५२७ (१५ अप्रैल, १४६९) है। नानक प्रकाश तथा बाद को कुछ किताबों में कार्तिक पूर्णिमा, सम्वत् १५२६ (नवम्बर १४६९) है। जो भी हो, इन सभी ग्रन्थों में यह कहा गया है कि गुरु नानक ७० वर्ष ५ महीने तथा ७ दिन जीवित रहे। सभी सिख पुस्तकों में उनका निधन दिवस असुज वदी १०, १५९६ (२२ सितम्बर, १५३९) बताया गया है। इस प्रकार हिसाब लगाने से गुरु नानक की ठीक जन्मतिथि १५ अप्रैल, १४६९ है।

में सीखा, तथा एक मौलवी से फ़ारसी और अरबी सीखी। सियार-उल-मुतखारिन[1] (Siyar-ul-Mutkharin) के लेखक ने इस मौलवी का नाम सैय्यद हसन बताया है।

चिन्तनशील प्रकृति के कारण गुरु नानक हिन्दू तथा मुसलमान, दोनों जातियों के संतों की संगति में अत्यधिक प्रसन्न होते। उन्हें हर प्रकार के अंधविश्वास तथा मिथ्या विचारों से तीव्र घृणा हो गई। उन्हें अपने पिता की नौकरी या पारिवारिक व्यापारिक पेशे आदि से भी लगाव न था। वे ईश्वर के आज्ञाकारी दास तथा सच्चे भक्त के रूप में मानवता की सेवा करना चाहते थे। उनकी प्रकृति उनके पिता को, जो एक दुनियादार आदमी थे, न रुची। उनका ध्यान संसार की ओर लगाने के लिए नानक का कम उम्र में बटाला में ब्याह कर दिया गया, और उन्हें दो पुत्र हुए—श्रीचन्द तथा लखमीदास। किन्तु विवाह से भी नानक की प्रकृति न बदली। बाप-बेटे में कलह न बढ़े, ऐसा सोचकर नानक की बड़ी बहन नानकी जिसकी शादी कपूरथला के पास सुल्तानपुर[2] में हुई थी, अपने भाई को वहीं ले गई। वहाँ नानक के बहनोई जयराम ने दौलत खाँ लोदी के सरकारी मोदीखाना में नानक को भंडारी की जगह दिलवा दी। गुरु नानक ने ईमानदारी तथा विश्वास से काम किया तथा शीघ्र ही जनप्रिय भंडारी हो गये, किन्तु उनका मन ईश्वर में ही रमा हुआ था, और वे छुट्टी के समय बराबर ईश्वर के गुणगान में लग जाते। तलवंडी का एक मुसलमान मिरासी जिसका

---

१. सैय्यद गुलाम हुसैन खाँ लिखते हैं—"वे खत्री जाति के एक अन्न-व्यापारी के पुत्र थे। चरित्र के नेक तथा देखने में सुन्दर, साथ ही बातचीत में अक्लमंद थे। वे निर्धन भी नहीं थे। उस जमाने में वहाँ पर एक फ़क़ीर या प्रसिद्ध धार्मिक व्यक्ति थे। सैय्यद हसन, जिन्हें धन तथा वाक् शक्ति, दोनों प्राप्त थी। उनके कोई अपना बच्चा न था, अतः नन्हें नानक को जब उन्होंने देखा तो उसकी सुन्दरता से आकर्षित होकर उस पर स्नेह करने लगे तथा उसकी शिक्षा की जिम्मेदारी उठा ली। युवक नानक इस प्रकार प्रारम्भ में ही मुस्लिम विशिष्ट रचनाओं से परिचित हुए तथा शुरू में ही प्रतिष्ठित सूफ़ियों और चिन्तकों की विचारधारा में प्लावित होकर उन्होंने अपनी विद्वता में काफी वृद्धि कर डाली। वे पुस्तकों को इतना पसन्द करते थे कि अपने अवकाश के क्षणों में उन सभी सूत्रों को, जिनका उनके दिल पर प्रभाव पड़ा होता, अक्षरशः अथवा भावमय अनुवाद कर डालते। यह अनुवाद वे अपनी मातृभाषा पंजाबी में करते। धीरे-धीरे इन विलग वाक्यों को उन्होंने सूत्रित तथा व्यवस्थित किया और उन्हें पद्य में बदल दिया। इस समय तक वे अपने जन्मजात पूर्वाग्रहों से मुक्ति पाकर एक सर्वथा भिन्न व्यक्ति बन चुके थे।"
(Translation of Siyar Mutakharin, I, 1786 edition, pp. 82-83)

२. गुरु नानक के सुल्तानपुर जाने तक राय बुलर जो हाल ही में धर्म-परिवर्तित हुआ तलवंडी का मुस्लिम अधिकारी था, उनका बड़ा अनुग्रही तथा प्रशंसक था। (Macauliffe, I, lxxi; Puran Singh, The Book of Ten Masters, Chief Khalsa Dewan Amritsar, p. 1)

नाम मर्दाना[1] था और जो नानक से क़रीब दस साल बड़ा था, उनके मीठे मोहक स्वर, मृदु व्यवहार, मानवप्रेम, प्रेरणापूर्ण तथा अर्थभरे पद्यों तथा ईश्वर के प्रति उनके सच्चे प्रेम के कारण उन्हें बहुत चाहता था। उसे सुल्तानपुर भेजा गया कि वह नानक को ईश्वर से कुछ विमुख कर सांसारिक जीवन की ओर ध्यान लगवाने का प्रयास करे। किन्तु वहाँ पहुँचते ही उस पर नानक का जादू चल गया और नानक जब भजन गाते तो यह उनके साथ रबाब बजाता। लोग बड़ी संख्या में नानक के भजन[2] सुनने को इकट्ठे होते।

ज्ञान प्राप्ति

अन्य लोगों की भाँति नानक पास की नदी में प्रातःकाल स्नान के लिए जाते, और किनारे पर बैठ प्रार्थना करते। एक दिन वेईं[3] में नहाने के बाद वे निकट की एक गुफ़ा में जाकर समाधिस्थ हो गए। तीन दिनों तक इनका पता न चला और लोगों ने समझा कि वे पानी की तेज़ लहरों में बह गये। किन्तु नानक तो ईश्वरभक्ति में खोये हुए थे। उन्हें तभी ईश्वरीय आह्वान और प्रकाश की प्राप्ति हुई ताकि वे अपना संदेश फैलायें और समाज पर आए हुए संकटों को दूर करें।

सचेत होने पर प्रबुद्ध नानक गुफ़ा से बाहर आए और उनके मुख से निकला—"न कोई हिन्दू है न मुसलमान।" इसका अर्थ उनके विचार में यह था कि सब कोई मानवमात्र हैं, उसी महान् शक्ति की संतान हैं। इस प्रकार उन्होंने मानव के सार्वभौम बंधुत्व पर बल दिया। इसका दूसरा अर्थ यह भी था कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों ने अपने धर्मों के सिद्धान्तों की अवहेलना की है, इसलिए वे सच्चे अर्थों में हिन्दू अथवा मुसलमान नहीं रहे। इस तरह उन्होंने यह संकेत दिया कि उनके जीवन का उद्देश्य होगा दोनों जातियों को निकट लाना तथा उनके बीच शत्रुता का अन्त कराना जिससे दोनों शांतिपूर्वक रह सकें तथा अपने विश्वासों का उनके शुद्ध रूप में पालन कर सकें।

गुरु नानक ने पाँच चीज़ों के पालन पर बल दिया—(१) नाम-स्मरण तथा भजन (२) दान (३) स्नान (४) सेवा (ईश्वर तथा मानव की सेवा) (५) स्मरण,

---

१. मर्दाना का जन्म १४५९ में तलवंडी में हुआ था। ३७ वर्ष की उम्र में वह सुल्तानपुर गया था। करतारसिंह : सिख इतिहास, भाग २, पृष्ठ २।

२. मोहसिन फ़ानी ने कहा है कि इन दिनों गुरु नानक ने अपना भोजन कम कर दिया था; और बाद में केवल गो दुग्ध तथा अल्प घी पर रहते थे। बाद में वे पवन आहारी बन गये, मानो केवल हवा का ही सेवन करने लगे। (Dabistan, p. 223)

३. इस नदी को काली वेईं कहते थे, जो सुल्तानपुर के पास थी।

अर्थात् ईश्वरीय महिमा तथा निजी मोक्ष अथवा आत्मोपलब्धि के लिए निरंतर भजन तथा स्तुति ।

धर्म प्रचारक गुरु नानक

ज्ञान प्राप्ति के शीघ्र बाद गुरु नानक ने भंडारी की अपनी नौकरी छोड़ दी, तथा अपने पवित्र उद्देश्य के प्रसार के लिए यात्रा आरम्भ कर दी। कुछ समय तक उन्होंने सुल्तानपुर लोदी में धर्म प्रचार किया, किन्तु बाद में अपने निवास स्थान शेखूपुरा ज़िला में चले गए। उनकी प्रचार यात्राओं में उनके दो साथी थे—उनके प्रथम दो अनुयायी, भाई मर्दाना तथा भाई बाला। उन्होंने ईश्वर या पैगम्बर बनकर किसी दैविक शक्ति के दावे नहीं किये, उन्होंने सभी से प्रेम किया और किसी के प्रति बुराई की भावना नहीं रखी। क़ब्रगाहों में कई-कई दिनों तक बैठ और अल्लाह की स्तुति में गायन कर उन्होंने मुसलमानों का विश्वास भी जीत लिया। मुसलमानी इबादतों में शामिल होने में उन्हें कोई हिचक न होती, किन्तु वे देखते कि प्रार्थना में आए हुए लोग ख़ुदा से ध्यान न लगाकर अपने मन को घर-बार और व्यापार की बातों में भटकने देते। इस तरह उन्होंने उन पाँच प्रार्थनाओं (नमाज़ों) का महत्त्व बताया जिन्हें करना मुसलमान ज़रूरी समझते थे:—

पहली नमाज़ सच के नाम से पढ़ो;
दूसरी पढ़ो कि रोटी तेरी नेकी की हो;
तीसरी नमाज़ अल्लाह के नाम पर दान के लिए;
चौथी दिल की साफ़गोई के लिए,
पाँचवी खुदा की याद और इबादत के लिए।
नेक कामों का कलमा पढ़ो;
नानक कहते हैं, पाखंड झूठा बनाता
इन्सान को, याद[1] रखो।

गुरु नानक ने बताया कि सच्चा मुसलमान वही है जो नेक काम करता है, बाक़ी सब ग़लत है। हिन्दुओं के प्रति घृणा इस्लाम के अनुकूल आचरण नहीं है, क्योंकि हिन्दू तथा मुसलमान, दोनों ईश्वर के बंदे हैं, दरअस्ल हिन्दू या मुसल-

---

१. पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ।
पहिला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ ।।
चउथी नीअति रासि मनु पंजवी सिफति सनाइ।
करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ।
नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाइ ।। (माझ की वार म० १)

मान नामक चीज़ तो कुछ है भी नहीं, इन्सान तो आखिर इन्सान ही कहलायेगा। अलग-अलग चिह्न लगाकर अपने को औरों से भिन्न मानने वाले लोग तो उस इन्सान की—सच्चे अर्थों में सुसंस्कृत इन्सान की—शान को नहीं छू सकते जो जाति, धर्म, देश, राष्ट्र, आंचलिकता अथवा रंग का भेद परे हटाकर मानवमात्र से ऐक्य की भावना रखता है। गुरु नानक के साथ मर्दाना की उपस्थिति का मुस्लिम श्रोताओं पर परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ा।

हिन्दुओं को गुरु नानक ने उपदेश तथा उदाहरण देकर मूर्तिपूजा तथा जाति भेद के विरुद्ध सीख दी। उन्होंने निम्न वर्गों अथवा जातियों के लोगों के साथ खाना पसन्द किया। सैय्यदपुर (ऐमनाबाद) में वे एक ग़रीब बढ़ई लालो के साथ ठहरे और खाया, तथा खत्री जाति के एक अमीर ज़मींदार मलिक भागो की दावत इसलिए नामंज़ूर कर दी कि लालो तो अपनी मेहनत की रोटी खाता था, पर मलिक ने दूसरों का शोषण कर दौलत इकट्ठी कर ली थी।

पुरानी प्रथा के अनुसार गुरु के पास श्रद्धावश आने वाले लोग, जो उनके आदेशों और आशीर्वादों के आकांक्षी थे, धन तथा सामग्री दोनों की भेंट चढ़ाते। प्रारम्भ में नानक यह सब कुछ उन ग़रीबों में बाँट देते थे जो उनके प्रवचन सुनने को आते थे। बाद में उन्होंने सारा चढ़ावा लंगर को चलाने में लगा दिया जो एक मुफ्त भोजनालय था, और जहाँ जाति, धर्म, विश्वास और ओहदे का ध्यान न रख कोई भी भोजन प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार गुरु नानक ने जाति भेद को कम करने की कोशिश की। इस संस्था द्वारा उन्होंने अपने अनुयायियों में सेवा और त्याग की भावना भी विकसित की, क्योंकि इस आम भोजनशाला में हर कोई, बिना किसी प्रतिदान के सेवा करता था। इससे नानक की शिक्षा बड़ी लोकप्रिय हो गई। उनके अनुयायियों में, जो 'शिष्य" अथवा "सिख" कहलाने लगे, ये लंगर बराबरी और भाईचारे के प्रतीक बन गए।

ऐमनाबाद से गुरु नानक मुल्तान के निकट तुलम्बा गये। वहाँ उन्होंने कुख्यात ठग शेख सज्जन को सीख दी। पवित्रता का बाना ओढ़े यह ठग असावधान यात्रियों को शरण तथा आतिथ्य देता, और रात में उन्हें मारकर उनका माल हड़प लेता। गुरु नानक का संत व्यक्तित्व तथा आत्मा की सच्चाई और उनके मीठे और मोहक भजनों ने इस कठोर अपराधी के हृदय के मर्मस्थल को छू लिया, और उसने अपना जीवन बदल लिया। नानक कहते हैं—

कितना चमकता है कांसा, मलो, मगर हाथ मैला होगा।
जितना चाहो धोवो इसको, अन्दर कालिख नहीं मिटेगी।[1]

---

१. उजलु कैहा चिलकणा, घोटिम कालड़ी मसु।
धोतिआ जूठि न उतरै जे सउ धोवा तिसु। (सूही म० १)

गुरु नानक की चार महान् यात्राएँ

भारत में प्रचलित धर्मों के मुख्य केन्द्रों में जाकर उनके अध्ययन के लिए गुरु नानक ने कई स्थानों की यात्रा की। इन यात्राओं के दौरान वे मानवजाति की शान्ति और प्रेम का अपना संदेश भी प्रचारित करते। गुरु नानक के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा था जो विशिष्ट, नाटकीय तथा आकर्षक था। वे मुस्लिम दरवेशों की तरह लम्बा ढीला चोग़ा पहनते, किन्तु इसका रंग हिन्दू संन्यासियों के भगवे जैसा होता। कमर में कपड़े का सफ़ेद कमरबन्द पहनते, और सर पर मुसलमानी कुल्ला यानी कोणदार टोपी लगाकर, इसके चारों ओर छोटी पगड़ी बाँध लेते। पाँव में ढीले जूते होते जो नाप में एक होते हुए भी अलग-अलग रंग और जोड़ के होते। कभी-कभी हड्डियों की माला भी गले में डाले होते।[१] यह विचित्र वेश उनके पास बूढ़े-नौजवान, सब प्रकार के लोगों को खींच लाता। गुरु नानक किसी खुली जगह में खड़े हो जाते और भगवत् भजन गाने लगते। ऐसे अवसरों पर उनके दोनों साथी बाला और मर्दाना उनके साथ गाते तथा मर्दाना साथ ही रबाब भी बजाता।

गुरु नानक ने चार विस्तृत यात्राएँ कीं। सर्वप्रथम वे १४९७ से १५०९ तक पूर्वी यात्रा में रहे, और आसाम तक गये। इस काल में मुख्यतया इन्होंने हिन्दू तीर्थस्थलों का भ्रमण किया। मुख्य तीर्थ स्थानों में गुरु नानक ने अपने श्रोताओं में प्रचार का एक अद्भुत तरीका अपनाया। उदाहरणार्थ, हरिद्वार में गंगास्नान करने वाले लोगों को उन्होंने उगते सूर्य को जल अर्पित करते देखा। नानक कारण तो जानते थे, फिर भी पूछ बैठे कि वे क्या कर रहे हैं। जवाब मिला कि स्वर्ग में स्थित पूर्वजों को वे अंजलि दे रहे हैं। नानक फ़ौरन पश्चिम दिशा की ओर मुँह कर पानी उस ओर उछालने लगे। इस बार लोगों ने पूछा कि वह क्या कर रहे हैं! गुरु नानक ने इत्मीनान से जवाब दिया कि वह पंजाब में अपने खेतों को पानी भेज रहे हैं। उनसे पूछा गया, भला यह पानी यहाँ से तीन सौ मील दूर उन खेतों में कैसे पहुँचेगा! "अगर यह पानी मेरे खेतों में नहीं पहुँच सकता, जो इतने नज़दीक हैं, तो भला तुम्हारा पानी यहाँ से उतनी दूर स्वर्ग में क्योंकर जा सकता है?" इस उत्तर ने हिन्दू यात्रियों की आँखें खोल दीं।

तत्पश्चात् उन्होंने श्रीलंका तक जाकर दक्षिण की यात्रा १५१० से १५१५ तक की। इस काल में उनका उद्देश्य प्रसिद्ध बौद्ध तथा जैन तीर्थस्थलों को देखना था। इस यात्रा में उनके साथ उनके दो जाट अनुयायी, सईदो और ग़ेवो थे। इस अवसर पर उन्होंने दूसरे प्रकार के वस्त्र धारण किये। सर पर एक

---

१. Teja Singh and Ganda Singh, "A Short History of the Sikhs" I, 11.

लम्बी रस्सी को पगड़ी के रूप में बाँधा, एक हाथ में मोटा डंडा, दूसरे में भिक्षा-पात्र ! जहाँ रुकते, खड़ाऊँ पहनते ।[1] चोग़ा पहले जैसा ही था । विवादास्पद प्रश्नों का वे उल्लेखनीय ढंग से हल निकालते । हिन्दू दाह क्रिया तथा मुसलमानी दफ़न क्रिया के भेद के सम्बन्ध में कहा :—

देखो, कुम्हार के हाथ मिट्टी पड़ी मुसलमान की,
वह इस मिट्टी की ईंट और पात्र गढ़ेगा ।
मिट्टी जलती है, कोई अब अंगारों में जलता
चिल्लाता है, व्यर्थ अश्रु बहाता है ।
कर्तार ! तू ही जाने, जलना अच्छा
या कि पृथ्वी तल में गड़ जाना ![2]

बात सच्ची यह है कि क़ब्रगाह की मिट्टी मुलायम और चिकनी होने के कारण कुम्हारों द्वारा पसन्द की जाती है। इस प्रकार मुसलमानों के शव कुम्हार की आग में जलते ही हैं, और दफ़न इस तरह दाह में परिवर्तित होता है ।

१५१५ से १५१७ की अवधि उनकी तीसरी यात्रा की है, जब वे हिमालय की ओर, योगियों और सिद्धों के केन्द्र, उत्तर दिशा में गए । इस बार इनके साथ सीहन तथा हस्सीर नामक क्रमशः धोबी तथा लुहार थे । ठंड से बचने के लिए नानक ने चमड़े के वस्त्र पहने । उन्होंने गोरखनाथ तथा मच्छेन्द्रनाथ के कई अनुयायियों से वार्तालाप किया । नानक ने कहा—"असत्य[3] का अन्धकार चारों ओर फैला हुआ है; सत्य का चन्द्रमा अदृश्य हो गया है । मैं उसे ढूंढ़ने निकला हूँ । पृथ्वी पाप के बोझ से कराह रही है । योगीगण तो पर्वतों में चले गए तथा अपनी देह को राख मलने के अलावा और कुछ नहीं करना जानते । फिर संसार की रक्षा कौन करेगा ? गुरु बिना संसार अज्ञान के सागर में डूब रहा है ।"
ज्ञात होता है, नानक[4] तिब्बत में मानसरोवर तथा उसके भी आगे तक गए थे ।

१५१७ से १५२१ का काल पश्चिम दिशा की यात्रा का है जब गुरु ने

---

१. Trump, Adi Granth, xxxiv.
२. मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुम्हिआर ।
घड़ि भांडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ॥
जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआर ।
नानक जिनि करतै कारणु कीआ जो जाणै करतारु ॥ (आसा दी वार म० १)
३. Bhai Gurdas, Var, I, 29 ; Teja Singh and Ganda Singh, "A Short History of the Sikhs" I, 11.
४. Swaran Singh, "Divine Master", 139-41, Nanak Prakash, III, 691-92.

मुस्लिम देशों का भ्रमण किया। इस बार मर्दाना उनके साथ थे। नानक ने हाजियों जैसे कपड़े पहने। उन्होंने नीले वस्त्र धारण किये, तथा बग़ल में एक ग्रंथ तथा दरी, जिस पर बैठ कर वह प्रार्थना करते। हाथ में मोटा डंडा था। मक्का में सोते समय इन्होंने अपनें पैर काबा की तरफ़, जो पवित्र इस्लामी तीर्थ स्थल था, किये। किसी ने क्रोध में आ इन्हें जगाया और अल्लाह के घर के प्रति अनादर दिखाने के लिए इन्हें कुवचन सुनाये। बड़े आदर के साथ गुरु ने आगन्तुक से कहा—"मेहरबानी कर मेरे पैर उस दिशा में घुमा दो जहाँ सर्व-वर्तमान ईश्वर मौजूद नहीं है।"

अरब से नानक इराक़ पहुँचे, और कुछ दिन बग़दाद में ठहरे जो इस्लाम के खलीफ़ा का प्रधान स्थल था। वे शहर के बाहर ठहरे। भाई गुरदास ने अपनी वारों में नानक की बग़दाद यात्रा का उल्लेख किया है, और कहा है—"बाबा बग़दाद गये, और शहर के बाहर ठहरे। संत बाबा के साथ रबाब वादक **मर्दाना**[1] था।" तुर्की-अरबी मिश्रित भाषा में एक शिलालेख में गुरु नानक की बग़दाद यात्रा अंकित है। रेलवे स्टेशन से डेढ़ मील दूर एक क़ब्रगाह के पास घेरे की दीवार में यह पत्थर लगा हुआ है। प्रथम विश्वयुद्ध के समय कुछ भारतीय सैनिकों ने ईराक़ में युद्ध किया था और वे बग़दाद में स्थित थे। यह शिलालेख उनकी नज़रों में आया और एक सिख अफ़सर ने जनवरी, १९१८ के लॉयल गज़ेट, लाहौर में (पृष्ठ ४) यह शिलालेख छपवाया। शिलालेख स्पष्ट नहीं पढ़ा जाता, और विभिन्न लेखकों ने इसका अलग-अलग ढंग से अनुवाद किया है। इन्दुभूषण बनर्जी ने मौलाना आगा मोहम्मद क़ासिम शीराज़ी से इसका अनुवाद यूं करवाया; "गुरु मुराद मर गये। बाबा नानक फ़क़ीर ने इस इमारत को बनाने में मदद दी और इस प्रकार एक गुणी अनुयायी के नाते नेक काम किया।"[2] तेजासिंह तथा गंडासिंह ने अपना अनुवाद इस प्रकार दिया—"पवित्र गुरु बाबा नामक फ़क़ीर औलिया की स्मृति में यह इमारत सात सन्तों की मदद से नयी बनायी गयी है; तिथि बंध में लिखा गया है—"भाग्यशाली शिष्य ने ईश्वरीय अनुकम्पा का स्रोत[3] तैयार कर दिया" वर्ष ९२७ हि०।"

नाभा के भाई काहनसिंह ने यह अनुवाद प्रस्तुत किया है—"देखो, ईश्वर

---

१. वार १, पौरी ३५-३६, भाई काहनसिंह, "गुरशबद रत्नाकर महानकोश" भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, १९६०, दूसरा संस्करण, पृ० ६२२।
२. Evolution of the Khalsa, i, f 3. यह अनुवादक पूर्ण तरह से अशुद्ध सिद्ध हो चुका है। देखिए पृ० ४५ (संपादक)
३. A Short History of the Sikhs, i, 12.

ने किस प्रकार यह इच्छा पूरी की कि सात प्रसिद्ध सन्तों की सहायता से बाबा नानक की यह इमारत नये सिरे से बना दी गयी। इसके तिथिबन्ध पर लिखा है कि गुणवान शिष्य ने ज़मीन में एक उपयोगी झरना बना दिया" काहनसिंह की व्याख्या टिप्पणी में कहा गया है कि गुरु नानक के आने से पहले बग़दाद के कुओं का पानी खारा था। गुरु नानक ने एक कुआं खोदा जिससे मीठे पानी का झरना फूट पड़ा।[1] भाई वीरसिंह का अनुवाद इस प्रकार है : "जब मुराद ने महात्मा संत बाबा नानक की इमारत की भग्नावस्था देखी, तो उसने अपने हाथों एक नयी इमारत खड़ी की, ताकि यह ऐतिहासिक रूप से परम्परागत काम आ सके और उनके नेक शिष्य की सेवा कायम रहे। ९१७ या ९२७ हिज्री"[2] फुटनोट में कहा गया है कि इसकी भाषा तुर्की तथा अरबी का मिश्रण है।[3] भाई सन्तोखसिंह तथा और कई लेखकों ने अपने अलग अनुवाद प्रस्तुत किये हैं।[4]

इसका ठीक अर्थ चाहे जो भी निकले, इस शिलालेख से कुछ बातें तो स्पष्ट हो ही जाती हैं। इसमें साफ़-साफ़ बाबा नानक फ़कीर तथा ९२७ हिज्री तिथि का उल्लेख है, जिसे प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। ९२७ हि० का आरम्भ दिसम्बर १५२० में तथा अन्त नवम्बर १५२१ में हुआ। नवम्बर १५२१ में नानक सैय्यदपुर, पंजाब, में थे, और उसी समय पंजाब पर बाबर का आक्रमण हुआ। इस आक्रमण की तिथि नानक ने स्वयं १५७८ विक्रम संवत् बतायी है, और उन्होंने आँखों देखे गवाह के रूप में सैय्यदपुर में बाबर द्वारा किए गये क़त्लेआम का विशद विवरण किया है। इसका यह अर्थ हुआ कि १५२० के अन्त में गुरु बग़दाद में थे, और इसके शीघ्र बाद वहाँ से चल पड़े थे।

बगदाद में मर्दाना की उपस्थिति का उल्लेख भाई गुरदास द्वारा किये जाने के बाद उसका नाम फिर किसी भी मूल सिख अभिलेख में नहीं आया।

सिख लेखकों ने मर्दाना की मृत्यु की तिथि तथा स्थान को बताने में कई मत प्रकट किये हैं। भाई काहन सिंह कहते हैं कि मर्दाना का जन्म १४५९ में और मृत्यु अफगानिस्तान में कुर्रम नदी के किनारे १५३४ में हुई, तथा स्वयं गुरु नानक

---

१. गुरशबद रत्नाकर महानकोश भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला। १९६० संस्करण, पृ० ६२२।
२. श्री गुरु नानक चमत्कार, ii, ख़ालसा समाचार, अमृतसर, १९६६ संस्करण, पृ० १७५।
३. वही।
४. श्री गुरु नानक प्रकाश, ख़ालसा समाचार, अमृतसर, १९६२ संस्करण, पृ० १०५२।

ने उसकी अंत्येष्टि क्रिया की।[1] गुरु नानक उस वर्ष तो कर्तारपुर में रह रहे थे, अतः, इस तिथि को सही नहीं माना जा सकता। कर्तार सिंह इस तिथि को मानते हुए यह कह कर भूल सुधारते हैं कि मर्दाना की मौत कर्तारपुर में हुई।[2] Selections from the Sacred Writings of the Sikhs के पृष्ठ २४८ की एक टिप्पणी में कहा गया है कि "गुरु नानक के निधन के नौ वर्ष पहले मर्दाना की मृत्यु कर्तारपुर में हुई।"

[संपादकीय टिप्पणी :

इसके पूर्व इस शिलालेख के पाँच अनुवाद प्राप्त होते थे। डा० डब्ल्यू०एच० मैकलॉड ने अपनी पुस्तक (Guru Nanak and Sikh Religion, पृ० १२८-२९) में इस शिलालेख का छठा अनुवाद दिया है। यह अनुवाद लंदन के 'स्कूल ऑफ ओरिएण्टल स्टडीज़' के तुर्की विभाग के रीडर डॉ० वी० एल० मेनेज़ ने किया है और उसके लिए उन्होंने ब्रिटिश संग्रहालय की कुमारी कोलन द्वारा इस शिलालेख के उतारे अनेक चित्रों की सहायता ली है।

डॉ० मेनेज़ ने शिलालेख पर दिये शब्द 'गुरु' की बजाय गोर (Gor) पढ़ा है जिसका अर्थ है मक़बरा। उन्होंने 'मुराद' का अनुवाद 'इच्छा' किया है और 'हजरात रब-ए-मजीद' का अनुवाद 'गौरवशाली प्रभु' अथवा 'दैवी स्वामी' किया है। यह अभिव्यक्ति किसी सांसारिक व्यक्ति के लिए नहीं हो सकती, यह केवल परमात्मा के लिए ही है। किंतु डॉ० मेनेज़ यह स्वीकार करते हैं कि "दूसरी पंक्ति का वह अंश मैं नहीं समझ सका जिसे पूर्व अनुवादकों ने बाबा नानक फकीर अथवा अधिक शुद्ध बाबा नानक-ए-फकीर (६ या ७ अक्षर) पढ़ा है। छायाचित्रों में पहले अक्षर निश्चित रूप से 'बाबा नानक' दिखते हैं और उसके बाद का शब्द, जो स्पष्ट नहीं है, 'फकीर' हो सकता है।

डॉ० मेनेज़ और डॉ० मैकलॉड कुछ भी विश्वास करते हों, डॉ० मेनेज़ के अनुवाद से यह तो स्पष्ट है ही कि शिलालेख पर 'बाबा नानक' का नाम निश्चित रूप से प्राप्त होता है। यह गुरु नानक की बगदाद-यात्रा का पर्याप्त प्रमाण है। जिस सिख अधिकारी ने प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में इस शिलालेखको खोजा था, उसके कथनानुसार सन् १९१७ में यहां के स्थानीय लोग बाबा नानक का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया करते थे।]

---

१. गुरशबद रत्नाकर महानकोश, ७१४

२. सिख इतिहास, II शि० गु० प्र० स० अमृतसर, १९६१ संस्करण, पृष्ठ ६-७।

कर्तारपुर में गुरु नानक

गुरु नानक के पच्चीस साल की प्रचार यात्राओं के समय उनका परिवार उनके बहनोई के साथ पखोके[1] में, जो रावी के पूर्वी किनारे पर था, रहा। इस जगह के सामने, नदी के पार, नानक ने कुछ ज़मीन ले रखी थी जहां उन्होंने कर्तारपुर (अर्थात् ईश्वर का घर) नामक गांव बसाया। यहां उन्होंने अपने परिवार तथा कुछ अपने भक्त शिष्यों के साथ जीवन के आखिरी सत्रह साल बिताये। अपनी ज़मीन जोतकर वे जीवनयापन करते, किन्तु काफी समय प्रार्थना तथा उपदेशों में बिताते थे। पास-पड़ोस के गांवों के सभी जातियों और धर्मों के लोग गुरु के भजनों को सुनने के लिए आते। मैकॉलिफ़ ने लिखा है, "गुरु हमेशा धार्मिक विषयों पर बातें करते तथा उनकी उपस्थिति में भजन गाये जाते। संध्या में सोदर तथा सोहिला, और मधुर प्रभात के क्षणों में जप जी का पाठ होता।"[2] इस तरह की **संगत** नये समाज का एक नियमित अंग बन गयीं। गुरु की ग़ैरहाज़िरी में भी नियत स्थानों और समय पर संगतें होती रहती थीं। लंगर भी नियमित रूप से चलता।

अपनी मृत्यु से कुछ पहले गुरु नानक ने अपने परम भक्त तथा कृतज्ञ शिष्य, भाई लहना को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया। एक विशेष समारोह में उन्होंने लहना के सामने एक नारियल और पांच पैसे रखे, अपना सिर उसके पैरों से छुवाया और उसे अंगद नाम से पुकारा यानी अपने ही अंग का अंश, और घोषणा की कि नये गुरु में उनकी अपनी आत्मा और भावना भी है। इस प्रकार उन्होंने गुरुपद की एकता की स्थापना की जो निःस्वार्थता, अविभाज्यता तथा निरंतरता के आधारों पर स्थित हुई। फल यह हुआ कि बाद के गुरुओं ने अपनी रचनाओं तथा पत्रादि में 'नानक' नाम का ही व्यवहार किया है। प्रत्येक गुरु के भजन आदि ग्रन्थ में महल्ला के रूप में विभाजित है। प्रथम गुरु के भजन गीत प्रथम महल्ला में है, दूसरे गुरु के द्वितीय महल्ला में इत्यादि।[3]

---

१. Teja Singh and Ganda Singh, 'A Short History of the Sikhs'.

२. Macauliffe : "The Sikh Religion," i, 181

३. मोहसिन फ़ानी ने लिखा—"सिखों का विश्वास है कि मृत्यु के बाद गुरु नानक का शरीर उनके प्यारे शिष्य अंगद के शरीर में प्रवेश कर गया। इस तरह गुरु अंगद स्वयं नानक बन गये। इसी प्रकार गुरु अंगद की मृत्यु के समय उनका अंश अमरदास में प्रविष्ट हुआ, तथा गुरु अमरदास का अंश रामदास में, रामदास का अर्जुन में। हरेक को महल नाम दिया गया! प्रथम महल नानक, दूसरे अंगद, पांचवें महल गुरु अर्जुन। उनका विश्वास है कि जो कोई गुरू अर्जुन में बाबा नानक की अपनी आत्मा को नहीं पहचानता वह मनमुख या काफिर है। (दाबिस्तान, पृ० २२५) गुरू हरगोविन्द ने भी मोहसिन फानी को पत्र लिखते समय अपना नाम नानक ही लिखा है (वही, पृ० २३७)

इस कार्यवाही का दूर तक असर हुआ। गुरु नानक ने गुरु गद्दी के लिये अपने पुत्र श्री चंद के दावे को अस्वीकार कर दिया था, क्योंकि वे संसार को मिथ्या समझते थे। दूसरी ओर नानक स्वयं गृहस्थ थे, अंगद अथवा भाई लहना भी गृहस्थ ही थे। गुरु नानक ने सिख धर्म में संन्यास को नहीं शामिल किया और इसे गृहस्थों का धर्म बनाया। फिर, सिख धर्म में गुरु गद्दी के अपने अनुयायियों के सामने एक जीवन्त आदर्श रख कर नयी प्रतिष्ठा पायी। सिखों का जीवन गुरु के व्यक्तित्व पर केन्द्रित होता, जिन्हें वे पूजते तथा अनुकरण करते। वे सदा उनके निकट सम्पर्क में रहा करते। किन्तु, कुछ लोगों का यह विचार है कि नानक ने "किसी नये धार्मिक विश्वास की न स्थापना की, न किसी नये समुदाय को संगठित किया। ये काम उनके उत्तराधिकारियों ने, विशेष रूप से पाँचवें गुरु ने किया। नानक ने आत्म-सम्मान वाले लोगों को लेकर, जो ईश्वर और अपने गुरुओं के भक्त थे, तथा जिनमें समानता तथा सर्वबंधुत्व की भावना भरी थी, एक राष्ट्र बनाने की चेष्टा की थी।[1] गुरु नानक ने २२ सितम्बर १५३९ को (असौज वदी १०, संवत १५९६ विक्रमी) को यह संसार छोड़ दिया। दोनों सम्प्रदायों के लोगों ने उनसे इतना प्रेम किया था कि उनके बारे में कहा गया :—

"गुरु नानक शाह फ़क़ीर,
हिन्दू का गुरु, मुसलमान का पीर"

वे सारी मानव जाति के लिए वह विरासत छोड़ गये जो आज भी मौजूद है और जो हमेशा भविष्य में भी सम्पूर्ण मानवता को प्रेरित और उसकी सेवा करती रहेगी।

गुरु नानक के धर्म के मुख्य सिद्धान्त

(१) **ईश्वर की परिकल्पना :** गुरु नानक एक, और केवल एक ईश्वर में विश्वास करते थे जिसकी व्याख्या उन्होंने जपजी में इस तरह की—

"एक ही ईश्वर है,
चिरन्तन सत्य जिसका नाम,
पूर्ण निर्माता है वह,
निर्भय, निर्वैर है,
उसका रूप अनन्त है;
अजन्मा, स्वजन्मा;

---

१. Selections from the Sacred Writings of the Sikhs, p. 18.

गुरु की कृपा हो
वह प्राप्त होता है।"[1]

गुरु ने इसमें यह भी कहा—"ओ प्रकाश के स्वामी! वह प्रकाश जो सब कुछ है, तेरा है, इसकी प्रभा से सब कुछ आलोकित है।" गुरु नानक का ईश्वर उनका अपना है, जो दयालु है, और जो अपने सच्चे श्रद्धालुओं की, उनके कष्ट और संकट में, सहायता करता है। यंत्रवत् नामोच्चार तथा रस्मोदायगी से नहीं, बल्कि सच्ची भक्ति, पूर्ण आत्मसमर्पण तथा निरन्तर नाम सुमिरन से ही इन्सान अपने भगवान् को पा सकता है—'अपने को मिटा दे, तभी तेरा दूल्हा तुझे मिलेगा।' नानक ने कहा—"हर कोई ईश्वर का नाम लेता है, मगर नाम रटने से ही वह भला क्यों मिलने का? गुरु की कृपा से जब ईश्वर का निवास हृदय में होगा तभी साधक को फल की प्राप्ति होगी।"

गुरु के अनुसार, सत नाम के बिना कोई भी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता। सत नाम ईश्वर की उपासना और भक्ति तथा उसके सदा ही सर्वव्यापी होने का महत्त्व बताता है। भक्ति इतनी गहन बनानी होगी कि व्यक्ति पूर्णरूपेण ईश्वर में खो जाये। ईश्वर में यह विलयन शांति और आनन्द प्रदान करता है, ईश्वर से विमुखता दुःख और दर्द का कारण होता है।

गुरु नानक ने हिन्दू विचारों को पौराणिक कथाओं और जातिवाद से मुक्त करना चाहा : जाति भेद ग़लत है, अलग-अलग नाम ग़लत हैं। सारे प्राणियों का एक ही सहारा है, ईश्वर।" मोहसिन फ़ानी ने लिखा है : "नानक की वाणी अर्थात् भक्ति रचनायें प्रार्थना, परामर्श तथा सचेत करने का काम करती हैं। उनकी बहुत-सी सीख ईश्वर की महानता तथा पवित्रता से सम्बन्धित है।"[2]

(२) **गुरु का स्थान :** नानक ने ईश्वर-प्राप्ति के लिए गुरु का होना आवश्यक बताया। गुरु द्वारा ही व्यक्ति परमात्मा के सम्पर्क में आ सकता था।" बिना गुरु के उपदेश के मनुष्य का उद्धार संभव नहीं; चाहे वह सैकड़ों-हज़ारों रस्में करे, गुरु बिना उसके लिए फिर भी अंधेरा होगा। किसी देवी-देवता को पूजने की कोई ज़रूरत नहीं।" गुरु ने जपुजी में कहा है—

गुरुवाणी है अंतर संगीत;
गुरुवाणी है उच्चतम ग्रंथ;
गुरु की वाणी सर्वव्यापक है।
गुरु स्वयं है ब्रह्मा, स्वयं विष्णु,
गुरु ही स्वयं है महेश भी।

---

१. एक ओम्कार सतिनाम् करता परखु निरभै निरवैरु
अकालमूरति अजूनी सैभं गुरु प्रसादि।

२. मोहसिन फ़ानी : दबिस्तां, पृ० २२४।

गुरु ही हैं देवी माता"[१]

पर सत गुरु कैसे पाया जाये ? गुरु नानक कहते हैं—

सतिगुरु भेटे सो सुखु पाए ।
हरि का नामु मंनि वसाए ॥
नानक नदरि करे सो पाए ।[२]

गुरु अपने शिष्यों से पूर्ण समर्पण की माँग करते हैं। शिष्यों को मुक्ति गुरु के उच्च आत्मिक बल के द्वारा तथा उनके बताये गये रास्तों पर चलकर मिलेगी। मनुष्य को अपने कर्मों का यथोचित फल मिलता है। नानक कहते हैं—

"सच्चे और झूठे केवल शब्दमात्र नहीं,
क्योंकि अपने किये का फल ले जाना होगा।"[३]

यह जरूरी है कि गुरु के आदेशों का निर्विवाद पालन हो; किन्तु यह स्पष्ट समझ लेना होगा कि गुरु मूल रूप से 'उपदेशक' हैं, 'ईश्वर के अवतार नहीं'; उनकी आज्ञा का पालन करना है, उनकी पूजा नहीं करनी। गुरु हमें बताते हैं कि सच्चा धार्मिक कौन है—

"जो सब इन्सान को बराबर समझे, धार्मिक है।
धर्म क़ब्रों और श्मशानों के चक्कर में नहीं,
धर्म योग मुद्राओं और आसनों में नहीं;
भिक्षु बन देश पर्यटन में नहीं, नदियों
तीर्थों में भी धर्म छिपा हुआ नहीं।
काजल कोठरी में भी उजला रह,
धर्म तभी तुझे मिल पायेगा।"[४]

(३) **कर्म तथा पुनर्जन्म सम्बन्धी विचार** : गुरु नानक का विश्वास प्राचीन हिन्दू विश्वास से भिन्न था। उनके मतानुसार मोक्ष अथवा पुनर्जन्म से छुटकारा सद्कर्मों के साथ-साथ परमेश्वर की अपनी अनुकम्पा द्वारा भी संभव है। यह अनुकम्पा प्रेम और भक्ति के साथ **नाम सुमिरन** से प्राप्त हो सकती है।

---

१. गुरमुखि नादं गुरमखि वेदं गुरमुखि रहिआ समाई ।
गुरु ईसरु गुरु गोरखु वरमा गुरु पारवती माई ॥

२. आसा दी वार म० १ ।

३. Gopal Singh : Translation of Shri Guru Granth Sahib, Vol. I, p. XXXIII.

४. एक दसटि करि समसरि जाणै जोगी कहीऐ सोई ।१।
जोगु न वाहरि मड़ी मसाणी जोगु न ताड़ी लाईऐ ॥
जोगु न देसि दिसंतरि भविऐ जोगु न तीरथि नाईऐ ॥
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोगु जुगति इव पाईऐ ॥ (राग सूही म० १)

उन्होंने कहा भी—

"सिर्फ़ कहने भर से हम
पापी या संत नहीं बन जाते;
कर्मों के लेखा-जोखा से
जैसा बोएंगे, पायेंगे भी ।
ईश्वर चाहेगा तभी मिलेगा
मोक्ष, नहीं तो जन्म-मरण का चक्कर ।"[1]

गुरु नानक ने कहा कि आदमी में पाँच बुराइयाँ होती हैं : वासना, क्रोध, लोभ, मूढ़ता तथा अहंकार; किन्तु साथ ही उसमें इन सभी पर काबू पाने की क्षमता भी है । अहं एक गंभीर व्याधि है, पर इसका इलाज तुम्हारे भीतर है । जीवन चूंकि पवित्र प्रकाश से उद्भासित हुआ है, इसलिए यह मूलतः पवित्र ही है ।

नानक ने व्रत, तीर्थयात्रा तथा प्रायश्चित जैसे पवित्रता के बाह्य चिह्नों की भर्त्सना की । उन्होंने तपस्या तथा संन्यास की निन्दा की । ईश्वर उसी तरह गृहस्थ को अपनायेगा जैसे तपस्वी को, तथा लौकिक कार्य मुक्ति के मार्ग में बाधा नहीं बनेंगे । उन्होंने सत्संग की सराहना की, जिसमें पवित्र व्यक्तियों का साथ होता था । वे अत्यन्त विनम्रता में विश्वास रखते थे और सारी मानवता को प्यार करते; इसमें वे धार्मिक या भौगोलिक सीमाओं का बंधन नहीं रखते थे ।

(४) **भक्ति परम्परावादियों से गुरु नानक का मतभेद :** यद्यपि गुरु नानक स्वयं भक्ति परम्परा के सन्त थे, वे रामानन्द, कबीर और चैतन्य जैसे भक्तों से अलग थे । उदाहरण के लिए, चैतन्य यह मानते थे कि मूल सिद्धान्तों की उपलब्धि तथा स्वीकृति से ही सामाजिक परिवर्तन लाए जा सकते हैं । इधर गुरु नानक शुरू से ही समाज सुधार तथा नाम सुमिरन पर बल देते रहे । दूसरे, सिख गुरुओं ने संन्यास को वर्जित माना, जबकि भक्ति परम्परा के संतों ने इस को बढ़ावा दिया । तीसरे, सिख धर्म असाम्प्रदायिक था, इसमें मिथक नहीं थे, रूढ़ियां तथा अस्पष्टतायें नहीं थीं । सादगी में विश्वास तथा बदलती परिस्थितियों के अनुकूल आसानी से व्यवस्थित होने की क्षमता थी । चौथी बात यह है कि गुरु नानक ने ही गुरु परम्परा की स्थापना कर अपना उद्देश्य आगे बढ़ाया । गुरु नानक ने ही संस्कृत को उस स्तर से हटाया जहां वह हिन्दू धर्म की एक मात्र भाषा बनी बैठी थी, यद्यपि कई दूसरे भक्ति

---

१. पुंनी पापी आखणु नाहि । करि करि करणी लिखि लै जाहु ॥
आपे बीजि आपे ही खाहु । नानक हुकमी आवहु जाहु ॥ (जपुजी)

परम्परा के संत अपनी स्थानीय भाषाओं में भी उपदेश दे रहे थे। निःसन्देह इसका असर यह हुआ कि सिख धर्म प्रधानतया पंजाब तक ही सीमित हो गया। अंतिम बात यह है कि भक्ति पद्धति के अन्य नायकों से नानक की ईश्वर सम्बन्धी कल्पना भिन्न थी। सिखों के ईश्वर निराकार तथा अकाल हैं, किन्तु अन्य धर्म नेताओं ने राम और कृष्ण को ईश्वर का अवतार माना।

गुरु नानक की उपलब्धियां

नानक के समय भारतीय समाज अलग-अलग जातीय विभागों में बंटा हुआ था, और व्यक्ति का ओहदा उसके कार्यों तथा गुणों पर नहीं, जन्म पर निश्चित किया जाता। समानता की कल्पना भी दूभर थी, तथा ऐक्य अथवा मानव-बंधुत्व की कोई भावना नहीं थी। औरत को मर्द से नीचा समझा जाता, और उन्हें हेय माना जाता। गुरु नानक ने नारी को बराबरी का दर्जा, बल्कि ऊंचा दर्जा दिया, और स्त्रियां निर्बाध रूप से उनकी धार्मिक संगतों में शामिल होतीं। उन्होंने विधवाओं की सती क्रिया की आलोचना की। वे कहते हैं:—

"नारी को क्यों नीचा मानें ?
उसमें हम अंकुर लेते
उससे ही जनम पाते।
नारी से रिश्ता कर हम
उससे अपना व्याह रचाते।
प्यार उसी से हम हैं करते,
जाति हमारी विकसित करती,
दूजी आती इक जब मरती।
हम समाज से सम्बन्ध जोड़ते।
उसे बुरा क्यों कहें—
ओछी कैसे हो जाती ?
जो राजाओं को देती जन्म ?[1]

गुरु ने एक ऐसी जातिविहीन तथा वर्गहीन समाज के निर्माण की चेष्टा की जिसमें कोई शोषण न हो, और सभी समान समझे जाएं। अपने निजी उदाहरण से ही उन्होंने लोगों को भाइयों की तरह साथ रहना सिखाया। वे स्वयं

---

१. भंडि जंमीऐ भंडि निमीऐ भंडि मंगणु वी आहु।
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु॥
भंडु मुआ भंडु भालिऐ भंडि होवै बंधानु।
सो किउ मंदा आखिऐ जितु जंमहि राजान॥ (वार आसा म० १)

सब जाति तथा वर्गों, ऊंच-नीच के साथ खाते थे। उनके लंगर में सभी साथ बैठ कर एक ही प्रकार का भोजन करते। गुरु नानक कहते थे कि हर सिख घर धर्मशाला हो, अर्थात् सेवा तथा उपासना का स्थल हो। भाई गुरुदास कहते हैं—"जहां भी गुरु नानक के पवित्र चरण पड़े, धर्मशालायें प्रगट हो गयीं।"[1]

गुरु नानक ने पंजाब निवासियों के सामने यह आदर्श रखा, और अंत में इसके कारण उनके अनुयायी एक सुगठित समाज के सदस्य हो गये। निर्धारित समय का ध्यान रखते हुए उचित निर्देश की आवश्यकता थी, और गुरुपद जैसी संस्था द्वारा गुरु नानक ने निर्देश दिया भी। नानक की सीख के अनुसार मनुष्य के उद्धार के लिए सच्चे गुरु का होना आवश्यक है।

उपसंहार

गुरु नानक सुधारक थे या क्रान्तिकारी ? मैकॉलिफ़ तथा भाई काह्नसिंह जैसे कुछ लेखकों ने नानक को एक इन्कलाबी बताया है, क्योंकि उन्होंने उस समय की धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं, तथा हिन्दु-मुसलमान समाज में प्रचलित अंधविश्वासों की कड़ी आलोचना की है। गुरु नानक ने एक नये "जाति-विहीन तथा वर्गहीन समाज" की भी नींव डाली। फिर भी, गुरु नानक ने कभी हिंसा के व्यवहार को प्रोत्साहित नहीं किया, तथा अपनी उद्देश्य प्राप्ति के हेतु शांतिपूर्ण प्रोत्साहन में ही विश्वास रखा। उन्होंने हिंदू धर्म या इस्लाम अथवा सम्बद्ध संस्थाओं के मूल या शुद्ध रूप की निन्दा नहीं की। गुरु नानक ने आलोचना उन भ्रष्ट तथा गंदी कुरीतियों की की जो उनके समय में प्रचलित थीं, तथा चतुर तथा लोभी ब्राह्मणों या मुल्लाओं द्वारा भोली जनता के शोषण की निन्दा की। कबीर की भांति वे भी मानते थे कि वेद और किताबें झूठी नहीं, बल्कि वे मूढ़ झूठे या बहके हुए हैं जो उनके उपदेशों का अध्ययन नहीं करते, अर्थ नहीं समझते।

"वेद, कतेब कहो मत झूठे,
झूठा सो जो न विचारे"

वेद-पुराणों के उपदेशों को न समझने वाले लोग ही उन ग्रंथों का लाभ नहीं उठा पाते, जैसे किसी गधे पर चन्दन की लकड़ी लाद दो, पर उसकी सुगन्ध से गधे को क्या ? यही कारण है कि भाई गुरदास ने अपने समकालीन लोगों में अंधविश्वास की कुरीतियों का कारण वेदों के प्रति उनका अज्ञान बताया।

गुरु नानक की सबसे तीव्र आलोचना जाति-व्यवस्था तथा हिन्दू समाज के वर्गीकृत रूप के विरोध में हुई। उन्होंने तत्कालीन रीति रिवाजों की भी कड़ी

---

१. भाई गुरदास, वार १, पौड़ी २७१।

ग्रालोचना की है, जिनका पालन बिना उनका ग्रसली ग्रर्थ समझे होता रहा था। गुरु नानक यह नहीं चाहते थे कि पुरानी संस्थाग्रों को तोड़ दिया जाए, बल्कि वे इनका शांतिपूर्ण तरीके से—हिंसात्मक या क्रांतिकारी ढंग से नहीं—सुधार करना चाहते थे।

फिर, संगत की स्थापना ग्राखिर कोई नयी ग्रथवा क्रांतिकारी खोज नहीं थी। इसके पहले भी बौद्ध संघों तथा इसाइयों तथा मुसलमानों के पवित्र जलसों में ऐसी-बैठकें होती रही हैं। फिर भी, इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि संगत तथा लंगर दो ऐसी संस्थायें हैं जो गुरु नानक द्वारा स्थापित होने के बाद से नियमित रूप से चल रही हैं, तथा सिख समाज को जनतांत्रिक तथा समतांत्रिक बनाने का श्रेय इन्हीं संस्थाग्रों को है।

ग्रंत में, कई सिख लेखकों ने कहा है कि गुरु नानक द्वारा गुरु गद्दी की स्थापना एक क्रांतिकारी क़दम था, जिसके कारण धीरे-धीरे सिख समुदाय का निर्माण तथा खालसा पंथ का जन्म हुग्रा। किन्तु गुरु व्यवस्था गुरु नानक के पहले भी थी, ग्रौर उनके समय में भी लोग इस तरह की व्यवस्था को जानते थे। पर यह भी सही है कि दस सिख गुरुग्रों की संस्था ग्रद्वितीय थी, तथा इसने उस राष्ट्र तथा वीर भावना को जन्म दिया जिसके कारण सिख समाज प्रसिद्ध रहा है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि गुरु नानक ने किसी के प्रति हिंसा या शत्रुता का भाव नहीं रखा। बुद्ध की तरह गुरु नानक सभी धर्मों के लोगों के साथ शांति, प्रेम, सद्भावना तथा मेल से रहना चाहते थे। उनका मुख्य कार्य उन ग्रंधविश्वासपूर्ण कुरीतियों को हटाना था जिनसे मानवता त्रसित थी, ग्रौर यह काम भी वे तलवार के ज़ोर पर या हिंसा-प्रयोग से नहीं, बल्कि सर्वथा उदार तथा शांतिपूर्ण ढंग से करना चाहते थे। ग्रतः बेझिझक हम इस निष्कर्ष पर ग्रा सकते हैं कि गुरु नानक सुधारक थे, पर क्रांतिकारी नहीं।[1]

---

१. **टिप्पणी** : जान पड़ता है, इस विद्वतापूर्ण लेख के लेखक ने 'हिंसा' ग्रौर 'क्रान्तिकारी' को समान ग्रर्थों में समझा है, मानो क्रांतिकारी कार्य हमेशा ही हिंसात्मक ही होते हैं। हमारे ही काल में एक शांतिपूर्ण क्रांति की इस देश में महात्मा गांधी ने, जिनकी जन्म शताब्दी के साथ गुरु नानक की पंच शताब्दी मनाई जा रही है, एक ऐसे समाज की नींव डाली जो "जातिविहीन तथा वर्गहीन हो", जो जनतांत्रिक तथा समतांत्रिक हो, 'एक क्रांतिकारी' कदम नहीं तो क्या था? यह भी सच है कि साथ साथ गुरु नानक एक महान सुधारक भी थे जिन्होंने भारतीय समाज को बहुत-सी कुरीतियों तथा ग्रंधविश्वासों से मुक्त कराना चाहा था। इस प्रकार गुरु नानक "क्रांतिकारी" भी थे ग्रौर "सुधारक" भी, ग्रौर दोनों एक साथ होने में कुछ भी ग्रस्वाभाविक ग्रथवा परस्पर विरोधी नहीं है। हमारे ग्रपने समय में महात्मा गांधी पर भी यही बात लागू होती है। —सम्पादक

: ४ :

सिख-धर्म तथा दर्शन के अनिवार्य मूल-तत्त्व

डॉ० तारनसिंह

गुरमत तथा गुरदर्शन क्रमशः सिख-धर्म तथा सिख-दर्शन के लिए प्रयुक्त अनिवार्यतः सुव्यक्त शब्द हैं। गुरमत गुरु-मार्ग है, अर्थात् यह गुरु द्वारा प्रदर्शित पथ है; गुरदर्शन उसका दिव्यावलोकन है, अर्थात् गुरु द्वारा यथार्थता का अवलोकन। इन दोनों मूल-तत्त्वों की प्रामाणिक परिभाषा तथा विषय-वस्तु आदि-ग्रंथ अथवा गुरु ग्रंथ में दी गई हैं। इनकी दूसरी व्याख्या, अन्य अनेक रचनाओं यथा दशम-ग्रंथ, भाई गुरुदास की रचनाओं तथा भाई नन्दलाल की कृतियों एवं 'जनम-सखियों' अर्थात् सिख-धर्म के प्रणेता गुरु नानक और उनके नौ उत्तराधिकारियों की जीवनियों में, उपलब्ध है। 'गुरु' शब्द सिख गुरुओं अथवा किसी समय और स्थान विशेष के सन्तों का सूचक ही नहीं;[1] वरन् यह एक दैवी संस्था अथवा दिव्य ज्योति के परम-कण का नाम है, जो निरन्तर ज्योतिर्मान रहता है और दिव्य वाणी के रूप में विभिन्न देश-काल के जन-मानस को प्रेरित करता एवं उनकी नियति का निर्देशक होता है। दिव्य-वाणी का श्रवण सन्तों तथा देव-पुरुषों के अन्तर से निसर्गतः होता है, उन पर वर्ग या सम्प्रदाय सूचक लेबल लगाने की आवश्यकता नहीं होती। आध्यात्मिक-पथ के जानकार होने के नाते, जोकि उनका स्वानुभूत होता है, वे सन्त अथवा गुरु कहलाते हैं। शब्द के इसी भाव में गुरमत भी साम्प्रदायिक, वर्गीय अथवा संकीर्ण नहीं है; इसमें युग-युग से भारतीय सन्तों द्वारा निर्दिष्ट ईश्वरीय-ज्योति निहित है। अतः निश्चय ही गुरमत ज्योति-पथ, दैवी-ज्योति का पथ है। इसी प्रकार गुरदर्शन भारत के गुरुओं, सन्तों और महात्माओं द्वारा किए गए सत्यान्वेक्षण का नाम है। अतः गुरमत भारतीय गुरुओं, सन्तों और महात्माओं के विचारों का सामंजस्य है, तो गुरदर्शन भी सन्त-महात्माओं द्वारा परम-सत्य का लगभग समान अनुभव है। इसलिए प्रश्न उठता है कि सिख गुरुओं की विशेष देन क्या है? क्या गुरुओं में मौलिकता नहीं थी? क्या पीड़ित मानवता को देने के लिए उनके पास कुछ भी नवीन न था? इनका उत्तर सामान्य मान्यता में से, कि धर्म का पतन होने पर

---

१. गुरु-ग्रंथ में सिख गुरुओं की वाणी के अतिरिक्त जयदेव, कबीर, रविदास, नामदेव आदि अन्य सन्तों की वाणी भी संकलित है।

ईश्वर सन्तों को भेजता है, खोजना होगा। धर्म की स्थिति अनेक पूर्वावसरों की भाँति तब भी निम्नतम स्तर तक पहुँच चुकी थी—भारत में दिव्य-ज्योति मंद पड़ गई थी तथा धार्मिक अनीति, औपचारिकता, आनुष्ठानिकता, पाखण्डी वेषों तथा पुरोहिताई आदि के रूप में प्रसारित धर्म के की धुंध में ज्योति-पथ अदृश्य होता जा रहा था। सिख गुरुओं ने धर्म के सूर्य के पुनरुदय में सहयोग दिया। इस प्रयास में उन्होंने धर्म के स्वरूप को स्वभावतः सरलीकृत, आकर्षक तथा सुगढ़ बनाया एवं दिव्य-ज्योति को नवीन दीप्ति और स्वरूप प्रदान किया। गुरमत स्वयं परमात्मा द्वारा प्रदीप्त वही शाश्वत लौ है, और उसकी इच्छा-नुसार ही गुरुओं तथा सन्तों के माध्यम से इसको संबलित किया जाता है।

गुरमत

गुरमत मनुष्य के अनुकरणार्थ उच्चतम आदर्श मार्ग है। इसका लक्ष्य मनुष्य को भौतिक, मानसिक तथा सांवेगिक पीड़ा या वेदना से ही नहीं, बल्कि विशेष-कर आधिभौतिक पीड़ा से भी मुक्ति दिलाना है। गुरमत के अनुसार भौतिक तथा मानसिक पीड़ा का कारण भी आत्मा में विद्यमान है, इससे विपरीत सम्भव नहीं—अहंकार के उपकरण द्वारा निर्मित संसार अथवा परिवर्तनीय जगत के कारण दिव्यता से पृथक् हो जाने से ही मनुष्य आधिभौतिक पीड़ा का पात्र बनता है। अहम् के आवरण में मनुष्य ज्योति अथवा धर्म का मार्ग त्यागकर अन्धकार तथा अनीति का पथ ग्रहण कर लेता है। परिणामतः उसका सामना आधिभौतिक, मानसिक तथा भौतिक पीड़ा से होता है। गुरमत उसे ज्योति, दिव्यता, निरहंकारता, सेवा तथा ईश्वरैक्य का मार्ग दिखाता है।

प्रश्न उठता है : अहम् का वह संसार क्या है जिसका निर्माण मानव-पतन तथा ईश्वर से विलगता के कारण आत्मा करती है ? गुरु नानक अहम्-जगत अथवा अधर्म तथा उसके द्वारा होने वाले मानवीय उत्पीड़न का एक लाक्षणिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। वह कहते हैं—

तितु सरवरड़ै भईले निवासा
पाणी पावकु तिनहि कीआ।
पंकजु मोह पगु नही चालै
हम देखा तह डूबीअले ।१।
मन एकु न चेतसि मूड़ मना।
हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ।

(१ रहाउ : २: २९, राग आसा म० १, आ० ग्रं० पृ० ३५७)

वास्तव में अहम्-जगत् पीड़ा का जगत् है! यह अग्नि-लोक है—अग्नि, जो कि

कामनाओं तथा असन्तुष्ट कामनाओं के परिणामस्वरूप हिंसा, स्वार्थ, लोलुपता तथा क्रोध की चार अनैतिकताओं की प्रतीक है। अहम् की दुनिया आसक्ति, स्वार्थ, लोभ तथा की दुनिया है।

गुरमत का आरम्भ ऐसे अनुकूलतम वातावरण से है कि मनुष्य नियति को साकार कर सकता है। यह नियति दिव्य मिलन और शाश्वत आनन्द का रूप है, जो वर्तमान तथा वर्तमानोत्तर काल में सदैव बनी रहती है। मनोवैज्ञानिक रूप से इसकी संस्थापना 'व्यक्ति वही बनता है, जिसके लिए लालायित होता है' वाले सिद्धान्त में हुई है। अतः गुरु अर्जुन मनुष्य की निम्न नियति को देखते तथा ऐसी नियति के स्वामी परमात्मा की स्तुति गाते हैं—

ना ओहु मरता ना हम डरिआ।
ना ओहु बिनसै ना हम कड़िआ।
ना ओहु निरधनु ना हम भूखे।
ना ओसु दूखु न हम कउ दूखे। १
अवरु न कोऊ मारनवारा।
जीअउ हमारा जीउ देनहारा। १ रहाउ
ना उसु बंधन ना हम बाधे
ना उसु धंधा ना हम धाधे।
ना उसु मैलु न हम कउ मैला।
उसु अनंदु त हम सद केला। २
ना उसु सोचु न हम कउ सोचा।
ना उसु लेपु न हम कउ पोचा।
ना उसु भूख न हम कउ त्रिसना।
जा उहु निरमलु तां हम जचना। ३
हम किछु नाही एकै ओही।
आगै पाछै एको सोई।
नानक गुरि खोए भ्रम भंगा।
हम ओइ मिलि होए इक रंगा। (४ : ३२ : ८३, राग आसा म० १, आ० ग्रं०, पृ० ३९१)

सार यह कि गुरमत द्वारा अवलोकित मानव-नियति का अनुभव परम-सत्य तथा पूर्ण ईश्वरत्व के मनन और प्रशस्ति से सम्भव है। पूर्ण का मनन और प्रशस्ति मनुष्य को पूर्णता के प्रति संक्रमित करते हैं और पूर्णता आदर्श नियति को परमानन्द की प्रेरणा देती है। गुरमत परम तथा सत्य के मनन और प्रशस्ति का पथ निश्चित करता है; उसके सम्मुख मनुष्य की उन्नति के लिए तीर्थ, दान, तप, आत्म-बलिदान एवं धर्म-ग्रंथों के सस्वर पाठ अथवा किसी नाम या जन्तर के

जाप आदि के परम्परित मार्ग अनावश्यक तथा अनेक निहित स्वार्थों के कारण निर्मूल हैं। उसको वहाँ ले जाने वाला मार्ग अर्थात् गुरमत नाम की साधना (ध्यान) को कहते हैं। मनुष्य गुरमत के इसी मार्ग से श्रेष्ठता लाभकर नियति का जानकार बनता है। यह पूर्ण-तत्त्व एवं सत्य के मनन और प्रशस्ति का मार्ग है। वह मनुष्य को भी पूर्ण तथा सत्य बनाता है। गुरु नानक ने मनन एवं प्रशस्ति का वर्णन निम्नानुसार किया है—

सचु ता परु जाणीऐ जा रिदै सचा होइ।
कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ।
सचु ता परु जाणीऐ जा सचि धरे पिआरु।
नाउ सुणि मनु रहसीऐ ता पाए मोख दुआरु।
सचु ता परु जाणीऐ जा जुगति जाणै जीउ।
धरती काइआ साधि कै विचि देइ करता बीउ।
सचु ता परु जाणीऐ जा सिख सची लेइ।
दइआ जाणै जीअ की किछु पुंनु दानु करेइ।
सच ता परु जाणीऐ जा आतम तीरथि करे निवासु।
सति गुरु नो पुछि कै बहि रहै करे निवासु।
सचु सभना होइ दारू पाप कढै धोइ।
नानकु वखाणै बेनती जिन सचु पलै होइ।

(श्लोक म० १, वार आसा, आदि ग्रंथ, पृ० ४६८।)

नाम की साधना मनुष्य को दिव्यता और सत्यता प्रदान करती है। किन्तु परम सत्य अथवा पूर्ण तत्त्व का लगाव मनुष्य की विशिष्ट स्थिति है, किसी संज्ञा अथवा गुण की यान्त्रिक पुनरावृत्ति नहीं। मिथ्यात्व धुलना तथा हृदय में सत्यता का विकास होना अनिवार्य है। ऐसा तभी सम्भव होता है, जब मनुष्य सत्य के प्रति प्रेम में लीन हो जाता है तथा उसकी सर्वत्र उपस्थिति को महसूस करने लगता है, जब उसके अन्तर में ईश्वरीय चेतना सजग होती है, जब कोई पूर्ण गुरु उसके समस्त मानसिक अन्धकार को दूर कर देता है, जब मनुष्य सेवा-मग्न हो दूसरों के लिए जीता है, जब वह आत्मान्वेषण एवं विश्लेषण करता है, तथा जब वह अस्थिरता को त्यागकर दृढ़ता को अपना लेता है। ज्योति-पथ आत्मा के लिए प्रबोधन का पथ है। सरदार कपूरसिंह के अनुसार नाम-साधना में अनासक्त कर्म, जिसे हिन्दू-चिन्तन में कर्म-योग कहा गया है, भक्ति एवं ज्ञान, तीनों का समावेश है। गुरमतानुसार परमात्मा से प्रेम तथा भक्ति ही दूसरे दोनों योगों का आधार हैं।

अतः, गुरमत मानव-नियति को पूर्णता तक पहुँचाने के लिए आत्मोन्नति को लक्षित करता है। सिद्धान्ततः इसकी प्रक्रिया सरल है तथा इसके मूलाधार में

मनोवैज्ञानिक विधान सुस्पष्ट एवं सत्य है। आत्म-लब्ध (आत्मोन्नत) व्यक्ति अपने अनुकरणीय परम तथा यथार्थ की ही भाँति पूर्ण है। इस आत्मोपलब्ध जीव को अनेक विभिन्न नामों से स्मरण किया जाता है, यथा—सचियार (सत्याचरण करने वाला), सिख (साधक), सन्त (पहुँचा हुआ जीव), भक्त (प्रेमल जीव), ब्रह्म-ज्ञानी (परम-चेतन), मुक्त (निर्वाण-लब्ध), तथा अन्तिम संदर्भ में खालसा (पावन आत्मा)। गुरमत किसी नए मार्ग का प्रणयन नहीं करता वरन् प्रत्यक्ष तथा बाहरी रूप में भिन्न किन्तु वास्तव में समानता लिए हुए जुदा-जुदा ज्योति-मार्गों द्वारा प्रस्तुत मानव-नियति के अवलोकन को साकार करता है। आर्य, बुद्ध, जीव, सिद्ध, ईसाई, मुस्लिम तथा खालसा आदि शब्द उसी आदर्श या दिव्य मानव के गुण हैं।

एक बात ध्यान देने की और है। गुरमत असांसारिक तथा परा-मानुषिक नहीं। यह मानव को इसी लोक में अहम्-जगत से ईश्वरीय अथवा पूर्णता के जगत में बदलकर पीड़ा से मुक्त करने पर बल देता है। यहाँ पुनः गुरमत बड़ा आशावादी है तथा सौन्दर्य की प्रभावोत्पादकता में मनोवैज्ञानिक स्तर पर विश्वास रखता है। सत्य तथा पूर्णता को ग्रहण करने वाला आदर्श व्यक्ति अपने सम्पर्क में आने वाले सब लोगों को प्रभावित करता है, और अन्ततः समूचे मानव समाज को आदर्शवाद, सौन्दर्य, सत्य तथा पूर्णता से भर देता है। इस प्रकार समस्त समाज आनन्दपूर्ण जीवन लाभ करता है। गुरमत का विश्वासु गुरमुख अथवा गुरसिख कहलाता है, तथा न केवल वह स्वयं अहम्-जगत और अग्नि-सिंधु या अनन्य पीड़ा से पार हो जाता है, बल्कि अन्य लोगों को भी सुन्दर आदर्शों द्वारा प्रभावित कर आगे बढ़ने में सहायक सिद्ध होता है—"उसकी (परमात्मा की) आज्ञा का पालन करने से गुरु सुरक्षित होता तथा अपने शिष्यों की रक्षा करता है।" उसके साथ अनेकों का उद्धार हो जाता है। अतः, गुरुमत सम्पूर्ण मानव समाज के आध्यात्मिक शिक्षण को लक्ष्य करता तथा उसकी नियति को पुनरुद्दीप्त करना चाहता है। सिख या गुरमुख परमात्मा स्वामी की विजय के लिए लड़ने वाला सन्त-सिपाही होता है। परमात्मा की विजय से इसी संसार में स्वर्गिक साम्राज्य स्थापित होता है।

गुरमत का केन्द्र नाम तथा सत्ता के चिन्तन एवं मनन में है। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि नाम-साधना बड़ी सार-गर्भित वस्तु है और इसमें निम्न तत्त्व निहित हैं—

(१) गुरु की कृपा, जो ज्योति-पथ दिखलाता और ध्यान मनन को प्रेरित करता है।

(२) गुरु से साक्षात् होना अपने में परम-सत्ता की कृपा का ही सूचक है। व्यक्ति के द्वारा की गई समस्त आध्यात्मिक उन्नति में परम की कृपा

का आश्रय लिया जाता है। मनुष्य की मुक्ति उसकी कृपा का परि-णाम है। प्रभु के हुक्म से मनुष्य का निर्माण होता है, तथा कृपा मुक्ति का आरम्भ करती है। किसी भी कदम पर कृपा उपेक्षणीय नहीं।

(३) सन्त, भक्त व पवित्र लोग जिन्होंने ज्योति-स्वरूप पर समाधि लगाते रहने से ही प्रकाश प्राप्त किया है, गुरमत में विशेष स्थान रखते हैं, क्योंकि वे ज्ञानमय रहते हुए दूसरों को भी दिखाने में समर्थ हैं। उनकी सेवा तथा उनसे संगति की जानी चाहिए।

(४) गुरमत के सेवकों को उन पवित्र स्थानों में, जहाँ प्रभु का गुणगान होता है, अवश्य जाना चाहिए। सामूहिक पावनता आदर्श मानवता की द्योतक होती है तथा यह पवित्रता दूसरों को भी ऐसे ही सद्गुणों से अनुप्राणित करती है।

(५) परमात्मा, गुरु, पवित्र लोगों तथा मानवता की सेवा द्वारा मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति में वृद्धि होती है। सिक्ख गुरुओं ने अपनी निस्स्वार्थ सेवा के बल पर ही गुरु-गद्दी प्राप्त की थी। नाम का भजन ही परमात्मा की सेवा है; गुरु के आदेशों का पालन ही गुरु-सेवा है; पवित्रात्माओं के लिए सब प्रकार के कार्य करने तथा अपने अर्जित धन में से कुछ निर्धन लोगों को देने में ही उनकी सेवा है। गुरमत में आध्यात्मिक उन्नति के लिए उपर्युक्त सब प्रकार की सेवा अनिवार्य है।

(६) गुरमत मन, वचन, कर्म तथा इच्छा की समस्त संक्रियता में समा-धान, संयम, उदात्तीकरण तथा सन्तुलन का पक्षपाती है। वासनाओं का यदि अन्त सम्भव नहीं, तो उनका परिष्कार तो होना ही चाहिए।

(७) क्योंकि सर्वांगीण उन्नति ईश्वर-कृपा की प्रत्यक्ष उपलब्धि है, इसलिये गुरमत निरन्तर उसकी कृपा प्राप्त्यर्थ विनति करने का विधान रखता है। यद्यपि अन्ततोगत्वा यह सत्य है कि स्वयं ईश्वर ही मनुष्य को उन्नति करने तथा उपर्युक्त छः तत्वों में उल्लिखित क्रियाओं में संलग्न होने की प्रेरणा देता है, तथापि कोई ऐसी वस्तु नहीं जो प्रार्थना के बिना मिल सके, तथा कोई ऐसी बड़ी चीज नहीं, जो प्रार्थना से न मिल सके। वस्तुतः गुरमत के अनुसार परमात्मा स्वयं अन्वेषक है, तथा स्वयं ही अन्वेषित; वह स्वयं गुरु है, और स्वयं ही शिष्य भी है; वह स्वयं प्रार्थना करता है और वही प्रार्थना को सुनता भी है।

गुरदर्शन

गुरु अज्ञेयवादी नहीं थे, परन्तु वे जानते थे कि ऐसे भी अनेक प्रश्न हैं; जिनका उत्तर कभी मानव-बुद्धि से उपलब्ध नहीं हो सकता; ऐसे क्षेत्र भी हैं, जहाँ बुद्धि कोई उड़ान नहीं भरती। अतः उन प्रश्नों के अव्यावहारिक उत्तर खोजना अथवा उनसे सम्बन्धित कतिपय अभिधारणाएं बना लेना व्यर्थ ही है। गुरुओं के लिए मीमांसात्मकता या अभिधारण का कोई अर्थ नहीं था। फिर भी उनका विश्वास था कि साधक परमसत्य के चिन्तन तथा मनन के द्वारा अपने ही भीतर यथार्थ का दर्शन कर सकता है; साधक यथार्थ का अनुभव करने पर भी बौद्धिक अथवा किसी अन्य प्रकार से ईश्वर को समझने में असमर्थ होता है। गुरु ऐसे प्रश्नों का उत्तर खोजने का जोखिम नहीं उठाते : ईश्वर स्वयम्भू कैसे हुआ? सृष्टि कैसे बनी? सृष्टि कब अस्तित्व में आई? आत्मा का स्वरूप या परिमाण क्या है? आदि आदि। वे मानते थे कि आज तक इन प्रश्नों का किसी ने उत्तर नहीं दिया, और न ही कोई ऐसा कर सकेगा। गुरुओं ने ऐसे प्रश्नों की, जिनका उत्तर असम्भव था, मीमांसा की अपेक्षा यथार्थ जीवन पर विशेष बल दिया है।

गुरुओं ने भारतीय दर्शन अथवा पराभौतिक विद्या के कतिपय लोक-जनित सामान्य विश्वासों को स्वीकार किया है। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि परम-तत्त्व में सत्-चित् और आनन्द के गुण विद्यमान हैं। मानवात्मा भी इसी प्रकार सत्-चित् और आनन्द है। यहां तक कि भूत जगत या प्रकृति भी वही है। वे अद्वैत सिद्धान्त के पोषक थे क्योंकि उनका विश्वास था कि किसी रूप या गुण में द्वैत को स्थान नहीं। उनके लिए जड़ और चेतन, भला और बुरा, विकसित तथा अर्ध-विकसित, मन और आत्मा, आपेक्षिक और परम, सगुण तथा निर्गुण, उच्च और नीच तथा माया और यथार्थ, सब एक हैं और इनमें कोई प्रतिद्वन्द्विता अथवा संघर्ष नहीं। गुरुओं का विचार उत्क्रान्ति को लक्षित करता है, और उनका विश्वास है कि पदार्थ की वर्तमान स्थिति उत्क्रान्ति का ही एक पक्ष है, इसका वास्तविक रूप चेतन है। उनके लिए पदार्थ और चेतन परस्पर परिवर्तनीय हैं। अतः सम्पूर्ण सम्भवन, सत्ता एवं अभिव्यक्ति वास्तविक तथा सत्य है। व्यक्तिगत आत्मा द्वारा परम-सत्ता का अनुभव तथा अवलोकन प्राप्त कर सकने में मुख्य बाधा अहंकार (हउमै) है। वैयक्तिकता अथवा अहंमन्यता ही आत्मा को कर्मों से बांधती है, जोकि प्रायः स्वार्थपरक तथा इसीलिए मिथ्या और अपूर्ण (जिन्हें बुरे या पापपूर्ण कहा जाता है) होते हैं। इनसे जन्म और मृत्यु का चक्र चलता है, जिसे आवागमन कहते हैं। अहम् भाव सत्य से विलगता का सूचक है, और इस प्रकार द्वैत का उदय होता है। चिन्तन

तथा साधना के द्वारा ही परमसत्य का ज्ञान मिलता है, ज्ञान से आत्मोपलब्धि तथा आत्मोपलब्धि से बंधन या आवागमन से मुक्ति लब्ध होती है। इस बंधन-मुक्ति से आनन्द की वह स्थिति प्राप्त होती है जो कभी व्यक्तिगत आत्मा को प्राप्त थी।

अस्तु:, गुरदर्शन का मूल दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैत अथवा एकेश्वर का सिद्धान्त है। सृष्टि-रचना के सम्बन्ध में गुरुओं ने 'शब्द' अथवा 'ध्वनि' से आरम्भ होने तथा तीनों गुणों एवं महाभूतों के अस्तित्व में आने वाले विकास-वाद के सिद्धान्त को निर्देश किया है। रचना की सम्भावना संघटन और विघ-टन एवं महाभूतों के योग-वियोग के विधान अनुसार स्वीकृत है। किन्तु इस स्थिति में गुरुओं द्वारा मान्य मूल सिद्धान्त यह है कि रचना चाहे विकासोन्मुखी होकर अस्तित्व में आती है, तथापि इसका सृजन ईश्वरेच्छा (हुकम) से तथा इसमें का नैरन्तर्य नियम-बद्ध होता है। वह स्वयं इच्छित, वाञ्छित तथा उद्‌घोषित करता है। हुकम अथवा विधान से बाहर कुछ भी नहीं; सब इसी में बद्ध है। निर्माण और विनाश, दोनों हुकमाधीन हैं।

ब्रह्मज्ञान अथवा दर्शन से गुरु एक ऐसी मन:स्थिति को लक्षित करते हैं, जो संतुलित होती है, तथा जिसमें मानवीय अनुभवों में का द्वैत लुप्त या शून्यवत् हो जाता है। गुरु अर्जुन ने गुरु-संकल्पना के सच्चे दार्शनिक (गुरमुख) की मनोदशा चित्रित की है—

प्रभु की आगिआ आतम हितावै।
जीवन मुक्ति सोऊ कहावै।
तैसा हरखु तैसा उसु सोगु।
सदा अनंदु वह नही बिओगु।
तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी।
तैसा अंम्रितु तैसी बिखु खाटी।
तैसा मानु तैसा अभिमानु।
तैसा रंकु तैसा राजानु।
जो वरताए साई जुगति।
नानक ओहु पुरखु कहीए जीवन मुक्ति। ७।

(गउड़ी सुखमनी म० ५, आ० ग्रं० पृ० २७५)

गुरु अमरदास ने अपनी मर्मग्राही, तीक्षण तथा संवेदनशील धारणाओं से लक्षित किया है कि गुरुओं का दार्शनिक चिन्तन अद्वितीय—अपनी ही प्रकार का विशिष्ट—पुरातन से भिन्न तथा सामान्यत: षट्‌दर्शन को स्वीकार करने वाला है। उनका मत है कि मात्र गुरु की वाणी ही सत्य है, शेष सब क्षणिक की चर्चा है। केवल गुरु ही मनुष्य को दार्शनिक अथवा ब्रह्मज्ञानी की स्थिति तक उन्न-

उठा सकता है।

गुरु का मूल मत प्रायः 'मूलमन्त्र' कहलाने वाले पद में संकलित है; यह निम्नानुसार है—

> १ ओंकार, सतिनामु, करता पुरख, निरभउ, निरवैरु
> अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।

इस मन्त्र के सात पक्ष हैं, जोकि सातों दार्शनिक अथवा ब्रह्मज्ञानी के जीवन-पहलुओं का निर्देश करते हैं। दार्शनिक के जीवन के सात पहलू ये हैं—

१. ऐक्य—संघटन	(१ ओंकार)
२. सत्य	(सतिनाम)
३. सर्जन	(करता-पुरख)
४. समानता	(निर्भय-निर्वैर)
५. सौंदर्य	(अकाल-मूरति)
६. स्वातन्त्र्य	(अजूनी, सैभं)
७. संस्कार	(गुर प्रसादि)

ये सातों जीवन-मूल्य दार्शनिक को प्रिय होते हैं, और वह जीवन में इनकी उन्नति के प्रयत्न करता रहता है।

(१) दार्शनिक अपने दृष्टिकोण को अद्वैतिक-वृत्ति में ढालता है। वह न केवल चित् और पदार्थ तथा शुभ-अशुभ के द्वैत को ही अस्वीकार करता है, बल्कि उसके लिए मनुष्य और मनुष्य, धारणा और धारणा, देश और देश, संस्कृति और संस्कृति, वर्ण और वर्ण, वर्ग और वर्ग आदि में भी कोई संकीर्णता नहीं होती। उसके सम्मुख जाति, वर्ण या वर्ग भेद से इतर सब मनुष्य समान होते हैं—वे दिव्य-ज्योति अथवा परम सत्य की अभिव्यक्ति हैं। ऐक्य बल्कि परमैक्य ही गुरदर्शन का प्रथम पक्ष है।

(२) दार्शनिक मन, वचन और कर्म से सत्य-व्यवहारी होता है, क्योंकि वह मानता है कि ईश्वर अपनी सब स्थितियों और प्रसरणों में सत्य है। सत्य-आचरण ही दार्शनिक का जीवन-पथ होता है। गुरदर्शन के अन्तर्गत सत्य एक समृद्ध जीवन-मूल्य है।

(३) जीवन के समस्त पहलुओं तथा क्रमों में दार्शनिक का उपगमन मन, वचन, कर्म से विघटनात्मक न होकर सदैव रचनात्मक होता है। वह उच्च से उच्चतर आदर्शों का चिन्तन करता है। वह जीवों तथा सर्जित तत्त्वों को कभी हानि नहीं पहुँचाता, वरन् इनके विकास में सहायक होता है। वह उत्पादक, गुणग्राही तथा आदर्शवादी होता है। अतः, सर्जन गुरु-दर्शन का एक विशिष्ट पक्ष है।

(४) उसके लिए सब लोग समान हैं; हर्ष-शोक के समस्त अनुभवों को वह बराबर मानता है। वह सबका आदर करता एवं सबके द्वारा समादृत होने की आशा रखता है। वह किसी को आतंकित नहीं करता, और न ही किसी से आतंकित होता है।

(५) गुरु-अवधारणा का दार्शनिक सदैव अमर, शाश्वत सौन्दर्य की अपेक्षा करता है। दार्शनिक द्वारा संकल्पित सौन्दर्य त्वचा में न होकर मन और आत्मा में निवसित होता है। यह सौंदर्य व्यवहार तथा वृत्तियों में, सुसंस्कृत तथा संघटित व्यक्तित्व में और मनुष्य के अवलोकन तथा आदर्शों में रहता है।

(६) दार्शनिक किसी व्यक्ति-विशेष, मत, वेश-भूषा, रिवाजों, अनुष्ठानों अथवा रीतियों का दास नहीं होता। वह अपने से बाहर किसी पर आश्रित नहीं होता। उसकी निजी उपलब्धियाँ, सन्तुलन, उत्कृष्ट गुण, मौलिक सद्गुण आदि ही उसके जीवनाधार होते हैं।

(७) दार्शनिक प्रकार-भेद का ज्ञान तो रखता है, किन्तु वह सबके प्रति धृतिशील, सहानुभूतिपूर्ण तथा विनम्र होता है। वह कृपालु, प्रिम्वद, सुसंस्कृत तथा संतुलित होता है।

उपर्युक्त सातों मूल्य सांसारिक अथवा गृहस्थ जीवन में कर्म के आदर्शवादी पहलू हैं। वे मोक्ष-लक्षी विशुद्ध कर्म के पहलू हैं। यही पूर्णता की स्थिति है। अतः, भक्ति, ज्ञान और कर्म से ही पूर्णता की प्राप्ति तथा अनुभूति सम्भव होती है।

गुरदर्शन अद्वितीय है। इसकी विलक्षणता चिन्तन, मत, मीमांसा अथवा अभिधारणा आदि की अपेक्षा स्वयं चिन्तक पर बल देने में है, जिसका निकष उसके कर्म होते हैं। गुरुओं ने ऐसे चिन्तक को गुरमुख, ब्रह्मज्ञानी, साधु अथवा सन्त कहा है। अन्ततः, खालसा सच्चा दार्शनिक (चिन्तक) होता है।

खालसा

गुरमत सामूहिक मोक्ष या मानवीय अस्तित्व को श्रेष्ठतर बनाने में विश्वास रखता है। पंजाब के सिख गुरुओं ने एक ऐसा समाज या संस्था बनाई, जो गुरु नानक (१४६९-१५३९ ई० तक) से गुरु गोविन्द सिंह (१६६६-१७०८ ई० तक) तक लगभग २०० वर्ष तक निरन्तर प्रशिक्षण, पथ-प्रदर्शन तथा निरीक्षण में पनपती रही और अन्ततः खालसा कहलाई। खालसा संगठन ही गुरमत तथा गुरदर्शन की पराकाष्ठा है। यह दार्शनिकों, ब्रह्मज्ञानियों, गुरमुखों या सिक्खों के सम्मिलन से बना मनुष्यता का एक आदर्श समाज है।

आत्माओं—का समाज है, जो कि मानवता के संरक्षक हैं, ताकि संसार को स्वर्गिक प्रशासन में विकसित किया जा सके। यह सन्त-सिपाहियों, शस्त्रधारी सरदारों का ऐसा दल है जो आह्वान किए जाने पर सदैव किसी निस्स्वार्थ कर्म के लिए तैयार रहते हैं। ये सन्त-सिपाही अकल्याण, अधर्म, अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करते हैं, तथा धर्म की पुनर्स्थापना और शक्ति के उपयुक्त समायोजन हेतु सयत्न हैं। अर्थात्, वे परमात्मा की विजय का आह्वान करते हैं।

आदर्श मनुष्य की कल्पना के विकास में होने वाले धार्मिक प्रयोगों के इतिहास में खालसा की स्थिति उच्चतम तथा उत्तमोत्तम है। केसगढ़ का प्रयोग (खालसा-निर्माण का) अपने से पूर्व की विभिन्न परिस्थितियों, युगों और देशों की सीमाओं में हुए ऐसे ही अन्य प्रयोगों का अवमूल्यन नहीं करता। आदर्श मनुष्य तथा आदर्श समाज के विकास में हिन्दुत्व, बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम आदि प्रयोग तथा कंफ्यूशियस, सुकात, अफ्लातून सरीखे चिन्तक अपना-अपना स्थान तथा उपादेयता रखते हैं। खालसा संगठन, सत्य, सर्जन, समानता, सौंदर्य, स्वातन्त्र्य तथा संस्कार का प्रतीक है। यदि इन मूल्यों एवं सद्गुणों को जीवन में ढाला जाय तो आदर्श मानव समाज का उदय होता है। यही आदर्श समाज गुरमत और गुरदर्शन का लक्ष्य है।

खालसा समाज का भी निस्सन्देह एक निजी विधान है, अनुशासन-नियम, रूप, वेश-भूषा, चिह्न लक्षण आदि भी हैं, क्योंकि समाज को संघटित रखने के लिए ऐसे तत्त्व अनिवार्य होते हैं। कदाचित्, इन चिह्नों अथवा सामाजिक बंधनों का स्वरूप पूर्णतः आध्यात्मिक है और वे विकास के मान पर अत्यन्त आदर्श रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं। तथा परम सुविकसित समाजों में भी ऐसे सामाजिक बंधनों का अपरिहार्य होना अविवाद है।

निष्कर्ष

गुरु ग्रंथ साहिब के सम्बन्ध में प्रायः आपत्ति उठाई जाती है कि उसमें पुनरावृत्ति अधिक है—किन्तु इससे उसका मूल्य घटने की अपेक्षा बढ़ता है। स्वर्गीय प्रोफेसर पूरनसिंह इस सम्बन्ध में सागर की सादृश्यता प्रस्तुत किया करते थे, जिसकी विशालता उसके सौंदर्य को घटाने की अपेक्षा बढ़ाती है, और इसके जल को, चाहे कहीं से भी लेकर देखें, एक समान स्वाद प्रदान करती है। यह सत्य है कि गुरु ग्रंथ में गुरमत के दो मूल सिद्धान्तों का अत्यधिक पुनरावर्त्तन हुआ है। गुरु ग्रंथ को स्वरूप देने वाले 'मूलमन्त्र' की विभिन्न व्याख्याओं के अतिरिक्त ग्रंथ में स्वयं 'मूलमन्त्र' की छः सौ से भी कुछ अधिक बार पुनरावृत्ति हुई है। और सम्भवतः ग्रंथ में कोई ऐसा पद नहीं, जिसमें नामाभ्यास अथवा परम सत्ता,

पूर्ण या सत्य के मनन तथा चिन्तन पर बल नहीं दिया गया हो। गुरु ग्रंथ का लक्ष्य मूलमन्त्र में दिए दार्शनिक अथवा ब्रह्मज्ञानी के स्वरूप को आकार देने का है, इसीलिए बार-बार इसमें बल दिया है कि नाम-मार्ग तथा नामाभ्यास के बिना यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता। वास्तव में, गुरमत (धर्म के अनिवार्य तत्त्व) तथा गुरदर्शन (दर्शन के अनिवार्य तत्त्व) एक ही वस्तु हैं—समरूप हैं। दोनों का लक्ष्य मनुष्य को श्रेष्ठ बनने में सहायक होना है। गुरदर्शन अनिवार्य तत्त्वों का उल्लेख करता है तथा गुरमत शिष्यों की जीवनोन्नति का पथ निर्दिष्ट करता है।

: ५ :

गुरु नानक और उनका पंथ

गुरवचनसिंह तालिब

मूल मानवतावाद

गुरु नानक के उपदेशों से जो पंथ या मत का आविर्भाव होता है और जो उनके अनुयायियों अर्थात् सिखों के जीवन्त विश्वास का अंग है उसके निरूपण के लिए यह आवश्यक होगा कि हम उन सभी लेखकों के विचार अपने मन से निकाल दें जिन्होंने सिख धर्म के सतही अध्ययन के बल पर यह धारणा चला रखी है कि सिख धर्म वास्तव में हिन्दू धर्म तथा इस्लाम का सम्मिश्रण अथवा संश्लेषण है। इस प्रकार के विचार या तो यूरोपीय लोग सिख धर्म सम्बन्धी विचार-विमर्श में प्रकट करते हैं या वे भारतीय जिनका अध्ययन सूत्र मुख्यतः पश्चिमी होता है, न कि सिखों के पवित्र धर्म ग्रंथ **गुरु वाणी** में निहित मूल उपदेश। गुरु नानक उस पंथ का प्रचार कर रहे थे जिसका जन्म और विकास देश की मिट्टी में हुआ, जो मानो चिरन्तन सत्य की दैविक झाँकी के रूप में भारतीय मानस के सामने प्रकट हुआ। इसके समस्त अनिवार्य आधारतत्व तथा विश्वास ऐसे हैं जो सामान्य रूप से उस औसत हिन्दू को मालूम होंगे जिसका विकास अपनी आध्यात्मिक परम्परा को थोड़ा-बहुत समझते हुए हुआ होगा; तथा जिसने अपने ही लोगों के वातावरण से अपने आध्यात्मिक, आत्मिक तथा नैतिक विचारों को प्राप्त किया होगा, न कि आधुनिक शिक्षा से प्राप्त युक्ति-परक (rationalised) धारणाओं से जो विभिन्न स्तरीय बुद्धि वाले लोगों में यथानुसार बंटी रहती हैं। इस कथन का यह अर्थ नहीं कि गुरु नानक का आत्मिक अभियान भारत की प्राचीन आध्यात्मिकता को जागरित करने का प्रयास-भर था। इस प्रकार का विचार केवल भ्रम ही पैदा करेगा, क्योंकि भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन के दीर्घ इतिहास में दर्शन सम्बन्धी धारणाओं और व्यवहारों की अत्यधिक विविधता दीखती है। गुरु नानक ने यह किया कि मोती चुने और भारतीय उदधि में हिलोरें लेती हुई मतों तथा उपमतों की लहरों को छोड़ दिया; भ्रम, संघर्ष तथा अंधविश्वासों के अंधकार में डूबे हुए विशाल भारतीय समाज को दिशा देने के लिए उन्होंने अनन्त तथा परम की प्राप्ति की मानव इच्छा के विशुद्ध तत्त्व को वाणी दी। आत्मिक प्रेरणा के तत्त्व तथा चिरन्तन की तलाश को वाणी देने के साथ ही उन्होंने कड़े शब्दों में उन सब-

कुछ की निन्दा की जो समय के साथ-साथ मूल तत्त्व को दबा बैठे थे, तथा इसे ऐसी धारणाओं तथा संस्थागत रीतियों से घेर बैठे थे जिनका कोई नैतिक अथवा आत्मिक औचित्य न था। उन्होंने जाति व्यवस्था के अन्यायों और अमानवीयता की निंदा की, क्योंकि इसके कारण मानव समुदाय के बहुत से भागों में इन्सान को क्षुद्र मानना और उसका अपमान करना दैविक अधिकार माना जाता था; इसके अलावा, जाति व्यवस्था के अंतर्गत मात्र जन्म के कारण ही एक वर्ग दूसरे वर्ग से अधिक पवित्र तथा श्रेष्ठ मान लिया जाता था। पुजारियों, वैरागियों, ओझाओं तथा पवित्रता का दावा करने वाले और बहुत तरह के लोगों के नक़ली रवैये तथा अज्ञानतापूर्ण विचारों का उन्होंने खंडन किया और कहा कि धार्मिक जीवन वह है जो नैतिक जीवन में केन्द्रित होता है, जो मानवता और सच्चे जीवन का आदर करे तथा उचित सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा दे। यह सब-कुछ उन्होंने भारतीय लोगों की परिचित शब्दावली में व्यक्त किया, अर्थात् धर्म जिसके विभिन्न अंग हैं—दया, सच-आचार, संतोष, क्षमा, शील। सच्चा धार्मिक जीवन इन्हीं गुणों तथा इनसे सम्बद्ध गुणों को अपनाने में है, औपचारिक अथवा संस्थागत नियम या रस्म बरतने में नहीं, जो उन दिनों सारे भारत में प्रचलित थे, तथा जो अपने-आप में धार्मिक जीवन का मूल रूप या सार समझे जाते थे। गुरु नानक का संदेश नया भी था, पुराना भी। सार रूप में यह आध्यात्मिकता के उस सर्वोच्च बिंदु का पुनरोत्कर्ष है जो भारतीय मानस की ओर से मानव संस्कृति को एक उदात् दान है; पर साथ ही यह प्रकाश के एक महान् पुंज-सा उस अंधकार में फूटा जिसने गुप्तकालीन शानदार उपलब्धियों के बाद आए हुए ह्रासकाल से, सहस्राब्दि से भी अधिक काल तक भारत को ढंक रखा था। भारत में आने वाले किसी भी उपदेशक की अपेक्षा गुरु नानक के शब्दों में ही जीवन का सम्पूर्ण तथा विस्तृत जीवनदर्शन, दो हज़ार वर्षों की अवधि के बाद, मिलता है, क्योंकि तब गीता में भी कुछ इसी प्रकार का जीवनदर्शन मिला था, यद्यपि ईश्वरीय अवतार में विश्वास जैसी बहुत-सी धारणाएँ गीता से भी पहले की थीं। उसके अंतर्गत भी धर्म तथा कर्तव्य के मिश्रण का व्यापक दर्शन है। एक का दूसरे में विलयन, अलगाव नहीं, जैसा कि भारत की एकपक्षीय धार्मिक विचारधारा के लम्बे इतिहास में हुआ, जिसका सबसे अंधकारपूर्ण युग मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद की सदियों में आया।

भारत की प्राचीन आध्यात्मिकता तथा औचित्य सम्बन्धी इसके विशिष्ट रूप के पुनरोत्थान के साथ-साथ, गुरु नानक ने भारत के बहुत से भागों में ज़माने से स्थापित मुस्लिम शासन (उनके अपने समय में भी) की उपस्थिति से पैदा हुई समस्याओं का न केवल समाधान निकालना चाहा, बल्कि भारतीय लोगों के बड़े-बड़े समूहों में धर्म परिवर्तन द्वारा इस्लाम के विकास को

भी रोकने की कोशिश की; यद्यपि इस प्रकार के मुसलमान भारतीय भूमि के लोगों के ही वंशज थे, किन्तु धर्म-परिवर्तन के बाद हिन्दू धर्म की सारी मान्यताओं और पवित्र धारणाओं के प्रवल तथा सक्रिय विरोधी बन गये थे। गुरु ने देखा कि इस प्रकार के मुसलमान साधारण क़िस्म के लोग थे—ग़रीब मज़दूर जिन्हें जितना हिन्दू समाज सताता था उतना ही ज़मींदार तथा शोषक पुजारी-वर्ग भी। इस्लाम और मुसलमानों को समाप्त नहीं किया जा सकता था, और हिन्दू समाज, जो कि मतों तथा सामाजिक और राजनीतिक खंडों में विभक्त था, पुनर्विजय के लिये इस्लाम से युद्ध भी नहीं ठान सकता था। इस कठिन स्थिति में, जो कुछ रूप में आज भी मौजूद है, गुरु नानक ने एक द्विराही प्रक्रिया की कल्पना की। हिन्दू को अपने वृहत् समाज में उगे तथा विकसित सभी असत्यों से छुटकारा पाकर पवित्र बनना होगा। उसे अपनी जाति द्वारा मूल रूप से कल्पित ईश्वर की तथा मानव जीवन की सर्वोत्कृष्ट कल्पना को फिर से प्राप्त करना होगा, जो बाद में आने वाली आदिमता, जीववादिता, प्रतीक पूजा तथा आध्यात्मिक जीवन के स्थान पर रीति-रस्मों के कारण कलुषप्राय हो गयी थी। इसके अतिरिक्त, हिन्दू को अपने उस झूठे जीवन-दर्शन का भी त्याग करना होगा जिसके अनुसार सर्वोच्च गुण कठोर तपस्या तथा त्याग से ही प्राप्त होता है तथा विस्तृत रूप में नैतिक तथा सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति भी होती है। केवल तभी हिन्दू अपनी अतिजीविता के लिए शक्ति और क्षमता प्राप्त कर सकता है; तथा अपने उस नैतिक पतन को रोक सकता है, जिसका मार्मिक वर्णन गुरु ने कई स्थलों पर अपनी रचनाओं में किया है। साथ ही, मुसलमानों के साथ हिन्दुओं को मानवीयता तथा औचित्य के उन सर्वव्यापी आदर्शों की तलाश करनी होगी जो सभी सच्चे धर्मों की जड़ में होते हैं, चाहे इन धर्मों का बाहरी रूप कुछ भी हो। संघर्ष, घृणा तथा असहयोग का रास्ता नहीं, बल्कि हिन्दू-मुसलमानों, दोनों द्वारा ईश्वरपरायणता की ओर एक सम्मिलित प्रयास। इसी सत्य की खोज में गुरु ने हिन्दू-धर्म के विभिन्न रूपों के तीर्थों की विशद् भारत यात्रा तो की ही, साथ ही भारतीय मुसलमानों में कई अत्यन्त ज्ञानवान् उपदेशकों से भी सम्पर्क किया; तथा भारत के बाहर भी इस्लामी संसार के महान् चिन्तकों तक अपना मानववादी आदर्श पहुँचाने के महान् प्रयास में उन्होंने मुस्लिम धार्मिक विचार के प्रधान केन्द्रों मक्का और बग़दाद की यात्रा की। इतनी सच्चाई से वे इस प्रकार के अवबोध तथा भाई-चारे की मांग करते कि अक्सर उन्हें लोग मुसलमान समझ लेते, तथा मुसलमान जनता तथा उनके पवित्र नेताओं के आदर का पात्र उसी तरह बन जाते जैसे हिन्दू जनता तथा हिन्दू नेताओं के।[1]

---

१. गुरु के प्राचीनतम जीवन आख्यान के अनुसार, दैविक संदेश की प्राप्ति के बाद जो प्रथम

यह उनका रचनात्मक दर्शन था—एक ऐसा आदर्श जो आज के अर्थबोध में राष्ट्रीय था, जो लोगों तथा धार्मिक नेताओं की अंधानुकरण के विरुद्ध था। हिन्दुओं के पतन पर यदि उन्होंने अपना दुःख तथा रोष प्रकट किया तो साथ ही हिन्दू तथा मुसलमान, अर्थात् सामान्य भारतीय जनता के दुःखों पर भी अपनी हृदय-वेदना को वाणी दी, उदाहरणार्थ १५२१ में बाबर द्वारा पंजाब में किये गए नृशंस अत्याचार और क़त्लेआम पर उन्होंने दुखानुभूतिपूर्ण रचनायें लिखीं। आध्यात्मिक धरातल पर गुरु ने मुसलमानों (आदर्शवादी तथा मानवतावादी हिन्दुओं के साथ भी) के प्रचारकों के साथ मानवीयता तथा सर्वव्यापी सत्यों के बीच उभयनिष्ठ समानता की तलाश की, जिससे कि वे सत्य, भारतीय मानव समुदायों के लिए एक सच्चे धर्मसूत्र के रूप में काम आ सकें। इसी 'दर्शन' को गुरु गद्दी के उनके एक अधिकारी गुरु अर्जुन ने अत्यन्त वास्तविक अर्थों में रूप दिया। उन्होंने सिखों के धर्म ग्रन्थ, 'ग्रन्थ साहब' में विभिन्न धर्मों के कई संतों की ऐसी रचनाओं को शामिल किया जिनमें आत्मा की पुकार तथा नैतिक सत्य का पुट है। इस महान् प्रयास का उद्देश्य था मेल-जोल, समझ-बूझ, भाईचारे तथा राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति। फिर भी यह कहना ग़लत होगा कि गुरु अथवा उनके उत्तराधिकारियों ने इस्लाम तथा हिंदू धर्म के संश्लेषण की चेष्टा की थी। अपने सर्वोत्तम तथा सर्वोच्च आध्यात्मिक संस्कारों के आधार पर हिन्दुओं को अपने आत्मिक तथा नैतिक जीवन को ढालना था, (अंतरंग, आत्मिक तथा सामाजिक अर्थों में सिखों के लिये भी यही निर्देश थे); तथा इसके बल पर मुसलमानों के प्रति सहनशीलता और मित्रता की भावना विकसित करनी थी। मुसलमानों को भी, अच्छे मुसलमान होने के नाते, हिन्दुओं के प्रति वैसी ही भावना अपनानी होती। दरअसल, गुरु के अनुसार अच्छा हिन्दू या मुसलमान होना मत ता धर्म-सम्बन्धी रूढ़ियों पर नहीं, बल्कि धर्मानुगत सत्य तथा उत्तमता के सिद्धान्तों के पालन पर निर्भर है। संसार ने पैग़म्बरों तथा प्रचारकों को सुना तथा उनके उपदेशों पर विभिन्न प्रतिक्रियायें दिखायी हैं। गुरु नानक के 'शब्द' ने सारे भारत में जन समूह तथा धार्मिक उपदेशकों के बीच एक लहर पैदा कर दी। वृहत् जनसमुदायों के विचारों और आचरणों पर अब तक इसकी भावना का प्रभाव है; यद्यपि अभी भी हिन्दू धर्म तथा इस्लाम, दोनों में भारतीय रूढ़ियों के नाम पर बहुत कुछ ऐसा है जो व्यर्थ है, पर प्रभावपूर्ण है। किन्तु यह एक भिन्न प्रसंग है, और इस समय विचाराधीन भी नहीं।

शब्द उनके मुंह से उच्चरित हुए वे थे : "न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान।" स्पष्टतः इसका अर्थ यह था कि हिन्दू-मुसलमान को अलग करने वाले रीति-रस्म गलत हैं; तथा सच्चा धर्म इसकी अपनी मानवीयता तथा आदर्श ही है।

गुरु के 'शबद' का एक मुख्य चरित्र है नैतिक तथा आत्मिक विचारों को व्यक्त करने वाले मूल फ़ारसी और अरबी के शब्दों का बहुधा प्रयोग; उदाहरणार्थ करीम, रहीम, क़ादिर, कुदरत, साहिब, नदर (नज़र), करम, फरमान, रब, दरगाह, बहिश्त, पाक, दरवेश, जमात, सालिक, सादिक़, ख़ुदा, क़ाबू, खसम, पीर, मुरीद, मेहर, इत्यादि-इत्यादि। इस प्रकार के शब्दों के इस्तेमाल से यह ज़रूरी नहीं कि हम गुरु नानक की सीख पर इस्लाम का प्रभाव मान लें। जैसा पहले कहा जा चुका है और बाद में फिर उल्लिखित भी किया जाएगा, उनकी धार्मिक शिक्षा मूल रूप से भारतीय आध्यात्मिक 'दर्शन' के अनुकूल है। गुरु ने अक्सर सहिष्णुतापूर्ण उपदेशों तथा मेल-जोल की भावना की पुष्टि के लिये आत्मिक तथा नैतिक विचारों की अभिव्यक्ति युगल शब्दों में की है; एक का मूल भारतीय तो दूसरे का अरबी अथवा फ़ारसी होता। इस प्रकार, **कर्ता** (कर्तार) **क़ादिर और करीम** के साथ आता है, अर्थात् शक्तिवान् तथा दयावान्। इसी तरह **सिद्ध** (योगी) और **पीर**, साथ आने वाले शब्द हैं। दूसरे शब्द फ़ारसी और अरबी स्रोतों से अनन्य रूप में अपनाये गए, जैसे **हुकम** (दैविक आदेश) तथा मेहर (प्रसाद गुण) क्योंकि भारत में तीन सौ साल के मुसलमानी शासन के बाद ये जन साधारण को अधिक समय में आते। जहां कहीं भी ये शब्द आए हैं, इनका उद्देश्य सामान्य मानवीय आदर्शों को व्यक्त करना रहा है, **न कि इस्लामी धर्म के किसी उपदेश को प्रचारित करना**। मुसलमानों को कहा गया कि वे अपने धार्मिक अनुष्ठानों से पीछे इन्हीं सामान्य आदर्शों की खोज करें। जहां तक आत्मिक जीवन की योजना का प्रश्न है, जिस पर हम इस लेख के दूसरे भाग में विचार कर रहे हैं, वह भारत में सदियों से विकसित हुए सत्यों पर आधारित है, यद्यपि गुरु ने इन सत्यों में भी वैसे ही संशोधन किये जो उनके विचार में जनता के नैतिक जीवन को सबसे अधिक उपयोगी बना सकें। इस्लाम या इस मत का कोई भी अंश गुरु की सीख में नहीं आता। गुरु ने इसके मूल सिद्धान्तों का अध्ययन इसके व्यापक तथा मानवीय अर्थबोध के लिये किया। गुरु ने हिंदुओं को भी अपने धर्म में इसी प्रकार के अर्थ खोजने को कहा, किन्तु गुरु ने इसके सार को क़ायम रखा और इन्हें अभिव्यक्ति दी। अतः यह कहा जा सकता है कि उन्होंने ऐसी भारतीय आदर्शवादिता की भावना का प्रचार किया जो मानवीय तथा नैतिक अर्थों में मुसलमानों के साथ मेल-जोल से रहने की राह तैयार करे। मुसलमानों को भी गुरु ने यही राह दिखायी।

(२)

गुरु-पंथ के प्रधान बिन्दु

जैसा पहले कहा जा चुका है, गुरु के उपदेशों से, जो उनके 'शबदों' तथा

दर्शन चिन्तन सम्बन्धी कविताओं में प्रकट होते हैं, जिस पंथ का आविर्भाव हुआ, वह उन अभिधारणाओं के तालमेल में था जिनका विकास भारतीय मानस ने सदियों से किया। इस संदर्भ में यह याद रखना होगा कि गुरु के विचार चुनाव-परक थे; तथा जटिल भारतीय धार्मिक संस्कारों में से बहुत कुछ उन्होंने अस्वीकार किया है, तो साथ ही उन्होंने उसे भी अभिव्यक्ति दी है जो इन संस्कारों में सर्वोत्तम तथा सर्वोच्च है। जो व्यक्ति भारतीय धार्मिक विचारधारा तथा इसे व्यक्त करने वाली शब्दावलियों से परिचित हैं उसके लिये गुरु के संदेश किसी प्रकार भी अपरिचित नहीं लगेंगे। इसका कारण यह है कि अपनी चिन्तन रचनाओं में अधिकतर वे हिन्दुओं को ही सम्बोधित कर रहे थे जिन्होंने झूठी विकास प्रक्रिया के कारण धर्म के असली रूप आदर्शवादिता तथा नैतिकता को खो दिया था, तथा धर्म के स्थान पर झूठे दिखावे को स्थान दे बैठे थे। जैसा पहले कह चुके हैं, मुसलमानों को सम्बोधित करते समय वे उन्हें धर्म के व्यापक तथा मानवीय अर्थ को समझने को प्रेरित करते। तभी तो मुस्लिम आस्था के प्रतीक, जैसे मस्जिद, इबादत का क़ालीन, रमज़ान का रोज़ा इत्यादि को उन्होंने नैतिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व दिया जिनके बिना ये सारे प्रतीक व्यर्थ हो जाते हैं।[1]

इसी भांति हिन्दुओं को भी उन्होंने उनके धर्म के नैतिक तथा आत्मिक अर्थों को ढूंढने को कहा। जनेऊ का अर्थ नैतिक संयम तथा सत्यपरायणता है; 'अढ़सठ तीर्थों' का सच्चा स्नान तो ईश्वर चिन्तन में डूब जाना है, जिसके बिना इस प्रकार के स्नान मात्र दिखावटी रस्म रह जाते हैं। ईश्वर के बारे में वह कहते हैं, "तेरी स्तुति ही तो असली गंगा और काशी है।" उनके उपदेशों का सार जपजी में संग्रहीत है, जहां एक स्थल पर वह कहते हैं, "ईश्वर की वाणी का श्रवण ही अढ़सठ तीर्थों में स्नान के बराबर है।" इसी तरह उन्होंने उत्तर भारत में लोकप्रिय तथा गोरखनाथ द्वारा चलाये गये योग पंथ के रूप को भी आत्मिक तथा नैतिक आयाम प्रदान किया।

गुरु पंथ के प्रतिज्ञापन 'मूल-मंत्र' में ईश्वर का नाम 'एक-ओंकार' के रूप में आया है जो भारतीय आत्मिक परम्परा के 'ओम्' अथवा 'ओंकार' से ही आया है। 'एक' का उपसर्ग ईश्वरीय सत्ता की सम्पूर्ण तथा अविभाज्य प्रकृति पर बल देना है जिसके गुण अथवा विशेषण हैं, 'सत नाम, कर्त्ता-पुरुष,[2] निर्भय,

---

१. उनके प्रारम्भिक जीवन की एक घटना के अनुसार उन्होंने एक मुस्लिम प्रार्थना-सभा में भाग लेने से इन्कार किया क्योंकि वहां हर आदमी ईश्वर चिन्तन के स्थान पर दुनियावी चिन्तन में फंसा हुआ था।

२. पुरुष ओम् के बराबर है तथा ऋग्वेद से ही भारतीय संस्कृति को प्राप्त हुआ है।

निर्वैर, अकालमूर्ति, अजूनी, (अजन्मा) **सैभंग'** (स्वयंभू) गुरु रचित **'दक्खिनी ओंकार'** जो सम्पूर्णतया दर्शन तथा चिन्तन प्रधान है, **'ओंकार'** अर्थात् परम की हर्षपूर्ण स्तुति पर आधारित है।

गुरु की शिक्षा में भारतीय विचारधारा की एक और अभिधारणा बड़ी खूबी से सम्मिलित हुई है, और, वास्तव में, साधक जिसकी प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ता है; वह है **अद्वैत** अथवा परम सत्य की द्वैतहीनता। इसका अर्थ हुआ कि परम को छोड़ बाकी सब कुछ अयथार्थ है, तथा घटनाओं की उपस्थिति **माया** है। गुरु के संदेशों में **अद्वैत** शब्द तो नहीं आता, किन्तु इससे सम्बद्ध धारणायें तो सर्वत्र विद्यमान हैं, जैसे **माया** तथा इसके अनेक पर्याय; तथा सांसारिकता में मनुष्य के डूबे रहने को **दुविधा** या **दूजा-भाव**, अथवा **दुर्मति** कहा गया, अर्थात् जो परम में दृढ़ विश्वास के विपरीतार्थक शब्द थे। आध्यात्मिक जीवन का महान्तम उद्देश्य इंद्रियों से ऊपर उठना है जिन्हें भारतीय दर्शनशास्त्रों में तथा गुरु की शिक्षा में **तम, रज** तथा सत्व नाम देकर **त्रिगुण** अथवा **त्रिकुटी** कहा गया है, तथा **तूर्या** अथवा परम के दर्शन की उपलब्धि है जहां पर सारे विरोधाभास खत्म हो जाते हैं और आत्मा, परमात्मा के एक साथ एकाकार हो जाती हैं।

भारतीय दर्शन की भांति ही गुरु ने भी जीवन के प्रयास का अंत पुनर्जन्म की समाप्ति अथवा **मुक्ति** को माना है, जो सत्कार्यों के फलस्वरूप मिलती है। गुरु, शरीर परिवर्तन अथवा पुनर्जन्म को स्वयंसिद्ध मानते हैं, तथा इसके निराकरण को लक्ष्य समझते हैं। इसकी प्राप्ति कुछ तो सत्कार्यों से तथा कुछ ईश्वरीय महिमा से होती है, (जिसे फ़ारसी में **मेहर** तथा अरबी में **नादर** कहा गया है।) यद्यपि प्राचीन भारतीय शब्द **प्रसाद** को ही अधिकतर व्यवहार में लाया गया है और पवित्र ग्रन्थ का प्रायः हर पृष्ठ इस शब्द को अंकित करता है। आध्यात्मिक पथ **सुणिअई** (श्रवण), **मन्नई** (मनन) तथा **ध्यान** से होता हुआ समाधि की ओर जाता है। योगियों के हठ मार्ग की अपेक्षा गुरु का यह पथ **सहज** है। चरमावस्था को **महा आनन्द** अथवा **महा रस** तथा और कई नामों से जाना गया है; साथ ही निर्वाण[1] में निहित अबोधावस्था की ओर उन्मुख न हो, इस पथ पर साधक उत्तम तथा उपयोगी कर्मों की ओर अग्रसर होता है, यानी **सेवा** की ओर दत्तचित्त हो जाता है। यह सच्ची वीरता तथा त्याग का पथ है, और वीर तथा त्यागी वही है जो **जोधमहाबली सूर** है, अर्थात् परम शक्ति का नायक है। यह वही हो सकता है जो ईश्वरपरायण हो। ये सूरमा वे होते हैं जो मन की वासनाओं को भी चुनौती देते हैं, तथा बुरों को भी दंडित

---

१. गुरु ने इस शब्द का भी व्यवहार किया है।

करते हैं,—दोनों ही अर्थों में वे वीर होते हैं। गुरु ने ईश्वर को **असुर संहार** नाम से भी याद किया है, इस गुण को भारत में लोग भूल ही चुके थे अथवा याद भी करते तो केवल देवकथाओं में ही, वास्तविक जीवन से इसका कोई लगाव न था।

पुराणों के तथा ईश्वरीय अवतार के शाब्दिक निर्वचन को गुरु ने अस्वीकार किया; यद्यपि नैतिक सत्यों को सोदाहरण व्यक्त करने के लिये उन्होंने पौराणिक कथाओं का प्रयोग किया है। उनकी शिक्षा गीता के सर्वोत्तम सार— इच्छाओं के परित्याग—का समर्थन करती है, किन्तु कर्म को उच्चादर्श नहीं मानती। भारतीय परम्परा से ईश्वर के नाम लिये गये हैं, जैसे **राम, दामोदर, मधुसूदन, गोपाल, गोविन्द, निरंजन, नरहरि, मोहन, मुकन्द, दीनानाथ** इत्यादि-इत्यादि। ये सारे नाम पौराणिक तथा सगुण हैं, यद्यपि जैसा सभी संदर्भों में स्पष्ट है, इनका अर्थ एक परमात्मा ही है, विभिन्न मतों के लोकप्रिय पौराणिक देवताओं का अर्थ नहीं है। इस लेख के प्रथमांश में जैसा कहा जा चुका है, सहिष्णुता तथा भाईचारे की भावना को उत्साहित करने के लिये यदा-कदा ईश्वर के मुस्लिम नामों का भी प्रयोग किया गया है।

गुरु नानक ने जिस ईश्वर की संकल्पना की वह **निराकार-निरंकार ब्रह्म** है, फिर भी वह **सगुण**, अथवा **सरगुन** है। इन सभी में भारतीय जनमानस अपने परिचित प्रतीकों को ही पाता है, भारतीय आध्यात्मिकता तथा आदर्शवादिता का यह पुनर्जागरण ही तो है।

(३)

भक्ति तथा सूफ़ी मत

गुरु नानक तथा गुरुगद्दी पर बैठने वाले उनके उत्तराधिकारियों की ईश-रचनाओं का एक प्रमुख गुण भक्ति है। ईश्वरीय प्रेम ही भक्ति का सार है, यह वह मार्ग है जिस पर चलकर साधक अपने प्रिय को,—ईश्वर को—प्राप्त करता है। इसे सम्भव बनाने के लिए मानवीय कल्पना के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि ईश्वरीय सत्व को वह रूप देकर साकार करे, और आकर्षक गुणों से विभूषित करे और फिर उसके प्रति तीव्र प्रेम की भावना लगाये। ऊँचे स्तरों पर, भक्ति ईश्वर-प्राप्ति का एक और मार्ग है, जिसके लिए भारत में भक्ति के अलावा ज्ञान और कर्म के मार्ग भी बनाये गये हैं। गुरु नानक की रचनाओं के अत्यन्त मार्मिक भागों में इसी भक्ति का वातावरण है, और उनमें उस आत्मा की चाह भरी पुकार है जो परमात्मा से, सर्वव्यापी से बिछुड़ गयी है और मिलन की कामना कर रही है। ये प्रार्थनायें अत्यन्त काव्यमय हैं, तथा कई स्थलों पर भावनायें इतनी गहरी और वेदनायें इतनी तीव्र हैं कि भाषा

और शैली प्रणय गीतों का आभास देने लगती हैं। मिलन की यह कामना आधार रूप में अद्वैत दर्शन का ही आदर्श है जो भावात्मक तथा क़रीव-क़रीव कामात्मक अर्थों में अपने को वदल लेती हैं। आंतरिक रूप से यह रहस्यद्रष्टा की वह कामना है जो ईश्वरीय सत्ता में विरोधाभास, विभाजन तथा द्वैत को अस्वीकार करती हुई सर्वव्यापी तालमेल तथा एक ब्रह्म में विश्वास रखती है। इसकी भाषा कविता और अभिव्यक्ति संगीत है, क्योंकि यही वह एकमात्र माध्यम है जिसके द्वारा भावना को इसकी सम्पूर्णता के साथ समझा जा सकता है, और इसकी सघनता की कल्पना की जा सकती है।

भक्ति पंथ की तरह इस्लाम में भी सूफ़ी मत क़रीव नवीं शताब्दी में आध्यात्मिक भावात्मक आन्दोलन के रूप में विकसित हुआ। इसने मुख्य सौंदर्य वोधी उदार प्रवृत्तियों को व्यक्त किया, इस कारण परम्परानिष्ठ धर्मवादियों के कोप का शिकार हुआ, और बाद में इस्लामी संहिता का पूर्ण निर्वाह करते हुए सूफ़ी मत ने नम्र उदारता तथा अनुरूपी या संस्कारवादी भावुकता को ही व्यक्त किया। अपने सर्वोच्चीय विन्दु पर सूफ़ी मत भी, भक्ति अथवा अद्वैत की भांति ही, एक परमात्मा की तलाश—**वहदातुल वजूद** में वढ़ा। इसके सिद्धान्त प्रधानतया प्लेटो तथा प्लोटिनस से प्रभावित थे जिनके अनुसार प्रेय सार को प्राप्त करने की एक आत्मिक कामना का रूप लेता है, सूफ़ी मत ने भी कामना, कविता और संगीत में अपने को व्यक्त किया तथा आत्मिक सम्पूर्णता प्राप्त करने के साधन रूप में अपने को प्रस्तुत किया। मध्ययुगीन भारत में, स्वाभाविक ही, जनता के निकट सम्पर्क में आने वाले इस प्रकार के हिन्दू भक्तों तथा सूफ़ी दरवेशों की वहुधा आपसी मुलाक़ातें होती रहतीं। अल्पांश में ही, किन्तु यदा-कदा पारस्परिक प्रभाव प्रक्रिया भी जारी की। मुस्लिम दरवेशों ने, जिन्हें साधारणतया पीर कहा जाता था, ईश्वर के लिए भारतीय सम्बोधन **'साजन'** को ग्रहण किया, तथा अपने प्रार्थना गीतों में भारतीय पृष्ठभूमि से कल्पना-सृष्टि की, क्योंकि भारतीय भूमि में ही उन्हें आत्मिक अनुभूति के विम्ब मिलते गये। किन्तु दार्शनिक रूप से भक्त तथा दरवेश अलग-अलग ही रहे, अपनी-अपनी पृष्ठभूमि से दोनों ने प्रेरणायें ग्रहण की तथा अंत में अपने अनुभवों और ज्ञान को अपने ही अलग सम्प्रदायों में वितरित किया। हिंदू भक्त भारतीय पुराणों तथा भारतीय दर्शन के सन्दर्भों में, जिनसे वे अपने ज्ञान को आच्छादित करते, वात करते थे, इधर दरवेशों के ज्ञान के पीछे इस्लामी एकेश्वरवाद तथा विश्ववादिता थी। भारतीय भक्ति का उद्भव **अलवार** कहे जाने वालों सन्तों के साथ दक्षिण में हुआ था; मुस्लिम सूफ़ी मत का प्रादुर्भाव ईरान में हुआ था। सूफ़ीमत इस्लाम के अन्तर्गत आन्दोलन था तथा सामान्य धार्मिक वातावरण को उदार वनाने में इसका योगदान वहुत थोड़ा है। इसके विपरीत भक्ति आन्दोलन का उदार उद्देश्य था जिसने जन

समूह को उसी दिशा में प्रभावित भी किया।

गुरु नानक पर, जिनकी भक्ति सगुण परमेश्वर के प्रति थी, सूफ़ी प्रभाव का कोई प्रमाण नहीं मिलता। उनका दर्शन अथवा ज्ञान सम्पूर्णतया भारतीय भक्ति तथा रहस्य परम्परा के भीतर है। वे मुस्लिम सन्त, जैसे शेख फरीद सानी तथा पीर बहाउद्दीन ज़करिया, जिनके सम्पर्क में गुरु आये थे, सूफ़ी नहीं थे। वे केवल पीर थे, लोकप्रिय मुसलमान फ़कीर जिनका जीवन पवित्र था। उन्होंने, विशेष रूप से शेख फ़रीद सानी ने, धर्म के सद्व्यवहार द्वारा प्राप्त होने वाले नैतिक लक्ष्य की ओर संकेत दिया। उनके इस नैतिक रवैये तथा द्वेषहीनता के कारण ही गुरु नानक ने उनके उदाहरण को महत्व दिया, और उनके समान सीख को जनता में प्रचारित करना चाहा। सूफ़ियों का जो-कुछ भी सिद्धान्त रहा हो, गुरु ने उस ओर नहीं के बराबर ध्यान दिया है। सूफ़ियों के प्रति भी उनकी आपत्ति वही होगी जो योगियों के प्रति थी, अर्थात् मानव समाज में नैतिक कर्त्तव्यों को न कर वीतरागी बन जाना। उन्होंने इस प्रवृत्ति का हमेशा खण्डन किया है। गुरु के भक्तिगीत भारतीय परम्परा में रचित हैं, जिसके अनुसार साधक अथवा प्रेमी, स्त्री रूप में आकर अपने वर की कामना कर रही होती है। सूफ़ी मत में मुस्लमानी परम्परागत नर प्रेमी (बहुवा समलैंगिक प्रेम की कामना) प्रचलित है। देहातों में गीत रचने वाले सूफ़ी दरवेशों ने भी नारीपात्र के रूप में प्रेमी की कल्पना को अपनाया है। किन्तु इस प्रकार का परिवर्तन विशुद्ध सूफ़ी परम्परा के अन्तर्गत नहीं आता। निश्चय ही गुरु नानक पर सूफ़ी मत के किसी भी रूप का प्रभाव नहीं था, हाँ उनकी सच्चाई और दर्शन के कारण पीर बहाउद्दीन तथा शेख फ़रीद जैसे प्रमुख तथा कई अपेक्षाकृत कम प्रसिद्ध मुसलमान फ़कीर उनकी ओर अवश्य आकृष्ट हुए थे।

: ६ :

गुरु नानक का सिख धर्म

समस्त धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० त्रिलोचन सिंह

प्रारम्भिक

गुरु नानक देव जी को जो सत्य का ज्ञान एवं अनुभव हुआ, उससे सिख धर्म की उत्पत्ति हुई। इस धर्म को उन्होंने एवं उनके उत्तराधिकारी अन्य गुरुओं ने अपने नए एवं अनूठे आत्मिक अनुभवों एवं मानव जाति की सामाजिक, परिवारिक, आत्मिक एवं राजनैतिक समस्याओं के यथार्थ ज्ञान के प्रकाश में स्थापित किया। साधारणतः यह मत सिख धर्म के नाम से प्रसिद्ध है परन्तु गुरु नानक देव अपनी रचनाओं में इसे 'गुरुमत' कहते हैं। गुरुमत शब्द को इन्होंने अपनी रचनाओं में अनेकों वार प्रस्तुत किया है। इसे 'गुरुमुख मार्ग', 'निर्मल पंथ' एवं 'सत्य का मार्ग' भी कहा गया है। ये समस्त नाम इस बात के सूचक हैं कि गुरु नानक का सिद्धान्त निराला होते हुए भी सर्व सांझा, सत्य एवं पवित्रता पर निर्भर है।[2]

नव-स्थापित धर्म

गुरु नानक देव जी का दिव्य व्यक्तित्व ऐसे दार्शनिक एवं अनुपम आत्मिक अनुभवों का प्रेरणा स्थल बना जिनके आधार पर गुरुओं ने एक परिपूर्ण एवं सुसंगठित धर्म स्थापित किया। हिन्दु धर्म परम्परागत धर्म है। सिख धर्म नव स्थापित एवं नव निर्मित धर्म है।[3] इसके स्थापक गुरु नानक देव ने सिख

---

१. आदि ग्रन्थ : राग गूजरी म० १, पृ० ५०५, रामकली म० १, पृ० ६०४: मारू म० १, पृ० १००८ १००९, वसन्त म० १, पृ० ११९०, सारंग म० १, पृ० १२३३।

२. "मारिया सिका जगत विच नानक निरमल पंथ चलाइया!" भाई गुरदास : वार १ : ४५ और देखिए :—भाई गुरदास : वार ३ : १, ५, १४, १६। वार ५:१३, १५, २०! वार ६ : १, १६। वार १२ : १७। वार १८ :२०। वार २२ : १४, १९।

३. (i) हमारा सम्बन्ध यहां उन महान नव-स्थापित धर्मों के साथ है जिनसे नवीनतम गंभीर एवं तेजस्वी अनुभव उत्पन्न हुए जैसे ईसाई मत, बौद्ध मत, पारसी मत एवं इस्लाम। सिख धर्म के समर्थक चाहे संख्या में थोड़े ही हैं, यह भी नव-स्थापित धर्म ही है, न कि सुधारवादी आन्दोलन (पृ० १३४)।

धर्म को स्वाधीन एवं भिन्न उपासना केन्द्र दिया, जिसे उन्होंने 'संगत' अथवा गुरुद्वारा[1] कहा। प्रामाणिक धार्मिक ग्रन्थ दिया, जिसे उन्होंने झूठे पैगम्बरों की वाणी से अलग सत्पुरुषों की सत्य वाणी कहा।[2] इस धर्म में से उन्होंने पंडितों, पुरोहितों की पुरानी श्रेणी समाप्त करके, गुरु दीक्षा देने के, प्रार्थना एवं उपासना के, जीवन व्यवहार ('रहत') के अपने निजी नियम स्थापित किये जो कि आज तक प्रचलित हैं एवं गुरु-सिखी के आदर्शों एवं व्यवहार का आधार है। उन्होंने सिख धर्म को बोझल बन्धनों, फिजूल रीति-रिवाजों एवं निरर्थक संस्कारों से मुक्त किया ताकि इसके तत्त्व आदर्शों एवं व्यवहार मानवीय अध्यात्मवाद के अत्यन्त समीप रहे।[3]

वैदिक एवं सामी (अरब-यहूदी) परम्परा की सिद्धि

गुरु नानक देव जी नये ज्ञान, नये सिद्धान्त एवं नवीन आध्यात्मिक एवं सामाजिक मूल्यों के जन्मजात निर्माता थे। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि की सृजनात्मक शक्ति ने प्राचीन मूल्यों को ऐसा क्रान्तिकारी एवं नया रूप दिया कि उनकी विचारधारा मानव जाति के भूत एवं भविष्य के बीच एक अटूट संयो-

---

इन धर्मों के संस्थापकों के जीवन अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन्हें अपने जीवन में किसी समय विशेष दैवी आवेश हुआ। किसी निश्चित रहस्यवादी अनुभव के आधार पर वह इस आवेश को दैवी-प्रेरणा कहते हैं ! इन्होंने नया धर्म स्थापित किया, शिष्य बनाए, एवं अपने मार्ग की नींव रखी (१३५-१३६)। इस प्रकार इन धर्मों के संस्थापकों के शिष्यों ने मिलकर नई संस्था एवं नया धर्म-प्रबन्ध बनाया।

—जोकिमवास् : 'दी सोशियालोजी अ.फ रिलिजन', पृ० १३६-१३७।

बौद्ध मत एवं जैन मत उन धार्मिक एवं सामाजिक विचारों से प्रभावित हुए जिसकी पृष्ठभूमि शुद्ध हिन्दू-धर्म थी। सिख धर्म का सम्बन्ध पर्याप्त रूप में इस्लाम के आदर्शों से भी है। भारतवर्ष पर मुसलमानों के शासन ने हिन्दु धर्म एवं इस्लाम का पारस्परिक सम्पर्क पैदा किया। इस्लाम की सरलता एवं प्रभाव ने अनेक हिन्दुओं को आकर्षित किया। अकबर हिन्दु-मुसलमानों का सम्मिलित धर्म स्थापित करने का इच्छुक था परन्तु वह असफल रहा। गुरु नानक सिख धर्म की स्थापना करके हिन्दुओं एवं मुसलमानों के लिये साझे धर्म की स्थापना में इसलिए सफल हुए कि उन्होंने यह कार्य शुद्ध धार्मिक एवं आत्मिक दृष्टिकोण से किया। (पी० थामस, 'हिन्दु रिलिजन: कस्टमज़ एण्ड मैनर्ज़', पृ० ५६)

१. पूर्व में ऐतिहासिक गुरुद्वारों का नाम 'संगीत' ही है। देखो 'आदि ग्रन्थ' मारु म० १, पृ० १०३५ : धनासरी म० १, पृ ६६८ शब्द। गुरुद्वारा के लिए देखो--आसा म० १, पृ० ३५१, सूही म० १, पृ० ७३० : रामकली म० १, ९३०, मारु म० १, पृ० १०१५।

२. 'आदि ग्रन्थ' गाउड़ी म० १, पृ० १५८, मारु म० १, पृ० १००५, प्रभाती म० १, पृ० १३४२, अनंद म० ३, पृ० २३,

३. सच तां पर जानिए जा सिख सच्ची लेइ।
दया जानै जीव की किछु पुन्न दान करेइ। आसा दी वार १० : २

जक कड़ी बन गई। उनकी विचारधारा परस्पर विरोधी संस्कृतियों के बीच खाई दूर करने वाली सहयोगी संस्कृति बन गई।[1] उनके धर्म में वैदिक एवं सामिक (अरब-यहूदी) धर्मों की श्रेष्ठ परम्पराओं की परिपूर्णता प्राप्त होती है। मानव अनुभव के अटल सत्यों के विषय में सभी आलौकिक एवं विस्मयजनक आत्मिक अनुभव गुरु नानक के जीवन एवं वाणी में दैविक एवं पूर्ण रूप में पाये जाते हैं। संसार में ऐसा धार्मिक साहित्य कम ही है। जो गुरु नानक देव की वाणी के आत्मिक ओज, सामाजिक यथार्थ, रहस्यवादी एवं रसिक गहराई, अपार आत्मिक कल्पना, गंभीर ज्ञान, आत्म दृष्टि एवं दर्शन के चातुर्य तक पहुँच सके।

गुरु नानक देव जी की अमृत वाणी की प्रत्येक पंक्ति आध्यात्मिक जीवन का दैवी चश्मा है, जिससे कोई भी धार्मिक व्यक्ति पूर्ण तृप्ति प्राप्त किये बिना नहीं जा सकता। यहाँ न केवल गंभीर बुद्धि वाले आत्म-ज्ञान के अभिलाषी शान्ति एवं तृप्ति प्राप्त करते हैं अपितु दुःख, मुसीबत एवं संकट से बोझिल हृदय कष्ट एवं क्लेश से मुक्त होकर जाते हैं। समस्त दार्शनिक तथ्य, आत्मिक सिद्धान्त, आत्मिक-अनुभव, सामाजिक सत्य, एवं राजनैतिक विचार अत्यन्त ठोस एवं स्पष्ट रूप में उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं।

सांस्कृतिक अव्यवस्था में नवीन प्रकाश

गुरु नानक देव जी के समय संसार घोर अज्ञानता के अंधकार में ग्रसित था। एक ओर मूर्तिपूजा एवं पाखंड, दूसरी ओर अत्याचार एवं असहनशीलता के कारण देश में अशान्ति मची हुई थी। संदेह, भ्रम, व्यर्थकार्य, स्वार्थपरता, समाज को अधोगति की ओर ले जा रहे थे। भोग-विलास, कामवासना एवं स्वार्थपरता ने लोगों का चरित्र चरमसीमा तक गिरा दिया था। धर्म एवं शर्म पंख लगाकर उड़ गए थे। भारतीय समाज एवं लोगों के आचरण को निरंकुश एय्याशी एवं विलासी जीवन ने रसातल तक पहुँचा दिया था।

कलि कानी राजे कसाई धरमु पंख करि उडरिया।
कूड़ अमावस सच चन्द्रमा दीसै ना ही कह चढ़िया।
हऊ भालि विकुंनी होई।
अंधेरै राहु न कोई

---

१. सिख धर्म को निस्संदेह हिन्दु-मुस्लिम आदर्शों का सन्धिस्थल कहा जा सकता है। इसकी सबसे विशेष एवं पवित्र प्राप्ति इस बात में है कि इसने हिन्दु मुस्लिम विचारधारा की सांझी गहराइयों को ढूंढा एवं अपनाया। इसलिए सिख अपने धर्म के मूल एवं सामाजिक प्रकृति पर जितना मान करें कम है।
डा० आरनाल्ड टायनबी: 'सेकरिड राईटिंग्ज आफ दी सिख्स' अनु० डॉ० त्रिलोचन सिंह आदि, पृ० १०।

विचि हऊमै करि दुखु रोई
कहु नानक किनि बिधि गति होई ।[१]

इस दुःखदाई दृश्य का चित्रण करते हुए उन्होंने जैनियों के गन्दे रहन-सहन, गुलामी को आमन्त्रित करने वाली घोर अहिंसा, समाज-त्याग एवं प्राकृतिक जीवन से घृणा पैदा करने वाले उनके व्यवहार पर भी अत्यधिक दुःख एवं क्षोभ प्रकट किया है ।[२] उन्होंने लोगों को अनुभव करवाया कि नंगे फिरना, गेरुआ वस्त्र पहनना, जटाधारी बनना अथवा मूंड मुंडवाना धार्मिक व्यक्तित्व के चिन्ह न रह कर पाखंड एवं दंभ के परिचायक बनकर रह गए हैं । गन्दे रीति-रिवाजों एवं अनाचार पर उन्होंने अत्यन्त दुःख प्रकट किया है ।

क्षत्रिय लोग जो किसी समय अपनी शक्ति एवं सांस्कृतिक परम्परा पर बड़ा अभिमान करते थे, अपनी पवित्र परम्पराओं को त्याग बैठे थे । यहां तक कि उन्होंने अपनी मातृभाषा छोड़कर मलेच्छ आक्रमणकारियों की भाषा एवं संस्कृति को ग्रहण कर लिया ।[३] पंडित लोग बिना समझे-बूझे लोगों को वेद-शास्त्रों का पाठ सुनाते एवं दूसरों को ऐसी राय देते थे जिस पर वे स्वयं आचरण नहीं करते थे ।[४] काज़ी हाथ में माला लेकर न्याय करने बैठ जाते परन्तु घूंस लेकर फैसला न्याय-विरुद्ध कर देते थे । जो कोई उनके अन्याय के विरुद्ध ऐतराज़ उठाता उसे कुरान में से 'शरा' का वास्ता देकर टरका दिया जाता था ।[५] जोगी कान फड़वाकर एवं शरीर पर धूलि रचाकर, आत्मिक ज्ञान प्राप्त किये बिना ही घर-घर मांगते फिरते थे और पीछे उनके बाल-बच्चे उनकी जान को रोते रहते थे । इस प्रकार वे अपने परिवार एवं शिष्यों का जीवन नष्ट कर देते थे ।[६]

---

१. आदि ग्रन्थः वार माझ म० १, श्लोक, पृ० १४५ ।
२. आदि ग्रन्थ वार माझ म० १, २६, पृ० १४९ वार मलार म० १:१९, पृ०१२८५ ।
३. खत्रीयां त धरमु छोड़िया मलेछ भाखिया गही ।
सृष्टि सभ इक वरण होई धर्म की गत रही । धनासरी म० १, पृ० ६६३ ।
४. पंडित वाचहि पोथीयां ना बूझहि वीचारु ।
अन कउ मती दे चलहि माया का वापारु । सिरी राग म० १, पृ० ५६ ।
५. काज़ी होइ कै बहै नियाइ ।
फेरे तसबी करे खुदाई ।
वढी लैके हकु गवाइ ।
जे को पुछै तां पड़ सुणाए । वार रामकली, श्लोक म० १, पृ० ९५१ ।
६. जोगी गिरही जटां बिभूत ।
अगै पाछै रोवहि पूत ।
जोगु न पाइया जुगति गवाइ ।
कितु कारणि सिरि छाई पाइ । वार रामकली, श्लोक म० १, पृ० ९५१ ।

यह समय सांस्कृतिक बेचैनी, राजनैतिक उथल-पुथल एवं चारित्रिक गिरावट का समय था। विशेष हिन्दु-दर्शन पर ऐसे दार्शनिक सिद्धान्त हावी हो गए थे जो आत्मा एवं जीव को निजत्त्व को निष्क्रिय सिद्ध करते थे। कर्म सिद्धान्त एवं संन्यास पर विशेष बल दिया जाता था जिससे सारी जाति में संसार के प्रति उदासीन दृष्टिकोण एवं एक प्रकार का अचेतन निराशावाद पैदा हो गया था।

इस निराशावाद को गुरु नानक देव देश के सामाजिक एवं राजनैतिक भविष्य के लिए बड़ा घातक समझते थे।[1] हिन्दू-दर्शन की पलायनवादी एवं अहिंसावादी प्रवृत्ति ने आक्रमणकारियों को जोर-जुल्म एवं अत्याचार करने के लिए और प्रेरित किया।[2] सृष्टि को आत्मा से भिन्न समझना, संसार-त्याग पर जोर देना, क्योंकि संसार छायामयी माया है—एक ऐसा दृष्टिकोण था जिसने लोगों में संगठित होने की तेजस्वी रुचि समाप्त कर दी थी एवं बाह्य आक्रमणकारियों के अत्याचार के विरुद्ध कमर कस कर खड़े हो जाने का साहस भी समाप्त कर दिया था। आवश्यकता थी इस बात की कि इस निराशावादी एवं सामाजिक उत्तरदायित्व से उपराम करने वाली रुचियों को झंझोड़ कर पलायनवादी स्वार्थ की निद्रा से जागृत किया जाए क्योंकि इन अधोगत रुचियों ने ही जाति एवं देश को निर्जीव एवं निराश बना दिया था।

जो सत्य एवं दिव्य-ज्ञान की ज्योति जयदेव, नामदेव, रामानन्द एवं कबीर जैसे श्रेष्ठ संतों ने अपने एकाकी प्रयत्नों से समय-समय पर प्रज्ज्वलित की, वह आकाश में चढ़े पूर्णिमा के चन्द्रमा की सामयिक जगमगाहट के उपरान्त समाप्त हो गई एवं कुछ समय बाद पुनः झूठ एवं अज्ञानता का अंधकार छा गया। जयदेव से लेकर कबीर तक किसी भी संत के व्यक्तित्व से उत्पन्न हुई आत्मिक जागृति स्थायी आन्दोलन का रूप न धार सकी।

चारों ओर व्याप्त अधोगति के इस वायुमंडल में गुरु नानक का तेजस्वी व्यक्तित्व विलक्षण एवं अनुपम जलवे दिखाने लगा। उनके क्रान्तिकारी संदेश ने

---

१. हिन्दु मूले भूले अखुटी जांही
नारदि कहिया सि पूज कराहीं
अंधे गूंगे अंध अंधारु
पाथरु ले पूजहि मुगध गवार
ओहि जा आपि डुबे तुम कहा तरनहारु —वार बिहागड़ म० १, पृ० ५५६।

२. रत्त पीने राजे सिरे उपरि रखी अहि ऐवै जापै भाऊ
लंबु पापु दुइ राजा महता कूडु होइआ सिरकार
कामु नेबु सदि पूछिए बहि बहि करे बीचारु
अंधी रयति गियान विहूंनी भाहि भरे मुरदारु—गुरु नानक : आसा दी वार ११५ : ४६९।

एक ओर समस्त सच्चे धर्मों की सर्व-सांझे अटल सत्यों एवं दूसरी ओर पथभ्रष्ट करने वाले सिद्धान्तों एवं हानिकारक रुचियों को इस प्रकार स्पष्ट कर दिया जैसे हंस दूध से पानी को अलग कर देता है।[1] राष्ट्रीय-चेतना को एक बार पुनः यथार्थ की ओर मोड़कर उन्होंने इसे सुदृढ़ बनाया। उसने मानव में स्वाभिमान जगाया एवं उसे अपनी रचनात्मक प्रतिभा एवं संसार के इतिहास में मानव जाति के भविष्य, संस्कृति एवं सभ्यता के निर्माता होने का स्मरण कराया। यह कोई चमत्कार नहीं कि सामाजिक एवं राजनैतिक भविष्य के पुनर्वास की आशा का जो बीज गुरु नानक देव ने उगाया, वह एक स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली पंजाब के रूप में प्रकट हुआ। इसमें अत्याचारों से पीड़ित लोगों के लिए पुनः शक्ति एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति की आशा एवं इच्छा का संकेत था।

धर्मों में पारस्परिक विचार-गोष्ठी

अपने लंका, तिब्बत एवं मध्य पूर्व के देशों की यात्रा में गुरु नानक देव ने इन देशों में प्रचलित समस्त विचारधाराओं के साथ पारस्परिक विचार-विमर्श प्रारंभ किया। यह विचार-विमर्श किसी स्वार्थ अथवा व्यवहारिक लक्ष्य को समक्ष रखकर नहीं अपितु मानवीय सत्यों एवं आत्मिक मूल्यों को सामने रखकर किया गया। उन्होंने प्रत्येक धर्म को अपना ही समझा एवं अपने विश्वासों एवं दर्शन को शाश्वत सत्य की कुठाली में रखकर ऐसे प्रस्तुत किया मानो वे सभी धर्मों के विश्वास एवं दर्शन हों।

योगियों, सिद्धों, वेदान्तियों, वैष्णवों, शैवों, बौद्धों एवं जैनियों आदि से विचार-विमर्श में गुरु नानक ने उन्हें स्पष्ट किया कि कोई भी धर्म यदि मानवता के जीवन-प्रवाह में सामाजिक एवं आत्मिक लहरों के माध्यम से अपने-आपको निमग्न नहीं करता, तब तक वह असहाय नौका के समान डांवांडोल रहता है। किसी धर्म अथवा दर्शन को अपने विचार-सिद्धान्त पर आधारित नहीं करने चाहिएँ क्योंकि धर्म एवं दर्शन, जीवन एवं अनुभव को उत्तरदायी हैं, इन्हें जीवन-प्रवाह के कदम से कदम मिलाकर चलना अनिवार्य है।

हम लोग संसार के इतिहास की दौड़ और विश्व गति का अनुमान इस प्रकार नहीं लगा सकते जैसे छः दर्शनों के ऋषियों ने ईसाई मत के बौद्धिक सिद्धान्तवादियों ने, इस्लाम के मुतकलमुनां (सूफियों) ने, बौद्ध मत के न्याय-शास्त्रियों ने मन तथा बुद्धि के अनुमान एवं विचारों द्वारा लगाया। परन्तु संसार का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें कल्पना और बुद्धि से गहरे पैठकर प्रत्येक वस्तु के धरातल तक पहुँचना होगा और जीवन के रहस्य का

---

१. भाई गुरदास : वार १ : २७।

ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। बुद्धिवादियों ने जीवन के अनुभव से अलग हटकर केवल ज्ञान के काल्पनिक आदर्शों को जीवन का प्राप्य समझ लिया है। गुरु नानक देव जी इसीलिए जिज्ञासुओं, विद्वानों, सत्पुरुषों एवं जन-साधारण को यही प्रेरणा देते हैं कि जीवन के समक्ष होकर, इसके बहते जल में कूद पड़ो और जीवनरूपी सागर की तूफानी लहरों के बीच डुबकी लगाकर सर्वव्यापक शक्ति की गहन गंभीर लहरों में लीन हो जाओ। काल्पनिक ज्ञान के सिद्धान्त अनुभव की ज्योति को खंड-खंड करके देखने का प्रयास करते हैं, इसलिए बुद्धिवादियों को आत्मिक जीवन की संगीतमयी गति दृष्टिगोचर नहीं होती। परम तत्त्व, सत्य और जीवन का प्रधान-मनोरथ यह है कि मानव पहले अपने-आपको पहचाने, अपनी आत्मिक सूझबूझ प्राप्त करे, फिर समस्त जीव सृष्टि में सरसता अनुभव करके परम पद की पूर्णता को प्राप्त करे।

गुरु नानक ने अपने-आपको कवि और ढाडी (चारण) कहा है। इसलिए उन्होंने अपनी समस्त वाणी कविता में तथा[२] रागों में वर्णित की है। इसमें स्पष्ट है कि गुरु नानक की दृष्टि में आत्मिक विचारों के प्रकटीकरण का सबसे उत्तम ढंग कला, कविता, संगीत तथा सुन्दरता के रूप चिह्नों द्वारा होता है। परन्तु उन्होंने यह बात भी स्पष्ट की है कि आत्मिक अनुभव सबसे श्रेष्ठ गुण है। आत्मिक अनुभव एक ऐसी उच्चतम अवस्था है जिसमें चेतन शक्ति की समस्त सूक्ष्म शक्तियाँ एवं गुण आ जाते हैं। कला, संगीत, कविता और दर्शन—अपने-आप में मनुष्य को मन तथा आत्मा की पूर्णता प्राप्त करने में सहायक नहीं होते। परन्तु जो धर्म, कला, संगीत और दर्शन से दूर रहते हैं वे परम तत्त्व, सत्य एवं परमात्मा की ज्योति के अनुभव से भी वंचित रहते हैं।

गुरु नानक ने पुराने मूल्यों को पुनर्जीवित करके, प्राचीन संकल्पों और विश्वासों में नया जीवन डाला और उन्हें नया रूप प्रदान किया। उन्होंने अपने निरन्तर एवं निश्चल ब्रह्मज्ञान की अमृत वर्षा समस्त धर्मों की चेतन नदियों पर की और बताया कि वे किस प्रकार सच्चे मुसलमान,[३] पवित्र हिन्दू[४] और ज्ञानी योगी बन सकते हैं और भिन्न होते हुए भी सत्य के राज मार्ग पर वे कैसे एक हो सकते हैं। प्रत्येक धर्म अपनी आत्मिक एवं दार्शनिक सच्चाई को प्राप्त करके गुरु नानक के ब्रह्म ज्ञान में ऐसे आ मिलता है जैसे विश्व की नदियाँ एवं समुद्र महासागर में आ मिलती हैं।[५] इसीलिए प्रत्येक धर्म के योग्य पुरुषों को गुरु

१. गुरु नानक : पट्टी ३५ राग आसा, पृ० ४३४ ; राग धनासरी, पृ० ६६० ।
२. गुरु नानक : वार माझ २७, १५० ।
३. आ० ग० : गुरु नानक, वार, माझ, पृ० १४१ ।
४. गुरु नानक : भैरों, पृ० ११३६ ।
५. गुरु नानक : गऊड़ी, पृ० १५५, १५६, राग सूही, पृ० ७३०, वसंत, पृ० ११८६ ।

नानक का सिख-धर्म अपने धर्म का ही दूसरा रूप प्रतीत होता है। इसीलिए तिब्बत के महायानी बौद्धों ने गुरु नानक के दीपक को सैकड़ों मन्दिरों में अपने ही ढंग से प्रज्ज्वलित रखा। गुरु नानक को वे महात्मा बुद्ध का साठवां अवतार मानते हैं और उन्हें गुरु रिंचौपे (अतुल-गुण निधान-गुरु) कहकर पूजते हैं[1] पंजाब के हिन्दु और मुसलमान गुरु नानक को प्रारम्भ से ही अपनाते आए हैं। प्रसिद्ध कवि डा० मुहम्मद इकबाल ने गुरु नानक के जपु जी साहस को कुरान शरीफ[2] का निचोड़ माना है। जिन ईसाई विद्वानों ने सिख धर्म के सिद्धान्तों का समीप से अध्ययन किया है वे सिख धर्म को इस्लाम अथवा हिन्दू विचारधारा के समीप समझते हैं।[3]

२. ब्रह्म और प्रकृति

अफलातून से लेकर हीगल तक, उपनिषदों से लेकर अल गजाली तक हुए सभी दार्शनिकों के समान गुरु नानक ने बड़ी दृढ़ता एवं नए अनुभव द्वारा परमात्मा की सत्ता, उसके अपरम्पार और व्यापक स्वरूप के निरंतर चले आ रहे

---

१. जिन सिद्ध पुरुषों ने बौद्धमत के ज्ञान का तिब्बत और चीन में प्रचार किया उनको गुरु 'रिंचोपे' कहते हैं उन्हें कमल से उत्पन्न मानते हैं और उनका आत्मिक जन्म श्री हरमन्दिर साहिब के अमृत सरोवर से सम्बन्धित माना जाता है।

(भिक्षु संघर्षित : 'ए सर्वे आफ बुद्धिज़म')

२. डा० मुहम्मद इकबाल ने 'सियासत' लाहौर के सम्पादक सैय्यद हबीब को बताया "गुरु नानक ने जपुजी में कुरान का निचोड़ दिया है। यदि कुछ मुसलमान इस बात को मानने में संकोच करते हैं तो दोष उनकी कुरान विषयक अज्ञानता का है। उन्होंने सैय्यद हबीब को कहा कि जपुजी का अनुवाद करते समय मूल से बिल्कुल इधर-उधर न हटो क्योंकि गुरु नानक इस्लाम को अनेक मुसलमानों से अधिक समझते थे।"

(सिख रिव्यू : मार्च १९६०)

३. डा० सी० एच० लोयलिन : "दी क्रिश्चियन एप्रोच टू दी सिख" तथा एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, २०वां संस्करण।

एक ईसाई मिशनरी, मिस चारलोट मेरी टक्कर, जिसने पंजाबी सीख कर गुरु ग्रन्थ साहिब का अध्ययन किया, ने १८४८ में लिखा : "जहां तक मैंने गुरु ग्रन्थ साहिब का अध्ययन किया है, मैंने अनुभव किया है कि यह धर्म बड़ा विचित्र है। और इसमें आश्चर्यजनक निर्मलता और आत्मिक सत्ता है। यदि 'हरि' शब्द के स्थान पर 'सर्वशक्तिमान' तथा गुरु के स्थान पर ईसामसीह का नाम लिख दिया जाए तो यह प्राचीन ईसाई ऋषियों एवं तपस्वियों की रचनाओं जैसी वाणी प्रतीत होती है।

गुरु ग्रन्थ साहिब एक आत्मिक कामनाओं और तृप्तिपूर्ण ग्रन्थ है और मुझे इस बात की लज्जा है कि मैं इन निर्धन सिखों से आत्मिक परिपक्वता में बहुत पीछे हूं।"

लाइफ एंड लैटर्स आफ ए० एल० ओ० ई०, पृ० २८९

रहस्य की समस्या का सामना किया। उन्होंने इसे केवल कल्पना अथवा न्याय-शास्त्र की थोथी युक्तियों से हल नहीं किया। वह अपार्थिव सत्ता को ध्यान से दूर नहीं करते। न ही गुरु जी केवल निराकार ब्रह्म को सामने रख कर इतने लीन होते हैं कि मानव सृष्टि में सर्वव्यापक ब्रह्म को अद्वैतवादियों के समान ऐसी दुविधामयी 'माया' समझें जिसमें लौकिक जीवन में रुचि अथवा इसका अध्ययन निर्मूल समझा जाता है। धर्म और दर्शन के इतिहास में प्रथम बार गुरु नानक ने पारब्रह्म की अपरंपार सत्ता और सर्वव्यापक ज्योति को अभिन्न तथा आध्यात्मिक अनुभव के अटूट अंग बताया है। भाव यह है कि एक के बिना दूसरे का अनुभव असंभव है। फ्रांसीसी दार्शनिक बर्गसन ने निराकार ब्रह्म को अनुभूत करने के दो ढंग बताए हैं "पहला ढंग है निराकार ब्रह्म को बाह्य रूप से व्यापक शक्ति की दृष्टि से देखना; दूसरा है, निराकार में अनुभव द्वारा प्रवेश पाना।"[1] गुरु नानक ने निराकार में प्रवेश होने वाली दूसरी विधि अपनाई।

केवल एक अपरंपार निराकार ब्रह्म

इस्लाम एवं यहूदी धर्म के समान गुरु नानक का अध्यात्मवाद केवल एक परमात्मा में अचूक और अटल विश्वास पर आधारित है। परम तत्त्व सत्य केवल एक निराकार ब्रह्म है, जो अपरंपार है, अकथनीय है, अजन्मा है और सदैव एक रस तथा स्वयंभू स्वरूप रहता है, यह अनन्त अकाल पुरुष है जिसे पूर्णतया लौकिक शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता। वह आदिकाल से है और समस्त सृष्टि की रचना उसकी अनन्त चेतन सत्ता और चयन भरपूर इच्छा से उत्पन्न हुई है और उसी के आधार पर चल रही है। वह केवल एक है, कर्त्ता पुरुष है आप ही सबका बनाने वाला और आप ही सब का संहार कर्त्ता है। गुरु नानक की सारी वाणी की भीतरी धुन यही है—

"एक तू ही, एक तू ही।"[2]

---

१. बर्गसन : दी क्रिएटिव माइंड : पृ० १८१।

२. (i) सच्चा साहिब ऐकु तूं जिनि सचो सच वरताइया : गुरु नानक: आसा दी वार : ८३

(ii) "न देव दानवा नर। न सिध साधिका धरा।
असति ऐक दिगर कुई। एक तूई एक तूई।" आ: गुरु नानक, वार माझ, १४३।

(iii) यूनानी दार्शनिक जैनोफिन ने सर्वप्रथम "परमात्मा एक है और सब कुछ एक ही है।" का विचार प्रस्तुत किया है। अरस्तु के कथनानुसार 'परमात्मा एक है' का सिद्धान्त उसी से प्रारंभ हुआ। जैनोफिन इस विचार से दुःखी था कि जिन देवी-देवताओं में लोग विश्वास रखते हैं, उनमें मानव की सभी त्रुटियाँ हैं।"
एलबर्ट शवीलर: हिस्ट्री ऑफ फिलासफी, पृ० १५

अनेक धर्मों ने एक परमात्मा को माना है। एक परमात्मा को केवल बुद्धि के विश्वास के आधार पर मानने वाले पथिक को न तो परमात्मा का ज्ञान ही प्राप्त होता है और न ही वह परमात्मा को प्रकृति अथवा समाज में व्याप्त अनुभव कर पाता है। बहस तर्क-वितर्क से उत्पन्न विचारों, भावों की उड़ान से कुछ परिणाम निकाले जा सकते हैं परन्तु उन परिणामों में भीतरी दृढ़ता एवं अनुभवी विश्वास नहीं आ सकता। एक परमात्मा में सच्चा और अटल विश्वास तभी संभव है यदि उसकी सर्वव्यापक ज्योति को अपने भीतर और बाहरी सभी में साक्षात अनुभव किया जाए।[1] वह एक ही एक परमात्मा आदि में सत्य था, युग-युगान्तरों में सत्य रहा है, अब भी सत्य है, और भविष्य में भी सत्य ही रहेगा।[2]

गुरु नानक एक परमात्मा की सत्ता पर ज़ोर देते हैं और ऐसे धर्मों और सिद्धान्तों का बलपूर्वक खंडन करते हैं जो परमात्मा से भिन्न किसी दूसरी शक्ति को परमात्मा का सानी अथवा रब्ब का साझीदार मानते हैं। सिख सिद्धान्त अनुसार किसी एक पैग़म्बर को परमात्मा का पुत्र नहीं समझा जा सकता। अलंकारिक रूप में परमात्मा को "एक पिता एकस के हम बारक" कह देते हैं जिसका भाव है कि हम सभी उसके पुत्र हैं। गुरु साहिब ने ऐसे विचारों का ज़ोरदार खंडन किया है। जिनके अनुसार यह माना जाता है कि परमात्मा ने किसी अवतार के रूप में जन्म लिया और उसे परमात्मा मानकर उसकी मूर्ति पूजा और अवतार पूजा होने लग गई।[3]

(iv) आदि में, हे प्यारे (ब्रह्म था, केवल एक) ब्रह्म और दूसरा कोई नहीं था।

—छांदोग्योपनिषद्

१. (i) एको एकु कहै सभु कोई हउमै गरबु विआपै।
अंतरि बाहरि एकु पछानै, इउ घरु, महलु, सिञापै। गुरु नानक : ओंकार, पृ० ५।
(ii) केवल अल्लाह ही एक रब्ब है (कुरान ४ : २७२) आपका रब्ब केवल एक है (कुरान १६ : २३) अल्लाह आदि कारण है वह कर्ता है, प्रतिपालक है, संहारक है और सदैव उसी की आज्ञा ब्रह्मांड में चलती है (कुरान ३६ : ६३)

२. जपुजी-१

३. (i) घर नाराइणु सभा नालि। पूज करे रखै नावालि।
कुंगू चंनणु फुल चड़ाए। पैरी पै पै बहुतु मनाए।
माणूआ मंगि-मंगि पैनै खाइ। अंधी कंमी अंध सजाइ।
भुखिआ देइ न मरदिआं रखै। अंधा झगड़ा अंधी सथै।

आ० गुरु, वार सारंग, नानक. पृ० १२४०

(ii) धर्म आवरण से ढके बुतों का ध्यान धारण करने में नहीं, धर्म पूजा स्थानों के आगे मस्तक नवाने में नहीं, धर्म देवताओं की ओर हाथ उठाकर पुकारने में नहीं, धर्म मंदिरों में पशु बलि देकर मंदिरों को रक्तरंजित करने में नहीं, धर्म-व्रत-पूजा और नियमों में भी

अकाल पुरुष अनन्त निराकार और निराधार है। गुरु नानक का निराकार से भाव है, सर्वकला समर्थ, पूर्ण एवं योग्य ब्रह्म। गुरु नानक उसे शंकराचार्य के निराकार ब्रह्म के समान नहीं समझते। डा० राधाकृष्णन के कथनानुसार "शंकराचार्य का निराकार अद्वैत ब्रह्म कठोर, इच्छारहित, प्रभावहीन, प्रेरणाहीन, परमात्मा है, उसकी उपासना अथवा पूजा करने के लिये कोई उत्साह उत्पन्न नहीं होता। वह ताजमहल के समान सुन्दर अवश्य है परन्तु उपासकों, श्रद्धालुओं के दुःख-सुख, उनके दर्द और भय से बिल्कुल अपरिचित और लापरवाह है। शंकराचार्य का निराकार ब्रह्म बड़ी सुन्दर बौद्धिक रचना है जिसकी बुनियादी कल्पना में भूल है। शंकराचार्य का परमात्मा प्राणहीन, निराकार ब्रह्म है।"[1]

गुरु नानक का निराकार पारब्रह्म समस्त जीव सृष्टि को पालने-पोसने और प्रेम करने वाला अकाल पुरुष है। वह निरलेप, निराकार अकाल पुरुष होते हुए भी स्व: सम्पूर्ण है और सारा ब्रह्मांड उसकी ज्योति तथा शक्ति के आधार पर खड़ा है।

ऐ ही नगरी उत्तम थाना।
पंच लोक वसहि परवाना।
ऊपरि एकंकारु, निरासनु सुन समाधि लगाइया।

आ: गु: नानक मारु, पृ० १०३९

प्रकृति : सर्वव्यापक शक्ति

गुरु नानक संसार से अनुपस्थित ऐसे परमात्मा पर विश्वास नहीं रखते, जिसने छ: दिनों में सृष्टि रचना की और सातवें दिन से विश्राम कर रहा है और साथ ही अपनी रचना की ओर निहार रहा है। गुरु नानक अकाल पुरुष को विश्व गति में और उसके बाहर भी देखते हैं। अपने निराकार स्वरूप में परमात्मा ने सृष्टि रचना की यह प्रकृति समस्त सृष्टि की आत्मसत्ता बनकर

नहीं। सत्य-सन्तोष में लीन आत्मा द्वारा समस्त सृष्टि को एक समान देखने का नाम धर्म है।

तु करी अंस : हे रै रम नै धुरा।

१. (i) डा० राधाकृष्णन : इंडियन फिलासफी : जिल्द २, पृ० ६५६।
(ii) शंकराचार्य ने केवल उपनिषदों पर अपने सिद्धान्तों को निर्भर करके हिन्दु दर्शन को एक ओर इसके वैदिक मूल से अलग कर दिया, दूसरी ओर महाकाव्य तथा कथा-पुराणों की शीतल छाया से रहित रखा। परिणाम यह हुआ कि उसका सिद्धान्त कटी हुई फसल के गट्ठरों के समान दिखाई पड़ता है।

डा० एन० के० शर्मा: माधवाज़ टीचिंग्ज़ इन हिज़ ओन वर्ड्ज़, पृ० १६

ही विचर रही है।

आपीनै आपु साजिओ
आपीनै रचिओ नाउ।
दूई कुदरति साजीए
करि असठ् डिठो चाउ।

गुरु नानक : आसा दी वार १ : ३।

परमात्मा के सर्वव्यापक स्वरूप को जो कि समस्त सृष्टि में निरंतर स्थित कला के रूप में विद्यमान है, गुरु नानक ने प्रकृति माना है। यह प्रकृति उसकी आज्ञा इच्छा से बनी और उसकी आज्ञा में बंधे नियमों के अनुसार चल रही है। रचनाहार प्रकृति में भी है और प्रकृति से भिन्न स्वयंभू स्वरूप में भी है। प्रकृति अपने कर्ता पर आश्रित है और कर्ता सृष्टि में प्रकृति के माध्यम से विचरण कर रहा है। परमात्मा अपनी सत्ता के लिये न मानव पर एवं न ही प्रकृति पर निर्भर करता है। वह इसके माध्यम से सृष्टि में विचरण करता है। अपने निराकार एवं अद्वैत स्वरूप में वह प्रकृति से भिन्न भी है और बाहिर भी, परन्तु अपने व्यापक स्वरूप में वह समस्त सृष्टि के घट-घट में निवास करता है और सारे संसार को इस प्रकार संभालता है जैसे सम्राट सिंहासन पर बैठा समस्त राज्य में अपने द्वारा नियुक्त अधिकारियों के माध्यम से आज्ञा देता है।

सचड़ा साहिब सच तू सचड़ा देहि पियारो।
कुदरति तख्त रचाया सचि निबेड़न हारो।

गुरु नानक, अलाहनियां ३१२

कुदरति दिसै कुदरति सुनिए कुदरति भउ सुख सारु।
कुदरति पाताली आकाशी कुदरति सरब आकारु।
कुदरति वेद पुराण कतेबां कुदरति सरब वीचारु।
कुदरति खाना पीना पैनणु कुदरति सरब पियारु।
सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाइ पाकु।
नानक हुकमै अंदर वेखै वरतै ताको ताकु।[1]

गुरु नानक : आसा दी वार : ३ : २

---

१. (i) "गगन मेरा तख्त है धरती मेरा पायदान है!" (अंजील-असाहिया ६६ : १) "परमात्मा सर्वव्यापक है, प्रत्येक जीव में और आकाश पाताल में प्रत्येक स्थान में उसका प्रवेश है, परन्तु वह किसी स्थान में भी सीमित नहीं है!" (अंजील किंग्ज ८ : २७:) और देखो-साजमज १३९ : ७-१०, जैरमिया २३ : २३,-एक्टस १७-२७)
(ii) "पूर्व में अल्लाह है, पश्चिम में अल्लाह है, जिस ओर देखो अल्लाह का मुख दिखाई पड़ेगा। देखो, अल्लाह सर्व भरपूर एवं सर्वज्ञ है।" कुरान : २ : ११५

निराकार अपने अपरम्पार स्वरूप में सृष्टि का कर्ता है और अपने सगुण व्यापक स्वरूप में सृष्टि की सृजन-शक्ति बनकर घट-घट में प्रवेश करता है तथा सारे ब्रह्मांड को एक चेतन एकता में बांधता है—परिणामस्वरूप इस संसार में सभी कुछ उस सर्वव्यापक की कला पर निर्भर है।

डा० राधाकृष्णन ने लिखा है—

"अकाल पुरुष के अपरम्पार और निराकार तथा अतीत स्वरूप में तथा उसके व्यापक और पुरुषवाचक स्वरूप में दार्शनिकों को अब तक विरोध दिखाई दिया है, सिख गुरुओं ने उसे मिटा दिया है। परमात्मा गुरुओं के लिए कोई काल्पनिक ब्रह्म नहीं अपितु वह एक यथार्थ स्वरूप रखता है। वह सत्य है, अरूप है, निराकार एवं निराधार है, अनन्त है तथा मानव बुद्धि के लिये अगम्य परन्तु वह अपनी सृष्टि में प्रकाशित है। प्रेम भक्ति द्वारा सोचने वालों को कृपादृष्टि साक्षात रूप में, उसके हृदयों में प्रकट होता है। वह सच्ची उपासना के लिये प्रत्येक स्थान पर उपस्थित है। उसके विषय में हम जो भी कल्पना करते हैं वह परमात्मा की सर्वव्यापक स्थिति का बौद्धिक कथन-मात्र है।[1] गुरु नानक ने उपनिषदों के "तत्त्व तत्वंसि" (तू वह है) के सिद्धान्त को बौद्धमत के तथांता (ऐसे ही है) के सिद्धान्त के साथ एकरूप कर दिया है। परमात्मा को केवल सर्वव्यापी मानने वालों के सिद्धान्त "समस्त सृष्टि एक प्रभु का स्वरूप" को ईश्वरवादियों के सिद्धान्त के "समस्त सृष्टि एक परमात्मा पर निर्भर है" के सिद्धान्त के साथ अभिन्न कर दिया है। विश्व के समस्त तत्त्व एक आत्मसत्ता में समाए हुए हैं और उन सभी का आधार एक ही आज्ञा की कला है। न तो मानव-जीव एवं आत्मा मिथ्या है और न ही विश्व गति मिथ्या है। दैवी-आज्ञा समस्त तत्त्वों एवं सभी जीवों का मूलाधार है।

परमात्मा का ज्योतिस्वरूप एवं सुन्दर रूप

सिख धर्म के ग्रन्थों में ब्रह्म को प्रेमस्वरूप, ज्योतिस्वरूप और सुन्दर स्वरूप कहा गया है, जिसकी आभा और कांति में अनहद नाद निरंतर गुंजायमान है। गुरबानी में उसे 'हुसनल जमाल' और 'करनी-कमल-जमाल' बताया गया है तथा यह सुन्दरता इसलिये समस्त सृष्टि में शोभायमान है क्योंकि वह स्वयं पूर्ण एवं शुद्ध सुन्दरता का रूप है। परमात्मा के हुसनल जमाल का ध्यान करते ही हृदय प्रेम तथा अलौकिक सुन्दरता की सुगंधि से भरपूर हो जाता है और मन उस अनुपम तथा अपार शोभा के दर्शनों की उत्कंठा करता है।

---

१. डा० राधाकृष्णन : भूमिका : "सेकरिड राईटिंग्ज आफ दी सिख्स" अनुः डा० त्रिलोचन सिंह तथा अन्य सहयोगी, पृ० १६।

सभ महि जोति जोति है सोई ।
तिस कै चानण सभ महि चानण होइ ।
गुर साखी जोति परगट होइ । —गुरु नानक कीर्तन सोहिला-३

अकुल निरंजन अपरम्पार सगली जोति तुमारी ।
घट-घट अन्तरि ब्रह्म लुकाइया घट-घट जोति सजाई ।
वजर-कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई ।

आ० ग्र० : गुरु नानक: सोरठ, पृ० ५६७

यह शरीर हरि का मन्दिर है, जिसमें उस प्रभु ने अपनी अपार ज्योति रखी है।[1] सत् गुरु की अपार कृपा से वह हृदय में ही प्रकट होता है और अन्तरात्मा में प्रकट होते ही ध्यान उसकी निरन्तर ज्योति में समाया रहता है।[2] गुरु नानक जी कहते हैं "जहाँ देखता हूं वहाँ तेरी ही ज्योति व्याप्त है, हे प्रभु ! वह दूर होता हुआ अत्यन्त समीप है और सभी में समाया है।[3] अज्ञा-

---

१. काया महलु मंदर घर हरिका, तिसु महि रखी जोति अपार,
आ० ग० : गुरु नानक, मलार, पृ० १२५६

२. सरवरि कमलु किरणि अकासी, विगसे सहजि सुहाई,
प्रीतम प्रीति घनी अभ ऐसी, जोति जोति मिलाई,
सभ महि जीऊ जीऊ है सोई, घटि घटि रहिया समाई,
गुर प्रशादि घर ही परगासिया सहजे सहजि समाई । आ०ग्र०: नानक, मलार पृ० १२७३ ।

३. (i) सरव जोति तेरी पसरि रही, जह जह देखा तह नर हरि,
आये नेड़ै आये दूरि आपे सरव रहिया भरपूर। गुरु नानक, मलार ८७७

(ii) अल्लाह धरती और आकाश का नूर है। उसका नूर (ज्योति) ऐसे है जैसे आले में दीपक जलता है। यह दीपक ऐसे दमकता है जैसे शीशे में लिशकारा मारता हो और शीशा मोतियों के समान दमकता है। यह समस्त प्रकाशों का नूर है। परमात्मा अपनी इच्छानुसार उसे केवल नूर प्रकट करता है जिस पर इसकी कृपा-दृष्टि हो, इस नूर की सत्ता लोगों के लिए एक रहस्य है, चुम्कारत है। परन्तु परमात्मा घट-घट का ज्ञाता है, कुरान पृ० १५. "वह आदि है, अंत है, गुप्त है, प्रकट है।"(कुरान पृ० ७:३)

(iii) परमात्मा ही मेरी ज्योति है, वही मुक्तिदाता है मुझे किसी से क्या भय ?
वह मेरी जीवन-शक्ति है मुझे किसी का क्या भय।' (सालमज २७)
संसार में उसकी ज्योति आई, परन्तु लोग अंधकार से प्रेम करते हैं, प्रकाश से नहीं (अंजील जान ३ ; २०) "मैं संसार का नूर हूं ! जो मेरे पदचिन्हों पर चलता है वह अंधकार में नहीं चलता।" (जान ८-१२) "परमात्मा ज्योति स्वरूप है, उसमें अंधकार नहीं।" (जान का पहला पहला पत्र)

(iv) सब ज्योतियों की ज्योति (परम ज्योति) निर्मल है। आत्मज्ञानी ही इसका अनुभव करते हैं। वहाँ न सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा, न तारे। यह ज्योति कहाँ से आई ? इसी ज्योति से सभी को प्रकाश मिलता है। उसकी ज्योति ही समस्त संसार को प्रकाशित करती है। मुंडकोपनिषद् II २, १०-११ ।

नता के कारण परमात्मा हमें दूर दिखाई पड़ता है, परन्तु वह हमारे उतना ही समीप है जितना हमारा अपना मन और आत्मा। कुरान शरीफ में उसकी ज्योति को नूर कहा गया है और उपनिषदों में ज्योति कहा गया है। गुरु नानक ने दोनों शब्दों का प्रयोग किया है।

सृष्टि-रचना

गुरु नानक के सृष्टि-रचना एवं विश्व गति के विषय में विचार अत्यन्त विशाल, गम्भीर और वैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा पैगम्बरों-पंडितों के सिद्धान्तों से भिन्न तथा उनसे आगे जाने वाले हैं। जब गुरु नानक ने बगदाद के पीरों-फकीरों से विचार गोष्ठी की तो उन्होंने उन लोगों को यह बताकर आश्चर्य-चकित कर दिया कि ब्रह्म की अपार रचना में अनेक सृष्टियाँ हैं, अनेक धरतियाँ हैं और उन धरतियों में हमारी पृथ्वी के समान ही सभ्यताएँ हैं। एक ... धरती पर अनेकों कृष्ण, मुहम्मद, बुद्ध तथा ईसा मसीह जैसे पैगम्बर हु... धरतियों का कल्याण कर रहे हैं।

परमात्मा ने शून्य में से सृष्टि नह... ानक का -सृष्टि-रचना परमात्मा की कर्तृ-शक्ति ... से पूर्व उस अंधकार में एक वाक् ध्वनि से ज्य... कर्तृ उत्पन्न हुई। एक निराकार के एकंक ... । ध्वनि में से सर्वव्यापक शक्ति बनी जि... ।

ओंकार की कला-कुशल ध्वनि सर्व... इससे पाँच तत्त्व उत्पन्न हुए जो पारस्प...

वहाँ न सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा,
जब उसकी ज्योति प्रकाशित होती है सभी
प्रकाश मिलता है। स्वेतस्वतरोपनिषद्

(v) प्लैटो अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' (पुस्तक ... इन्द्रियों) का शिकार देखता है। जब तक इस गु... प्रवेश नहीं होती, उतनी देर इन्हें सच्चाई एवं ज्ञा...

१. निरंकार अकार होए, एकंकार अपार सदाइया।
एकंकार सब्द् धुन, ओंकार अकार बनाइया—भाई...

२. देखो आदि ... ० १३० ;
मारू १०६...
वार १५ : ३, वा...
की अनेक व्याख्याएं
कठोपनिषद् : १, २१, १

छटी अदृष्ट-शक्ति परमात्मा की अपनी व्यापक ज्योति ने शत्रु-तत्त्व को मित्र बना दिया, अतः इससे जीव-सृष्टि उत्पन्न हुई।[1] यह है निरंकार की निरंतर ज्योति, ओंकार की शाश्वत-ध्वनि और सृजन-शक्ति। गुरु नानक देव जी के सृष्टि-रचना विषयक विचार ऋग्वेद के नसदीय श्लोकों से साम्य रखते हैं :—

अरबद नरबद धुँधूकारा।
धरणि न गगना हुकम अपारा।
न दिनु, रैनि न चंदु न सूरज, सुंन समाधि लगाइंदा।
वेद कतेब न सिम्रित सासत।
पाठ पुराण उरै नहीं आसत।
कहता बकता आपि अगोचरु, आपे अलख लखाइंदा।
जा तिस भाणाता जगत उपाइआ।
बाझु कला आडाणु रहाइआ।
ब्रह्म बिशनू महेश उपाए साइआ मोह बधाइदा।
विरले को गुर शब्द सुणाइआ।
कहि कहि देखै हुकम सबाइआ।
खंड ब्रह्माण्ड पाताल अरंभे गुपतहु परगटी आइंदा।[2]

आ० ग्र० : मारू, पृ० १०३६।

---

१. (i) प्रिथमै सास कसाअ सन अंध-धुंध कछ खबर न पाई।
रकत बिन्द की देह रचि पाँच तत्त की जड़त जड़ाई।
पउण पाणी बैसंतरो चौथी धरती संग मिलाई।
पंचम विच अकाश कर करता छठम् अदृष्ट समाई।
पंच तत्त पचीस गुण। सत्र मित्र कर देहि बणाई। भाई गुरदास : वार १ : २।

(ii) निश्चित रूप से आदि में अंधकार था। उसके पश्चात विश्व-शक्ति थी। उस सर्व-श्रेष्ठ शक्ति से अनेक रूप रंगों की सृष्टि बनी। मैत्रियोपनिषद् V, २।

२. (i) केतड़िया जुग धुंधूकारै। ताड़ी लाई सिरजन हारै।
सचु नामु सची वडिआई साचै तखति वडाई हे। आ० ग्र० : गुरु नानक मारु, पृ० १०२३।

(ii) न उस समय वह था, जो है ; न वह जो नहीं है ; न आकाश था और न उससे पीछे के देव लोक—न उस समय मृत्यु थी। एकमात्र स्वयं श्वासरहित जीवन था। चारों ओर अंधकार था। बिना ज्योति का एक अथाह समुद्र था। ऋग्वेद, नसदीय सूत्र X १२९,१।

(iii) परमात्मा ने सर्वप्रथम धरती और आकाश बनाए। धरती, बिना रूपरेखा के शून्य नगरी थी। चारों ओर अगाध अंधकार था। परमात्मा की शक्ति ने धरती के जलों पर प्रसार पाया। परमात्मा ने कहा, "ज्योति प्रकट हो, तब ज्योति प्रकट हुई, प्रकाश हुआ।" अंजील : जैनिसिस I।

(iv) न उसकी स्थिति थी, न अस्थिति, न वह स्थितिहीन था।
उससे अंधकार उत्पन्न हुआ और अंधकार से सूक्ष्म तत्त्व हुए।
सुबालोपनिषद् I, १।

नता के कारण परमात्मा हमें दूर दिखाई पड़ता है, परन्तु वह हमारे उतना ही समीप है जितना हमारा अपना मन और आत्मा। कुरान शरीफ में उसकी ज्योति को नूर कहा गया है और उपनिषदों में ज्योति कहा गया है। गुरु नानक ने दोनों शब्दों का प्रयोग किया है।

सृष्टि-रचना

गुरु नानक के सृष्टि-रचना एवं विश्व गति के विषय में विचार अत्यन्त विशाल, गम्भीर और वैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा पैगम्बरों-पंडितों के सिद्धान्तों से भिन्न तथा उनसे आगे जाने वाले हैं। जब गुरु नानक ने बगदाद के पीरों-फकीरों से विचार गोष्ठी की तो उन्होंने उन लोगों को यह बताकर आश्चर्य-चकित कर दिया कि ब्रह्म की अपार रचना में अनेक सृष्टियाँ हैं, अनेक धरतियाँ हैं और उन धरतियों में हमारी पृथ्वी के समान ही सभ्यताएँ हैं। एक-एक धरती पर अनेकों कृष्ण, मुहम्मद, बुद्ध तथा ईसा मसीह जैसे पैगम्बर हुए हैं तथा उन धरतियों का कल्याण कर रहे हैं।

परमात्मा ने शून्य में से सृष्टि नहीं रची। गुरु नानक का सिद्धान्त है कि सृष्टि-रचना परमात्मा की कर्तृ-शक्ति से उत्पन्न हुई, इससे पूर्व अंधकार था। उस अंधकार में एक वाक् ध्वनि से ज्योति प्रकट हुई, अतः कर्तृ-शक्ति से सृष्टि उत्पन्न हुई। एक निराकार के एकैक स्वरूप में ध्वनि उठी। उस ओंकार की ध्वनि में से सर्वव्यापक शक्ति बनी जिससे सृष्टि उत्पन्न हुई।

ओंकार की कला-कुशल ध्वनि सर्वव्यापक ज्योति एवं सृजन-शक्ति बनी। इससे पाँच तत्त्व उत्पन्न हुए जो पारस्परिक रूप से विरोधी थे। परन्तु उसमें

वहाँ न सूर्य चमकता है, न चन्द्रमा, न तारे, न अग्नि, न इस प्रकार का प्रकाश जब उसकी ज्योति प्रकाशित होती है सभी में प्रकाश होता है। उसकी ज्योति से सभी को प्रकाश मिलता है। स्वेतस्वतरोपनिषद् VI : १४ और देखो कठोपनिषद् ११२ : १४ भगवद्गीता IX १५, ६।

(v) प्लैटो अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' (पुस्तक VII) में मानव को अंधियारी गुफा (पंच इन्द्रियों) का शिकार देखता है। जब तक इस गुफा में उस अपरम्पार और अनंत की ज्योति प्रवेश नहीं होती, उतनी देर इन्हें सच्चाई एवं ज्ञान प्रकट नहीं हो सकता।

१. निरंकार अकार होए, एकंकार अपार सदाइया।
एकंकार सब्द् धुन, ओंकार अकार बनाइया—भाई गुरदास : वार २६ : २।

२. देखो आदि ग्रन्थ : नानक, रामकली पृ० १३० ; रामदास, कानड़ा १३१० ; अर्जुन, मारू १०१३, १०६१ ; भाई गुरदास वार : ६, ४, ५, वार ८ : १ ; वार १३ : १, वार १५ : ३, वार २३ : १०, वार २६ : ३, ५, ३५। वेदों तथा उपनिषदों में ओ३म् की अनेक व्याख्याएं मिलती हैं—ऋग्वेद X १० ; छांदोग्योपनिषद्, I ५, १ ; कठोपनिषद् : १, २१, १६, तैत्रियोपनिषद् ; १, ८, १।

छटी अदृष्ट-शक्ति परमात्मा की अपनी व्यापक ज्योति में [illegible] वना दिया, अतः इससे जीव-सृष्टि उत्पन्न हुई।[1] [illegible] ज्योति, ओंकार की शाश्वत-ध्वनि और सृजन-शक्ति। गुरु नानक [illegible] रचना विषयक विचार ऋग्वेद के नसदीय श्लोकों से [illegible]

अरवद नरवद धुंधूकारा।
धरणि न गगना हुकम अपारा।
न दिनु, रैनि न चंदु न सूरज, सुंन समाधि [illegible]।
वेद कतेव न सिम्रित सासत।
पाठ पुराण उदै नहीं आसत।
कहता वकता आपि अगोचर, आपे [illegible]।
जा तिस भाणाता जगत उपाइआ।
वाझु कला आडाणु रहाइआ।
ब्रह्म विसनु महेश उपाए माइआ मोहु [illegible]।
विरले को गुर शब्द सुणाइआ।
कहि कहि देखै हुकम सवाइआ।
खंड ब्रह्माण्ड पाताल अरंभे गुपतहु [illegible]

आ० ग्र० : [illegible]

---

१. (i) प्रिथमै सास कसाअ रुन अंद-धुंध कछु [illegible] न पाई।
रकत बिन्द की देह रचि पाँच तत्त की [illegible]।
पउण पाणी वैसंतरो चौथी धरती संग मिलाई।
पंचम विच अकाश कर करता छठम् अदृष्ट समाई।
पंच तत्त पचीस गुण। सत्र मित्र कर देहि वणाई। [illegible]

(ii) निश्चित रूप से आदि में अंधकार था। उसके पश्चात [illegible] श्रेष्ठ शक्ति से अनेक रूप रंगों की सृष्टि बनी। [illegible]

२. (i) केतड़िया जुग धुंधूकारै। ताड़ी लाई सिरजण हारै।
सचु नामु सची वडिआई साचै तखति वडाई हे। आ० ग्र० : [illegible]

(ii) न उस समय वह था, जो है; न वह जो नहीं है; न आकाश [illegible] देव लोक—न उस समय मृत्यु थी। एकमात्र [illegible] कार था। विना ज्योति का एक अथाह समुद्र था। ऋग्वेद, [illegible]

(iii) परमात्मा ने सर्वप्रथम धरती और आकाश बनाए। [illegible] नगरी थी। चारों ओर अगाध अंधकार था। परमात्मा की [illegible] प्रसार पाया। परमात्मा ने कहा, "ज्योति प्रकट हो, [illegible]"
[illegible]

(iv) न उसकी स्थिति थी, न अस्थिति, न वह स्थितिहीन था।
उससे अंधकार उत्पन्न हुआ और अंधकार से सृजन तत्त्व हुए।

परमात्मा की रची सृष्टि के लाखों जीव-जन्तुओं में से एकमात्र मानव ही जीवन-मनोरथ की सूझ रखता है। केवल मानव को ही इच्छा-शक्ति की स्वतन्त्रता तथा जीवन के किसी लक्ष्य का ध्यान है। केवल मानव ही जीवन के किसी मूल-भाव तथा अन्तिम परिणाम को ढूँढ़ने का प्रयास करता है। सृष्टि की समस्त योनियों में से मानव की विलक्षण सत्ता एवं पद है और उसके भीतर दृढ़ विचार तथा उत्तरदायित्व की चिंगारी है।

३. मानव की केन्द्रीय-सत्ता

प्रसिद्ध ईसाई अध्यात्मवादी कार्ल बारथ, मानव को तुच्छ एवं निर्गुण समझता है। उसका कथन है कि मानव में कोई दैवी अंश नहीं है। वह पापी, नाकारा तथा निर्बल जीव है। किरकिगारड भी उसे उलझन भरपूर एवं शोकजनक जीव मानता है। गुरु नानक के विचारानुसार मानव संसार का एक अधूरा अंश नहीं। मानव में ही समस्त सृष्टि का मर्म एवं रहस्य प्रकट होता है। मानव निम्न से निम्न एवं उच्च से उच्च जीवन का साथी है। उसमें पारस्परिक विरोधी शक्तियाँ टकराती रहती हैं तथा मानव-सृष्टि को रहस्य भरपूर बना देती हैं। जीवन की समस्या का समाधान तभी सम्भव है यदि मानव को परमात्मा तथा विश्व से सम्बन्धित मानकर उसका अध्ययन किया जाए। वस्तुतः मानव संसार एवं परमात्मा के मध्य एक पुल तथा साँझ पैदा करने वाली कड़ी है। परमात्मा, संसार तक अपनी आवाज़ पहुँचाने का माध्यम मानव को बनाता है।

गुरु नानक का दृष्टिकोण आत्मिक भी था और पार्थिव भी। उन्होंने जीवन की कठिन समस्याओं का सबसे अधिक सामना किया जिनमें देशकाल में सीमित मनुष्य को ऐसी उलझनों, संघर्षों तथा कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिसमें न केवल वह स्वयं है अपितु समाज भी फंस जाता है। गुरु नानक मानव के जीवन में ओत-प्रोत सम्पूर्ण व्यक्तित्व को बनाने में प्रधानता देते हैं। उनके लिए मानव आत्मिक जीवन का केन्द्र तो है परन्तु संसार के जीवन का भी केन्द्र है। मानव अनेकपक्षी होता हुआ भी परमात्मा में लीन होना तथा एक हो जाना चाहता है।

इस सिद्धान्त के आधार पर गुरु नानक हिन्दू, बौद्ध, जैन परम्पराओं से अलग हो जाते हैं और प्रत्येक प्राणी को यही उपदेश देते हैं कि वह समाज से दूर हटकर तूरीय-अवस्था अथवा आत्मिक निपुणता प्राप्त नहीं कर सकता। वह न केवल मानव को समाज अथवा मानव जाति से अलग करने के विरुद्ध हैं अपितु उनका यह विश्वास है कि मानव-मानव सेवा तथा मानवता के अनुभव के बिना, किसी उनमन अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। आत्म को जानने के लिए प्रभु

को जानने की आवश्यकता है और परमात्मा को जानने के लिए सामाजिक चेतनता की आवश्यकता है क्योंकि परमात्मा प्रत्येक प्राणी में व्याप्त है। मानव निजी रूप से भिन्न होता हुआ भी उस एक परब्रह्म का अंग है। कोई प्राणी आत्मिक रूप से कितना भी उन्नत क्यों न हो वह न तो अपने-आप को दूसरे प्राणियों से अलग समझ सकता है और न ही अपने-आपको सर्वसम्पूर्ण परमात्मा से अलग समझकर जीवन को सार्थक कर सकता है।

गुरु नानक ने ऐसा स्पष्ट एवं निश्चित मार्ग बनाया है जिसका हमें मानव जाति के साथ सांझ डालकर विश्व-आदर्श की सीध में ही चलना पड़ता है। केवल इसी ढंग से मानव उच्चावस्था की प्राप्ति कर सकता है। और केवल इसी मार्ग पर चलकर वह सत्य को जान सकता है। गुरु नानक ऐसे त्याग मार्ग को बिल्कुल नहीं अपनाते, जो सामाजिक उत्तरदायित्वों से इन्कार करे और आत्म सुधार तथा व्यक्तित्व के विकास पर ही ज़ोर देता हो। गुरु नानक के विचारानुसार मानव-सृष्टि में अपने सामाजिक एवं आध्यात्मिक उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए प्रत्येक प्राणी को अपने भीतर उस दिव्य शक्ति को अनुभव करना चाहिए जिसके प्रकाश में वह अपरम्पार तथा सर्वव्यापक ज्योति और एक तथा अनेक के मिलाप को सहज दृष्टि से अनुभव कर सके।

गुरु नानक देव हमें सांसारिक जीवन त्यागने का उपदेश नहीं देते परन्तु वह इस बात पर बल अवश्य देते हैं कि संसार के बाह्य आकर्षण तथा मोह-माया से बचकर हम अर्न्तध्यान हों और इस आन्तरिक ज्योति एवं अनहद-नाद को सुनें जो परमात्मा की ओर से हमें पैतृक-सम्पत्ति के रूप में मिला है। संसार में रहते हुए इस प्रकार का आन्तरिक जीवन हमें तत्त्व-सत्य के सम्पूर्ण ज्ञान की ओर ले जाएगा मानव को एक ही समय दो सृष्टियों का पथिक बनकर चलना पड़ता है। एक सांसारिक सृष्टि तथा दूसरी आत्मिक सृष्टि।

गुरु नानक के कथन अनुसार जो ब्रह्माण्ड में है वही मानवी शरीर में है।[1] परमात्मा ने ऐसी क्रीड़ा रचाई है कि सारा विश्व, ब्रह्माण्ड, इस मानव शरीर में दिखाई पड़ता है।[2] इस शरीर में ही हम सारे संसार की सम्पदा प्राप्त कर

---

१. (i) जो ब्रह्मण्ड खंड सो जानहु। गुरमुखि बूझहु सबदि पछानहु
आ० ग्र०, मारू, पृ० १०४१।

(ii) जो ब्रह्मण्ड सोई पिंडे, जो खोजै सो पावै।
आ० ग्र०, धनासरी पीपा, पृ० ६९५।

२. (i) इस काइया अंदरि बहुत पसारा।
नामु निरंजनु अति अगम अपारा। आ० ग्र०, माझ, पृ० ११७।

(ii) तिनि करतै इकु खेलु रचाइआ।
काइआ सरीरै विच सभु किछु पाइआ। आ० ग्र०, माझ, पृ० ७२।

सकते हैं।[1] उज्ज्वल बुद्धि एवं ज्ञानरूपी दीपक से प्रकाशित हृदय में जीवन, जीवन-सृष्टि तथा परमात्मा की स्थिति का रहस्य पूर्ण विकसित अवस्था में प्रकट होता है। इस रहस्य को जानकर, मानव इसे अपने अमली जीवन तथा कर्तव्य के माध्यम से प्रकट करता है। गुरु नानक के जीवन सम्बन्धी दर्शन का यह आध्यात्मिक आधार है। यही एकमेव सीध है जिसमें समस्त नैतिक एवं आत्मिक विचार, प्रेरणा तथा शक्ति प्राप्त करते हैं। इसमें उस दृढ़ विचार का मूल तत्त्व है। जो निरंतर इस विचार पर जोर देता है कि प्रत्येक प्राणी दूसरे प्राणी में ज्योति का तत्त्व देख सकता है और इस प्रकार प्रत्येक प्राणी दूसरे प्राणी को उसी ज्योति के अंश रूप में सखा तथा साथी अनुभव कर सकता है।

सागर महि बूंद बूंद महि सागरु कवनु बुझै बिध जाणै।
उतभज चलत आप करि चीनै आपै तत्त पछाणै।१।
ऐसा गियानु बिचारै कोई।
तिसते मुकति परम गति होई।
दिन महि रैणि रैणि महि दिनी आरु उसन मीत बिधि सोई।
ताकी गति मिति अवरु न जाणै, गुर बिनु समझ न होई।
पुरख महि नारि, नारि महि पुरखा, बूझहु ब्रह्म गियानी।
धुन महि धिआनु महि जानिया गुरमुख अकथ कहानी।
मन महि जोति जोति महि मनुआ पंच मिल गुर भाई।
नानक तिन के सद बलिहारी, जिन एक सबद लिव लाई।

आ० ग्र० नानक, रामकली, पृ० ८७८, ८७९।

इस संसार को नानक न तो मिथ्या कहते हैं और न ही सत्य। वह इसमें सर्वव्यापक, परिपूर्ण शक्ति का ध्यान करने पर बल देते हैं ताकि इस ब्रह्माण्ड की मधुर-ध्वनियों में से उत्तेजना और ज्ञान प्राप्त करके, मानव जाति के कल्याण के लिए प्रयुक्त किया जा सके। तर्क-वितर्क के विवाद से रहित गुरु नानक के विचार इस केन्द्रीय बिन्दु से बाहर की ओर जल-तरंग की लहरों के समान दूर-दूर तक विकास को प्राप्त होते हैं। गुरु नानक के विचार बार-बार मनुष्य-जाति को जीवन-मनोरथ, इसके जीवन तथा मानव-जाति के लिए उत्तरदायित्वों, इसके अपने कर्त्तव्यों की स्मृति कराते हैं, क्योंकि मानव ही इस विश्व-क्रीड़ा के विश्व

१. (i) इस गुफा महि अजुट भंडारा। तिसु विचि वसै, हरि अलख अपारा।
सरीरहु भालणि जो बाहरि जाए। गुर न लहै, बहुतु वेगारि दुःखदाए।

आ० ग्र०, माझ।

(ii) काइआ अंदरि सभकिछु वसै खंड मंडल पाताला।
काइआ अंदरि जग जीवन दाता वसै सभना करे प्रतिपाला।

आ० ग्र०, सूही ७५४।

संदेश को समझ सकता है और मानव ही इसका अनुभव करके, इसकी व्याख्या करने में समर्थ है।

गुरु नानक को मानव की आश्चर्यजनक मूर्ति बड़ी मनोरंजक प्रतीत होती है। क्योंकि इसमें ज्योति भी है और अंधकार भी, इसमें ज्ञान भी है और अज्ञानता भी है। यह पांच तत्त्व का पुतला तत्त्वों से ऊंचा उठता हुआ परम तत्त्व की इच्छा करता, पुनः पांच तत्त्वों की ओर आकर्षित हो जाता है। यह अनन्त और अगाध भी मानव-आत्मा की भूख को नहीं मिटा सकता क्योंकि इसके भीतर एक सूक्ष्म शक्ति है जिसे कोई सांसारिक शक्ति समाप्त नहीं कर सकती और इसमें ऐसी तेजस्वी महानता तथा गौरव है जो विश्व के विशाल हृदय में भी नहीं समा सकती। इसके अतिरिक्त मानव अपने अन्दर ऐसा आवेश का प्रवाह बहता अनुभव करता है, जो निरंतर प्रवाहित है। परन्तु मानव को न इसके स्रोत का पता है और न ही वह इस पर काबू ही पा सकता है।

मनुष्य की अक्ल, बुद्धि तथा ध्यान प्रत्यंचा पर चढ़े तीर के समान, दिव्य आदर्शों की सीध में तने रहते हैं ताकि वह सांसारिक जीवन तथा मृत्यु से दूर निश्चल ज्योति सहित सौंदर्यमय रूहानी जीवन व्यतीत कर सकें।

गुरु नानक यह आशा करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति आत्म-त्याग करके उत्तम अवस्था को प्राप्त करे। वह अपने आंतरिक जीवन को यथार्थ तथा अपने साधनों द्वारा प्रकाशित करे। प्रत्येक प्राणी को इस मार्ग पर अत्यन्त दृढ़ता, साहस तथा निजी भरोसे के आधार पर चलना पड़ेगा। क्योंकि गुरु नानक के कथनानुसार यह मार्ग तलवार की तीक्ष्ण नोक के समान अत्यन्त तंग है।[1] यह मार्ग आन्तरिक-जीवन से प्रारम्भ होता है और विरले पथिक ही इस मार्ग पर चल सकते हैं। गुरु नानक पथिक को इस खड्ग की धार जैसे मार्ग पर चला कर वहां ले जाते हैं, जहाँ उसे असह्य-सहना पड़ता है। यहाँ पर कठिन साधना करने के कारण जीव का काया पलट हो जाता है और वह पूर्ण पुरुष बन जाता है।

---

१. (i) खंडेधार गली अति भीड़ी। [illegible]
(ii) गुर सिखी बारीक है खंडे धार गली अति भीड़ी। [illegible]
[illegible]
[illegible]
(iii) [illegible]
[illegible]
(iv) [illegible]
[illegible]
[illegible]

प्रत्येक सूझवान प्राणी को गुरु नानक यही प्रेरणा करते हैं कि अपनी-अपनी सूझ एवं रुचि को इस सीध में लाकर, संसार में रहता हुआ वह सहजावस्था के उन्मन मार्ग को अपनाए। सांसारिक कठिनाइयों से घबराकर इन साधनों तथा सीधे मार्ग से मुँह मोड़ने की अपेक्षा, प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि उग्र-साहसी प्रयत्नों से अपनी आंतरिक शक्ति तथा तेज को दृढ़तापूर्वक प्रयोग करके वह अपने आत्मिक एवं मानसिक जीवन में परिवर्तन लाए। उसका जीवन उद्देश्य यही है कि वह विवेक तथा बुद्धि द्वारा इस ब्रह्मांड में जीवन के स्थायी मूल्यों को अनुभव करे। प्रकृति की शक्ति मनुष्य में एक नई सीध लेती है। डूबते सूर्य की सीध पर चली जाती यह दुपहरी के चढ़े सूर्य की ऊर्ध्वमुखी सीध की ओर चल पड़ती है। यदि इस ओर खड़ा होकर नीचे पाताल की ओर धँसना शुरू हो जाए उसकी दुर्बुद्धि उसे अधोगति की ओर ले जाती है और उसकी दशा ऐसी कर देती है कि उसकी रुचियाँ सदैव अंधकार तथा अज्ञानता की ओर ले जाती हैं। गुरु नानक ऐसे पुरुष को मनमुख कहते हैं परन्तु यदि वह ऊर्ध्व-मुखी सीध की ओर चल पड़े तो उन्मन अवस्था की अभिलाषा रखता हुआ, ऊपर उठने की साधना में लग जाए तो उसका समस्त जीवन नए आदर्शों में ढल जाता है। ऐसी सहजावस्था में परिपक्व तथा ब्रह्मज्ञान से उत्तेजित पुरुष को गुरु नानक गुरुमुख कहते हैं।

इस सामाजिक चेतना, कामनाओं तथा तृष्णाओं से भरपूर सांसारिक जीवन में रहते हुए प्राणी को आध्यात्मिक एवं आचरण सिद्ध जीवन की ओर चलना पड़ता है ताकि वह अपनी मंजिल के अन्तिम पड़ाव जीवन-तत्त्व तथा निश्चित ज्योति के भीतर शाश्वत जीवन व्यतीत कर सके। उसके भीतर एक नई आंत-रिक शक्ति जाग्रत हो जाती है जो उसे उस आचरण की साधना द्वारा एक नए जीवन तथा नए आदर्श की ओर ले जाती है। इस आदर्श प्राप्ति के पश्चात प्राणी अपने व्यक्तित्व को अपने वातावरण को नए आदर्श में ढाल सकता है और सामाजिक सत्ता में भी परिवर्तन ला सकता है। इसीलिये मानव के जीवन का मुख्य मनोरथ तथा कर्त्तव्य यह है कि वह संसार में शान्ति तथा एकता उत्पन्न करे।

४. आचरण द्वारा सृजन शक्ति

गुरु नानक के नैतिक सिद्धान्त चाहे साधारणतः भारतीय परम्परा के अनु-कूल हैं परन्तु कुछ विशेष सिद्धान्तों में यह हिन्दू-बौद्ध परम्परा से भिन्न तथा विलक्षण हो गए हैं। इनमें मूल अन्तर यह है कि हिन्दू-बौद्ध आचरण-नीति त्याग तथा संसार से वैराग्य पर ज़ोर देती है सिख धर्म के नैतिक सिद्धान्त सामा-

जिक तथा सांसारिक जीवन को अपनाने पर ज़ोर देते हैं। हिन्दू-बौद्ध परम्परा संन्यास, योग तथा भिक्षु बनने के आदेश पर ज़ोर देती है, परन्तु सिख-धर्म जीवन जीने पर ज़ोर देता है।

निकुलस बरदीयेव नैतिक-सिद्धान्तों की तीन कोटियाँ करता है—स्मृति तथा शास्त्रों पर आधारित नैतिकता, मुक्ति के सिद्धान्त पर आधारित नैतिकता तथा सृजनात्मक शक्ति पर आधारित नैतिकता। इस्लाम का मूल आचरण 'शरा'--'शरीयत' पर निर्भर है। हिन्दू धर्म का मूल आचरण मनु-स्मृति पर आधारित है। सिख धर्म में गुरु दीक्षा से संबंधित 'रहत' (रहन-सहन) साथ-साथ चलती आई है और गुरुओं के पश्चात इन्हें 'रहतनामों' का रूप दिया गया है। मूल रहत के सिद्धान्त चाहे इन सभी रहतनामों में एक ही हों इनके बहुत से विचार 'रहत' (रहन-सहन) के बंधनों को दृढ़ करने के लिए तथा सिखों को मूल नियमों के गलत प्रयोग से रोकने के लिए लिखे गए हैं परन्तु गुरु ग्रन्थ साहब में अथवा प्रामाणिक वाणी में इसीलिए कोई 'शरा' अथवा धार्मिक स्मृति के समान बाह्य रहन-सहन की आज्ञा नहीं लिखी, ताकि इन्हें अन्तिम भाव समझ-कर इनका गलत प्रयोग न हो। बाह्य रहन-सहन अपने प्रयोगकालीन समय के अनुसार परिवर्तनशील है इसीलिए पतित कार्यों को त्याग कर शेप नियम परिवर्तित होते रहते हैं इसीलिए गुरु गोविन्दसिंह के समकालीनों द्वारा लिखे रहतनामें अत्यन्त संक्षेप तथा सूक्ष्म हैं परन्तु बाद के लिखे रहतनामों में अनेक बातें इस समय की त्रुटियाँ दूर करने के लिए आ गई हैं। ईसाई मत की आच-रण नीति के सिद्धान्त एक मात्र मुक्ति (रीडेम्पशन) पर निर्भर हैं। सिख का आदर्श है कि वह मुक्ति नहीं चाहता केवल हरि के चरण कमलों का प्रेम तथा उसी प्रेम के आधार पर प्रभु की सृजन-शक्ति में लीन होना चाहता है।[1] सिख परमात्मा की ओर से भी स्वतन्त्र होकर प्रभु को कहता है, "हे प्रभु! तूने मुझे माया तथा कामनाओं की जंजीरों में कैद किया था, मैंने वे सभी तोड़ दी हैं तथा मैंने अब तुम्हें प्रेम बंधनों में बांधा है। हे प्रभु! अब छूट कर दिखाओ।"[2]

मार्टन लूथर अपने एक पत्र में लिखता है—"चाहे पाप करो और मन भर-कर पाप करो पर ईसा में दृढ़-विश्वास रखो उसकी याद में आनन्द मानो क्योंकि वह स्वयं सभी पापों पर, मृत्यु पर तथा संसार पर विजय प्राप्त करने वाला है। जब तक हम जो है सो हैं, हम पाप अवश्य करेंगे। यह पुण्य-भूमि नहीं।" गुरु नानक इस विचारधारा के बिल्कुल प्रतिकूल सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। वह

---

१. राजु न चाहउ मुकति न चाहउ, मनि प्रीति चरन कमलारे।
आ० ग्र० गुरु अर्जुन, देव गंधारी, पृ० ६४।

२. जउ हम बांधे मोह फास हम प्रेम बंधनि तुम बांधे।
अपने छूटने को जतनु करहु हम छूटे तुम आ गए।—आ० ग्र० रविदास सोरठ।

कहते हैं कि प्रभु की कृपादृष्टि उन पर होती है जो पापों से छुटकारा पाने का प्रयास करते हैं। जो व्यक्ति जान-बूझकर पाप करता है उसे एकमात्र विश्वास अथवा श्रद्धा नहीं बचा सकती। पाप पर विजयी होना मानव का, विशेषतः परमार्थी-मानव का धर्म है। यह हमारी उन्नति में रुकावट है जिसे दूर किया जा सकता है। धर्म तथा सत्य से बलवान पाप भी टक्कर नहीं ले सकता।

जलालउद्दीन रूमी ने एक स्थान पर लिखा है कि यदि आपने शैतान नहीं देखा तो अपने भीतर झांककर देखो। गुरु नानक के सिद्धान्तानुसार पाप तथा पुण्य दोनों का अटूट नाता है।[1] विलियम ला का कथन है कि "तुम्हारा अपना व्यक्तित्व ही खूनी है जो अपने सगे भाई—तुम्हारी आत्मा का खून करता है।"

गुरु नानक के विचारानुसार पुण्य अच्छाइयाँ तथा आत्मिक पवित्रता निष्फल है, यदि ये सब निजी मुक्ति का साधन बनकर ही रह जाएँ। जब सुमेर पर्वत के योगी गुरु नानक से पूछते हैं कि "मातृलोक (भूलोक) का क्या समाचार है?" तो गुरु नानक उत्तर देते हैं कि जब आप जैसे सिद्ध-पुरुष पर्वतों में आ छुपे तो मातृलोक बेचारा क्या करे।[2]

सिद्धों को गुरु नानक का यह उत्तर सिखों के नैतिक-सिद्धान्त तथा योगियों, संन्यासियों, वैरागियों, वेदान्तियों और भिक्षुओं के आचार सिद्धान्त से अथवा हिन्दू तथा बौद्धधर्म से स्पष्ट विलक्षणता प्रकट करता है। ये धर्म समाज तथा संसार से अलग तथा निश्चित होकर संसार से दूर रहने का उपदेश देते हैं, इसलिए पलायनवाद पर ज़ोर देते हैं। सिख धर्म का प्रत्येक मूल सिद्धान्त सामाजिक जीवन से ओतप्रोत है। गुरु नानक के विचारानुसार ज्ञानवाद तथा आत्मिक जीवन में निपुण पुरुषों में सबसे विशेष प्रेरणा यह होनी चाहिए कि वह अपनी प्रतिभा, अपनी तपस्या अपना तेज मानव जाति की सेवा में लगा सके। जब गुरु नानक एक ऐसे गांव में गए जहां के सभी लोग अत्यन्त नेक और अच्छे थे तो गुरु नानक ने उन्हें आशीष दी, "उजड़ जाओ।" जब वह ऐसे गांव में पहुँचे जहाँ के लोग नास्तिक, चोर, उचक्के थे तो गुरु नानक ने उन्हें शाप दिया, "जीते रहो।" इस प्रकार गुरु नानक यह चाहते थे कि नेकी दूर-दूर तक फैले और नेक तथा अच्छे लोग अपनी समस्त अच्छाइयों की प्रेरणा समाज को दें तथा पापी लोग एक स्थान पर छोटे-से सीमित घेरे में रहें। यह गुरु नानक का लोक-सुधार तथा ज्ञान का प्रकाश करने वाला आचार सिद्धान्त है जिसकी सृजनात्मक शक्ति समाज को बदलने के लिए अपना पूरा ज़ोर लगा देती है। किसी भी साधु, संत,

---

१. (i) पाप-पुंन दोइ एक समान। — आ० ग्र० गउड़ी, पृ० ३२५।
(ii) पाप-पुंन दोइ साथी पासः। — आ० ग्र० आसा, पृ० ३५१।
(iii) पाप-पुंन दोइ संगमे खपिया जंम काला। — आ० ग्र० मारु, पृ० १०१२।

२. सिध छप बैठे परवतीं कौन जगत कउ पार उतारा। — भाई गुरदास : वार १, २९।

दरवेश, फकीर अथवा ज्ञानवान पुरुष को यह अधिकार नहीं, कि वह अपने-आप के लिए जिये।

गुरु नानक जी कहते हैं, "सत्य सबसे श्रेष्ठ है, परन्तु सत्य में भी ऊँचा आचार है।"[1] किसी धर्म की परख उससे उत्पन्न हुए आचार से ही सम्भव है। अनैतिकता कभी भी धर्म का अंग नहीं बन सकती। आत्मिक जीवन का सामाजिक एवं सांसारिक पक्ष मनुष्य के आचरण से ही जाँचा जाता है। गुरु नानक ने सिख के आचरण में यह विशेष गुण आवश्यक माने हैं—

१. सत्य, संतोष, विचार।
२. दया, धर्म, दान।
३. लगन, सबर, संयम।
४. क्षमा, निर्धनता, सेवा।
५. प्रेम ज्ञान, कर्म करना।

सत्य का ज्ञान सत्य के आंतरिक अनुभव से ही होता है।[2] प्रत्येक प्राणी को मन-वचन तथा कर्म से सत्य में विश्वास रखना चाहिए। प्रत्येक प्राणी के विचार तथा कर्त्तव्यों में सत्यता प्रकट होनी चाहिए।

बोलनु सचु पछाणहु अंदरि।
दूरि नाही देखहु करि मंदरि।

आ० ग्र० मारू १०२६

हृदय में सत्य को धारण करना ही मानव का परम धर्म तथा कर्त्तव्य है, अन्य पूजा-अर्चना सब पाखंड तथा बरबादी के साधन हैं।[3] सत्य-पवित्र जीवन से ही सत्य का ज्ञान तथा संतोष उत्पन्न होता है। इसीलिए गुरुजी कहते हैं कि सच्ची पूजा इसी में है कि हृदय रूपी थाली में तीन मूल्यवान वस्तुएँ—सत्य, संतोष तथा विचार रखो। इसके पश्चात नामरूपी चरणामृत उस प्रभु की पूजा से प्राप्त होता है जिसे जो खायेगा वह मुक्त तथा तृप्त हो जाएगा।[4] संतोष वह रुचि है जिसके द्वारा मनुष्य संतुष्ट तथा तृप्त रहता है और प्राप्त न हो सकने वाली वस्तुओं के लिए तृष्णा अथवा कामना नहीं रहती। इस प्रकार तृष्णा पर वश करने वाली अवस्था को ही संतोष कहते हैं। विचार से भाव है—सच्ची सूझ-बूझ रखनी। विचार-विवेक बुद्धि की अवस्था है, इसीलिए बिना विचार, बिना

---

१. सचहु ओरै सभको उपरि सचु आचारु। आ० ग्र० नानक श्री राग, पृ० ६२।
२. सचु मिलै सचु उपजै सच मैं सचु समाइ। आ० ग्र० श्री राग, पृ० १८।
३. हृदय सच्च एह करनी है सारु, और सभ पाखंड पूजा खुआर।
आ० ग्र० प्रभाती, पृ० १४२६।
४. थाल विचि तिंनि वसतु पईओ सतु संतोखु विचारो।
अमृत नामु ठाकुर का पइओ जिसका सभसु अधारो। आ० ग्र० मुंदावनी, पृ० १३११।

ज्ञान-ध्यान के पाठ करते चले जाना निरर्थक समझा गया है।

दया उसी प्राणी में सम्भव है, जिसे यह विश्वास हो कि प्राणी के भीतर परमात्मा की ज्योति है और किसी जीव को दुःख देना परमात्मा को दुःख देने के समान होगा। सभी जीवों पर पूरी तरह दया नहीं कर सकता है। जिसके हृदयरूपी कमल में परमात्मा की ज्योति जलती है और जो सब जीवों, सब प्राणियों में वही ज्योति देखता है।[1]

जहाँ दया है, वहाँ ज्ञान तथा उपकार भावना है। कई लोगों के पास अथाह धन होता है परन्तु वे जो भी पैसा-टका दान देते हैं केवल नाम कमाने के लिए देते हैं। इस प्रकार वे दान को दिखावा और तमाशा बना देते हैं। दूसरी ओर ऐसे परोपकारी जीव भी हैं जिनके पास थोड़ा धन होते हुए भी अपना सर्वस्व दूसरे के दुःख दूर करने के लिए देने को तत्पर रहते हैं। उनके हृदय में जीवन के भरपूर ऐश्वर्य पर विश्वास है। उनके भंडार भरे रहते हैं। जो इच्छा रहित होकर दीन-दुखियों को देते हैं उन्हें उपकार का फल आत्मिक आनन्द के रूप में मिलता है। कई दान इसी प्रकार से करते हैं जैसे प्रकृति सुगंधि तथा खुली धूप बाँटती है उनकी दृष्टि के माध्यम से परमात्मा समस्त सृष्टि पर अपने प्रेम तथा कृपा की दृष्टि डालता है। उनकी जिह्वा के द्वारा परमात्मा सारी मानव-सृष्टि तक अपनी आवाज़ पहुँचाता है। गुरु गोविन्दसिंहजी के अनन्य शिष्य शहीद भाई मनीसिंह लिखते हैं[2] दान समझकर देना, तामसी का दान है जिसका फल तुच्छ होता है और राजसी जो अपनी शोभा के लिए दान देता है उसे भी थोड़ा फल प्राप्त होता है। इसलिए उसे फल अधिक मिलता है जो सभी पदार्थ भगवान के

---

१. जीवतु मरै ता बुझु किछु सूझै अंतरि जाणै सरब दइआ।
नानकता कउ मिलै वडाई, आपु पछाणै सरब जीआ। सिद्ध गोष्ठ, २४।

२. (i) भाई मनिसिंह : भगत रत्नावली, पृ० ५६।
(ii) "दिखावा करके अपने दान को निरर्थक न बनाओ।" (कुरान २ : २६४) यदि दान करके चर्चा करो तो भी भला। परन्तु यदि दान करके चुप रहोगे तो तुम्हारे अनेकों पाप धुल जाएंगे।" (कुरान २ : २७१)
(iii) अपना अनाज दान करने में हमें शक्ति मिलती है, जरूरत वालों को वस्त्र दान करने से सुन्दरता प्राप्त होती है, पवित्रता तथा सत्य के घर दान करने के फलस्वरूप अनेकों खजाने प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के दानी को मुक्ति का मार्ग मिल गया। पाल-कारंस "दी गौस्पेल आफ बुद्धा", पृ० ६२।
(iv) जहाँ दान की प्रवृत्ति है, वहाँ सब्र है, दया है। दानी ईर्ष्या नहीं करता, न अहंकारी होता है और न दिखावा करता है, बुराई तथा अनाचार देखकर प्रसन्न नहीं होता। सत्यता पर प्रसन्न रहता है। दान कभी निष्फल नहीं जाता। भविष्यवाणियाँ मिट जाती हैं। दान के लिए प्रयत्न करो परन्तु आत्मिक प्राप्तियों के लिए अधिक यत्न करो।
अंजील I कोरिंथीयन्ज़ १३, १४।

समझकर ही देता है चाहे धन दान दे चाहे विद्या दान दे, कोई भी दान हो, पात्र को दिया बहुत लाभ पहुँचता है ।

लगन (सिदक) तथा सब्र शब्द कुरान से लिए गए हैं । लगन की वह मानसिक तथा आत्मिक दशा है जिसमें पूर्ण आत्मसमर्पण तथा आत्म को न्योछावर करने के लिए प्राणी तत्पर रहे । सब्र की मानसिक दशा में दृढ़ता, आत्म-विश्वास, स्थिरता, सहनशीलता और धैर्य-धर्म में रहकर अनथक परिश्रम करना है । यह दुःख में सुख अनुभव करने की सहजावस्था है ।[1] संयम शरीर को कष्ट देकर नहीं किया जाता अपितु सच्चा संयम वह है जो सहज अवस्था में निश्चित होकर तथा स्थिर रहकर अपने-आप पर काबू रखकर किया जाए ।[2]

क्षमा तथा निर्धनता सिख-धर्म के आचरण-सिद्धान्त के विशेष अंग हैं । "विनसे क्रोध क्षमा गहि लई ।" जहाँ क्षमा मन में समा जाए वहाँ क्रोध दूर हो जाता है । गुरु गोविन्दसिंहजी कहते हैं—"थोड़ा खाओ, थोड़ा सोओ तथा हृदय में दया और क्षमा से प्रेम धारण करो ।"[3] गुरु नानक का कथन है—"सबके आगे झुकना, क्षमा करनी, मीठा बोलना, ये तीनों वचन दृढ़ करो, मुक्ति मिलेगी ।"[4] नम्रता नैतिक हिम्मत तथा शक्ति प्रदान करती है । नम्रता में रहने वाला ही क्षमा कर सकता है और सब्र-संतोष द्वारा ही नैतिक हिम्मत सम्भव है । यदि तुम दूसरों को क्षमा करोगे, परमात्मा तुम्हें क्षमा करेगा ।[5] जहाँ क्षमा है वहाँ परमात्मा की ज्योति है—

> कबीरा जहँ गियानु तहं धरम है, जहं झूठ तहं पापु ।
> जहां लोभ तहं कालु है जिह क्षमा तहां आपि । आ०ग्र०, पृ० १३७२

मानव सेवा गुरु सिख का आधा जीवन है । सिख रहन-सहन के विशेष गुण यह होने चाहियें कि वह जरूरतमन्दों तथा दीन-दुखियों को रोटी-कपड़ा दे, रोगियों तथा पीड़ितों की सेवा करे और सन्तों, महापुरुषों की सेवा करे । सेवा तभी होती है यदि अपने आपको निछावर करने की प्रवृत्ति हो ।"

उन हाथ-पांवों को धिक्कार है जो सेवा में नहीं लगे हुए । मानव जाति की

---

१. आदि ग्रन्थ : शेख फरीद, पृ० १३४८ ।
२. आदि ग्रन्थ : सवैये म० ४, पृ० १३९७ ।
३. "अलप अहार, सुलप सी निद्रा, दया छिमा तन प्रीत" गुरु गोबिन्दसिंह ।
४. (i) जनम साखी भाई बाला, पृ० १५५ ।
   (ii) दूसरों के भार उठानी सीखो, और जो निरादर करते हैं उन्हें क्षमा कर दो ।
   (iii) निर्वाण प्राप्ति के लिए बौद्धमत में जो दस गुण अनिवार्य हैं वे हैं—दान, शील, त्याग, सन्तोष, ध्यान, ज्ञान, सच्चाई, क्षमा, दया, विनम्रता ।
   (iv) अहिंसा, सच्चाई, क्रोध से रहित होना, त्याग, शान्ति, दोषरहित शान्ति, दया, नम्रता, तेज, क्षमा, संयम यह भक्ति आत्माओं के गुण हैं । गीता : १६ : २ ।
५. बाइबिल : मत्ती ६ : १४

सेवा के अतिरिक्त शेष सभी कार्य निष्फल हैं।"[1] सिख धर्म को प्रेम-भक्ति का धर्म ठीक ही कहा गया है। प्रेम-भक्ति सभी विशेष धर्मों का आवश्यक अंग है—

जिनी न पाइओ प्रेम रसु कंत न पाइओ साउ।
संझे घर का पाहुना जिइ आइया तिउ जाउ।

आ० ग्र० नानक सूही, पृ० ७९०

"प्रेम के बिना मानव खाली शंख के समान होता है, अन्दर से खाली तथा बाहिर से नष्ट होकर राख बनने वाला।"[2] "प्रेम का गौरव सहस्रों सिंहासनों के गौरव से ऊंची शान वाला है। सत्य का जिज्ञासु प्रेम मार्ग पर चलता चला जाता है। उसे मुकुटों-सिंहासनों, हीरे-जवाहरातों की रत्ती-भर भी चिन्ता नहीं रहती।"[3] सिख धर्म में धर्म पाप की विरोधी प्रवृत्ति है। जहाँ धर्म है वहां पाप नहीं। धर्म सहज कर्त्तव्य नहीं परन्तु यह सत्य पर चलने के लिये आंतरिक आत्मिक प्रेरणा है। काम, क्रोध तथा मोक्ष इस धर्म के साथ ही संबंधित हैं। एक सिख के लिए ये ऊंचे आदर्श के साधन तो हैं—जीवन मनोरथ नहीं।[4]

सिख धर्म में ज्ञान तथा धर्म के सिद्धान्त हिन्दू तथा बौद्ध धर्मों के विचारों से सर्वथा भिन्न हैं। सिख धर्म में ज्ञान आत्म-पथिक की तलवार है जिसमें वह शत्रुओं से लड़ता है।[5] श्रेष्ठ धर्म-धर्म का कार्य करना और जो वचत हो उसे निर्धनों अनाथों को दे देना है। जो धर्म भिक्षा-वृत्ति द्वारा धार्मिक जीवन व्यतीत करने पर ज़ोर देता है। वह समाज तथा सभ्यता की जड़ें खोखली करता है और आज के परिवर्तनशील संसार तथा सभ्यता में उसका कोई स्थान नहीं।

सिख धर्म में एकमात्र सदाचार ही जीवन-मनोरथ नहीं है। ज्ञान तथा सूझ-बूझ द्वारा हमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार से लड़ना चाहिए। और आत्मिक प्रयत्न करके सदाचारी जीवन से आगे अनुभवी जीवन की ओर चलना मानव का मुख्य मनोरथ ही आत्मिक निपुणता के लिये सदाचारी जीवन अत्यन्त आवश्यक है, पर एक मात्र नैतिक-पवित्रता जीव को आत्मिक ज्ञान की परिपक्व अवस्था की ओर नहीं ले जा सकती। आत्मिक अवस्था अच्छे सदाचार की अवस्था से उच्च है, परन्तु फिर भी शुभ आचरण के बिना कोई भी आत्मिक अनुभव प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु जहां अनैतिकता, आचरणहीनता है, वहां धर्म तथा

---

१. बिना सेवा ध्रग हाथ पैर, "होर निहफल रहनी। भाई गुरदास, वार २७ : १०।
२. अंदर खाली प्रेम बिना ढहि ढेरीं तन छार।" गुरु नानक : श्री राग, पृ० ६२।
३. भाई नन्द लाल, दीवान-ए-गोया (काव्य) २६।
४. आ० ग्र० अर्जुन : बिलावल पृ० ८१९, रामकली पृ० ९२७, सूही पृ० ७८५।
रामदास : बिलावल पृ० ८३३, कल्याण पृ० १३२०।
५. गिआण खड्ग लै मन सिउ लूझै। आ० ग्र० गुरु नानक : मारु पृ० १०२९।

आत्मज्ञान नहीं रह सकते। पाप-कर्म आत्मिक उन्नति में बड़ी भारी कठिनाइयां उपस्थित करते हैं—

पाप बुरा पापी को पियारा।
पाप लदे पापे पासारा।
पर हरि पाप पछाणे आपु।
ना तिसु सोगु वियोगु संतापु।

गुरु नानक : दखनी ओंकार ३८

आत्मिक पूर्णता का खेल, सदाचार के क्षेत्र से भिन्न है और इसका परिमाण भी अलग है। परन्तु आत्मिक पूर्णता का प्रकटीकरण सदाचार के पवित्र क्षेत्र में ही होता है।

५. कर्म सिद्धान्त

गुरु ग्रन्थ साहिब में यह प्रश्न उठाया गया है तथा इसके उत्तर भी अनेक स्थानों पर दिये गए हैं कि कर्म गति उत्पन्न कहां से हुई?

सासत न होता, बेद न होता, करम कहां ते होआ।

मनुष्य परमात्मा के ज्योतिपुंज का अंश लेकर उत्पन्न हुआ। जब तक उसे अपनी आत्मिक वास्तविकता का आभास था, जब तक उसे अपनी आत्मिक प्रकृति का ज्ञान था, उसके लिये न तो कर्म गति थी और न ही जन्म-मरण का चक्कर। प्रत्येक प्राणी के लिये कर्म गति का चक्कर तभी उत्पन्न हुआ जब उसे जीवन की आत्मिक सुधि भूल गई। और वह अपने अहं एवं व्यक्तित्व के अंधकार में फंस गया। जितना ही मनुष्य परमात्मा से दूर जाता है उतनी ही उसकी कर्म गति रसातल के घेरे में धंसकर, जन्म-मरण के चक्कर में फंस जाती है।

कर्म गति द्वारा ही जीवन का विकास होता है और कर्म गति द्वारा ही जीवन का विनाश भी होता है। आत्मिक जीवन से अछूते, पशुओं के समान जीवन यापन करने वाले प्राणी, जो बीजते हैं वही खाते हैं। परन्तु जो उत्तम कर्मों द्वारा विकास करते हैं, वे अपने पापों के बंधनों को तोड़ते जाते हैं तथा अन्त में जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे लोगों के लिये कर्म गति भाग्य या बंधन नहीं अपितु एक अवस्था है जिससे दृढ़ साधनों द्वारा वह निकल जाता है। सिख धर्म ऐसे कर्म सिद्धान्त में विश्वास नहीं रखता जिसके अनुसार प्रत्येक जीव जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है और उसे भोगे बिना उनसे मुक्त नहीं हो सकता। प्रत्येक प्राणी आत्मज्ञान तथा उच्च आत्मिक अवस्था को दृढ़ साधनों द्वारा प्राप्त करके, कर्मों के समस्त बंधनों को तोड़ सकता है और उनसे मुक्त हो सकता है।

गुरु ग्रन्थ साहिब में शब्द 'कर्म' अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। साम्प्रदायवादी ज्ञानियों तथा कथाकारों ने एक ही स्थान पर अनेकों अर्थ करके समस्या को और भी उलझा दिया है। गुरु ग्रन्थ साहिब में कर्म-सिद्धान्त के विशेष पक्ष निम्नलिखित हैं—

१. **कर्मकांडी कर्म अथवा खटकर्म**—हिन्दू-धर्म में कुछ ऐसी पूजा-उपासना का रिवाज़ है जिसका मुख्य मनोरथ शारीरिक एवं आत्मिक पवित्रता तथा देवी-देवताओं को रिझाना है। कुछ कर्मकांडी कर्म सामाजिक रस्मों के साथ सम्वन्धित हो गए हैं। संध्योपासना, पंचनोपचार, हवन पूजा, तर्पण आदि रस्में हिन्दू धार्मिक-जीवन का अंग ही बन गई हैं। इन कार्मकांडी रस्मों को गुरुजी ने आत्मिक जीवन के लिए निरथर्क माना है।[1]

२. **मन-हठ कर्म, मनमुख कर्म, अहं-व्यापक कर्म**—व्यक्तित्व एवं अहंकार के अधीन किये गए समस्त कर्म मनमुख कर्म अथवा अहं व्यापक कर्म होते हैं। अहं के आधीन किए गए पवित्र कर्म भी आत्मिक उन्नति के लिए लाभदायक नहीं। अनेकों मत धार्मिक चमत्कारों को, हठयोगियों की तपस्या के समान मन-हठ के अधीन करते हैं। ऐसे मन-हठ कर्म, किसी सीमा तक मन और शरीर को साधने के लिये अच्छे हैं परन्तु इनके द्वारा आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं। अहं-व्यापक कर्मो के हठी साधक, पानी विलोकर मक्खन निकालने का निष्फल प्रयास करते हैं।[2]

३. **किरत कर्म**—इन्हें 'प्रारब्ध कर्म' तथा 'संचित कर्म' भी कहा जाता है यह पिछले जन्म ऐसे जन्म के लिये कर्मों से उत्पन्न फल है जो हमारी वर्तमान अवस्था के लिये उत्तरदायी है। पिछले जन्मों के कर्मों के आधार पर परमात्मा ने हमारी चेतना में हमारी प्रवृत्तियों, स्वभाव तथा आचरण की कर्म-फल रेखाएं निर्धारित कर दी हैं जिनके कारण इस जन्म में या तो मनुष्य का विकास होता है या विनाश।

हमारे अन्तःकरण तथा स्वभाव में चित्रित्र इन समस्त नैतिक रेखाओं को गुरु ग्रन्थ साहिब में 'सिर-लेख' (मस्तक पर अंकित भाग्य रेखा) कहा गया है और जो कर्म हम इनके वश होकर करते हैं उन्हें 'किरत कर्म' कहा जाता है। एक दुराचारी जीवन में भी कभी-कभी अचानक आत्मिक-जागृति आ जाती है। यह पिछले जन्म में किए गए किसी शुभ कर्म का, परमात्मा की कृपा दृष्टि से मिला सुख-फल होता है। यह मानसिक एवं आत्मिक झटका, अचानक तथा बिना जाने, किसी हृदय विदारक घटना के कारण लगता है। अचम्भा उत्पन्न

---

१ गुरु नानक, सोरठ, पृ० ६३५।

२. "साकत करम पानी जिउ मथीऐ, नित पाणी झोल झुलारे।"
आ० ग्र० रामदास नट, पृ० ६८२

करने वाली इस जागृति को गुरुसाहब की वाणी में 'पूर्व अंकुर फूटना' (समय से पहले ही अंकुर का फूट आना) कहा गया है।[1] जो जीव साधारण मानसिक धरातल के ऊपर उठकर आत्मिक ज्योति के जीवन में प्रवेश नहीं करते वे "जेहा बीजे तेहा फल पाए" वाली कर्म गति के वश में होकर या तो हौले-हौले उन्नति करते हैं या रसातल को चले जाते हैं।[2]

बौद्धमत तथा जैनमत इस बात में विश्वास रखते हैं कि कर्मगति के बंधनों को तपस्या, त्याग तथा व्रत नियम के हठ साधनों द्वारा चमत्कारहीन जीवन व्यतीत करके समाप्त किया जा सकता है।[3] गुरु नानक जी का विश्वास है कि एकमात्र हठ-तप-साधना द्वारा कर्म गति से मुक्त होना संभव नहीं। आत्मा को मांजे बिना तथा परमात्मा की कृपा दृष्टि के बिना, केवल त्याग तथा तपस्या द्वारा कर्म गति से छुटकारा नहीं पाया जा सकता।

४. **त्रिविध कर्म अथवा त्रिगुण कर्म**—त्रिविध कर्म वे हैं जो जीव को सदाचारी तो बना देते हैं परन्तु आत्मिक ज्ञान से दूर ही रखते हैं। परन्तु सदाचार सिख-धर्म में आत्मिक जीवन का आवश्यक अंग माना गया है। परमात्मा हमारे अच्छे बुरे कर्मों की जांच करेगा और बुरे कर्मों की सजा देना तथा शुभ कर्मों द्वारों हमें उच्च-जीवन की प्राप्ति होगी। तीनों गुणों के वश में होकर जो भी कर्म जीव करता है वे मानव के मानसिक व्यक्तित्व की प्रधान प्रवृत्तियों को चित्रित करते हैं।[4] परमात्मा अपने ही अटल-अमर सत्य के दृष्टिकोण से जीवों

---

१. "पूरब कर्म अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी।
मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम-जनम की सोई जागी।"
आ० ग्र० गउड़ी पृ० २०४।

२. "आपे बीज आपे ही खाह" —जपु जी

३. (i) "बौद्धमत का निर्गंथ सम्प्रदाय इस बात में विश्वास रखता है कि दुःखों का अन्त कर्मों का विनाश करके ही संभव है! निर्गंथ सम्प्रदाय का सिद्धान्त है कि प्राणी दुःख-सुख, सुखी राग आदि के जो वश में पड़ता है, उसका कारण पूर्व-कर्म ही होते हैं! यदि उन कर्मों को व्रत-नियम-धर्म, तपस्या आदि के द्वारा नष्ट कर दिया जाए तथा कोई नए कर्म न किए जाएं तो दुःख सुख के चक्कर से मुक्ति मिल सकती है।" (एडवर्ड थामस "दी हिस्ट्री आफ बुद्धिस्ट थाट", पृ० ११६)
(ii) जैन धर्म में कर्म गति एक प्रकार की मैल है जो जीव अथवा आत्मा को मलिन कर देती है। इस मैल द्वारा आत्मा धुंधली पड़ जाती है और अगले जन्म में जब तक इस मैल को धोया नहीं जाता, जीव इन कर्मों के अधीन भोग भोगता है।
गीता में यह मैल तीन प्रकार की कही गई है—सतोगुणी, रजोगुणी, तथा तमोगुणी!
(पोटर: प्रीसप्पोजीशनज आफ इंडियन फिलासफी, पृ० १३)

४. इस विषय पर अपनी पुस्तक "गुरमत कर्म फिलासफी" में भाई रणधीर सिंह ने अत्यन्त विस्तारपूर्ण विचार प्रकट किए हैं। देखो, पृ० २४६-४८।

के कर्म परखता है, उसके न्याय में सदैव दया रहती है वह जब और जैसा चाहता है पापियों को उनके बुरे कार्यों की सज़ा देता है। अन्त में उसकी दृष्टि में सत्य की विजय होती है जो सत्यता के लिये संघर्ष करते हैं। परमात्मा की दृष्टि में तथा मानव इतिहास में उन्हें ही विजयी घोषित किया जाता है।[१]

५. आध्यात्मिक कर्म, निष्काम कर्म, भगवद् आज्ञा-इच्छानुसार कर्म— आध्यात्मिक कर्म प्राणी को सर्वश्रेष्ठ आत्मिक अवस्था की ओर ले जाते हैं तथा सर्वथा निष्काम होकर किये जाते हैं। इसमें किसी फल प्राप्ति की इच्छा नहीं होती और परमात्मा की रज़ा (इच्छा) में रहकर किये जाते हैं। आध्यात्मिक कर्मों द्वारा कर्मों के सभी बंधन टूट जाते हैं। जीवन तथा मृत्यु में, जीव को आत्मनिर्णय का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है। वह अपना भविष्य बना सकता है अथवा बिगाड़ सकता है। पापों के दाग़ ऐसे नहीं जिन्हें धोया न जा सके। उन्हें आध्यात्मिक कर्मों से धोया जा सकता है। परमात्मा को एक क्षण-मात्र के सच्चे प्रेम से तथा उसकी ज्योति के अकस्मात अनुभव से अनेकों पापों का मैल धोया जा सकता है। निष्काम भक्ति द्वारा उच्च से उच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त की जा सकती है। जब आत्मा परमात्मा को भूल जाती है तो वह अज्ञानता के अंधकार में तथा पापों में ग़र्क हो जाती है।

गुरु नानक देवजी बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि कर्मों से मुक्ति कर्त्तव्यों को त्याग कर नहीं अपितु अपनाकर प्राप्त की जा सकती है। मानस-जीवन एक सुनहरा अवसर है जिसमें पापों के समस्त बंधन तोड़े जा सकते हैं और जीव पर-मात्मा से एकाकार हो सकता है। कोई दुःख ऐसा नहीं जो मनुष्य झेल न सके। सत्य के मार्ग पर चलते हुए हम, आध्यात्मिक कर्मों तथा परमात्मा की कृपा दृष्टि द्वारा पापों के समस्त भार से मुक्त हो सकते हैं। जब जीव अपने पिछले जन्म की कर्मगति के वश होकर ही जीवनयापन कर रहा हो तो उसका जीवन पशुओं के जीवन से किसी प्रकार भी उत्तम नहीं। इस कर्मगति से मुक्ति प्राप्त करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इससे मुक्त होना हमारा प्रमुख मनोरथ होना चाहिये। मानव स्वाधीनता में उत्पन्न नहीं होता, अपितु वह जन्म ही इसलिए लेता है कि पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर सके तथा उसका आनन्द उठा सके। जिनमें आत्मचेतना का अभाव है वे अपनी निकम्मी कामनाओं, तृष्णाओं आदि के शिकार रहते हैं। जो भी दिन-रात आध्यात्मिक कर्म तथा आत्मिक साधना

---

१. (i) "परमात्मा ने न्याय करने के लिए धर्म का सिंहासन बनाया है, और उस सिंहासन से वह जीवों के अच्छे-बुरे कर्म जांचेगा!" साम्ज़ ६

(ii) जिनमें लगन है और जो नेक कर्म करते हैं परमात्मा उन्हें अच्छा फल देगा, जिनके अन्दर लगन नहीं, उनके लिये नरक की खाई तैयार है।"

कुरान : १७ : ६, १०

करता है उसे ज्ञान-ज्योति का पूर्ण प्रकाश हो जाता है। परमात्मा का अमर-अटल प्रकाश उसमें देदीप्यमान हो उठता है।[1] इस अवस्था में जीव केवल निष्काम-कर्म करता है। इन इच्छा-रहित कर्मों को ही भगवद्-इच्छा-कर्म अथवा निष्काम कर्म कहा जाता है। इस अवस्था की सत्यता में दृढ़ विश्वास करके ही जीव, शुभ कर्मों के लिए, सच्चाई तथा धर्म के लिए, बड़े से बड़ा बलिदान देने के लिए तत्पर हो जाता है। इसके लिये अपने प्रत्येक कर्म परमात्मा की आज्ञा तथा इच्छा के लिए प्रेम-भक्ति की आहूति है।

६. **सामाजिक एवं राजनैतिक दर्शन**—गुरु नानक के सामाजिक एवं राजनैतिक दर्शन का मूल सिद्धान्त यह है कि संसार की सभी जातियाँ एवं मनुष्य मानवता के धरातल पर एक समान हैं। प्रत्येक का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अत्याचार, भय, सामाजिक एवं राजनैतिक पराधीनता के अत्याचारों से मुक्त रहे। किशोरावस्था में ही गुरु नानक ने जाति-पाँत तथा छूत-छात के भेदभाव पैदा करने वाले जनेऊ आदि पहनने की रस्मों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था क्योंकि ये रस्में अमीर तथा पंडित-पुरोहित श्रेणियों को समाज में ऊंचा स्थान देकर तथा मजदूर श्रेणियों को नीच कुल का सिद्ध करके, इनमें सदैव के लिए ऊंच-नीच का भेदभाव पैदा कर देती थीं। गुरु नानक ने न केवल ऊंच-नीच जातियों के बीच खड़ी छूतछात की घृणित दीवारों को गिरा कर दूर फेंक दिया, अपितु हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच एक दूसरे को काफ़िर तथा मलेच्छ समझने का सांस्कृतिक अन्तर भी मिटा दिया। हिन्दू धर्म के चार-वर्ण चार आश्रम के मूल सामाजिक सिद्धान्त का खंडन करके इस परम्परा को समूचे समाज तथा सभ्यता के लिये हानिकारक बताया और इसके मूलोच्छेदन का प्रयास किया।[2] ऊँच नीच तथा छुआछूत के बने हुए तथा बनाए गए सिद्धान्तों की अत्यन्त कटु आलोचना करके, इन्हें अत्यन्त खतरनाक [illegible] बताया। यह गुरु नानक के सर्वसहयोगी धर्म का ही चमत्कार था कि भारतीय इतिहास में प्रथम बार, सभी धर्मों के, सभी जातियों के, सभी श्रेणियों के लोग, क्या अमीर, क्या गरीब, क्या स्त्री क्या पुरुष बिना किसी भेदभाव के एक पंगत में बैठ कर लंगर खा सकते थे।

---

१. "अध्यात्म करम करे दिन राती, निरमल जोति निरंतर जाती।"

आ० ग्र०, मारू, पृ० [illegible]।

२. (i) हिन्दू-समाज चार जातियों में विभाजित था :—
१. ब्राह्मण, २. क्षत्रिय, ३. वैश्य, ४. शूद्र। मुसलमानों में भी चार [illegible] थीं परन्तु वे श्रेणियाँ धर्म से संबंधित थीं, न कि जन्म से — १. [illegible], २. [illegible] अधिकारी, ३. व्यापारी, ४. [illegible]।

"[illegible]"

गुरु नानक ने संसार के लिये, जिस सामाजिक-विधान को निर्धारित करने का प्रयास किया उसमें उन्होंने भिन्न-भिन्न राष्ट्रों, जातियों तथा धर्मों में सद्भावना, प्रेम तथा एकता पैदा करने का प्रयत्न किया। गुरु नानक के सिद्धान्तानुसार चित्रित समाज एक यथार्थवादी तथा सत्यता पर निर्भर समाज है। इस समाज में, गुरु नानक ने, दंभियों, पाखंडियों तथा लोगों के बनाए गए वहमों, भ्रमों तथा हानिकारक रीति-रिवाजों के लिए कोई स्थान नहीं रखा। सत्य से प्रकाशित बुद्धि को, अज्ञानता रूपी अंधकार दूर करने वाला दीपक बताया और इस ज्ञान रूपी दीपक को सदैव के लिये जगमगाए रखने की युक्ति भी बताई। गुरु नानक की निराली तथा उज्ज्वल दृष्टि ने, पूर्वजों की चलाई ग़लत परम्पराओं तथा भ्रमों से मुक्त होकर, भारतीय समाज तथा सभ्यता के लिये एक नया राजमार्ग चित्रित किया। कबीर तथा रैदास जैसे अछूत भक्तों को, उनके वैरागी-वैष्णव गुरु रामानन्द ने शिक्षा-दीक्षा तो दे दी, परन्तु आज तक वृन्दावन जैसे स्थानों में अछूतों का मंदिर में प्रवेश वर्जित है, और न ही वे उच्च जाति के वैष्णवों के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं। न ही कबीर तथा रैदास रामानन्द के विवेकी लंगर में बैठकर खा-पी सकते हैं। भारत में हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्मों के अनेकों सिद्धान्त आध्यात्मिक तथा रहस्यवादी धरातल पर एक दूसरे के अत्यन्त समीप हो जाते हैं परन्तु सामाजिक धरातल पर उनमें अथाह समुद्र का अन्तर था। गुरु नानक के विश्वप्रिय ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होते ही ये सभी भ्रमों, वहमों के अन्तर बर्फ के समान पिघल कर मिट गए।

गुरु नानक ने सिख धर्म को प्रकाशित आत्मा तथा ज्ञानोदीप्त मानववाद दिया। उन्होंने गुरुद्वारों के तथा अपने द्वारा स्थापित हरिमंदिरों के द्वार चारों ओर से, सभी राष्ट्रों, धर्मों तथा जातियों के लिए खोल दिये तथा स्त्रियों को पूजा-अर्चना, उपासना तथा समाज में पुरुषों के बराबर आज़ादी के अधिकार दिये। सोलहवीं शताब्दी में गुरु नानक ने सिख समाज में स्त्री जाति को इतने अधिकार दिये जो आज से पचास वर्ष पूर्व के योरुपीय समाज की स्त्रियों को प्राप्त नहीं थे। भाई गुरदास का कथन है, "लोक वेद गुर गियान विच अरध सरीरी मोख दुआरी।" स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी है तथा उसे समाज में पुरुष के तुल्य ही अधिकार प्राप्त है। धर्मार्थ तथा ज्ञान में वह पुरुष के बराबर ही अधिकारों की स्वामिनी है। साथ ही साथ आदर्श स्त्री को मोक्ष का द्वार बताया

(ii) जानहु जोति न पूछहू जाति आगे जाति न हे

आ० ग्र०, आसा १, पृ० ३४९।

जाति जनमु नह पूछीए, सच घर लेहु बताइ।
सा जाति सा पाति है जे हे करम कमाइ।

आ० ग्र०, नानक मारू, पृ० १३३०।

गया है उसके सहयोग के बिना मनुष्य अधूरा है और समाज भी अधूरा है।
गुरु नानक ने स्त्रियों को घटिया अथवा समाज में नीची तथा बुरी समझी जाने के विरुद्ध ज़ोरदार आवाज़ उठाई।[1]

६. राजनैतिक सिद्धान्त

सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक ने नामदेव को कैद कर लिया तथा अनेक कष्ट दिये। बादशाह की कैद में अनेकों कष्ट भोग कर तथा अपनी आंखों से अनेकों अत्याचार होते देख कर भी, नामदेव ने बादशाह के अत्याचारों के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं लिखा। कबीर ने सिकन्दर लोधी की कैद में अगणित कष्ट उठाए, उसे हाथी के आगे डाला गया। कबीर ने परमात्मा के भक्त की रक्षा करने के लिए धन्यवाद किया परन्तु उन्होंने अपनी रचनाओं में एक शब्द भी बादशाह के अत्याचारों के विरुद्ध नहीं लिखा। गुरु नानक प्रथम महापुरुष हुए हैं जिन्होंने निडर होकर राजाओं, रजवाड़ों तथा सुल्तानों के अत्याचारों को नंगा किया तथा उनकी अत्यन्त तीव्र आलोचना की। "प्रत्येक भिक्षुक बादशाह बनने के स्वप्न देखता है, प्रत्येक पुरुष पंडित बनने का प्रयत्न करता है। अंधे पारखी बन गए हैं, शरारती आदमी चौधरी बन गए हैं।"[2] धार्मिक स्वाधीनता परले दर्जे की हीन पराधीनता का रूप धारण कर चुकी थी। धन-सम्पत्ति, राजनैतिक पदवी आदि के लिए धार्मिक तथा सामाजिक स्वाधीनता बलिदान कर दी जाती थी। राजनैतिक स्वाधीनता एक उपहास बनकर रह गई थी।

गुरु नानक देव के लिये स्वाधीनता एक मानसिक एवं आत्मिक अवस्था है। जो राजप्रबन्ध बल प्रयोग तथा अत्याचार के आधार पर स्थापित किया गया

---

१. भंडि जंमीऐ, भंडि निमीऐ, भंडि मंगनु वीआहु।
भंडहु होवै दोसती, भंडहु चलै राहु।
भंडु मुआ भंडु भाली ऐ, भंडि होवै बंधानु।
सो किउ मंदा आखीऐ, जितु जमहि राजान।

आ० ग्र०, आसा दी वार, पृ० ४७३।

२. (i) "नाउ फकीरै पातसाहु मूरखु पंडित नाउ।
अंधे का नाउ पारखु एवैं करे गुआउ।
इलति का नाउ चौधरी, कूड़ी पूरे थाउ।

आ० ग्र०, वार मल्हार, पृ० १२८८।

(ii) राजे सीह मुकदम कुत्ते।
जाइ जगाइनि बैठे सुत्ते।
चाकर नहदा पाइनि घाउ।
रतु पितु कुतिहो चटि जाहु।

आ० ग्र०, वार मल्हार, पृ० १२८८।

हो उसमें संशय तथा क्षोभ उत्पन्न होना स्वाभाविक है। गुरु नानक ने निर्भय होकर सिकन्दर लोधी के अत्याचारों तथा बाबर के भारत पर धावों के समय किये अत्याचारों के विरुद्ध ज़ोरदार आवाज़ उठाई। उन्होंने ये अत्याचार अपनी आंखों से देखे थे। परमात्मा को सम्बोधन करते हुए गुरु नानक ने कहा—'हे सर्वशक्तिमान प्रभु! तूने यमदूतों के रूप में मुग़लों को भारत पर अत्याचार करने के लिये भेज दिया। चारो ओर मार-काट आरम्भ हो गई और निर्दोषों को जो मार पड़ी, क्या उनकी चीख-पुकार सुनकर तुम्हें दर्द अनुभव नहीं हुआ। यदि कोई शक्तिशाली दूसरे शक्तिशाली विरोधी को युद्ध में समाप्त कर देता तो कोई रोष न था, परन्तु यदि शेर, भेड़ों के समूह पर आ पड़े, तो भेड़ों के स्वामी से पूछना होता है कि उसने इनकी रक्षा क्यों नहीं की?"[1] यह हीरे जैसा देश कुत्तों ने नष्ट कर दिया और इसका मूल्य न समझा। भारत के इतिहास में गुरु नानक प्रथम महापुरुष हुए हैं जो समस्त भारत के विषय में चिन्तातुर थे। वह लिखते हैं, "हे प्रभु! तूने खुरासान को बाबर के धावों से बचाया परन्तु भारत को उसके अत्याचार के डर में डाल दिया।" इस देश की धार्मिक तथा सामाजिक स्वाधीनता के लिये दो गुरु तथा उनके अनेक शिष्यों ने बलिदान दिए और जब और कोई चारा न रहा तो उन्होंने तलवार उठाई थी।

गुरु नानक ने बादशाही तथा राज्य-प्रभुता के समस्त सिद्धान्तों को नया रूप दिया। उनका सिद्धान्त था, "तख्त बहे तख्त के लाइक" (आ० ग्र० मारू) जो सिंहासन के योग्य है, वही सिंहासन पर बैठे। "राजे ओइ न आखीअहि भिड़ि मरहि फिरि जूनी पाहि।" (वार वडहंस, पृ० ५९०) "राजा तख्त टिकै गुणी भै भंचाइन रतु।" (मारु ९९२)

बादशाही तथा राज्य सत्ता के अधिकारी वे नहीं जो राष्ट्रों को लड़ा-भिड़ा कर अपनी सत्ता का विस्तार करने में लगे रहते हैं। जो अपने गुणों के कारण राज्याधिकार प्राप्त करते हैं वही सच्चे नेता तथा राजनैतिक मुखिया बन सकते हैं। "सच्ची पातशाही," सच्चे गुरु तथा पैगम्बर में है। वह मीरी (सांसारिक राज्य सत्ता) तथा पीरी (आध्यात्मिक सत्ता) का स्वामी है। उसी के द्वारा एक सच्ची पातशाही आज गुरु-ग्रन्थ में स्थित है। इस सिद्धान्त के द्वारा गुरु साहिब

---

१. खुरासान खसमाना कीआ हिंदसतानु डराइआ।
आपै दोसु न कोई करता जमु करि मुगल चढ़ाइआ।
एती मार पई कुरलाणे तैं की दरदु न आइआ।
जे सकता सकते कउ मारे तां मनि रोस न होई।
सकता सीहु मारे पै वगै, खसमै सा पुरसाई।
रतन विगाड़ि विगोए कुती, मुइआ सार न काई।

आ० ग्र०, आसा, पृ० ३६० ।

ने इस धरती पर धर्म का राज्य, जिसे 'रामराज्य' भी कहा जाता है, स्थापित करने का प्रयास किया। गुरु नानक प्लेटो के इन विचारों से सहमत थे कि "जब तक राजा दार्शनिक नहीं बनते और दार्शनिक राजा नहीं बनते, नगरों में से अथवा मानव जाति में से दुःख दारिद्रय दूर नहीं हो सकता और न ही आदर्श राज्य प्रबन्ध बन सकता है।"[1] गुरु नानक के शब्दों में हम कह सकते हैं कि "जब तक गुरु-मुख तथा ब्रह्मज्ञानी पुरुष राजा नहीं बनते, और जब तक राजा गुरुमुख तथा ब्रह्मज्ञानी नहीं बनते, नगरों के दुःख दारिद्रय दूर नहीं हो सकते।" सामाजिक तथा राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त करनी मानव-जाति का जन्मसिद्ध अधिकार है।

७. मूल आध्यात्मिक सिद्धान्त

अनेक आध्यात्मिक तथा दार्शनिक शब्द जो सिख धर्म के सैद्धान्तिक ग्रन्थों में प्रयुक्त हुए हैं वे पूर्व तथा पश्चिम के धार्मिक ग्रन्थों में भी प्रयुक्त हुए हैं परन्तु सिख धर्म में इन शब्दों का आंतरिक भाव तथा आध्यात्मिक अर्थ, कोषों में दिए गए साधारण अर्थों से भिन्न है और हिन्दू अथवा बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों के सैद्धान्तिक भावों से भी भिन्न है। इन सैद्धान्तिक शब्दों का विश्लेषण अभी तक सिख विद्वानों ने भी अच्छी तरह नहीं किया।

गुरु का सिद्धान्त—हिन्दू विचारधारा तथा धर्म ग्रन्थों में शब्द 'गुरु' को अनेक अस्पष्ट भावों में प्रयुक्त किया है। 'गुरु' शब्द पिता, पूर्वज, बुजुर्ग पंडितों तथा अध्यापक के लिए प्रयुक्त होता है। साधारणतः 'गुरु' शब्द इन पंडितों तथा पुरोहितों क लिए प्रयुक्त होता है जो हिन्दु बच्चों को जनेऊ धारण कराते समय मंत्र देते हैं। सिख धर्म में 'गुरु' शब्द का प्रयोग केवल निरंकारी अवतार, सच्चे पैगम्बर जो सत्यता एवं ज्ञान में परमात्मा का ही रूप हों तथा प्रत्येक पहलू से योग्य पुरुष हों—के लिए होता है। परन्तु 'गुरु' परमात्मा नहीं है बेशक परमात्मा के समस्त गुण एवं पूर्णता उसमें मौजूद है। गुरु को या तो जन्म से ही निराकार का पूर्ण ज्ञान होता है या जीवन में किसी समय उसे ब्रह्म की ज्योति तथा स्वरूप के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं।

---

१. (i) प्लैटो "रिपब्लिक", पुस्तक ५।
(ii) जो श्रेष्ठ मानदण्ड द्वारा राज्य करता है वह ध्रुव नक्षत्र के समान अटल है, जिसके आगे शेष समस्त नक्षत्र नतमस्तक होते हैं। यदि तुम लोगों पर कानून के माध्यम से शासन करो और उन्हें सजाओं की धमकी दे दे कर दबाकर रखो तो वे सजाओं से बच कर कानून का उल्लंघन करने के उपाय ढूंढ लेंगे। इस प्रकार उनकी भ्रष्ट बुद्धि तथा निर्लज्जता और बढ़ जाएगी।"

कन्फ्यूशियस: एनालेक्ट्स: पुस्तक २, १, ३

सतगुरु की प्रेरणा तथा उसकी दिव्य कला का उसके शब्दों द्वारा, उसकी वाणी द्वारा, हमारे मन, हृदय तथा चेतना में प्रवेश होता है। वह हमारे आंतरिक जीवन को बदलकर हमें मानव से देवता बनाने में समर्थ है।[1] पूरे गुरु के व्यक्तित्व तथा उसके शब्दों में निरंकार की ज्योति तथा तेजस्वी कला निरंतर व्याप्त हो रही है। यही ज्योति, यही प्रकाश, हमारा मानसिक अंधकार दूर करने में समर्थ है। इस गुरु-ज्ञान बिना अंधकार ही अंधकार है।[2]

गुरु की शब्द ज्योति लिव-मार्ग (भगवान की लगन में लगे) पर चल रहे सिख के ध्यान में जगमगा उठती है।[3] उसका रोम रोम सच्चे प्रेम की चन्दन-सी सुगन्धि से सुगन्धित हो उठता है। गुरु के अटल-अमर व्यक्तित्व में तथा गुरु की वाणी में निराकार ने स्वयं अपनी पूर्ण ज्योति प्रदान की है।[4] स्वयं उसमें अपनी पारस-कला का प्रवेश किया है। इसलिये सिख धर्म में गुरु की ज्योति युग-युगांतरों से अटल और ज्ञान का दीपक बनकर अंधकार दूर करने में समर्थ रही है। यह प्रत्यक्ष और साथ-साथ प्रज्ज्वलित ज्योति की पारस-कला, गुरमुखों एवं महापुरुषों द्वारा साध-संगत द्वारा तथा गुरु वाणी द्वारा प्रत्येक स्थान पर प्रकट है।[5]

शब्द —सिख धर्म के अध्यात्मवाद में शबद-सिद्धान्त की विशेष महिमा है। 'शबद' पारब्रह्म की सृजन-शक्ति है। शबद परम-तत्त्व का यथार्थ-रूप है। 'शबद' दैवी-ज्ञान का स्रोत है। शबद परमात्मा की चेतन शक्ति है। 'शबद' सच्चे निरंकारी गुरु का वाक्‌रूप में सच्चा स्वरूप है। 'शबद' सच्चे गुरु का निर्गुण रूप है और गुरु के आत्मिक व्यक्तित्व का साकार रूप है। भाई खेड़े को गुरु नानक ने आज्ञा दी, "सत्‌गुरु तथा परमात्मा में भेद नहीं समझना और धर्म

---

१. बलिहारी गुर अपने दिउंहाडी सदवार।
जिनि मानस ते देवते कीए करत न लागी वार। गुरु नानक : आसा दी वार १—१

२. जे सउ चंदा उगवहि, सूरज चड़हि हजार।
ऐते चानण होंदिआं, गुर बिनु घोर अंधार। आसा दी वार १—२

३. जोति जोति जगाई दीवा बलिआ।
चन्दन वास निवास वनस्पत ढालिया। भाई गुरदास २२ : ८.

४. (i) गुर में आप रखिआ करतारे। आ० ग्र० नानक मारु, पृ० १०२३।
(ii) अनन्य श्रद्धालु तथा गुरु के सम्बन्ध, एक दूसरे में लीन हो जाने के भी हो सकते हैं। शिष्य गुरु की आत्म चेतना में प्रविष्ट हो जाता है। सिख धर्म में सिख के गुरु से एकाकार हो जाने के आत्मिक सम्मिलन वाला विचार अत्यन्त प्रबल रहा है। गुरु केवल एक सिख से अभेद नहीं अपितु समस्त पंथ के साथ एकाकार है और सिखों की समस्त जत्थेबन्दी में उसकी शक्ति व्याप्त है। सिख-पंथ उनका गुरु आज भी जीवित है। ईसाई मत में सेंट जान तथा सेंट पाल ने इसी प्रकार के विचार प्रकट किए हैं।

५. सिडनी स्पेंसर : "मिस्टिसीज़्म आफ वर्ल्ड रिलिजन्स", पृ० ३३०।

से परिश्रम करके अतिथियों एवं सिखों के साथ बांट कर खाना। तुम सदैव मेरे शरणागत हो। शरीर मेरा सगुण है और 'शबद' रूपी मेरा हृदय निर्गुण रूप है। यदि शरीर के साथ मिलोगे तो पुनः विछोह होगा, और यदि 'शबद' से मिलोगे तो वियोग नहीं हो पायेगा।' इसलिये 'शबद' गुरु है। 'शबद' गुरु की ब्रह्मस्वरूप आत्मा है जो परमात्मा से निरंतर आत्मसात रहती है।[2]

नाम—परमात्मा का नाम भी है और स्वरूप भी। उसका स्वरूप सांसारिक दृष्टि के लिए अदृष्ट है। महापुरुषों ने उसके स्वरूप को, उसके नाम द्वारा प्रकट किया है। परमात्मा के नाम उसके गुणों के आधार पर भी रखे गये हैं। ऐसे नामों को कृत्रिम नाम कहते हैं। परमात्मा के कृत्रिम नामों का कोई अन्त नहीं। 'सतनाम' वह नाम है जो गुरु अथवा पैगम्बर के अनुभव से उत्पन्न होता है। 'सतनाम' की दीक्षा लेकर जब जिज्ञासु निरन्तर साधना में लीन हो जाता है, तो उसके हृदय में परमात्मा का तत्त्व स्वरूप प्रकट होता है। इस प्रकार 'सतनाम' में परमात्मा की साक्षात्-ज्योति तथा वास्तविकता प्रकट करने की पारसकला रहती है।

"नावैं अन्दर वसां नाउ वसै मनिआई।
वाझ गुरु गुबार है विन सबदै बूझ न पाई।
गुरमति परगाश होई सचि रहै लिव लाई।
तिथै कालु न संचरै जोती जोति समाई।"

आ० ग्र० सिरी राग, पृ० ५५।

इस प्रकार नाम की ज्योतिकला मानव आत्मा के परमात्मा को प्राप्त करने की रहस्यमयी कुंजी है। नाम के स्मरण, जाप, ध्यान द्वारा जीव परमात्मा से एकाकार प्राप्त करता है। प्रभु के सच्चे ध्यान तथा स्मरण द्वारा उसमें लीन हो सकता है। सिख धर्म में नाम-जाप की साधना को 'सिमरन' कहते हैं, इस्लाम में इसे जिकर कहते हैं। इसका भाव है, परमात्मा का श्वास-प्रतिश्वास स्मरण। सिख धर्म तथा सूफी-मत में 'सिमरन' की युक्तियां भी एक समान हैं।

आवागमन एवं पुनर्जन्म—एक सिख के लिए अतीत जीवन वर्तमान का ही अंग है और वर्तमान जीवन असीम भविष्य का आधार बनता है। जीवन का प्रवाह शाश्वत-काल के लिए प्रवहमान है। कई बार यह प्रवाह विकास को प्राप्त करके उन्नति की ओर चलता चला जाता है और कई बार अधोगति के चक्कर में फंसकर रसातल में जाकर योनियों के गढ़े में पड़ जाता है। सिख-

---

१. 'सिखां दी भगत माल' रचयिता भाई मनीसिंह, पृ० ३५।
२. (i) 'शबद गुरु सुरत धुन चेला'—सिद्ध गोष्ठ।
(ii) [illegible] आ० ग्र० सोरठ, पृ० ६३४, [illegible] पृ० ६४४, सवैया ४, पृ० १४१७।

धर्म में आवागमन एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तों में अन्तर है। मनुष्य जन्म में आत्मिक उन्नति के लिए जन्म लेना आवागमन नहीं। महापुरुष उद्धार के लिए मानव जन्म लेते हैं, यह आवागमन नहीं है। महापुरुष, पीर, पैगम्बर, अवतार; ब्रह्म द्वारा भेजे जाने पर आते हैं और उसका मिशन पूरा करके पुनः परमात्मा की शरण में जा पहुँचते हैं।[1] जो आत्माएँ यहाँ पर पाप ही कमाती हैं वे जन्म-मरण के गढ़े में फँसकर, आवागमन में योनियां भुगतती हैं। सिख-धर्म में इस आवागमन को ही नरक माना गया है।[2]

परमात्मा की कृपादृष्टि—परमात्मा की कृपादृष्टि का सिद्धान्त गुरु-मत के सभी सिद्धान्तों का प्राण है। उसकी कृपादृष्टि के बिना कोई आत्मिक उन्नति संभव नहीं। कृपादृष्टि परमात्मा की प्रेमपूर्वक देन है और यह प्रेम-भेंट श्रद्धालु की साधना तथा सच्ची लग्न के अनुकूल होती है। यह कृपादृष्टि कभी प्रेरणा के रूप में, कभी सतोगुणी देन के रूप में होती है।[3] कृपादृष्टि, मनुष्य की इच्छाशक्ति अथवा आत्मस्वतंत्रता में विघ्न नहीं डालती, परन्तु मनुष्य का अहंकार, उसका अहं तथा अज्ञानता कृपादृष्टि की निरन्तर वर्षा की बूंद मानवात्मा पर नहीं पड़ने देते। जो अहंकारी पुरुष ज्ञान तथा सत्यता के विरोधी होते हैं, केवल वही कृपादृष्टि से शून्य रहते हैं।

८. गुरुमत रहस्यवाद

सिख का आत्मिक जीवन, दृढ़ साधन, अहं के अभाव तथा ध्यान-मग्नता के द्वारा प्रफुल्लित होता हुआ, उस तत्त्व अनुभव की उच्चतम अवस्था तक जा पहुँचता है जहां वह संसार में ऐसे रहता है जैसे कीचड़ भरे तालाब में कमल

---

१. घल्ले आवै नानक, सद्दे उठी जाइ।

आ० ग्र० सारंग, पृ० १२३९।

२. चौरासी नरक साकत भोगाइआ।
जैसे कीचै तैसे पाइया।

आ० ग्र० मारू, पृ० १०२६।

३. (i) "बगुले ते फुन हंसला होवै जे तूं करहि दइआला।" आ०ग्र० बसंत, पृ० ११७१।
(ii) "करमि मिलै सचु पाइऐ धुरि बखस न मेटै कोई।" आ०ग्र० सिरी राग, पृ० ६२।
(iii) "परमात्मा अपनी पूर्ण कृपादृष्टि मे भरपूर कर सकता है।" कौरिंथीयंज, ९ : ८।
(iv) "मानव स्वतन्त्रता और कृपादृष्टि की मुक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। कृपादृष्टि मुक्ति प्रदान करती है, मानव स्वतन्त्रता मुक्ति लेती भी है और देती भी है।" (सेंट वर्नार्ड।)

अपनी सुन्दरता एवं सुगन्धि को कीचड़ से निर्लिप्त रखकर फलता-फूलता है। उसका व्यक्तित्व एवं निजत्व उसे अपने तत्त्व रूप में दिखाई देने लगता है। उसे गुरुमत में आतम को पहचानना कहते हैं परन्तु आत्मपरिचय 'गुरुमत' में अंतिम उद्देश्य नहीं है। गुरुमत में यह आतम राही का प्रथम पड़ाव है। आतम का रसिक सिख केवल प्रसन्नता एवं मस्ती की अवस्था को बहुत पीछे छोड़ जाता है। अपनी सत्ता को परमात्मा की ज्योति-स्वरूप सत्ता के साथ ओत-प्रोत करना 'गुरुमत' रहस्यवाद का मुख्य मनोरथ है। इस मस्ती की दशा में वह परमात्मा में आत्मसात हुआ अनुभव करता है। परमात्मा उसके लिये कोई मर्म अथवा रहस्य नहीं रह जाता। सभी संशय मिट जाते हैं। अंधकार दूर हो जाता है। ब्रह्मांड में एकरस निरतंर ज्योति का प्रसार अनुभव हो जाता है।

'योगवशिष्ठ' के रचयिता ने निर्वाण अथवा तूरीय अवस्था की प्राप्ति के साधना मार्ग में सात पड़ाव बताए हैं। ईसाई मत की सर्वश्रेष्ठ तपस्विनी संत थरेसा ने अपनी पुस्तक 'इंटीरिअर कॉसल' (आंतरिक महल) में ईसाई रहस्यवाद के भी सात पड़ाव बताए हैं। गुरु नानक ने 'जपजी' साहिब में 'गुरुमत रहस्यवाद' के पांच पड़ाव इस प्रकार चित्रित किए हैं :

प्रथम पड़ाव : धर्म खण्ड—यह धरती, यह संसार, मानव सृष्टि की धर्मशाला है जिसमें प्राणियों को नैतिक एवं आध्यात्मिक साधनों के माध्यम से सत्य की खोज करनी है। इसलिए यह धरती मानव-धर्म की धर्मशाला है। यह सत्य की कोठरी है। इस मंदिर में ही सच्चे आत्मिक एवं मानवीय जीवन का आनन्द उठाया जा सकता है।

द्वितीय पड़ाव : ज्ञान खण्ड—अज्ञानता, आत्मिक प्रवृत्तियों को भ्रष्ट करती है। जहां अज्ञानता है वहां अधंकार है। जहां ज्ञान का प्रचंड प्रकाश है वहां जीवन नाद की ध्वनि गूंज उठती है। वहां आनन्द की लहरें ठाठें मारने लगती हैं। उज्ज्वल बुद्धि तथा उदात्त हृदय द्वारा प्राप्त किया गया ज्ञान ही सत्य के पथिक को निर्वाण-प्राप्ति के कठिन मार्ग पर चलने के लिए सीधी रेखा स्पष्ट करता है।

तृतीय पड़ाव : श्रम खण्ड—जहां केवल सत्य का ही प्रकाश है, उस अवस्था तथा उस मंडल तक पहुंचने के लिए श्रम (साधना, प्रयत्न) की आवश्यकता है। इसे श्रम खण्ड इसलिए भी कहा गया है कि परमात्मा इस अवस्था में भक्तों का मान रखता है। संस्कृत शब्द 'श्रम' का भाव आनन्द-मगंन भी है। इस खण्ड में निरंतर साधना से सूक्ष्म-शक्ति उत्पन्न होती है। साधक का समस्त [illegible] [illegible], सुरत, मन, तथा आत्मिक दृष्टिकोण नया नयी बुद्धि धारण कर लेता है। यहां साधना के माध्यम से समस्त सिद्धियां तथा आंतरिक शक्तियां प्राप्त होती हैं।

चतुर्थ पड़ाव : कर्म खण्ड—ब्रह्म की भेंट तथा कृपादृष्टि सिख रहस्यवाद का मूल सिद्धान्त है। परमात्मा की कृपादृष्टि उसी पर होती है जो उसके प्रेम में अपने आपको खो देता है। इस अवस्था में मृत्यु का भय नष्ट हो जाता है और सच्चे योद्धाओं की सच्ची शूरवीरता हृदय में समा जाती है। अहं का नितान्त अभाव हो जाता है और पथिक सूफी दरवेश रूसो के समान कह उठता है, "मेरा अहं बिलकुल समाप्त हो गया, मेरे भीतर केवल उसी का निवास है।" यह है कर्मखंड की पूर्ण कृपादृष्टि की अवस्था, जिसमें गुरु का सिख परमात्मा के निरंतर ध्यान में अपना जीवन व्यतीत करता है।

पंचम पड़ाव : सच्चा खण्ड—सिख की आत्मिक साधना की उस अन्तिम एवं उच्चतम अवस्था में परम तत्व और परम सत्य की पूर्ण ज्योति सत्य मार्ग के पथिक के हृदय में जगमगा उठती है। उच्चतम अवस्था में सिख पूर्ण ज्योति के साथ मिलकर पूर्ण पुरुष बन जाता है। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में इस अवस्था के लिए अनेक नाम प्रयुक्त किए गए हैं। इसे शून्यमंडल, तूरीयावस्था, निर्वाण पद, सहजावस्था तथा बेगम पुरा भी कहा गया है। सिख धर्म में शून्यावस्था बौद्ध-मत के शून्य से भिन्न तथा विलक्षण है। यह परिपूर्ण निरंतर परमात्मा की स्वयंभू-स्वरूप चुप्पी की अवस्था है जहाँ उसकी ज्योति जगमगाती है और जिसमें अनहद-नाद की गूंज स्पष्ट रूप में सुनाई देती है।[1]

प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक जैकस मारिटेन ने ठीक ही कहा है, "अनेक दार्शनिक सिद्धान्त समस्त धर्मों में एक ही अर्थ नहीं रखते। यहूदी मत में एकेश्वर-वाद का सिद्धान्त ईसाई मत के एकेश्वरवाद के सिद्धान्त से भिन्न है। अपरम्पार तथा दिव्य मुक्ति के विषय में जो विचार ईसाइयों के हैं वे मुसलमानों के नहीं। इसी प्रकार पश्चिम के विद्वानों का आत्म, मुक्ति, कृपादृष्टि, प्रकृति, अवतार तथा वाणी के प्रकाश के विषय में जो विचार है वह पूर्व के विचारकों का नहीं।

---

१. (i) चारे वेद कथहि आकार
तीन अवस्था कहहि वखिआन
तूरीआ अवस्था सतिगुर ते जान

आ० ग्र० गऊड़ी, पृ० १५४।

(ii) तूरीआ अवस्था गुर मुखि पाई औ सत सभा की ओर लही, पृ० ३५६।

(iii) तूरीय अदृष्ट है, अकथनीय है, अगम्य है, चक्कर चिन्ह से मुक्त है, अचिन्तनीय है, अनाम है, आत्मज्ञान का तत्व है, संसार प्रपंच का सार है, शान्ति है, दयास्वरूप है, अद्वैत है, यह है चौथा पद चौथा स्थान (चतुरधाम)

मांडूकोपनि प ७।

(iv) डा० डी०टी० सुजुकी अपनी पुस्तक 'मिस्टीकिज्म, क्रिश्चियन एंड बुद्धिस्ट' में लिखते हैं "महायान बौद्धमत में अथवा जैन बुद्धमत में शून्य का भाव शून्य (खाली) नहीं। यह यथार्थ आत्मिक अवस्था है, पृ० २९।

भारत में प्रचलित अहिंसा तथा दान विषयक विचार, ईसाइयों के अहिंसा तथा दान के विचारों से भिन्न हैं।[1]

९. सार तत्त्व

गुरु नानक का सिख धर्म सर्वसहयोगी आध्यात्मिक सिद्धान्तों तथा परम तत्त्व सत्य सम्बन्धी सर्वपक्षीय अनुभव का स्वर्ण-मन्दिर है जिसमें से प्रत्येक प्राणी, सत्यमार्ग का प्रत्येक पथिक, दिव्य ज्ञान तथा उत्तेजना प्राप्त कर सकता है। शर्त केवल एक है, वह इसमें पग धरते हुए इस स्वर्ण-मन्दिर में देदीप्यमान विश्व-दीपक का अपमान अथवा इसके प्रति अवहेलना दिखलाने की अज्ञानता न करे। जो प्रेरणा तथा प्रेम-उत्तेजना उसे इसमें से प्राप्त हो वह हठपूर्वक उससे अलग रहने का कुप्रयास न करे। समस्त आत्मवादी, समस्त धर्मों के परम तत्व सत्य के जिज्ञासु, समस्त श्रेष्ठ धर्मों के पथिक अपनी वंश परम्परागत, राजनैतिक, राष्ट्रीय तथा सामाजिक विलक्षणता त्यागे विना ही गुरु नानक के धर्म के शाश्वत मूल्यों को अपना सकते हैं; और परमात्मा के तत्त्व ज्ञान तथा अटल सच्चाई का दिव्य-आलोक प्राप्त कर सकते हैं।

---

१. दी रिलिजन आफ [illegible], पृ० ८४६ ।

: ७ :

गुरु नानक का धर्म, इस्लाम तथा सूफी मत

प्रो० एम० मुजीव

प्रत्येक धर्म में सार तथा गुण होते हैं, तथा आत्मिक अनुभूति और आध्यात्मिक तत्त्वों का एक ऐसा अनिर्वचनीय क्रोड होता है जो भाषा द्वारा संप्रेषित किए जाने तथा पूजन और सामाजिक संस्थाओं के प्रारूपों में प्रत्यक्ष होने से बन जाता है। ये तत्त्व आध्यात्मिक अनुभूति को ऐतिहासिक प्रक्रिया का एक अंग बना देते हैं, तथा प्रवृत्तियों, संस्कारों और आर्थिक सम्बन्धों की सम्पूर्ण वर्तमान व्यवस्था फिर एक सामाजिक, संशोधक तथा साम्यान्वेषी प्रभाव के रूप में काम करने लगती है। सिख इतिहास को भी इसी संदर्भ में देखना होगा। लेकिन यहां हम सिख इतिहास पर, या बाद के नौ गुरुओं में मूल अनुभूति की पुष्टि पर विचार नहीं करेंगे। केवल गुरु नानक पर तथा इस सवाल पर विचार करेंगे कि क्या उन पर इस्लाम का, तथा भारत में इस्लाम के अत्यन्त सशक्त आध्यात्मिक रूप सूफीमत का कोई प्रभाव पड़ा था या नहीं।

इस्लाम और गुरु नानक के मत में ये समानतायें दीखती हैं, एक ईश्वर में विश्वास, जो अनुभवातीत के साथ-साथ अन्तर्यामी है, जो सारी मानव जाति का ईश्वर है और जिसका कोई भौतिक रूप नहीं है, मानव-मानव की समानता, आत्मिक तथा सांसारिक जीवन का पूजन तथा सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह का जैवी एकरूपीकरण, सामुदायिक जीवन जो श्रम, पूजन तथा अर्जन के उदार विभाजन पर आधारित हो, सत्संग अथवा धार्मिक आदर्शों को व्यक्त करने का माध्यम जिसका रूप है, संगठित सामुदायिक रहन-सहन तथा प्रार्थना स्वरूप ईश्वर गुण गान अर्थात् 'जिक्र'। इन समानताओं की सरलतम व्याख्या करने के लिए गुरु नानक के परिवेश को, मुसलमानों के एकेश्वरवाद को, तत्कालीन जाति व्यवस्था को, जो सामाजिक रूप से अनुचित तथा अनैतिक थी, सूफियों द्वारा अपने मत प्रचार को, भक्ति आन्दोलन द्वारा विभिन्न मतों के संश्लेषण की तैयारी को, विवेचित करना जरूरी है और फिर यह दिखाया जा सकता है कि उस समय के मुसलमानों तथा हिन्दुओं की कैसी हालत थी, उसको देखते हुए गुरु नानक के लिये दोनों में से किसी के भी धर्म के साथ अपने को एकाकार करना असंभव था। गुरु नानक के सार के सम्बन्ध में साधारण तौर पर इसी प्रकार का अध्ययन किया जाता है। धर्म के तत्त्वों और, उस ऐतिहासिक

प्रक्रिया, के मूल्यांकन—जिसने सिख धर्म को उसका रूप दिया, यह साबित किया जा सकता है कि या तो सिख धर्म अपने हिन्दू वातावरण में खोया हुआ अर्द्धांश से अधिक इस्लामी मत ही है, अथवा यह एक संशोधित हिंदू धर्म है जिसमें कुछ इस्लामी सिद्धान्त, विशेष रूप से जातिविहीन समाज की धारणा सुधार के रूप में अपना ली गई है।

जहां तक बाहरी तथ्यों का सम्बन्ध है, इस प्रकार की व्याख्या पर्याप्त लग सकती है। इतिहास में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जब कि एक समुदाय ने दूसरे समुदाय के विचारों तथा विश्वासों को ग्रहण किया। साथ ही लाभ के लिये अथवा सच्चे हृदय परिवर्तन के कारण भी धर्म-परिवर्तन के बहुत से ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। लेकिन इतिहास में ऐसे आत्मिक अनुभव का, ऐसे ज्ञान का भी प्रमाण मिलता है जो एक रचनात्मक शक्ति के रूप में अपनी ही जीवन-शक्ति द्वारा एक नये धर्म तथा समाज को जन्म देता है। नये धर्म के स्वभाव तथा इसकी जीवन-शक्ति की दृढ़ता के आधार पर ही हम मूल आत्मिक अनुभव के गुण की परख कर सकते हैं।

इस्लाम के अनुसार मूल सत्य मानवता के सामने प्रत्यक्ष रूप से कोई दूत या पैगम्बर ही रखता है। तार्किक रूप से इस प्रकार का प्रत्येक दूत अन्तिम होगा, वह अपने साक्षात्कार को अपूर्ण नहीं कह सकता अथवा, वह लोगों को दूसरे पैगम्बर की प्रतीक्षा करने के लिए नहीं कह सकता। इस सार्वजनीन तथा मूल धर्म का सार एक ईश्वर में विश्वास है। अब तक प्राप्त हमारे ज्ञान के अनुसार एकेश्वरवाद का प्रथम प्रचारक मिस्र का फैरो चतुर्थ 'आमेनोफिस' था (१३८०-१३६२ ई० पूर्व०)। अपने सर्वोच्च देवता 'आतोन' को वह अपनी एक प्रार्थना में कहता है, 'ओ एकमात्र प्रभु, जो अद्वितीय मेरी दृष्टि से परे तुम्हारी और सृष्टि कितनी है? तुमने जैसा चाहा, इस पृथ्वी को बनाया, केवल तुमने इस पृथ्वी पर मनुष्य, पशु तथा जंगली जीव दिये, जो कुछ धरा पर है, पर तथा नभचर भी तुमने ही बनाये। शाम तथा न्यूबिया और मिस्र तुम्हारी ही रचना है। हर आदमी की देखभाल तुम ही करते हो। उसे खाना देते हो और उसकी जीवन अवधि नियत करते हो'।[1]

मिस्री लोग अपने फ़रऊन (फैरो) के समान आध्यात्मिक रूप में संवेदनशील नहीं थे तथा आमेनोफिस चतुर्थ की मृत्यु के बाद एक परमेश्वर के प्रति धारणा भी लोगों में न रही। किन्तु "एकमात्र ईश्वर में, जो अद्वितीय है" विश्वास बार-बार प्रकट होता रहा। फिर भी, यदि हम यहूदियों, ईसाइयों तथा मुसलमानों के धार्मिक इतिहास को देखें, तो पायेंगे कि एक ईश्वर में

---

१. ए० [illegible], [illegible] हिस्टोरिकल [illegible], लंदन, [illegible], पृ० [illegible]।

विश्वास या तो किसी धार्मिक मत, अथवा स्वभाव के रूप में सामने आता है, जो पात्र के चिन्तन को प्रवृत नहीं कर पाता, अथवा यह विश्वास सूफ़ियों के शब्दों में, एक "हार्दिक घटना" है, एक प्रकार का दैवी प्रकाश जो स्वतः, स्वतंत्र तथा मौलिक है। यदि यह विश्वास अद्वैतवाद को मानने वाले मुस्लिम समाज पर लागू हो सकता है तो यह मानना तो बिल्कुल ग़लत ही होगा कि एक सच्चे ईश्वर में गुरु नानक का अदम्य तथा सच्चा विश्वास उन्हें किसी प्रकार की निधि से संप्रेषित हुआ होगा। पंद्रहवीं तथा सोलहवीं सदी के पंजाब के सामाजिक जीवन का कल्पनाशील पुनर्अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि उस समय मुसलमान अपने ही हितों के लिए राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग कर रहे थे तथा रह-रहकर वे जो अत्याचार करते थे, उसके कारण हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचती थी। ऐसी अवस्था में यह संभव नहीं दीखता कि मुसलमानों का अद्वैतवाद संवेदनशील हिन्दुओं को आकर्षित करता। गुरु नानक के जन्म से पहले तीन सौ से भी अधिक वर्षों से मुसलमान पंजाब में रहने आए थे, अतः इस्लामी एकेश्वरवाद, गुरु नानक के समय में अपना अद्‌भुत नयापन खोकर सामान्य मत के रूप में स्थापित हो चुका था। हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण भी नहीं कि अपने प्रारंभिक काल में गुरु नानक किसी ऐसे मुसलमान के संपर्क में आए हों जो सामान्य को अद्‌भुत नये में बदल देता। इसलिए, जैसा कि सिखों के धार्मिक इतिहासों में उल्लिखित है, गुरू नानक का 'प्रकाश' उन्हें प्रत्यक्ष तथा तत्काल और ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से सर्वथा स्वतंत्र रूप में प्राप्त हुआ होगा।

प्रबुद्धता प्राप्त करने के शीघ्र ही बाद, कहा जाता है, गुरु नानक ने यह गूढ़ वाक्य कहा, "न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान।" इसका अर्थ यह निकाला जा सकता है कि उनके विचार में हिन्दू-मुसलमान, दोनों ही सत्य पथ से डिग चुके थे। किन्तु अपने ही ताजे अनुभव के शीघ्र बाद वह सम्भवतः कोई निश्चित कथन की ही ओर प्रवृत्त होते, न कि किसी आलोचनात्मक मूल्यांकन की ओर, यद्यपि उनके बाद के पदों में इस प्रकार का पर्याप्त मूल्यांकन हुआ है। "न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान", इसी को शायद दूसरे शब्दों में कहा गया, "न हिन्दू-धर्म है, न इस्लाम, मुझे जो दर्शन हुआ है, मुझे जो मुक्ति अभी मिली है, वही सत्य है।" और यदि गुरु नानक का तात्पर्य यही था तो भी हमें इसे हिन्दू मत तथा इस्लाम मत का खंडन नहीं समझ लेना चाहिए बल्कि प्रत्यक्ष तथा संप्रेपित अनुभवों के बीच होने वाले आवश्यक संघर्षों का प्रकटीकरण मानना चाहिए। इस लेख में हिन्दू-धर्म पर हम विचार नहीं कर रहे। ईश्वर को स्वयं जानने का दावा करने वाले मुस्लिम सूफ़ियों को अपने उन विश्वासों को, जिन्हें वे अपने अनुभवों के बल पर मानने को बाध्य थे, अधिक स्पष्टता तथा खुलेपन से व्यक्त

करने में सावधानी बरतनी होती थी। मन्सूर हल्लाज ने घोषणा की थी कि वह 'हक़' (सत्य) है, और इसके लिए उसे अपनी जान की कीमत देनी पड़ी। उसका उदाहरण दूसरों के लिए सबक बन चुका था। सामान्यतः सूफी 'किताबों' को अस्वीकार करने तक ही सीमित रहते, क्योंकि 'लिखित' का विश्वास संप्रेषणीयता की क्रिया द्वारा सीखा गया था। इसकी जगह वे 'अवस्था' यानी आध्यात्मिक स्थिति को मानते, जिसके द्वारा मनुष्य अपने निर्माण के साथ सीधा सम्बन्ध जोड़ता है। एक अन्य सूफी, अबु सुलेमान अल-दारानी ने कहा है, "सूफी वह है जिसमें वह स्थितियाँ प्रवेश करती हैं जिनका ज्ञान केवल ईश्वर को ही है, और जो ईश्वर के साथ ऐसी विधि से हैं जो केवल ईश्वर को ही ज्ञात है।" जहाँ ईश्वर के साथ सम्बन्ध इतना प्रत्यक्ष तथा अवर्णनीय है, वहाँ किसी मध्यवर्ती की मान्यता असंगत लगती है।

ईश्वर के सम्बन्ध में गुरु नानक ने जो कुछ कहा है, उससे हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं। जहाँ तक इस्लाम का प्रश्न है, उन्होंने **मिया मीठा** को दिये गये अपने जवाब में इसे स्पष्ट कहा है :

"पहला नाम खुदा का है, उसके दरवाजे पर कई पैगम्बर खड़े हैं।"

यह किसी पैगम्बर के प्रति अनास्था नहीं है, वास्तव में यह इस इस्लामी सिद्धान्त की पुष्टि ही तो है कि संसार के सभी लोगों के लिए ईश्वर के दूत भेजे गये हैं। पर इससे यह भी अर्थ निकलता है कि किसी दूत विशेष को मान लेने का मतलब हुआ संप्रेषित आत्मिक अनुभव को मान्यता देना, और यदि ऐसा किया गया तो एक दरवाजे को खोलने के लिए कई ईश्वरीय पैगम्बरों की समस्या उठ खड़ी होगी, फिर उनमें से किसको चुनें? यह कहा जा सकता है कि मुसलमान पैगम्बर को स्वीकार लेने का अर्थ होता न केवल सारी इस्लामी धार्मिक परम्परा को मान लेना बल्कि अपनी निजी आत्मिक अनुभूति को भी मान्यता देना तथा वह सब-कुछ कह सकने की आजादी का परित्याग जिसे गुरु नानक आवश्यक तथा सत्य समझते थे।

सम्भवतः इसकी प्रकृति वही समझ सकता है जिसे दर्शन अथवा 'हार्दिक घटना' का अनुभव हो, किन्तु वह भी इसे भाषा के सिवा और किसी माध्यम से नहीं व्यक्त कर पायेगा। भाषा का प्रयोग हुआ नहीं कि अनुभव से असम्बद्ध कई तरह की अन्य बातें जुड़ने लगती हैं। बिना नाम दिये कोई ईश्वर को सम्बोधित नहीं कर सकता लेकिन किसी भी नाम के प्रयुक्त होते ही, पहले से ही नाम को स्मरण करने वालों की आस्थाएँ इस आत्मिक अनुभूति का अंग बन जाती हैं, तथा यदि दोनों में विश्वास की पूर्ण एकता न भी हो तो भी [illegible] समानता तो दिखने ही लगती है और इससे काफी भ्रम पैदा हो सकता है। दूसरी ओर, ईश्वर का कोई भी नाम जो साधारण [illegible] का अंग बन चुका

है अगर नकार दिया जाए तो उसके साथ ही उस नाम के साथ जुड़ी हुई सारी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ भी अपनी मान्यता खो बैठेंगी, जिसकी सम्भवतः अपेक्षा न की गई हो। न कबीर साहब और न गुरु नानक को यह छूट मिली कि वे ईश्वर के प्रचलित नामों का व्यवहार न करें, और चूँकि उन्होंने हिन्दू तथा मुस्लिम, दोनों नामों का प्रयोग किया, इसलिए यह धारणा बनती है कि उनका आध्यात्मिक उद्देश्य विश्वासों का ऐसा संश्लेषण तैयार करना था जो सत्य का उच्चतर रूप होता, क्योंकि यह सर्वथा हिन्दू या इस्लामी न होने के नाते दोनों सम्प्रदायों को मान्य होता। किन्तु, इस प्रकार की युक्तियों द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता में भले ही मदद मिलती हो, तो भी इससे सत्य प्रतिभासित नहीं होता। धर्म सदा ही विभेद प्रेरक है, किन्तु वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूति सदा ही जोड़ती है, गुरु नानक की आत्मिक अनुभूति जोड़ने वाली शक्ति थी, क्योंकि वास्तविक थी, जोड़ने की शक्ति रखने के कारण यह वास्तविक होने का दावा नहीं करती। गुरु नानक ने हरि, मुरारी तथा रहीम और सत् कर्त्तार जैसे नामों से ईश्वर को पुकारा, केवल इसलिए हम अरबी और संस्कृत, इतिहास और दर्शन में न उलझ जाएं। ये तो उनकी उस आत्मिक अनुभूति के रूपमात्र हैं जो उन्हें बाह्य गुणों से सार की ओर ले गये। भाषाजन्य उलझनों से हम बच तो नहीं सकते, लेकिन हमें भरसक यह भी करना होगा कि हम शब्दों और नामों को, एक असंप्रेषणीय अनुभूति के स्थान पर बराबरी का दर्जा देने की भूल न करें।

यदि हम गुरु नानक के दैवी दर्शन को मौलिक मानते हैं तो उनका आग्रह भी आवश्यक और तर्कपूर्ण मानना होगा कि किसी को हम ईश्वर के रूप में न जानें तथा ईश्वर का कोई भौतिक प्रतीक नहीं है। वह एक नये धर्म के जन्मदाता थे, धर्म सुधारक नहीं। वह किसी स्थित धर्म में विश्वास करने वाले प्रचारक नहीं थे जो कुछ मान्यताओं के पक्ष या विपक्ष में बोलने के लिए ग्रन्थों का उदाहरण देते, वे अपने कथनों के लिए अपने-आप में प्रमाण थे। कोई कारण न था कि वे हिन्दुओं को, जिनके यहाँ वे स्वयं जन्मे थे, अथवा दूसरे धर्म वालों को जो उनकी सीख सुनने आते थे, तुष्ट या समायोजित करने की चेष्टा करते। कोई वजह न थी कि वे इतिहास का हवाला देकर बताते कि उनके समान मत वाले अन्य भी थे। मूर्ति पूजा के विरुद्ध बोलकर वह मुस्लिम विश्वासों का समर्थन नहीं कर रहे थे। उन्हें यह स्पष्ट दिखाई दिया होगा कि मूर्तियों और मंदिरों को तोड़ने की निर्मम प्रथा ने कुछ मुसलमान शासकों को अत्यन्त अप्रिय बना दिया था, तथा उन दिनों भी मुसलमान शासकों के हाथ में इस प्रथा को कायम रखने का अवसर था, जो कि गुरु नानक के अपने सहनशील स्वभाव के अत्यन्त विरुद्ध था।

एकेश्वरवाद की कल्पना से भी अधिक स्पष्ट रूप में, ईश्वर के समक्ष सबकी

समानता की भावना, सरसरी निगाह डालें तो, इस्लाम से ली गई दीखती है, या यह जाति व्यवस्था पर उसी प्रहार की एक कड़ी है जिसे भक्ति ग्रान्दोलन ने गति दी थी। जहाँ तक प्रथम संभावना का प्रश्न है, इसमें शक नहीं कि इस्लाम समतावादी समाज का निर्देश देता है। किन्तु भारतीय मुसलमानों में समतावादी समाज नहीं था। जाति तथा खानदान के ग्राधार पर समाज बंटा हुग्रा था, खास तौर पर मध्य एशिया के तुर्क तथा ताजिकों, पठानों तथा भारतीय मुसलमानों में। योग्य हों या न हों, सैय्यदों को सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त था। दर्जे को नजरग्रन्दाज करना भारी खतरा मोल लेना था। जनतांत्रिक मुस्लिम ग्रभिवादन "ग्रस-सलाम-ओ-ग्रालेकुम" केवल बराबरी के लोगों के लिए था। दरबारों में इसका व्यवहार नहीं होता था, तथा दूसरी जगहों पर, जहाँ ग्रोहदा या पद का फ़र्क गहरा होता, इस ग्रभिवादन के साम्यभाव को हटाने के लिए इसे शरीर को झुका, तथा माथे पर हाथ लाकर ग्रदा करना पड़ता। महदवियों से बादशाह ग्रौर दरबारी बहुत नाराज़ होते थे, क्योंकि कुरान के ग्रादेश के ग्रनुसार वे बराबरी के व्यवहार का प्रचार करते थे। ग्रौर कारणों के ग्रलावा उन्हें इसके लिए भी बहुत यातनायें सहनी पड़ीं थीं। भक्ति सम्प्रदाय में जिस समता का दिग्दर्शन हुग्रा है, वह सामाजिक से अधिक ग्राध्यात्मिक है। ग्रपनी स्वीकृति के लिए इसे मनुष्य की सद्भावना पर, न कि उस ईश्वर के स्पष्ट तथा सम्पूर्ण ग्रादेश पर जो सर्वेश्वर है, निर्भर करना होता था। जिस रूप में गुरु नानक ने मानव-समानता सिखाई वह केवल "हृदय की घटना" ही हो सकती थी, जिसका एक ईश्वर में विश्वास के साथ ग्रत्यन्त निकट सम्बन्ध था।

इस्लाम तथा गुरु नानक की सीख में समानता का एक ग्रौर विषय है 'सहज' की कल्पना, उचित जीवन की इच्छा, जो मनुष्य की स्वभावगत प्रवृत्तियों द्वारा पनपती है। 'सहज' की यह कल्पना उस तपस्या तथा ग्रात्मपीड़न के विरुद्ध है जिनका व्यवहार इसलिए किया जाता है कि मनुष्य की वासनामय ग्रनेकानेक इच्छाएं उसकी ग्रात्मप्राप्ति के मार्ग में बाधक होती हैं। इस्लाम के ग्रनुसार धार्मिक जीवन प्रकृति पर ग्राधारित है, तथा "ईश्वर मनुष्य से उतना ही मांगता है जितना वह दे सकता है।" तपस्या तथा ग्रात्मपीड़न मना है। लेकिन यहां भी, एकेश्वर-ग्रास्था की भांति ही, इस्लाम एक सार्वलौकिक प्रकृति को ही समर्पन देता है। बुद्ध ने ग्रात्मपीड़न तथा ग्रात्म-लिप्सा, दोनों की भर्त्सना की है, तथा मानव स्वभाव के तारों को उतना ही कसने को कहा है कि जिससे उसमें से उचित स्वर निकल सकें। तार यदि ग्रधिक कसे हुए या ग्रधिक ढीले हों तो ठीक स्वर नहीं निकल पाते। डेल्फी के भविष्यवक्ता ने, जिसके निर्देश यूनानी धार्मिक जीवन का ग्राधार हैं, सन्तुलन के पालन की सलाह दी है। जोरोएस्टर (जरथुस्त्र) तथा कन्फ्यूशियस ने भी सामान्य जीवन की ही सराहना की है।

उनका आदर्श वह गृहस्थ है जो कार्यरत तथा परिवार वाला है, और ऐसी निष्ठा के साथ ईश्वर की आराधना करता है जो उसके समस्त जीवन में व्याप्त हो। लेकिन यह सरल आदर्श प्रभावकारी नहीं दीखता, क्योंकि इसमें कोई चमत्कार नहीं है, और इसी कारण इसे निरन्तर ही प्रदर्शनवाद से मोर्चा लेना पड़ा है, जो दृढ़तापूर्वक किन्तु ग़लत ही आध्यात्मिकता का मुख्य चिह्न समझा जाता रहा है।

सच्ची लगन के साथ उपासना करने वाले गृहस्थ, जो अपने मानव बंधुओं की सेवा करता है, का आदर्श उम्मैयद शासकों तथा अरब क़बीलों के कारण मुसलमानों में लुप्त हो गया था, क्योंकि वे इस्लाम को अपनी पैतृक सम्पत्ति समझते तथा राजनीतिक शक्ति के जोर पर अपने दावे सिद्ध करते। इसे उचित स्थिति में लाने का भरसक प्रयत्न सूफियों ने किया। शेख अबुब शिबली के मतानुसार सूफी वह है जो सारे मानव समूह को अपना रिश्तेदार माने और इस नाते उनकी रक्षा तथा सेवा करे। और यह प्रचारक भी पैगम्बर के इस कथन की उपेक्षा न कर पाये कि जो अपनी कमाई खाता है, वह ईश्वर का मित्र है। जहां भी इस्लाम का प्रचार हुआ, कामगारों को हैसियत मिली, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि शक्ति लोलुपता तथा सच्चे अर्थों में धार्मिक तथा पवित्र लोगों की इस पर नियंत्रण कर सकने में असमर्थता ने इस्लाम के सामाजिक मानदंडों तथा आदर्शों को उलट-पुलट दिया। हम यह कह सकते हैं कि गुरु नानक का आदेश, "किरत करो, नाम जपो, बाँटकर खाओ" उनके जमाने के मुसलमानों के लिए उतना ही सार्थक था जितना किसी दूसरे सम्प्रदाय के लोगों के लिए। यदि हमें ठीक समानता की तलाश हो तो मुसलमानों के आचरण में नहीं, बल्कि सुदूर जर्मनी में गुरु नानक के समकालीन मार्टिन लूथर (१४८३-१५४६) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त में समानता मिलेगी, क्योंकि इस जर्मन दार्शनिक ने मनुष्य के सांसारिक कर्मों को पवित्रता का बोध दिया था।

समानता या सदृशता का दूसरा स्थल सूफियों की शेख तथा गुरु नानक की गुरु सम्बन्धी कल्पना है। यहां हमारे सामने दो समानान्तर आध्यात्मिक आन्दोलनों का पेचीदा आदर्श आ खड़ा होता है और ऐसे प्रश्न उठते हैं जिन पर विस्तृत विचार होना चाहिए। शायद सबसे प्रथम प्रश्न तो यही होगा कि 'गुरु" शब्द से गुरु नानक का क्या अभिप्राय था, जबकि स्वयं उनका कोई आध्यात्मिक उपदेशक या पथ-प्रदर्शक नहीं था। क्या उनका इशारा ईश्वर की ओर था, जो निर्देश तथा ज्ञान का अनन्त स्रोत है, अथवा एक आदर्शपूर्ण मानव प्रदर्शक, जो कोई भी हो सकता है ? यह प्रश्न ऐसा है जिसका हल सिख धर्मज्ञ तथा दार्शनिक ही प्रस्तुत कर सकते हैं।

गुरु नानक की सामुदायिक रहन-सहन की संस्था, मूलतः कुछ सूफी व्यवस्थाओं के खानक़ाहों से जुदा न थी। किन्तु यहाँ भी हम एक ऐसे विचार को देखते

हैं जो अपने-आप में तर्कसंगत तथा प्रायः व्यापक है। एक तरह के विश्वास वाले तथा एक ऐसा जीवन-जीने वाले मनुष्य अवश्य ही सामुदायिक रहन-सहन के तौर-तरीके ढूंढ़ निकालते हैं और विहार, मठ, आश्रम तथा खानक़ाह, ये सब एक सामुदायिक जीवन आदर्श की साम्यता तथा विशिष्ट भेदों को प्रस्तुत करते हैं।

शायद यह अजीब लगे कि मैं मुसलमान होकर भी इस विचार का विरोध कर रहा हूँ कि गुरु नानक पर इस्लाम का प्रभाव था। लेकिन इस्लाम का एक मूल सिद्धान्त यह है कि 'दीन'—सच्चा धर्म—समस्त मानव जाति के समक्ष प्रत्यक्ष हो चुका है और जब यह कहा जाता है कि गुरु नानक की सीख एक स्वतंत्र तथा मौलिक आत्मिक अनुभूति को प्रस्तुत करती है, तो यह इस्लामी सिद्धान्त निर्बल नहीं, बल्कि और परिपुष्ट हो जाता है। सिख न मुसलमान के प्रति, मुसलमान न सिख के प्रति इस स्थल पर पारस्परिक आभार से दबे हैं, एक की दूसरे द्वारा किसी भी पुष्टि से अपने-अपने धर्म में उनका विश्वास और अधिक सबल ही होता है। अपने सत्य पथ पर यदि वे मजबूती से चलते जाएँ तो देखेंगे कि उनके पथ तथा उद्देश्य समान ही हैं। यह देखना अपने-आप में एक आत्मिक अनुभूति, एक "हृदय की घटना" होगी, ईश्वर के उस कथन की पूर्ति होगी जो उसने, मौलाना जलालुद्दीन रुमी द्वारा कही गई एक कहानी के अनुसार, मोज़ेज को कहा था :

"तुम्हें तोड़ने के लिए नहीं, जोड़ने के लिए भेजा गया है।"

: ८ :

गुरु नानक तथा हिंदू विरासत

डा० के० एल० शेषगिरी राव

कभी-कभी यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या गुरु नानक ने मानवता को किसी नवीन सत्य का सन्देश दिया, या उन्होंने केवल भारतीय दाय या विरासत को, विशेषरूप से उपनिषदों तथा भगवद्गीता में उपलब्ध सिद्धान्तों को ही प्रतिध्वनित किया। मेरे विचार में यह प्रश्न न उचित है और न न्यायसंगत क्योंकि एक तो, इस प्रश्न द्वारा हम इस ऐतिहासिक तथ्य को नज़रअन्दाज करते हैं कि संसार के महान पथ प्रदर्शक न केवल ऐतिहासिक आवश्यकताओं के अनुरूप जन्म लेते हैं बल्कि वे इतिहास निर्माता भी होते हैं। दूसरे इस प्रश्न द्वारा हम इस तथ्य की भी उपेक्षा करते हैं कि प्रत्येक नई वस्तु शीघ्र ही पुरानी पड़ जाती है, सिवा सत्य के जो सनातन है।

सत्य अकाल है, प्राचीन होते हुए भी आधुनिक है, शाश्वत है। जपुजी के प्रारम्भिक अंश में ही गुरु नानक ने इसे स्पष्ट किया है—

'आदि सचु जुगादि सचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥'

गुरु नानक ने किसी नये सत्य का नहीं, बल्कि इसी चिरन्तन सत्य का, दुनिया को सन्देश दिया था। अतः उनकी शिक्षाएँ आज भी उतनी ही संगत तथा प्रासांगिक हैं जितनी पाँच सौ वर्ष पहले उनके जीवन काल में थीं।

यह बात ध्यान योग्य है कि संसार के किसी भी धर्म-संस्थापक ने यह दावा कभी नहीं किया कि उसने संसार को सर्वथा नवीन सत्य प्रदान किया है। प्रत्येक ने केवल चिरन्तन सत्य के संप्रेषण का ही दावा किया है। तो भी संप्रेषण की प्रक्रिया में हर धर्मशिक्षक ने अवश्य ही अपनी विरासत से, जिसमें जन्मा-पला, शब्दावली तथा धारणाएँ अपनाई हैं। ईसा मसीह ने यहूदी-धर्म से तथा बुद्ध ने ब्राह्मण-धर्म से विचार लिये हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वे दोनों क्रमशः यहूदी तथा ब्राह्मण विश्वासों तथा आचरणों का समर्थन करते हैं। इसी प्रकार, गुरु नानक ने भी अपने हिंदू दाय की भाषा तथा रूपों का उन्मुक्त व्यवहार किया। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने सारे हिन्दू विश्वासों तथा आच-रणों का समर्थन किया। वास्तव में वे ऐसी रीतियों की साफ तथा खुले शब्दों में निन्दा तथा खंडन करने में अग्रणी थे जिनसे उनकी नैतिक तथा धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचती थी।

गुरु नानक ने चिरन्तन सत्य का साक्षात्कार किया था तथा उन्होंने दूसरों को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया था। उन्होंने वेदों अथवा उपनिषदों का प्रमाण के लिए सहारा नहीं लिया था। उनका मनःसत्य उन्हें पुस्तकों से नहीं मिला था, यह सत्य तो उन्हें संपूर्ण जीवन के प्रकाश के रूप में प्राप्त हुआ था। उनकी समस्त रचनाओं में "नानक कहै, नानक कहै" का स्वर मुख्य है। उन्होंने ईश्वरीय प्रेम के गीत गाये थे। उनके हृदय की परिपूर्णता से संदेश निकले थे—ईश्वर प्रेम का संदेश मानवीय बंधुत्व तथा सभी प्रकार के मानवीय सम्बन्धों में प्रेम के नियम का संदेश। उन्होंने अपने संदेश को जनसाधारण की समझ में आनेवाली भाषा में प्रचारित किया था जो आगे चलकर 'गुरुवाणी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह 'गुरुवाणी' तब से ही, दबाव और तनाव तथा दुःख और मृत्यु के क्षणों में, मानवता के लिए सान्त्वना तथा शांति के संदेश देती रही है। हृदय को छूने वाले इसके अनन्त आकर्षण ने सदा ही मानवता को ऊपर उठाया है। 'गुरुवाणी' का अद्वितीय उपहार भारत तथा संसार के लिए गुरु नानक का एक चिरस्थायी योगदान है।

अब एक दो उदाहरणों द्वारा मैं यह दिखाना चाहूँगा कि गुरु नानक ने अपने हिन्दू संस्कारों से आगे जाकर चिरन्तन सत्य को अपने समय की समस्याओं तथा आवश्यकताओं से रचनात्मक रूप से जोड़ दिया। हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धों की दूभर समस्या, जिसका उन्हें सामना करना पड़ा, एक ज्वलन्त उदाहरण है। दोनों लड़ाकू सम्प्रदायों के बीच की शत्रुता के कारण व्यापक दुःख फैला हुआ था। गुरु नानक ने अपने बंधुओं को यह समझा दिया कि सच्चा धर्म दुखियों को आराम पहुँचाने की चेष्टा करेगा, न कि निरंकुशता अत्याचार तथा अन्याय की स्थापना में सहायक होगा। धर्म का काम यह नहीं है कि वह मनुष्यों के बीच भौतिक अथवा भावात्मक दीवारें खड़ी करे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि सत्य सार्वभौमिक है, तथा यह जोड़ने वाली शक्ति है, तोड़ने वाली नहीं। उन्होंने सभी धर्मों के मूल सत्य पर जोर डाला तथा हिन्दुओं से अधिक अच्छे हिन्दू तथा मुसलमानों से अधिक अच्छे मुसलमान बनने का आग्रह किया। उनके उपदेश सर्वथा असाम्प्रदायिक हैं। इस्लाम तथा हिन्दू धर्म, दोनों के अनुयायियों के प्रचलित संकीर्ण विचारधारा को उन्होंने दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने दोनों जातियों की पारस्परिक एकता तथा शान्ति बनाकर उन्हें परस्पर निकट लाने की चेष्टा की। एक ईश्वर के उपासकों के बंधुत्व के लिये उन्होंने काम किया। अन्तर्धार्मिक सम्बन्धों के प्रति उनके विचार अब भी सत्य हैं तथा आज भी उतने ही सच्चे हैं। हमारे समय में महात्मा गांधी ने इस दिशा में कई पीढ़ी के बाद गुरु नानक के आदर्शों का अनुसरण किया है।

अब 'अछूत समस्या' को लीजिए। गुरु नानक ने इस अमानवीय प्रथा का

: ८ :

गुरु नानक तथा हिंदू विरासत

डा० के० एल० शेषगिरी राव

कभी-कभी यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या गुरु नानक ने मानवता को किसी नवीन सत्य का सन्देश दिया, या उन्होंने केवल भारतीय दाय या विरासत को, विशेषरूप से उपनिषदों तथा भगवद्गीता में उपलब्ध सिद्धान्तों को ही प्रतिध्वनित किया। मेरे विचार में यह प्रश्न न उचित है और न न्यायसंगत क्योंकि एक तो, इस प्रश्न द्वारा हम इस ऐतिहासिक तथ्य को नजरअन्दाज करते हैं कि संसार के महान पथ प्रदर्शक न केवल ऐतिहासिक आवश्यकताओं के अनुरूप जन्म लेते हैं बल्कि वे इतिहास निर्माता भी होते हैं। दूसरे इस प्रश्न द्वारा हम इस तथ्य की भी उपेक्षा करते हैं कि प्रत्येक नई वस्तु शीघ्र ही पुरानी पड़ जाती है, सिवा सत्य के जो सनातन है।

सत्य अकाल है, प्राचीन होते हुए भी आधुनिक है, शाश्वत है। जपुजी के प्रारम्भिक अंश में ही गुरु नानक ने इसे स्पष्ट किया है—

'आदि सचु जुगादि सचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु॥'

गुरु नानक ने किसी नये सत्य का नहीं, बल्कि इसी चिरन्तन सत्य का, दुनिया को सन्देश दिया था। अतः उनकी शिक्षाएँ आज भी उतनी ही संगत तथा प्रासांगिक हैं जितनी पाँच सौ वर्ष पहले उनके जीवन काल में थीं।

यह बात ध्यान योग्य है कि संसार के किसी भी धर्म-संस्थापक ने यह दावा कभी नहीं किया कि उसने संसार को सर्वथा नवीन सत्य प्रदान किया है। प्रत्येक ने केवल चिरन्तन सत्य के संप्रेषण का ही दावा किया है। तो भी संप्रेषण की प्रक्रिया में हर धर्मशिक्षक ने अवश्य ही अपनी विरासत से, जिसमें जन्मा-पला, शब्दावली तथा धारणाएँ अपनाई हैं। ईसा मसीह ने यहूदी-धर्म से तथा बुद्ध ने ब्राह्मण-धर्म से विचार लिये हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वे दोनों क्रमशः यहूदी तथा ब्राह्मण विश्वासों तथा आचरणों का समर्थन करते हैं। इसी प्रकार, गुरु नानक ने भी अपने हिंदू दाय की भाषा तथा रूपों का उन्मुक्त व्यवहार किया। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने सारे हिन्दू विश्वासों तथा आच-रणों का समर्थन किया। वास्तव में वे ऐसी रीतियों की साफ तथा खुले शब्दों में निन्दा तथा खंडन करने में अग्रणी थे जिनसे उनकी नैतिक तथा धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचती थी।

गुरु नानक ने चिरन्तन सत्य का साक्षात्कार किया था तथा उन्होंने दूसरों को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाया था। उन्होंने वेदों अथवा उपनिषदों का प्रमाण के लिए सहारा नहीं लिया था। उनका मन:सत्य उन्हें पुस्तकों से नहीं मिला था, यह सत्य तो उन्हें संपूर्ण जीवन के प्रकाश के रूप में प्राप्त हुआ था। उनकी समस्त रचनाओं में "नानक कहै, नानक कहै" का स्वर मुख्य है। उन्होंने ईश्वरीय प्रेम के गीत गाये थे। उनके हृदय की परिपूर्णता से संदेश निकले थे—ईश्वर प्रेम का संदेश मानवीय बंधुत्व तथा सभी प्रकार के मानवीय सम्बन्धों में प्रेम के नियम का संदेश। उन्होंने अपने संदेश को जनसाधारण की समझ में आनेवाली भाषा में प्रचारित किया था जो आगे चलकर 'गुरुवाणी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह 'गुरुवाणी' तब से ही, दबाव और तनाव तथा दुःख और मृत्यु के क्षणों में, मानवता के लिए सान्त्वना तथा शांति के संदेश देती रही है। हृदय को छूने वाले इसके अनन्त आकर्षण ने सदा ही मानवता को ऊपर उठाया है। 'गुरुवाणी' का अद्वितीय उपहार भारत तथा संसार के लिए गुरु नानक का एक चिरस्थायी योगदान है।

अब एक दो उदाहरणों द्वारा मैं यह दिखाना चाहूँगा कि गुरु नानक ने अपने हिन्दू संस्कारों से आगे जाकर चिरन्तन सत्य को अपने समय की समस्याओं तथा आवश्यकताओं से रचनात्मक रूप से जोड़ दिया। हिन्दू-मुसलमान सम्बन्धों की दूभर समस्या, जिसका उन्हें सामना करना पड़ा, एक ज्वलन्त उदाहरण है। दोनों लड़ाकू सम्प्रदायों के बीच की शत्रुता के कारण व्यापक दुःख फैला हुआ था। गुरु नानक ने अपने बंधुओं को यह समझा दिया कि सच्चा धर्म दुखियों को आराम पहुँचाने की चेष्टा करेगा, न कि निरंकुशता अत्याचार तथा अन्याय की स्थापना में सहायक होगा। धर्म का काम यह नहीं है कि वह मनुष्यों के बीच भौतिक अथवा भावात्मक दीवारें खड़ी करे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि सत्य सार्वभौमिक है, तथा यह जोड़ने वाली शक्ति है, तोड़ने वाली नहीं। उन्होंने सभी धर्मों के मूल सत्य पर जोर डाला तथा हिन्दुओं से अधिक अच्छे हिन्दू तथा मुसलमानों से अधिक अच्छे मुसलमान बनने का आग्रह किया। उनके उपदेश सर्वथा असाम्प्रदायिक हैं। इस्लाम तथा हिन्दू धर्म, दोनों के अनुयायियों में प्रचलित संकीर्ण विचाराधारा को उन्होंने दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने दोनों जातियों की पारस्परिक एकता तथा शान्ति बढ़ाकर उन्हें परस्पर निकट लाने की चेष्टा की। एक ईश्वर के आराधकों के बंधुत्व के लिये उन्होंने काम किया। अर्न्तधार्मिक सम्बन्धों के प्रति उनके विचार अब भी सत्य हैं तथा आज भी उनकी बड़ी जरूरत है। हमारे समय में महात्मा गांधी ने इस दिशा में बड़ी खूबी के साथ गुरु नानक के पदचिह्नों का अनुसरण किया है।

अब 'अछूत समस्या' को लीजिए। गुरु नानक ने इस अमानवीय प्रथा का

ज़ोरदार विरोध किया तथा इसे समाज से निकालने की कोशिश की। वे इससे भी आगे गये। अपने बन्धुओं की विचारधारा तथा उनकी मनोवैज्ञानिक वृत्तियों में भी आमूल परिवर्तन करने की ओर वे सचेष्ट हुए। उन्होंने हिन्दू वर्णव्यवस्था अर्थात् ऊँच और नीच जातीय भावना को ही न केवल नकार दिया, वल्कि छूत-छात की प्रथा की पूरी तरह निंदा की। उन्होंने घोषित किया कि जन्म के कारण नहीं, अपितु सद्कार्यों के कारण ही मनुष्य अपनी उत्तमता का दावेदार हो सकता है। उन्होंने लंगर की संस्था कायम की, जहाँ भाईचारे के नाते सभी जातियों के लोग अथवा जातिविहीन लोग, उच्च तथा नीच, एक साथ खाते थे। इस संस्था के द्वारा जो तब से अब तक सिख समुदाय द्वारा कायम और पोषित है, गुर नानक ने 'छूत-छात' की प्रथा पर जवर्दस्त आघात किया। इस स्थल पर भी महात्मा गांधी ने गुरु नानक द्वारा पाँच सो वर्ष पहने चलाई हुई कार्य-योजना और सिद्धान्त का उल्लेखनीय अनुसरण किया है।

मेरे विचार में गुरु नानक की सवसे महत्वपूर्ण देन यह है कि उन्होंने एक ऐसी जीवन शैली का निर्माण तथा प्रस्तुतीकरण किया जो सत्य के अनुकूल थी। उन्होंने 'सत्य आचरण' पर बहुत बल दिया। उन्होंने कहा—"सत्य सर्वोपरि है, किन्तु सत्याचरण उससे भी ऊपर है।" गुरु नानक ने परम सत्य को 'अकाल मूरत' तथा 'कर्ता पुरख' का नाम दिया है, तथा उसे जीवन का पथ प्रदर्शक माना है, तथा यह दिखाया है कि ईश्वर-प्रेम द्वारा निर्भयता तथा निःस्वार्थता की प्राप्ति होती है। उनके लिये सत्य आचरण 'ईश्वरीय इच्छा' के अनुसरण द्वारा ही प्राप्त होता है। उन्होंने यह सीख दी कि—मनुष्य को चाहिए कि वह ईश्वर के प्रति भक्ति तथा आत्मसमर्पण का जीवन जिए।

गुरु नानक ने अपने शिष्यों को कहा कि वे ईश्वर की शक्ति और उसकी अनुकम्पा के अन्तर्गत संसार में रहें। उन्होंने अपने हिन्दू वन्धुओं से कहा कि—ईश्वर के सम्मुख उपवास तथा कर्म-कांडों का कोई मूल्य नहीं, तथा इनसे समाज के लोगों को कोई लाभ नहीं। उन्होंने अन्तर्मुखता, आध्यात्मिकता, ईश्वरी अभिधारणाओं, ईश्वरीय प्रसाद तथा प्रेम और कृतज्ञता से परिपूर्ण उसकी उपासना पर जोर दिया। अतः उन्होंने अपने शिष्यों को निरंतर ईश्वर के **नाम सिमरन** तथा मनुष्यों की **सेवा** की सीख दी। इस प्रकार की जीवन-शैली अपनाने वाले आत्म-त्यागी तथा रचनात्मक समुदाय के रूप में सामने आए जो व्यापक समाज में अव भी एक परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में मौजूद है।

हिन्दू परम्परा के ऐसे सभी तत्वों को गुरु नानक ने अस्वीकार किया जो इस परिवर्तनात्मक 'जीवन आचरण' के प्रतिकूल थे। उदाहरणार्थ, उन्होंने संन्यास की निन्दा की। उन्होंने उनकी भर्त्सना की जो जीवन-संग्राम से विमुख हो संन्यास की ओर चले जाते हैं। वे चाहते थे कि लोग बुराइयों से मुँह न

चुरायें, बल्कि उनका डटकर मुकाबला करें और उनपर विजय पायें। उन्होंने इस पर बल दिया कि मनुष्य अपने सभी कर्तव्य समाज में रहते हुए करे। उन्होंने संसार में सक्रिय जीवन को ही सर्वोत्तम जीवन माना। उन्होंने ईमानदारी से किये जाने वाले सभी व्यवसायों को धार्मिक जीवन के अनुकूल बनाया, तथा यह माना कि जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य अर्थात् मोक्ष मनुष्य समाज में रहते तथा काम करते हुए ही प्राप्त कर सकता है। परिणामस्वरूप उन्होंने गृहस्थ के विवाहित जीवन का महत्त्व बताया, इसमें उन्होंने प्रेम तथा ईश्वर प्राप्ति के अवसर देखे।

(सारांश यह कि गुरु नानक ने हिन्दू धर्म की अतियों तथा असमानताओं का कड़ा विरोध किया। उन्होंने धर्म को गंभीर तथा गहन अर्थों में लिया तथा इसे मनुष्य के लिए पुनः सार्थक तथा सोद्देश्य बना दिया।) उन्होंने धर्म की संस्था में जीवन की सम्पूर्णता देखी। उन्होंने हिन्दुओं का ध्यान धर्म के मूल अर्थ की ओर आकृष्ट किया, तथा धर्म को उन स्वार्थों तथा बाह्य तत्वों से मुक्त करने की कोशिश की जिन्होंने धार्मिक जीवन को दबा रखा था। एक निरन्तर परिवर्तनशील दुनिया में उन्होंने ईश्वर के नाम तथा उसकी इच्छा के रूप में स्थायी तत्वों को खोज निकाला। उन्होंने जीवन में ईश्वर को केन्द्रीय स्थान पर रखा तथा कहा कि यदि मनुष्य ईश्वर के सम्बन्ध में भ्रम रखता हो तो उसका अपना सम्पूर्ण जीवन ही भ्रमपूर्ण हो जाता है।

: ९ :

बुद्ध मत तथा प्रारंभिक सिख-मत*

एल० एम० जोशी

१२वीं शताब्दी के थोड़े ही समय बाद बुद्ध-मत भारतवर्ष से समाप्तप्राय: हो गया था। अकबर के राज्यकाल में ही यह धर्म विस्मृतप्राय: हो गया था। अबुल फजल का कथन है— 'काफी लम्बे अरसे से उनका (बौद्धों का) मुश्किल से ही कोई निशान भारतवर्ष में रह पाया था।'[१] इस कथन का अर्थ यह नहीं है कि हम इस तथ्य को भुला दें कि १६वीं शताब्दी में भी कश्मीर, बंगाल और दक्षिण-भारत में बौद्ध रहते थे।[२] तो भी, यह तो कहना ही होगा कि भारतवर्ष में बौद्ध-मत का पतन एक अप्रत्याशित अथवा तेजी से घटित त्रासदी नहीं था, बल्कि यह एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी जिसका विस्तार कई शताब्दियों में था। इस प्रक्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व थे—ब्राह्मण-धर्म की बौद्ध-धर्म के प्रति शत्रुता, ब्राह्मण-धर्म का बुद्ध-मत से पुनर्मेल, पौराणिक रूप में ब्राह्मण-धर्म का पुनरुत्थान और बौद्ध-धर्म का प्रच्छन्न रहस्यवाद में रूपान्तरण।[३] इस्लाम धर्म के अनुयायी तुर्की आक्रमणकारियों के मूर्तिभंजक आक्रोश और धार्मिक कट्टरता और उनकी भारत-विजय ने, रही-सही बौद्ध-धर्मानुयायी जनता को, जो विकृत सम्प्रदाय के रूप में कहीं-कहीं सांस ले रही थी, बिल्कुल समाप्त कर दिया। पर, भारतीय परिदृश्य से अन्तिम रूप से विदा होने के पूर्व, बौद्ध-धर्म भारतीय जनता के हृदयों में गहरे में प्रवेश पा चुका था और भारतीय जीवन, चिन्तन और संस्कृति के लगभग हर पक्ष को समृद्ध कर चुका था।[४]

---

* 'प्रारम्भिक सिख-मत' से आशय गुरु नानक और उनके शीघ्र बाद आने वाले गुरु अर्जन देव तक के परवर्त्तियों की शिक्षाएं जिन्होंने १६०४ में 'आदि ग्रंथ' को संकलित किया था।

१. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, जेरट, तृतीय (१८९४), पृ० २१२।

२. दी जरनल ऑफ दी ऐशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, १८९५, पृ० ५७।

३. अधिक जानकारी के लिए देखिये लेखक की पुस्तक 'स्टडीज इन दी बौद्धिस्टिक कल्चर ऑफ इंडिया' (७ वीं से ८ वीं शताब्दी तक) दिल्ली १९६७, अध्याय १२, पृ० ३९१-४०१।

४. देखिए एल० एम० जोशी की पुस्तक 'एसपेक्ट्स ऑफ बौद्धिजम इन एंशिएन्ट इंडियन कल्चर, महाबोधी जरनल, जिल्द ७५ (१९६७) दी कल्चरल हेरीटेज आफ इंडिया, द्वितीय संस्करण, जिल्द चौथी।

गुरु नानक का युग (१४६९-१५३९) प्रत्येक युग के समान, विगत विरासत के बोझ को उठाये था और बौद्ध-मत की विरासत की आंशिक चेतना होते हुए भी, यह युग, सचमुच इस विरासत से बोझिल था। सिख-मत के प्रथम गुरु यद्यपि गौतम बुद्ध के दो हजार साल बाद अवतरित हुए थे, उन्होंने ईश्वरीय आस्था की पद्धति और आत्म-संस्कार की संस्था का प्रवर्त्तन किया था, जिसके कई महत्वपूर्ण समानान्तर रूप बौद्ध-धर्म में मिल सकते हैं।

पहले 'सिख' शब्द को ही लें जिसका अर्थ है शिष्य अथवा गुरु का अनुयायी। इस शब्द का संस्कृत पर्याय है 'शिष्य'। पाली में ऐसे शब्द हैं जैसे सिक्ख (संस्कृत-सिखिया) अथवा शिष्य और गुरु का अनुयायी। बुद्ध की प्रसिद्ध उपाधियों में से एक है 'गुरु' जिसे संस्कृत में (शास्त) और पाली में 'सात्त' कहते हैं। उसे 'देवताओं और मानवों का गुरु' कहा गया है। (सात्त देवं मनुष्यानाम्) उन्हें गुरु (संस्कृत गुरु) अथवा शिक्षक और नायक अथवा नेता भी कहा जाता है। उनके अनुयायियों को 'श्रावक' कहा जाता है। सिख धर्म के सभी दस नायक गुरुओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। महायान के कई विशेषज्ञों ने प्राचीन बौद्ध-धर्म को 'शिष्यों का वाहन' अथवा 'श्रावकयान' के नाम से अभिहित किया है यानी बुद्ध के शिष्यों के सिद्धान्त और आचार। सिख-धर्म भी एक प्रकार का श्रावकयान ही है क्योंकि इसके अन्तर्गत गुरुओं के शिष्यों अर्थात् 'सिखों' के मत और साधना-पद्धतियाँ ही हैं। सिखों के अभिवादन के तीन शब्द—'सत् श्री अकाल' गहरे अर्थ से युक्त हैं। हम इन शब्दों के प्राचीन और परम्परागत अर्थ तो नहीं जानते, पर हम इन शब्दों के अर्थ को इस प्रकार समझते हैं—'सत्य उदात्त और अकाल है।' सत् का आशय है सत्य जिसे गुरु नानक 'ईश्वर' कहते हैं और बुद्ध 'धर्म' कहते हैं। 'श्री' का अर्थ है शोभाशाली महिमामय, गौरवशाली अथवा उदात्त।[1] 'अकाल' का अर्थ है अकाल (काल से मुक्त और परे), शाश्वत अथवा अमर। सिख धर्म का मर्म शाश्वत सत्य का यह विचार ही है जो अकाल है जिसे शुभ और शोभाशाली गुणों से युक्त एकमेव ईश्वर के रूप में भी प्राय: परिकल्पित किया गया है जो कभी-कभी निर्गुण ब्रह्म ही माना गया है।

यह एक दिलचस्प तथ्य है कि बुद्ध-धर्म में भी सत्य को 'धर्म' (पाली—'धम्म') कहा गया है जो 'आर्य', उदात्त और 'अकाल' है। बौद्ध-धर्म का प्रसिद्ध सिद्धांत 'अकलिको धम्मो' अकाल सत्य का ही रूप है। 'अकाल' का अर्थ है काल की सीमाओं से मुक्त यानी अतीत, वर्त्तमान और भविष्य की सीमाओं से परे, काल का अतिक्रमण करने वाला, जन्म, विकास और विनाश की प्रक्रिया से अछूता

---

१. 'श्री' सौभाग्य की देवी लक्ष्मी का भी नाम है।

और शाश्वत । इस प्रकार सर्वोपरि सत्य के अकाल ब्रह्म होने का विचार बुद्ध-धर्म और सिख धर्म में एक समान मिलता है।

गुरु नानक जिसे 'अकाल मूरति' कहते हैं वही पाली धर्म-ग्रंथों में 'अकलिको धम्मं' के नाम से अभिहित किया जाता है । तो भी, यह ध्यान में रखना महत्त्व-पूर्ण है कि 'कर्त्ता-पुरख' के रूप में सिखों की सत्य की जो धारणा है उससे प्रारंभिक बुद्ध-धर्म अनभिज्ञ था। परवर्ती बौद्ध-संघ न तो शून्यवादी था और न ही आस्तिकवादी, बल्कि परम निरपेक्षतावादी और गुह्य ज्ञानवादी था, जबकि सिख-धर्म स्पष्टतः अद्वैतवादी और भक्तिपरक मत है। बुद्ध-मत और सिख-मत में सर्वोच्च सत्य के सम्बन्ध में जो समानताएं-असमानताएँ हैं, उन्हें दोनों मतों के धर्म-ग्रन्थों से वाणियाँ उद्धृत करके दिखाया जा सकता है। साख्यमुनि को सत्य का जैसा साक्षात्कार हुआ था वह उन्हीं के शब्दों में यहाँ उद्धृत है :

"जिस सत्य का मैंने साक्षात्कार किया है वह गहन है, उसे देखना और समझना कठिन है, वह उत्तम, उदात्त और तर्कातीत है, वह सूक्ष्म है और केवल विवेकशील लोग ही उसे पा सकते हैं।"[1] सिख धर्म ग्रंथों का सब से अधिक महत्त्वपूर्ण उद्धरण जिसे सिख-धर्म का मूल मंत्र भी कह सकते हैं, इस प्रकार है—'ईश्वर केवल एक है। सत्य उसका नाम है। वह कर्त्ता-पुरख और अकाल मूरति है। वह भय और शत्रुता से रहित है। वह अजन्मा और स्वयं प्रकाशमान है। गुरु के अनुग्रह से ही उसका साक्षात्कार किया जा सकता है।'[2] ज़ाहिर है कि इस उद्धरण का महावाग्ग से उद्धृत वाणी से सामंजस्य नहीं बैठाया जा सकता।

ये दो उदाहरण बुद्ध-मत और सिख-मत के बुनियादी अन्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं। पर, यह दोनों मत एक दूसरे के वैसे विरोधी नहीं हैं जैसे कि इन उद्धरणों से प्रतीत होता है।

बुद्धमत के अनुसार जीवन का परम लक्ष्य निर्वाण है—ऐसी शान्ति जो बुद्धि द्वारा प्राप्य नहीं। यह वर्णनातीत है और सर्वोच्च स्वतन्त्रता की अतुलनीय स्थिति है। इसी के सम्बन्ध में बुद्ध निम्नलिखित शब्दों में कहते हैं—'ओ भिक्षुओ, वह (ब्रह्म) अजन्मा है, अनस्तित्व है, अनिर्मित और अमिश्रित है। ओ भिक्षुओ, यदि यह अजन्मा, अनस्तित्ववान, अनिर्मित और अमिश्रित न होता तो जन्म, अस्तित्व, निर्माण और मिश्रण छुटकारा पाने की वृत्ति भी न होती।"

१. महावाग्ग, सम्पादक: जगदीश कश्यप, नालन्दा, १९५६, पृ० ६।
२. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, अनुवादक मनमोहन सिंह, खंड १, अमृतसर (१९६२) पृ० १।
३. उदन पाली, viii, ३, ई० जी० थामस द्वारा लिखित 'ट्रांस्लेशन इन अरली बुद्धिस्टिक स्क्रिपचर्स,' लंदन (१९३५) पृ० ११०-१११।

सिख धर्म के अनुसार जीवन का अन्तिम लक्ष्य ईश्वरीय अनुभूति प्राप्त करना है। लेकिन यह ईश्वर अद्वितीय है। "वह अकाल है, अजन्मा है, जात-पांत और माया जाल से निर्लेप है। वह अतल है, अतीन्द्रिय है, निराकार और निर्गुण है।"[१] महायान बुद्ध धर्म में बुद्ध की परिकल्पना निरपेक्षवादी है। तथागत न तो कहीं से आते हैं और न ही कहीं जाते हैं।[२] स्वर्णप्रभात सूत्र के अनुसार—"न तो बुद्ध मरते हैं और न ही उनके सिद्धांत।"[३] गुरु के अनुसार भी "न तो वह मरता है, न ही विनष्ट होता है। न वह प्रादुर्भूत होता है और न ही अन्तर्धान।"[४] गुरु नानक की शिक्षाओं में ईश्वर का जो स्वरूप है कि वह अजन्मा और अकाल है, निराकार और निर्गुण है, वह महायान सूत्रों और शास्त्रों में उपलब्ध निर्वाण और तथागत के स्वरूप चित्रण के समतुल्य है।[५] ईश्वर की अथवा ब्रह्म की अनिर्वचनीयता, जिस पर गुरु नानक ने बार बार बल दिया है, की तुलना पाली, संस्कृत और बुद्ध धर्म-ग्रंथों में व्याप्त निर्वाण अथवा बुद्ध की अनिर्वचनीयता से की जा सकती है। उदाहरणतः, गुरु नानक, ईश्वर के सम्बन्ध में कहते हैं—"ईश्वर के नाम असंख्य हैं और असंख्य उसके आवास हैं।"[६] एक प्रसिद्ध पाली भाषा की पंक्ति याद हो आती है, "बुद्ध अनन्त रूप हैं और उनके धर्म भी अनन्त रूप हैं।"[७]

बुद्ध-मत और आरंभिक सिख-मत में अन्य भी कई दिलचस्प समानताएँ हैं। वे इस प्रकार हैं—

बुद्ध-मत और सिख-मत के प्रवर्त्तक मानवीय और ऐतिहासिक गुरु थे। बुद्ध-मत की उत्पत्ति शाक्यमुनि बुद्ध से मानी जाती है और सिख-मत की गुरु नानक से। यह बात ब्राह्मण धर्म अथवा हिन्दु धर्म में नहीं थी क्योंकि यह धर्म दैवी उत्पत्ति का दावा करता था।

सिद्धार्थ गौतम और बाबा नानक के आत्मकथात्मक ब्यौरों में भी कई समानताएँ हैं। (१) नानक का जन्म सिद्धार्थ के समान ही एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। (२) यह परम्परा सिद्ध है कि नानक सिद्धार्थ के समान ही वैशाख

---

१. भाई जोधसिंह, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में दिये गये भाई जोधसिंह के भाषण (१९५५) पृ० १५, ५४।
२. प्रज्ञापारमिता (दरभंगा संस्करण) पृ० २५६।
३. स्वर्णप्रभात सूत्र, सम्पादक एच० एडजुमी क्यातो, १९३१, पृ० १५।
४. भाई जोधसिंह, पृ० २४।
५. मध्यमाक् शास्त्र—तथागत, परीक्षा और निर्वाण परीक्षा अध्याय।
६. नानक वाणी, १० जयराम मिश्र, इलाहाबाद १९६१, पृ० ९७: और भी देखिए मैक्-आर्थर मेकालिफ 'दी सिख-रीलिजन', खंड २, पृ० २०५।
७. अपादान पाली, थीरापदान I. I. ८२।

मास में (अप्रैल-मई) जन्मे थे। (३) शिशु नानक के सम्बन्ध में हरदयाल की भविष्यवाणी, शिशु सिद्धार्थ के सम्बन्ध में ऋषि असित की भविष्यवाणी से अद्भुत साम्य लिए है। हरदयाल नानक की पूजा करते थे और उनकी यह घोषणा थी कि गुरु नानक पर आध्यात्मिक प्रभुसत्ता का प्रतीक—छत्र, झूलेगा, पर उन्हें इस बात का खेद था कि वे नानक की ज्ञान प्राप्ति तक जीवित नहीं रहेंगे।[1] (४) बुद्ध और गुरु नानक, दोनों ने अपने प्रारंभिक जीवन-काल में पारिवारिक जीवन बिताया था।[2] गुरु नानक ने गौतम बुद्ध के समान, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर अपनी शिक्षाओं का उपदेश दिया था। दोनों ही गुरुओं ने अपने मतों की शिक्षा लोक-भाषा में दी थी। बुद्ध ने अपने धर्म की शिक्षा पाली भाषा में दी थी और गुरु नानक ने अपनी शिक्षाओं के प्रचार के लिए प्राचीन पंजाबी भाषा का माध्यम अपनाया था। जैसा कि मेकालिफ ने कहा है—'सिख गुरु सीधे-सादे मनुष्य थे जिन्होंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए लोक-भाषा को चुना और पंडताऊ शब्दों और अलौकिक सूक्ष्मताओं से परहेज किया।'[3] बुद्ध ने भी आलस्यपूर्ण बंजर आधिभौतिकता के प्रति उदासीन दृष्टि ही रखी थी। मुक्ति की अपेक्षा वे व्यावहारिक मार्ग पर ज़ोर देते थे और वे मनुष्यता के हर भाग में अपनी शिक्षाओं को प्रसारित करना चाहते थे। अतः हम उनके उपदेशों में आम जीवन से गृहीत लोकप्रिय मुहावरों और सादे रूपकों को देख सकते हैं। पंजाबी भाषा के विकास का श्रेय, मुख्यतः, सिख-मत के प्रारंभिक गुरुओं को ही है जबकि भारतवर्ष और दक्षिण पूर्व एशिया में पाली भाषा के विकास का श्रेय भारतवर्ष के प्रारंभिक बौद्धों को है।

गुरु नानक, गौतम बुद्ध के समान ही सामाजिक और धार्मिक जीवन में पुरुषों और स्त्रियों की समानता के प्रतीक थे। बुद्ध के द्वारा भिक्षु समाग्रह की जो पद्धति स्थापित की गई, उसमें जाति, देश या रंग के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाता था। सभी भिक्षु विहारों में एक सा भोजन खाते थे और समाग्रह की प्रत्येक परिषद् की कार्रवाहियों में उन्हें मतदान का अधिकार था। गुरु नानक ने भी 'संगत' और 'लंगर' की संस्थाएं शुरू कीं जहां सभी बिना वर्ग, रंग, जाति और लिंग भेद के इकट्ठे भोजन करते थे। बुद्ध द्वारा समाग्रह और गुरु नानक द्वारा 'लंगर' की स्थापना से ऐतिहासिक महत्त्व के दूरगामी परिणाम हुए थे और इससे ब्राह्मणधर्म की जात-पांत प्रथा की कट्टरता और बुराइयाँ कम करने में सहायता मिली थी। बुद्ध भारतवर्ष में पहला सामाजिक

---

१. माक्स आर्थर, मैकालिफ—पृ० I, सिद्धार्थ की आत्मकथा के लिए देखिए ललित विस्तार (दरभंगा १९५८) बुद्ध चरित—सं० जॉन स्टोन—अनुवादक—कावेल इन एस० बी० ई०।
२. बुद्ध ने अपनी पत्नी, घर और धन सम्पत्ति छोड़ दी थी। गुरु नानक ने ऐसा नहीं किया था।
३. मेकालिफ़, वही, भूमिका, पृ० XXX।

सुधारक था जिसने प्राचीन ब्राह्मण-धर्म से ग्रस्त समाज के निम्न वर्गों के प्रति परम्परागत उपेक्षा के विरुद्ध जबरदस्त आवाज़ बुलन्द की थी। उनके सिद्धान्त और संघ में तथाकथित शूद्रों और चन्देलों को समान अवसर, मान्य पद दिया जाता था और उनके साथ विनम्र व्यवहार किया जाता था, चाहे उनकी शक्ल, वंश और काम कुछ भी हों।[1] मध्यकालीन भारत में चौरासी सिद्धों, कबीर और गुरु नानक ने, अपनी कविताओं और साधनाओं में इस सामाजिक दृष्टि को पुष्ट किया और इसी का सन्देश दिया। इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि बुद्ध पहले भारतीय ऐतिहासिक सन्त थे जिन्होंने स्त्रियों की मुक्ति के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया और इतिहास में पहली बार उन्होंने स्त्रियों के लिए आध्यात्मिक अनुशासन और वैराग्यपूर्ण जीवन-पद्धति के द्वार खोल दिये और उन्हीं के समानान्तर, पर भिक्षुओं की पद्धति से स्वतन्त्र, भिक्षुणियों की पद्धति को स्थापित किया।[2] बुद्ध-मत के समान सिख-मत में भी जात-पांत को अस्वीकार किया गया और स्त्रियों को धार्मिक और सामाजिक जीवन में पुरुषों के समान ही स्वतन्त्रता दी गयी। गुरु नानक का कहना है—"स्त्रियों के गर्भ में ही हमारी उत्पत्ति होती है। वे ही हमें जन्म देती हैं। उन्हीं से हमारी सगाई होती है और विवाह होता है। महान् व्यक्तियों की जननियों को हम निम्न कोटि का क्यों कहते हैं ?[3] गुरु नानक के अनुसार किसी व्यक्ति के कर्म ही उसे उच्च या नीच बनाते हैं। जन्म से किसी व्यक्ति का स्थान इस लोक में या परलोक में निर्धारित नहीं किया जा सकता। सभी लोगों को उनके कर्मों से ही परखा जा सकता है। 'जो जैसा बोएगा सो वैसा काटेगा; जो जैसा कमाएगा, सो वैसा खाएगा।'[4] ईश्वर की सृष्टि में सभी समान हैं 'न कोई ऊँचा है और न नीचा।'[5] सामाजिक समानता का यह विचार पहले-पहल बुद्ध द्वारा ही प्रसारित किया गया था जब उन्होंने चार जातियों की दैवी उत्पत्ति की वैदिक गाथा की आलोचना की थी और पुरोहितों के उच्चता के दावों का खंडन किया था। "जन्म से कोई अछूत नहीं हो जाता, और जन्म से ही कोई ब्राह्मण नहीं होता। कर्मों

---

१. एल० एम० जोशी, 'माडर्निटी ऑफ बुद्ध गॉस्पल' महाबोधी जरनल, खंड ७३, अंक ६-७ (१९६५), पृ० १६५।

२. वही, पृ० १६६। सम्पादकीय टिप्पणी : गुरु नानक सभी पुरुषों को स्त्रियां मानते थे। उनके अनुसार ऐका पुरुष सभे नार। वे चाहते थे कि पुरुष एक प्रेमी स्त्री के उदाहरण का अनुकरण करें और वैसे ही आत्म-समर्पण, आत्म विसर्जन और त्याग से ईश्वर को प्रेम करे।

३. भाई जोध सिंह, वही, पृ० ६६। यह उक्ति हिन्दुओं के उन धर्म-शास्त्रों के विरुद्ध ही कही गई थी जो स्त्रियों को शुद्ध मानते थे।

४. मेकालिफ, दी सिख रीलिजन, खंड १ (दिल्ली संस्करण) १९६३, पृ० ११।

५. जपु जी—३३—'नानक उत्तम नीच नहीं कोई।'

से ही कोई अछूत बनता है और कर्मों से ही कोई ब्राह्मण बनता है।"[1] एक गुणी और पवित्र व्यक्ति को बुद्ध और गुरु नानक ब्राह्मण के रूप में मान्यता देते हैं। गुरु नानक का कहना है, "ब्राह्मण वही है जो ब्रह्म का ध्यान रखता है, अपने लिए और अपनी सारी जाति के लिए मुक्ति प्राप्त करता है—"सो ब्राह्मणु जो ब्रह्मु बीचारै। आपि तरै सगले कुल तारै।"[2] बुद्ध ने उन गुणों का विस्तार से वर्णन किया है जो बौद्ध धारणा के अनुसार ब्राह्मण में होने चाहिए। उदाहरण के तौर पर उनका यह कथन है, "मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो क्रोध रहित, आस्थावान, गुणवान, अकलुष, आत्मसंयमी और अंतिम बार देह के बन्धन में है।"[3] कर्म और आवागमन बुद्ध मत के बुनियादी सिद्धान्तों में से हैं। यह संसार और इस में रहने वाले मनुष्य कर्म के नियम से ही शासित और परिचालित हैं। हर मनुष्य अपने कर्मों से बंधा है। बुद्ध मत में कर्म वही है जिसे गुरु नानक 'हुकम' या ईश्वरीय इच्छा के नाम से पुकारते हैं।[4] पर, गुरु यह भी मानते हैं कि प्राणियों के कर्म उनकी नियति को निर्धारित करते हैं। "मनुष्य पक्षी के समान अपने विचारों और कर्मों से कभी ऊंचा उड़ता है तो कभी नीचा"—अभिप्राय यह कि मनुष्य अपने विचारों और कर्मों से ही कभी ऊँचा उठ जाते हैं तो कभी नीचे गिर जाते हैं।[5] गुरु का कहना है—"कर्म कागज़ है, मन और वाणी स्याही है, अच्छाई और बुराई (विचारों की) दो प्रकार की लिपियां हैं।"[6] सिख-मत में कर्म-सिद्धान्त इतना बुनियादी है कि कई आधुनिक लेखकों ने सिखों को 'भाग्यवादी'[7] करार दिया है। वास्तव में, 'जपु जी' और 'आसा दी वार' में गुरु ने कर्म और ईश्वरीय 'हुकम' दोनों को समान रूप घोषित किया है और दावा किया है कि ईश्वरीय इच्छा सर्वोच्च है।* बुद्धमत में इस प्रकार की ईश्वरीय

---

१. सुत्तनीपत्त, विशालसूत्र।
२. धनासरी, शबद ७; नानक वाणी पृ० १८।
३. धम्मपद, पद्य, ४०० ई० जे० थामस, op.cit., पृ० १७७।
४. "नानक का कहना है कि अपने हुक्म से मनुष्यों को चलाना ईश्वर का नियम है।" मेकालिफ, op.cit., पृ० २८९।
५. मेकालिफ op.cit. पृ० २८९। यह विचार 'आदि ग्रन्थ' में कई स्थलों पर व्यक्त है। देखिए नानक वाणी पृ० ८२५।
६. नानक वाणी, पृ० ६३ मारु, सबद ३, cf. मारु सोला १०।
७. सी. एच. लोहलिन, op. cit , पृ० २०।
* सम्पादकीय टिप्पणी : गुरु की कृपा और अपनी भक्ति भावना, समर्पण भावना और ईश्वरीय अनुग्रह से एक सिख अपने कर्म पर विजय पा सकता है और ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। उसे 'धर्मराज' से कोई भय नहीं रहता क्योंकि उसके विगत और वर्तमान कर्मों का खाता, पृष्ठों को फाड़ दिये जाने से, समाप्त हो जाता है। 'अब क्या करिगो जब फटियो सगल लेख'।

इच्छा अथवा सर्वशक्तिमान ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं है। ईश्वर के बजाय, वहाँ कर्म की ईश्वर के समान ही महत्वपूर्ण स्थिति है। उदाहरण के तौर पर, संसार में असमानता का कारण मनुष्यों के द्वारा किये गए कार्यों (कर्मों की) की विविधता और अनेकरूपता ही है "कर्मों में अन्तर होने के कारण ही मनुष्य समान नहीं हैं—किसी की लम्बी उमर होती है तो किसी की छोटी, कोई स्वस्थ होता है तो कोई रोगी, कोई सुन्दर होता है तो कोई कुरूप, कोई बुद्धिमान होता है तो कोई मूर्ख। सभी जीव अपने कर्मों के ही वे अंग होते हैं, वे अपने कर्मों के ही उत्तराधिकारी होते हैं, कर्मों से ही वे पैदा होते हैं, उनके कर्म ही उनके संबंधी हैं, कर्म ही उनकी शरण हैं, कर्म ही जीवों को निम्न या महान् बनाते हैं।"[1] किसी व्यक्ति की स्थिति उसके विचारों और कर्मों से निर्धारित होती है। ये कर्म ही अगले जन्म में जीव के साथ होते हैं। जीव के पुण्य और पाप कर्मों के सूक्ष्म-रूपों के अतिरिक्त बाकी सब कुछ यहीं रह जाता है। बुद्ध ने कहा था—

"जो भी कर्म मनुष्य तन से, मन से वाणी से करता है, केवल इसे ही वह अपना कह सकता है, जब वह यहाँ से जाता है, तो यही उसका साथ देता है, यही उसके पीछे रहता है और एक छाया के समान उसे छोड़ता नहीं।"[2]

गुरु नानक का 'किरत-कर्मी' पाली वाणियों के 'कित्ता-कम्म' (संस्कृत में—कृत-कर्म) के समान ही है। जिसका अर्थ है 'किए हुए कर्म' अथवा किए-कर्मों का बोझ। बुद्ध के समान नानक भी कर्मों के लिए व्यक्ति को ही जिम्मेदार ठहराते हैं। दूसरी ओर, गुरु नानक की साधना-पद्धति में अनुग्रह (प्रसाद) का भी बड़ा महत्त्व है।[3] गुरु-प्रसाद से ईश्वर प्राप्ति हो सकती है और ईश्वर प्रसाद से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। प्रारम्भिक बुद्ध-मत में ऐसा कुछ नहीं है जिसकी तुलना अनुग्रह की इस पद्धति से की जा सके। इसका आशय यह नहीं है कि बुद्ध-मत में अनुग्रह का तत्त्व है ही नहीं। बुद्ध ने अनुग्रह और विश्वजनीन करुणा भाव से प्रेरित होकर ही दुःखी मानवता के कल्याण और आनन्द के लिए अपनी उदात्त शिक्षा को प्रसारित करने का निश्चय किया था।[4]

---

१. एच० सी० वेरिन, बुद्धिज्म इन ट्रांस्लेशन्स, हार्वर्ड ओरियंटल सीरिज, [illegible] १९२२, पृ० २१५।

२. अनगुत्तार निकाय, खंड तीसरा, २.१०.; एच० सी० वेरिन, [illegible]। श्री रागु, अष्टपदी, मौहल्ला I; गौड़ी. मौहल्ला ५ [illegible]

३. सी० एच० लोहलिन, पृ० ४६—५१।

४. विन्सटन एल० किंग, बुद्धिज्म एन्ड [illegible] माली—बहुजन हिताय बहुजन सुखाय, [illegible]।

'बुद्ध' शब्द ग्रन्थ साहिब में कई बार आया है। 'जपु जी' में ही कम-से-कम दो बार महात्मा बुद्ध के प्रसंग आए हैं।[1] वाणी बताती है कि गुरु नानक बौद्धों के अनेकता के सिद्धान्त से परिचित थे। ब्रह्म, गोविन्द, ईश्वर, सिद्ध, नाथ और देवताओं के साथ ही बुद्ध का नाम भी लिया गया है। डा० एस० एस० कोहली का कथन है—"आदि ग्रंथ में 'बुद्ध' शब्द विष्णु के अवतार का सूचक है।"[2] इस कथन को सच मानना कठिन है। 'जपु जी' की २६वीं और ३५वीं पौड़ियों में 'बुद्ध' शब्द बुद्ध-मत के महात्मा बुद्ध के लिए ही आया है। अन्य स्थलों पर 'बुद्ध' शब्द से सीधा-सादा आशय 'बुद्धिमान' ही है। यह सच है कि मध्यकालीन भारत में बुद्ध को, हिन्दु धर्म के महान् देवता विष्णु के अवतार रूप में समझा जाता था। ऐतिहासिक बुद्ध को पौराणिक विष्णु के नवें अवतार के रूप में प्रतिपादित करने की ब्राह्मणों की चालाकी को 'मत्स्य पुराण' में खोजा जा सकता है।[3] गुरु नानक के समय में बुद्ध को बुद्ध-मत के महात्मा बुद्ध के रूप में भी पूजा जाता था और विष्णु के नवें अवतार के रूप में भी। हिन्दु-धर्म अथवा पौराणिक ब्राह्मण-धर्म ने अपने सामाजिक रूप में बुद्ध-धर्म के अनेक तत्त्वों को अपने में समाहित कर लिया था। साक्यमुनि को 'हरि' के रूप में मान्यता तो उन्होंने दी पर वे बौद्धों और उनके मतों का खंडन भी करते रहे। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दु-धर्म और वैष्णव-मत में स्वीकृत बुद्ध के स्वरूप से विशिष्ट और भिन्न, बुद्ध-मत और उसके प्रवर्त्तक बुद्ध से गुरु नानक परिचित थे। बुद्ध के समान वे एक महान् सन्देश वाहक और एक महान् यात्री थे। उनकी यात्राएँ बुद्ध की यात्राओं की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत थीं। कहा जाता है कि अपनी यात्राओं के दौरान गुरु नानक अन्य स्थानों के साथ-साथ, गया (बुद्ध गया), तिब्बत और लंका भी गए थे। शिलालेख इस तथ्य के गवाह हैं कि पवित्र बौद्ध १५वीं शताब्दी तक बुद्ध की बुद्ध गया के स्थान पर उपासना करते रहे थे।[4] गुरु द्वारा दीक्षित शिष्यों में से एक का नाम था भाई बुद्ध* जिन्होंने गुरु हरगोविन्द को भी दीक्षित किया था।[5] यह निश्चित प्रतीत होता है कि गुरु नानक भारतवर्ष, लंका, लद्दाख और तिब्बत में अपनी यात्राओं के दौरान बौद्ध भिक्षुओं से मिले थे, उनके मतों

---

१. जपु जी, २६, ३५; नानकवाणी, पृ० ६१, ६७।
२. ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ दी आदि ग्रंथ, दिल्ली, १६६१, पृ० २४८।
३. विस्तार के लिए देखिए भारत की बौद्ध संस्कृति से सम्बद्ध मेरे अध्ययन, पृ० ४००-४०१।
४. इंडियन एन्टीक्यूरी खंड दस, पृ० २४१, इपिग्राफिया इंडिका, खंड सात, पृ० २६,३० बी० एम० बरूआ, गया और बुद्ध गया, खंड १, पृ० २१।
* इस शब्द का बुद्ध या बुद्ध-मत से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'प्राचीन'।
५. हरवंश सिंह, दी हेरीटेज ऑफ दी सिख्स, बम्बई १६६४, पृ० ३२।

और साधनाओं की जानकारी हासिल की थी क्योंकि वहाँ बुद्ध-मत उस समय फल-फूल रहा था। मध्यकालीन युग के गिलगत्त, लद्दाख, नेपाल और तिब्बत में बुद्ध-मत का तांत्रिक-रूप अथवा लामा-मत प्रचलित था। चौरासी सिद्ध, वज्रयान, सहजयान और कालचक्रयान के सिद्ध, सन् ८००-१२०० के बीच प्रच्छन्न अथवा रहस्यवादी बुद्ध-मत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुरु हुए थे। ये सिद्ध अथवा सिद्धाचार्य, जिन्हें प्रायः वज्राचार्य भी कहते थे, बुद्ध-सन्त थे अथवा तांत्रिक बुद्ध-मत के अनुयायी और प्रचारक थे—वह तांत्रिक बुद्ध-मत जो महायान बुद्ध मत से विकसित हुआ था।[1] उन भारतीय और यूरोपियन शब्द-शास्त्रियों ने आधुनिक आलोचनात्मक अनुसंधानों द्वारा स्थापित किया है कि मध्यकालीन भारतीय भक्तिपरक रहस्यवाद के अधिकांश गुरुओं और सन्तों ने नयी सामाजिक और धार्मिक पद्धति की क्रांतदर्शी सामग्री, ज्यादातर, तांत्रिक बुद्ध-मत से ग्रहण की थी, चौरासी बौद्ध सिद्धों के उन भजनों और प्रार्थनाओं से ग्रहण की थी, जो अपभ्रंश और तिब्बती अनुवादों में सुरक्षित हैं।[2] सातवीं से तेरहवीं शताब्दी

---

१. विस्तार के लिए देखिए मेरी पुस्तक 'बुद्धिस्टिक कलचर ऑफ इंडिया' अध्याय १०-११ और प्रारम्भिक सिद्धों पर परिशिष्ट-५।

२. जरनल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल में देखिए गीसीपी टुकी का लेख 'एनी-मेडवरसन्ज इंडिका' खंड २६वां, कलकत्ता १९३०: राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक—'दी आरिजन ऑफ वज्रयान और चौरासी सिद्ध' जरनल, ऐशियाटिक, पेरिस १९३४, पुरातन निबन्धावलि, द्वितीय संस्करण पृ० १०९-१३०, पी० सी० बागी—"स्टडीज इन दी तंत्राज" खंड १, कलकत्ता १९३९; एस० बी० दासगुप्ता, अवस्कयूर रीलिजस कल्ट्स, द्वि०संस्करण कलकत्ता १९६२: हजारी प्रसाद द्विवेदी,'नाथ सम्प्रदाय का इतिहास' इलाहाबाद, १९५०: डी० एल० सिनलग्रोव—'बौद्ध हिमालय' आक्सफोर्ड, १९५७, एल० एम० जोशी की पुस्तक 'ओरिजनल होम ऑफ तांत्रिक बुद्धिज्म' जरनल ऑफ दी ओरियंटल इंस्टीट्यूट, खंड २७, बरौदा, १९६७।

नेपाल अब भी वज्रयान, बुद्ध-मत और शैव नाथ-मत में एक संबंध कायम किए हुए है। अनेक बौद्ध तांत्रिक मूल हस्तलेख में और तिब्बती अनुवादों में गोरखनाथ और मछेन्द्रनाथ के नामों का उल्लेख बौद्ध परम्परा के ८४ सिद्धों में किया गया है। कान फड़वाने और कानों में कुंडल पहनने की प्रथा बौद्ध विहारों में गोरखनाथ से बहुत पहले प्रचलित थी। देखिए यान च्वांग पर टी० वाटर्ज की पुस्तक, खंड २, पृ० ५६।

पाली काल (८००-१२०० ई०) इस बात का गवाह है कि बुद्ध-मत और हिन्दु-मत किस प्रकार एक रूप हो चुके थे—देखिए 'हिस्ट्री ऑफ बंगाल', खंड १, ढाका, १९४४, बुद्ध गया और काठमांडू में (पशुपति नाथ) नाथ सम्प्रदाय के महन्तों ने बौद्धों को उखाड़ दिया था और उन स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया था। जिस प्रकार बुद्ध हिन्दुओं के देवता विष्णु के अवतार बन गए थे, उसी प्रकार तांत्रिक बौद्ध मछेन्द्रनाथ और गोरखनाथ मध्यकालीन भारत के शैव नाथ मत जो कि तन्त्र और हठयोग का शैव रूपान्तर था, के सर्वोच्च गुरू बन गए।

के लगभग जो बुद्ध-मत भारतवर्ष में प्रचलित था, वह अधिकांशतः, इसका तांत्रिक रहस्यवादी रूप ही था।[1] इसके अगुआ और गुरु सिद्ध थे—सारह, नागार्जुन, गोरख, करपत,* मछेन्द्र, अनंगवज्र, इन्द्रभूति, अदेयवज्र, जालन्धर पाद आदि। इन वज्रयानी सिद्धों की शिक्षाओं में से बहुत से सम्प्रदाय पैदा हुए जो कालानुक्रम में हिन्दु-धर्म में विलीन हो गए। गुरु नानक के भजनों में सिद्धों, नाथों और योगियों के जो संकेत आए हैं, वे सिद्ध और जोगी, बहुत संभव है, उस भक्तिपरक और गुह्य रहस्यवाद के अनुयायी रहे हों जो प्रारंभिक मध्यकाल (८००-१२००) के चौरासी बौद्ध सिद्धों की विरासत रहा था और जो गुरु नानक, कबीर और तुलसीदास के काल में वज्रयान बुद्धमत, पौराणिक शैवमत, तांत्रिक शक्तिमत और आस्तिकवादी हठयोग का एक अजीब घपला बन गया था। सिद्धों के साथ (करपट सहित) गुरु नानक की भेंट और बातचीत का ब्यौरा गुरु नानक की जन्म-साखियों और उनके भजनों में मिल जाता है।[2]* गुरु नानक ने ब्राह्मणों और मुल्लाओं के पुरोहितपन और कठ-मुल्लापन का ही खंडन नहीं किया था बल्कि जैनियों, योगियों, पशुपतियों, काल-मुखों, कापालिकों, कनफटयों और तथाकथित सिद्धों. जोकि जादू दिखाने और हठयोग से शारीरिक करामातें दिखाने में कुशल थे, की भयंकर और आत्मदाहक साधनाओं का भी खंडन किया। पर वे ईश्वर के ऐक्य, भक्ति की आवश्यकता, मानसिक निग्रह, वर्ण-पद्धति, वैदिक सत्ता और पुरोहितों की प्रथाओं की उपेक्षा करने में उनसे सहमत थे। सिद्ध उसे कहते हैं जिसने सिद्धि या पूर्णता प्राप्त कर ली हो। एक अर्थ में गुरु नानक भी सिद्ध और पूर्ण थे। तांत्रिक बौद्ध सिद्ध ऊँचे चरित्र के मनुष्य थे और प्रत्येक की एक पत्नी होती थी जिसे 'योगिनी' कहते थे और वह महासुख (सहज) की प्राप्ति के मार्ग में सहयोगिनी होती थी। 'सहज' शब्द (जो ईश्वरीय सत्य का अन्तिम रूप है) रहस्यवादी बौद्ध 'स्कूल' से आया है जिसे सहजयान भी कहते हैं। इसका वैष्णव संस्करण बंगाल

---

१. तिब्बत का लामा-मत अथवा बुद्ध-मत भारतीय तांत्रिक बुद्धमत का ही गतिशील रूप है जिसमें बान धर्म के प्रकृति-पूजा के भी कुछ तत्त्व हैं जो तिब्बत में सम्राट-सरोन लेटसेन-जाम-पो के समय में (७०० ई०) व्याप्त थे। वज्रयान और सहजयान के सिद्ध और नालन्दा, विक्रमा-सित, सोमापुरी, उदन्तापुरी के विश्वविद्यालयों के बौद्ध प्राध्यापक, तिब्बती बुद्धमत अथवा लामामत के मान्य गुरु हैं—'दी ब्लू एनेलस,' खंड १, रोरिच, कलकत्ता, १९४९,५३।

सम्पादकीय टिप्पणी : तिब्बती लामा गुरु नानक को बुद्ध मानते थे और उत्तरी देशों से भिक्षु दरबार साहिब में आते थे और वहाँ भक्ति भाव से प्रार्थना करते थे।

२. देखिए मेकालिफ, खंड १, पृ० १७०, १७१, १७४, २११, २१५, २३१, २३४ और २५०।

* देखिए डॉ० शेरसिंह का लेख 'सिद्ध गोष्ठी'।

का सहज सम्प्रदाय था जिससे चैतन्य संबंधित थे। 'सहज' शब्द कबीर, नानक और अन्य मध्यकालीन सन्त कवियों के काव्यों में सैंकड़ों बार आया है।[१] डॉ० शेर सिंह का कथन है—"मेरा यह मत बना है कि सिख-धर्म पर सिद्ध-मत का प्रभाव, भारत के अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा सर्वाधिक है।"[२] यदि डॉ० शेर सिंह ने उदाहरण और ब्यौरे दिए होते तो सभी पहलुओं पर प्रकाश पड़ सकता था। बुद्ध-मत और सिख-मत में सम्बन्ध बताते हुए उनकी राय है—"सिख मत का अन्य भारतीय साधनाओं से, सिद्धांतत, उतना अन्तर नहीं है, जितना व्यवहारतः, पर बुद्ध-मत की सापेक्षता में बात ठीक उल्टी है। सिख-मत, सिद्धांततः बुद्ध-मत का ऋणी नहीं है, पर उसके व्यावहारिक—साधना पक्ष-पर यह प्रभाव प्रत्यक्ष है। बुद्ध ने जात-पांत का उन्मूलन करने का प्रयत्न किया। भ्रातृ-भावना का उनका विचार गुरु नानक के लिए महत्त्वपूर्ण विषय बना। हृदय की पवित्रता और मानव-मात्र के साथ, व्यवहार में, सच्चाई और दयानतदारी, गुरु नानक के लिए, धर्म के सार-तत्त्व थे। सर्वप्रथम, बुद्ध ने ही इन गुणों, रूपों और प्रथाओं पर ज़ोर दिया था। इन दोनों पैगम्बरों की शिक्षाओं में तीसरा समान तत्त्व है—भाषा विशेष की विशिष्टता (पवित्रता) को न मानना। बुद्ध ने लोगों की बोलचाल की भाषा में उपदेश दिया था और वह पहला भारतीय पैगम्बर था जो धर्म-प्रचारक बना। इन बातों में, नानक अत्यन्त घनिष्ठ रूप में, बुद्ध के समीप पड़ते हैं। चौथे, 'संगत' की धारणा का आवयविक रूप बौद्धों के समागत में मिल जाता है। खालसा के समान इसमें प्रवेश, कई प्रतिज्ञाएँ लेकर ही किया जा सकता था।"[३] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बुद्ध-मत और सिख-मत में, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक महत्त्व के अन्यानेक समान तत्त्व भी हैं।

दोनों ही साधना-पद्धतियों में, आध्यात्मिक साधना और प्रगति के लिए गुरु के महत्त्व को स्वीकारा गया है। गुरु नानक ने, मूल मंत्र के अन्त में, जो ऊपर उद्धृत किया गया है, कहा है कि गुरु की कृपा से (गुरु प्रसादि) ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। अन्यत्र उनका कहना है कि "गुरु के बिना किसी प्रकार का आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।"[४] इसी प्रकार उनका

---

१. नानक वाणी—पृ० ८३१, ८३२. सहज सुभाय (सहज किंवा स्वाभाविक किंवा) 'सहज समाधि' का अर्थ है अंतिम समाधि की स्वाभाविक स्थिति। बौद्ध सिद्धों ने निर्वाण की 'सहज' और 'महासुख' के रूप में परिकल्पना की थी। कबीर और गुरु नानक ने ईश्वर को सहज रूप में परिकल्पित किया।

२. शेरसिंह, "फिलासफ़ी ऑफ सिखिज्म' द्वितीय संस्करण, जालन्धर, १९६६, पृ० १२७, देखिए उनका लेख—'सिद्ध गोष्ठी'।

३. वही, op. cit., पृ० १३०-१३१।

४. मेकालिफ, op. cit., खंड १, पृ० २३४ (आसा दी वार)।

कहना है कि "सच्चे गुरु के विना 'नाम' की प्राप्ति नहीं हो सकती ।"[१] बौद्ध तंत्रों का भी कहना है कि गुरु की कृपा के विना आध्यात्मिक-साधना पथ पर चलना असंभव है । गुरु को 'ज्ञान-काय' माना गया है, गुरु को शिष्यों का 'आश्रय' कहा गया है । जो गुरु का अपमान करता है, वह कभी भी अपने प्रयत्नों में सफल नहीं होता । उन शिष्यों को भी, जिन्हें पूर्णत्व की प्राप्ति हो गयी है, गुरु का कहना मानना और उसका सम्मान करना चाहिए ।[२] पाली विनय-पत्रिका में गुरु-शिष्य के सम्वन्ध को पिता-पुत्र के सम्वन्ध के स्तर पर परिकल्पित किया गया है । गुरु को कल्याणकारी मित्र कहा गया है । बुद्ध सर्वोच्च गुरु हैं जो आध्यात्मिक मुक्ति की ओर उन्मुख करते हैं ।[३] गौड़ी सुखमनी में पांचवें गुरु का कथन है कि सच्चा गुरु अपने शिष्यों का ध्यान रखता है । वह उसके प्रति दयावान होता है ।

सिख-मत में गुरुओं की शिक्षाएँ गुरु का ही साकार रूप समझी जाती हैं । दसवें गुरु के वाद 'आदि-ग्रंथ' को ही गुरु की मान्यता दी गयी । गुरु रामदास के अनुसार वाणी ही गुरु है और गुरु ही वाणी है,[४] जिसमें एक सिख के लिए आवश्यक मार्ग-दर्शन और शिक्षाएँ दी गई हैं—'बाणी गुरु, गुरु है वाणी, विच बाणी अमृत सार, वाणी किहा सेवक जन मन्ने, प्रतख गुरु निस्तार," गुरु नानक ने स्वयं भी कहा है—"गुरु वह जहाज है जिससे संसाररूपी सागर पार किया जा सकता है ।"[५] अतः, सिख-मत में गुरु-वाणी और गुरु एक-रूप हैं । बुद्ध-मत में भी बुद्ध को धर्म के साथ अद्वैत-रूप माना गया है । "जो धर्म को प्रत्यक्ष देख लेता है, वह बुद्ध का ही साक्षात्कार कर लेता है ।"—"यो धर्मम् पश्यति, स बुद्धं पश्यति ।" बुद्ध ने आनन्द से कहा था कि उनके महापरिनिर्वाण के वाद उनका धर्म ही भिक्षुओं का गुरु होगा ।[६] बौद्ध केवल गुरु की (बुद्ध की) ही शरण नहीं लेते हैं बल्कि धर्म और 'समागम' का भी आश्रय लेते हैं । सिख भी अपने गुरुओं, उनकी वाणियों और खालसा-पंथ का ही आश्रय लेते हैं । धर्म का मूल निष्ठा में है और सिख-मत एक ऐसी ही गहरी निष्ठा है । एक प्रसिद्ध सिख विद्वान के अनुसार—"गुरु में पूर्ण निष्ठा सिख-मत की पहली शर्त है ।"[७] धर्म-

---

१. सोरठ अष्टपदियां, गुरु १, भाई जोधसिंह, op. cit., पृ० ५३ ।
२. एल० एम० जोशी, स्टडीज इन बुद्धिस्टिक कल्चर आफ इंडिया, पृ० २६१-२६२ तथा उसमें उदधृत टिप्पणियां ।
३. मूल स्रोतों के लिए देखिए एम० एल० जोशी, पृ० ३७५ ।
४. भाई जोधसिंह, पृ० ६२ ।
५. वही, पृ० ५६ ।
६. दिग् निकाय, महापारी, निर्वान सूत्र ।
७. भाई जोधसिंह—'गुरु ग्रंथ साहिब पर भाषण', पृ० ५२ ।

शास्त्रों की साक्षी के अनुसार—"बुद्ध में पूर्ण निष्ठा बुद्ध-मत की भी पहली शर्त है। श्रद्धा एक उच्च गुण है और यह बुद्ध-मत का बुनियादी सिद्धांत है।"[1] गौरी सुखमनी में पांचवें गुरु का कथन है—"संतोष के बिना किसी को सान्त्वना नहीं हो सकती।" यह कथन बुद्ध के धम्मपद में दिए गए इस कथन से तुलनीय है—"संतोष परम धन है"—(संतुष्टि परम धनं) तीसरे गुरु का यह कथन—'ओ भाई, अपने आपको खोजो', बुद्ध के इस कथन के साथ तुलनीय है—'आत्मान्वेषण करो' (—आत्मं गवेणनथ) बुद्ध-मत के ही समान प्रारंभिक सिख-मत में दान, दोस्ती, सहनशीलता, धैर्य, मानसिक संयम, तृष्णा, क्रोध और लोभ से मुक्ति आदि निर्धारित और प्रशंसित किये गए हैं। पांचवें गुरु का कहना है—"सभी त्यागों में से सर्वोत्तम है तृष्णा, क्रोध और लोभ का त्याग।"[2] बुद्ध ने भी कहा था कि मनुष्य के लिए अनिवार्य है कि वह "क्रोध पर प्रेम से, बुराई पर अच्छाई से, लोभ पर दीनशीलता से और झूठ पर सत्य से विजय प्राप्त करे।"[3] गुरु नानक ने 'जपुजी' में शिक्षा दी है कि आध्यात्मिक सफलता की कुंजी आत्म-संयम है। उनका कहना है—"मन को जीत लेने से संसार को जीता जा सकता है।"[4] यह कथन बुद्ध की शिक्षा के साथ पूर्ण साम्य लिए हुए है। "मन के कारण ही संसार चलता है, इसी से नष्ट हो जाता है, और इसे जीत लेने से अन्य सब कुछ जीत लिया जाता है।"[5] यद्यपि गुरु नानक ने वैराग्यपूर्ण जीवन बिताने का प्रचार नहीं किया था, तो भी उनकी शिक्षाओं में निस्संदेह, त्याग और आत्म-संयम की प्रबल ध्वनि है।[6]* वे कहते हैं कि "प्रलोभनों के मध्य भी हम ईश्वर में विश्वास बनाए रखें।"[7] मानसिक संयम ध्यान, और ब्रह्म की सर्वोच्चता पर बल, जपुजी के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं जो, लगता है, कि प्रारंभिक सिख-मत के सार रूप को प्रस्तुत करते हैं। जपुजी की चार पौड़ियों में ध्यान साधना का उल्लेख है[8] और १५वीं पौड़ी की प्रारंभिक पंक्ति में गुरु साहब का कहना है—'केवल ध्यान-मनन ही मुक्ति का द्वार है।'

---

१. एल० एम० जोशी—"फेथ एण्ड डिवोशन इन बुद्धिज्म" महाबोधी जरनल, खंड ७६ (१९६८) वही, 'सच्चा बुद्ध-मत', महाबोधी जरनल, खंड ७४ (१९६६)।
२. मारू गुरु ५ (अष्टपदी) भाई जोधसिंह, op. cit., पृ० १५।
३. धम्मपद, पद्य २२३।
४. भाई जोधसिंह, op. cit., पृ० १०।
५. सम्युक्त निकाय कूटसूत्र, बौद्धाचार अवतार, खंड ५।
६. * सिख और बौद्ध विचारों का अन्तर, अध्याय के अन्त में, सम्पादकीय टिप्पणी में, स्पष्ट किया गया है।
७. सूही गुरु I, घर ७।
८. जपुजी, पद्य १२, १३, १४, १५।

पावहि मोख दुआरू) । यहाँ एक वार फिर हमें महात्मा बुद्ध का वचन ...आ जाता है—"जिसका मन स्थिर और शांत है, वही सत्य का ज्ञाता है।" (समाहितो यथभूतम पजयंती) गुरु नानक, महात्मा बुद्ध के साथ पूर्णतः सहमत थे जब उन्होंने घोषणा की थी—

बंधन माता पिता संसार
बंधन सुत कन्या अरू नार ।[1]

'संसार में माता-पिता बंधन हैं। पुत्र, कन्या और पत्नी बंधन हैं।' परिवार और संसार, सभी वैराग्यपूर्ण साधना-पद्धतियों में, आध्यात्मिक मुक्ति के मार्ग में बाधाएँ माने गए हैं। प्रारंभिक बुद्ध-मत पूर्णतः वैराग्यपूर्ण और संसार को नकारने वाला था। अनागरिक भिक्षुओं की संस्था बुद्ध-मत और जैन-मत की आधारभूत विशेषता थी। परम शान्ति को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को सांसारिक जीवन के सभी वन्धनों को तोड़ना होता है। इसलिए एकान्त और वैराग्यपूर्ण जीवन पद्धति बौद्धों का आदर्श है। "जिनके पुत्र हैं, उन्हें पुत्रों की चिन्ता है, इसी प्रकार जिनके पास गौए हैं उन्हें गौओं की चिन्ता है।"[2] परिवार परेशानी और चिन्ता का कारण है ; पर एक भिक्षु चिन्तामुक्त होता है। "पारिवारिक जीवन दुःखद और अपवित्रता का स्थान है ; संन्यास जीवन उन्मुक्त जीवन है।"[3] सांसारिक संबंधों की व्यर्थता को दृष्टिगत रखते हुए, जहां तक आध्यात्मिक जीवन का संबंध है, गुरु नानक महात्मा बुद्ध से सहमत हैं। अन्ततः, "न कोई बहन है और न कोई भाभी, न कोई सास है और न कोई मामा है, न कोई मामी है, न कोई भाई है और न कोई पिता और न ही कोई मां है।"[4] मूल वाणी इस अपूर्ण अनुवाद से कहीं अधिक आकर्षक है—

ना भैणा भरजाईआ ना से सुसड़ीआह
मामे ते मामणिआ भाइर वाप न माउ"

महात्मा बुद्ध ने भी लगभग ऐसे ही विचार पर वल देकर कहा था—"ये पुत्र मेरे हैं, यह धन मेरा है, ऐसे विचारों से मूर्ख व्यक्ति ही परेशान होता है। जब वह स्वतः अपना नहीं तो पुत्र और धन उसके कैसे हो सकते हैं ?"[5]

करपत्त नाम के एक सिद्ध के जिज्ञासापूर्ण प्रश्न के उत्तर में, गुरु नानक ने निम्नलिखित उत्तर दिया था—"जैसे कमल का फूल पानी में रहता हुआ

---

१. आसा राग, अष्टपदी १० ।
२. सुत्तानीपत, धनीसूत्त, पृ० १६ ।
३. सुत्तानीपत, पभाज्जसुत्त, पृ० २ ।
४. मारू काफी, शब्द १०; नानकवाणी, पृ० ५४ ।
५. धम्म पद, पद्य ६२ ।

भी पानी से अछूता रहता है, जैसे हंस नदी में तैरता रहता है, वैसे ही संसार में ध्यान केन्द्रित रखते हुए भी हमें संसार रूपी सागर को पार करना चाहिए।"[१] 'नाम' शब्द सिख-मत में परम सत्य की ईश्वर के रूप में परिकल्पना का, और बुद्ध-मत में 'निर्वाण' का, सूचक है। संसार में सत्य के सच्चे जिज्ञासु की तुलना जल में खिलने वाले कमल पुष्प के साथ की गई है। यह रूपक बौद्ध साहित्य में काफी प्रिय है। बुद्ध का कहना है—"जैसे सफेद कमल पानी में विकसित होकर भी पानी से अछूता रहता है, वैसे ही संसार में पैदा होने और लालन-पालन होने से बुद्ध संसार से अछूते और निर्लिप्त हैं।"[२]

बुद्ध-मत में महानतम शब्द है—निर्वाण (पाली निबान)। यह परम विमुक्ति, विशुद्धि, शान्ति, धर्म, अमृत-पद और परम सुख के अर्थ का द्योतक है। गुरु नानक ने कई बार निर्वाण शब्द का प्रयोग किया है।[३] उनकी शिक्षाओं में इस शब्द का अर्थ है ईश्वरीय अनुभूति। सिख-मत में शान्ति और आनन्द की परम अवस्था है—परमात्मा का साक्षात्कार और उससे अद्वैत जिसे कभी-कभी निर्गुण ब्रह्म के रूप में भी परिकल्पित किया गया है। हम कह सकते हैं कि गुरु नानक ने 'निर्वाण' शब्द को परम लक्ष्य के रूप में प्रयुक्त किया है जिसकी प्रकृति बोधि अवस्था से थोड़ी ही भिन्न है। मध्यकालीन नेपाल के इश्वारिक बुद्ध-मत की दृष्टि से, जिसमें आदि बुद्ध अथवा स्वयंभू बुद्ध को ही, परमात्मा के रूप में परिकल्पित किया गया है, हम कह सकते हैं कि सिख-मत में निर्वाण की धारणा, इश्वारिक बुद्ध-मत के समतुल्य है। इसके अलावा, गुरु नानक ने सहज[४] शब्द का प्रयोग पूर्णत्व की उच्चतम स्थिति के अर्थ में किया है जिसे दूसरे शब्दों में ईश्वर के साथ अद्वैत की स्थिति भी कह सकते हैं। सहजयान के तांत्रिक बौद्ध सम्प्रदाय में 'निर्वाण' को 'सहज' कहा गया है और बौद्धिसत्त्व बुद्ध को परम धर्म की सहज काया, 'सहजकाय' कहा गया है। गुरु नानक भी पुष्टि करते हैं कि किसी जीव की वास्तविक प्रकृति ही सहज समझी जानी चाहिए (सहजी सुभाय अपना जानिया)। यह बात आदि सिद्ध सरहपाद और सवज्र तंत्र की शिक्षाओं से पूर्ण साम्य लिए हुए है।[५]

---

१. रामकली, गुरु I, सिद्ध गोष्ठी, मेकालिफ, पृ० १७१।

२. अनगुत्तार निकाय, खंड दो, पृ० ४१ (नालन्दा संस्करण)।

३. देखिए मेकालिफ—भूमिका, पृ० ६४-६५।

४. नानक वाणी, पृ० ८३१-८३२, श्री रागु, शबद-१०, गौड़ी शबद, मौहल्ला-१, प्रभाती-विभास, अष्टपदी, मौहल्ला-१, तेलंगा, मौहल्ला-१, रागु सारंग अष्टपदी, मौहल्ला-१, चरण-१।

५. दोहाकोष, सम्पादक राहुल सांकृत्यायन, पटना (१९५८), हवेज्रा तंत्र, सम्पादक डी० एल० स्नलग्रौव, लंदन (१९५९)।

और सिख-मत में एक शब्द है 'शून्य' (पाली सुन्न, पंजाबी सुन्न)। न बौद्ध धर्म-ग्रंथों में 'शून्य' अथवा 'शून्यत्' परम सत्य के लिए आया है, कभी इसे प्रज्ञापारमिता भी कहा गया है और तथागत के साथ इसका अद्वैत संबंध जोड़ा गया है। यह एक आधिभौतिक शब्द है। गुरु नानक ने भी इस शब्द का प्रयोग सर्वश्रेष्ठ धर्म अथवा ईश्वर के अर्थ में किया है। उन्होंने कहा है कि दस अवतार और समस्त सृष्टि 'शून्य'[1] में से ही पैदा हुई है, जिसे बुद्धमत में अमर कहा गया है। तृष्णा, अभिलाषा और संसार के संपूर्ण नाश में ही 'निर्वाण' समाहित है। गुरु नानक ने भी 'अमृत' शब्द का प्रयोग लगभग इसी अर्थ में किया है। वे अपने एक भजन में कहते हैं—"तृष्णा और संसार अमर अमृत की प्राप्ति से समाप्त हो जाते हैं।"[2] अमृत रस पाए तृष्णा बहु जाया। बुद्ध-मत में महात्मा बुद्ध द्वारा बताया गया मार्ग, जिसे धर्म कहा गया है, 'अमृत तत्त्व का द्वार है।' सिख-मत में गुरु की कृपा और ईश्वर के प्रति समुचित भक्ति भाव 'अमृत-रस' की ओर ले जाने वाला द्वार है।

प्रारंभिक बुद्ध-मत जादुई-साधनाओं, मूर्ति पूजा और धार्मिक प्रथाओं से मुक्त था। इस दृष्टि से गुरु नानक की शिक्षा प्रारंभिक बुद्ध-मत के समीप पड़ती थी। परवर्ती बुद्ध-मत की महायान और तांत्रिक साधनाओं के दौरान, अनेक लोक तत्त्व भी बुद्ध-मत में आ मिले और हिन्दु-धर्म महायान-मत के घनिष्ठ सम्पर्क में आया। बौद्धों और हिन्दुओं के तांत्रिक मत की कुछ समान विशेषताएँ थीं जिनका भारतवर्ष की मध्यकालीन धार्मिक धाराओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। गुरु नानक ने अपनी प्रतिभा से तांत्रिक रहस्यवाद और योग के क्रान्तदर्शी पक्ष को देखा और उन्होंने बौद्ध सिद्धों के सिद्धांत को विकृत करने वाले जादुई और गुह्य तत्त्वों से मुक्त भक्तिपरक रहस्यवाद की नयी दिशा का प्रवर्त्तन किया।

(**सम्पादकीय टिप्पणी :** वस्तुत: सिख-मत में, त्याग की भावना पारिवारिक सम्बन्धों का बंधन, बुद्ध-मत अथवा अन्य किसी वैराग्यपूर्ण साधना पद्धति से भिन्न है। एक सिख से आशा की जाती है कि वह शारीरिक रूप से कार्य करता हुआ हृदय में नाम सिमरन करे—

'हाथ पैर से काम कर, चित्त निरंजन देउ'

एक सिख से अपेक्षा की जाती है कि वह विविध रूपों में संपूर्ण जीवन व्यतीत करे और साथ ही साथ नाम सिमरन में संलग्न होकर ईश्वरीय साक्षा-

---

१. मारू, सोलहा १ तथा १७; नानक वाणी, पृ० ८३३। और भी देखिए रामकली, सिद्ध गोष्ठी; और मोहनसिंह का ग्रंथ 'पंजाबी भाषा विज्ञान और गुरमत', अमृतसर, १९५२।

२. मारू मोहल्ला, नानक वाणी, पृ० ८२४।

त्कार प्राप्त करे। मनुष्य को संन्यासी नहीं बनना चाहिए। उसे अपने सभी सामाजिक दायित्वों को पूरा करना चाहिए और अपनी शारीरिक, आध्यात्मिक आवश्यकताओं जैसे अच्छी प्रकार से खाना, पहनना, हँसना और खेलना आदि बातों को पूरा करना चाहिए और सांसारिक जीवन के बीच आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करना चाहिए—

हँसदियां, खेडदियां, खानदियां पहनदियां
विच होवे मुक्ति।

यही सिख जीवन की निर्लेप भावना है।

: १० :

ईसाई-धर्म के विशेष सन्दर्भ में गुरु नानक का धर्म

सी० एच० लोयलिन

भूमिका

सभी धर्मों में समानताएं भी हैं और अन्तर भी। समस्या उठती है समानताओं से। क्या ये स्वतंत्र विकास के कारण हैं, या अनुकरण के अथवा समान स्रोत के कारण हैं?

बाईवल की प्रथम पुस्तक में हमें बताया गया है कि ईश्वर ने मनुष्य की रचना अपने ही रूप में की है (Genesis १:२७)। मानवीय भाषा की सीमाओं के बावजूद, इससे यह तथ्य व्यक्त होता है कि मनुष्य में कुछ अंशों तक, ईश्वर को और ईश्वर-निर्मित उपादानों को, समझने की आध्यात्मिक सामर्थ्य है। पर, अहंकार के कारण अपनी मूल आत्मीय चेतना गंवा बैठने के कारण, प्रारम्भिक युग के लोगों में यह आम विश्वास था कि कोई दैवी पुरुष आएगा, जो उनका पथ-निर्देशन करेगा, उनके लिए त्याग करेगा और मृत्यु के बाद भी, प्रायः उच्च धरातल पर, आत्म-भरपूर जीवन चलता रहेगा। बौद्धों, हिन्दुओं, पारसियों, ईसाइयों में और अन्य धर्मावलम्बियों में, इस प्रकार के प्राचीन अवतारवाद में आस्था विद्यमान थी।

प्राचीन अवतारवाद का यह अनुमान, यद्यपि, एक "अस्थायी सिद्धांत अथवा कल्पना है, जिसे कुछ तथ्यों की व्याख्या और कुछ अन्य तथ्यों के अनुसंधान के लिए, सामयिक रूप से अपनाया गया और जिसे बहुधा काम चलाऊ अनुमान का नाम भी दिया गया। आधुनिक विज्ञान की अधिकांश 'महान' एकोन्मुखी-परिकल्पनाएं व्यावहारिक अनुमान ही हैं" (वैवस्टर, न्यू अन्तर्राष्ट्रीय कोश) जिन्हें पांच विश्वजनीन आस्थाएं कहा जाता है। उनके निर्माण में इन व्यावहारिक अनुमानों का ही योग है। ये पांच आस्थाएं हैं—सर्वोच्च सत्ता में आस्था, उस सत्ता के प्रति निवेदन, उसके विरुद्ध किए गए पाप के निवारणार्थ त्याग-भावना, उस परब्रह्म द्वारा भेजे जाने वाले भावी मुक्तिदाता में विश्वास, और मृत्यु के बाद, प्रायः एक उच्च धरातल पर, जीवन में आस्था। कुछ नृतत्त्वशास्त्रियों को, इस सिद्धांत की पुष्टि में, आदिवासियों की भव्य देवताओं की परिकल्पना का पता चला है, जैसे कि समिधत् (Schmidt) ने

आस्ट्रेलिया के मूल निवासी पितृ देवताओं का वर्णन इस प्रकार किया है : 'टेलर के पुराने शिष्य एंड्रयू लैंग ने प्राचीन लोगों में प्रचलित कई उच्च देवताओं की ओर ध्यान दिया। ये मूर्त्तियां सृष्टिकर्त्ता, नींवस्वरूप और नैतिक संहिता का मूलाधार, दयालु और शुभ समझी जाती थीं। वे पिता-तुल्य मानी जाती थीं और चूंकि वे अत्यन्त पुरातन लोगों में उपलब्ध थीं, अतः केवल इसी कारण से इन्हें दीर्घकालीन विकास की उपज नहीं माना जा सकता।"[1] वेदों के आकाश-देवता—वरुण, जो नैतिक ब्रह्मांड के भी देवता हैं, को भी प्राचीन समय के उच्च देवता के उदाहरणस्वरूप उद्धृत किया जा सकता है।

किसी प्रकार के प्राचीन दैवी-प्रकाशन के इस सिद्धांत का लाभ यह है कि इससे युगव्यापी विस्तृत रूप से व्याप्त, समानताओं की व्याख्या की जा सकती है; यह सिद्धांत वैज्ञानिक साक्ष्य से सर्वथा शून्य नहीं है, इससे प्रशंसा करने और समझने की इच्छा पैदा होती है। अन्य धर्मों में समान आस्थाओं, जो कि समान आध्यात्मिक क्षमताओं और समान धार्मिक विरासत को सूचित करती हैं, का स्वागत किया जाता है।

इस भूमिका के सन्दर्भ में, ईसाई-धर्म के विशेष प्रसंग में, हम गुरु नानक के धर्म का विवेचन करेंगे। ज़ाहिर है कि इस लघु निबन्ध में धर्मशास्त्र का सम्पूर्ण क्षेत्र और उसका व्यावहारिक-पक्ष नहीं लिया जा सकता। अतः हम दोनों धर्मों में ईश्वर के प्रति आस्था, अनुग्रह द्वारा मुक्ति, अभेदता, धर्मार्थ-सेवा, और भावी जीवन तक ही अपने विवेचन को सीमित रखेंगे।[2]

ईश्वर—महान् धार्मिक गुरुओं ने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने की कभी कोशिश नहीं की है। उन्होंने स्वतः सिद्ध सत्य पर अपने जीवन की नींव रखी थी और इसी को समझाने और लागू करने अथवा अभ्यास में लाने की उन्होंने कोशिश की थी। तो भी, ईश्वर की धारणा के सम्बन्ध में उनमें मतभेद है। यह धारणा ब्रह्मवादी भी हो सकती है जैसे यह कहना कि ईश्वर ही एकमात्र सत्ता है। इससे यह आशय निकल सकता है कि जीवात्माएं और संसार असत्य हैं। यदि सर्वात्मवाद की धारणा से हर वस्तु में ईश्वर की सत्ता स्वीकार कर ली जाए, तब आत्मा का दृश्यमान सत्य और संसार एक भ्रम अथवा माया है, और फिर नैतिक दायित्व समाप्त हो जाता है क्योंकि चुनाव की स्वतंत्रता भी माया है। ईश्वरवाद पर हम भले ही विचार न करें क्योंकि न तो सिख गुरुओं और न ही ईसाई पैगम्बरों का यह विश्वास था कि किसी सृष्टिकर्त्ता ने ब्रह्मांड को बनाया है, सितारों को उनके पथ पर चलाया है और फिर वह अपनी सृष्टि

---

१. डब्ल्यू० एम० समिथ् 'दी ओरिजन एण्ड ग्रोथ ऑफ रीलिजन' और 'इन्साइकलोपीडिया ऑफ रीलिजन एण्ड इथिक्स,' आर्ट 'गॉड'—ए लैंड, पृ० १३।

२. सिख और ईसाई दोनों ही प्रार्थना के प्रभाव और आवश्यकता को मानते हैं।

के प्रभाव से वाहर ग्रा गया। इससे फिर केवल ब्रह्मवाद का सिद्धांत वचा ग्रर्थात् सर्वोच्च सत्ता यानी ब्रह्म में विश्वास। इस ग्रर्थ में 'वस्तु' ग्रौर मानव-युक्त संसार सत्य है, इसी प्रकार ग्रात्मा का संसार भी सत्य है ग्रौर ईश्वर सक्रिय रूप से ग्रपनी सृष्टि का संचालन ग्रौर शासन करता है। सृष्टिकर्ता ग्रौर जीवात्मा में एक निरन्तर सम्बन्ध है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सर्वोच्च सत्ता, ब्रह्मवाद ग्रौर ग्रद्वैतवाद ग्रनिवार्यतः, निरपेक्ष सिद्धांत है ग्रौर जीवात्मा की पृथकता पर विजय प्राप्त करनी चाहिए जिस से कि जीवात्मा की सत्ता, निरपेक्ष सत्ता (ब्रह्म) में उसी प्रकार समाहित हो जाए जिस प्रकार समुद्र में पानी की बूंदें समाहित हो जाती हैं। ग्रद्वैतवाद में ईश्वर की सापेक्ष सत्ता हो सकती है। पर, केवल यही काफी नहीं है। वह ग्रपनी जीवात्माग्रों से इतना परे भी हो सकता है कि निरपेक्षता ग्रौर निरंकुश सत्ता में वह मध्य-कालीन क्रूर शासक के समान लगे। दूसरी ग्रोर वह, जैसा कि महात्मा गांधी ने शिक्षा दी थी, प्रेम ग्रौर स्वर्गीय ग्रानन्द का देवता भी हो सकता है ग्रौर जैसा कि गुरु नानक ने शिक्षा दी, वह 'प्रियतम' भी हो सकता है। इस प्रकार, हमारे यहां केवल ग्रद्वैतवाद नहीं है बल्कि उससे भी कहीं ग्रधिक शानदार नैतिक ग्रद्वैतवाद है जिसके ग्रनुसार ईश्वर में प्रेम, न्याय, पवित्रता, अच्छाई, दया ग्रौर सत्य आदि गुण हैं।

इस तात्त्विक चर्चा में गुरु नानक का क्या मत था, इस सम्बन्ध में सुविज्ञ विद्वानों में मतभेद है। कुंवर मृगेन्द्र सिंह का मत है कि गुरु नानक ब्रह्मवादी थे।[1] इस सम्बन्ध में डा० शेरसिंह का कहना है—"शंकराचार्य और गुरु नानक ग्रादर्शवादी वेदान्ती थे। ग्रात्मा, विश्व ग्रौर ब्रह्म एक हैं। मनुष्यों ग्रौर वस्तुग्रों की ग्रनेकरूपता माया ग्रौर ग्रविद्या ग्रथवा भ्रम ग्रौर ग्रज्ञान के कारण हैं।[2] पर साथ ही वे यह कहते हैं :

"गुरु संसार को केवल माया नहीं मानते हैं। गुरु के ग्रनुसार संसार का ग्रौर ग्रात्मा का सत्य माया नहीं है। लेकिन संसार ग्रौर ग्रात्मा सापेक्ष ग्रर्थ में ही सत्य हैं। कोई भी चीज उस ग्रर्थ में सत्य नहीं है जिस ग्रर्थ में ईश्वर सत्य है।"

यह हवाला ग्रपरिवर्त्तनशील ईश्वर की तुलना में संसार की ग्रनित्य प्रकृति की ग्रोर है। डॉ० मैकलाइड की मान्यता है—

"गुरु नानक की ईश्वरानुभूति की ग्रभिव्यक्ति ग्रौर साधना पथ स्पष्टतः बताते हैं कि जिस ईश्वरीय सत्ता के संबंध में वे कहते हैं; उसे उन्होंने ग्रात्मीय

---

१. मृगेन्द्र सिंह, फिलासफी ग्रॉफ सिखिज़्म (यंत्रस्थ)।
२. शेरसिंह, फिलासफी ग्रॉफ सिखिज़्म, पृ० ८३, ८४।

ईश्वर के रूप में कल्पित किया है—कृपालु ईश्वर जिसके प्रति मनुष्य प्रेम का संबंध जोड़ता है। उनका ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता समझना और ईश्वरीय अनुग्रह पर बारबार जोर देना, इस बात को अत्यन्त स्पष्ट कर देता है। कबीर के समान, गुरु नानक के काव्य में, ब्रह्मवादी-भाषा तो मिलती है पर गुरु नानक की ईश्वर सम्बन्धी धारणा में ब्रह्मवादी चिन्तन के ढाँचे के लिये कोई स्थान नहीं है। कट्टर सर्वात्मवाद के लिए इसमें कोई जगह नहीं, क्योंकि गुरु नानक के चिन्तन में सर्वव्यापकता की भावना सर्वातिशायी सिद्धान्त से सम्बद्ध होकर आई है। गुरु नानक के तत्त्व निरूपण के लिए यदि कोई लेबल हो सकता है तो वह अद्वैतवाद का ही, पर यह स्मरण रखना चाहिए कि वह एक अनेक में, और सृष्टि की अनन्त अनेकरूपता में अभिव्यक्त है।[1]

कदाचित गुरु नानक ने अपनी शिक्षा को, अपने श्रोताओं की समझ के अनुरूप ढाला था। ऊपर से दिखने वाली इन असंगतियों की व्याख्या मूल-मंत्र के आधार पर की जा सकती है—गुरु नानक, स्पष्टतः, नैतिक अद्वैतवाद की शिक्षा देते हैं :

"केवल एक आध्यात्मिक सत्य, शाश्वत सत्य, सृष्टिकर्त्ता और पालनकर्त्ता, अभय, शत्रुताविहीन, अमर, अपरिवर्तनशील, जन्म-मरण से मुक्त, स्वतः सिद्ध अस्तित्वमान है जिसे गुरु की कृपा से जाना जा सकता है।"

ये तत्त्व उनकी परवर्ती कविता के मूल में स्थित है जो कि उसे विधेयात्मक शक्ति से युक्त करते हैं। इसे पुष्ट करने के लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा :

भगति वछलु भगता हरि संग। नानक मुकति भए हरि रंगि

(भक्त वत्सल हरि अपने भक्तों के साथ ही रहता है। जो व्यक्ति हरि के रंग में रंगे हैं वे मुक्त हो जाते हैं।) (आसा अष्टपदी)

वैस्टमिस्टर की धर्म-सम्बन्धी आत्म स्वीकृति में भी, ईसाई-मत में प्रतिपादित नैतिक अद्वैतवाद का ही वर्णन किया गया है:—

"ईश्वर क्या है ? ईश्वर आत्मा है—अनन्त, शाश्वत और अविकारी और उसमें ज्ञान, शक्ति, पवित्रता, न्याय, अच्छाई और सत्य आदि गुण हैं।" (Shcrter Catechism, question 4)

महात्मा जॉन शिक्षा देते हैं—"जो प्रेम नहीं करता, वह ईश्वर को नहीं जान सकता, क्योंकि ईश्वर प्रेम है।" (First Epistle of John 4 : 8)

ईसा मसीह ईश्वर को सदैव 'पिता' कहकर सम्बोधित करते थे और अपने शिष्यों को इस प्रकार प्रार्थना करने के लिए प्रेरित करते थे :—

'हमारे पिता जो स्वर्ग में हैं, उनके नाम का प्रभामंडल बढ़े।
उनका साम्राज्य सुस्थिर हो और उनकी इच्छा पूर्ण हो।

---

१. डब्ल्यू० एच० मैकलाइड, गुरु नानक एण्ड दी सिख रीलिजन, पृ० १६५।

धरती पर भी और स्वर्ग में भी'

(गास्पल ऑफ मैथ्यू ६ : ६)

इस प्रकार दोनों धर्मों में ईश्वर सापेक्ष सत्ता है, शायद आधिभौतिक भी, पर निरपेक्ष सत्ता नहीं है। मानवता जिस सर्वोच्च वरदान की खोज में है या जिसे चाहती है, वह प्रेम और अनुग्रह का परमेश्वर हमें उपलब्ध है।

अनुग्रह द्वारा मुक्ति—'आदिग्रंथ' और 'नई बाईबल' के महान् शब्दों में से एक है 'प्रसाद' या 'अनुग्रह'। आदिग्रंथ में 'प्रसाद' शब्द ७२७ बार आया है और यदि हम इसके साथ 'कृपा' और 'नादिर' शब्दों के प्रयोग को भी जोड़ लें तो यह संख्या एक हजार से भी ऊपर होगी। यह सर्वविदित है कि अनुग्रह नई बाई-बल का मूल शब्द है, जो विशेष अर्थ में १६६ बार प्रयुक्त हुआ है और प्रायः हरेक पृष्ठ पर इसकी ओर सकेत किया गया है। ईश्वर के प्रेम की परिकल्पना; जो लोगों के प्रति अनुग्रह के रूप में अभिव्यक्त होती है, एक ऐसा केन्द्रीय तत्त्व है जिससे भक्ति और ईसाई-धर्म की परम्पराएं घनिष्ठ रूप से परस्पर जुड़ जाती हैं।

सिख गुरुओं की शिक्षा है कि पवित्र व्यक्ति गुरु के माध्यम से ही अनुग्रह प्राप्त करता है। गुरु ग्रंथ साहिब के प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में 'गुर प्रसादि' शब्द हैं जिनका अर्थ है गुरु की कृपा से। नए ईसाई मत के लेखकों ने भी इसी प्रकार, अनुग्रह को महात्मा ईसा मसीह के व्यक्तित्व और कर्म से सम्बद्ध किया है। सन्त पाल अनुग्रह से यह आशय ग्रहण करते हैं—

"ईसा मसीह की ओर से आश्चर्यचकित कर देने वाला आत्म-बलिदान का कर्म, मनुष्यों की ओर से पूर्णतः मक्त और अतुलनीय और पाप विमोचनकारी शक्ति है।"

ईसा मसीह की जीवनी से (जॉन १—१४) से हम इस प्रकार अर्थ कर सकते हैं—"अनुग्रह साकार रूप में हमारे बीच विचरता रहा।" सन्त ल्यूक का कहना है कि ईसा के जन्म के पूर्व ही ईश्वरीय अनुग्रह उनकी माता मेरी पर था और एक बच्चे के रूप में ईश्वर और लोगों के सम्मुख हर रोज़ अनुग्रह में ही उसका विकास हुआ। उन्होंने अपने गांव नज़ारथ में उपदेश देते हुए अधि-कारविहीन लोगों—गरीबों, बंदियों, पंगुओं और अंधों को अपना सन्देश सुनाया जिससे कि "सभी उनकी प्रशंसा करते थे और ईसा के मुंह से निकले कृपापूर्ण शब्दों पर हैरान थे।"[1] उनकी जीवनी का सारतत्त्व कारिथीयन को सम्बोधित उनके दूसरे पत्र में है—"तुम महात्मा ईसा मसीह के अनुग्रह को जानते हो कि यद्यपि वे अमीर थे पर तुम्हारे हेतु वे गरीब बन गए ताकि उनकी गरीबी तुम्हें अमीर बना सके।" अपने जीवन में अनुग्रह-युक्त प्रेम की शक्ति के कारण हम

---

१. दि गास्पेल ऑफ ल्यूक ४ : १६—२२।

उन्हें अप्रिय से प्यार करते, कोढ़ी को अपने स्पर्श से साफ करते हुए, बीमार का उपचार करते हुए, मृत को उठाते हुए और पाप के गहरे गर्त्त में गिरे हुए लोगों को जीवन की नूतन संपूर्णता की ओर उन्मुख करते हुए देखते हैं। नई बाइबल में जिन अधिकांश चमत्कारों को उनके जीवन से सम्बद्ध माना गया है, वे दुर्बल और दुर्भाग्यपूर्ण व्यक्तियों के प्रति उपचार और करुणा के और उनके माध्यम से व्यक्त ईश्वरीय अनुग्रह के प्रतीक हैं।

गुरु नानक के जीवन का एक प्रसंग यह है कि जब उन्हें गोइंदवाल स्थान पर किसी ने शरण नहीं दी तब एक गरीब कोढ़ी उन्हें अपनी झोंपड़ी में ले गया और सारी रात उनकी सेवा करता रहा। जब कोढ़ी ने अपने दुर्भाग्य को कोसा तो गुरु नानक ने उसे याद दिलाया :

बहुता बोलणु झखणु होइ। विणु बोले जाणै सभु सोइ॥
जे को डूबै फिरि होवै सार। नानक साचा सरब दातार॥ (राग धनासरी)

जब गुरु नानक ने दयापूर्वक उसे आशीर्वाद दिया तो उसका कोढ़ रोग ठीक हो गया।

अनुग्रह के जो असंख्य प्रसंग आए हैं, उनमें से सर्वाधिक विशद हैं :—

नानक नदरी करमी दाति॥ (जपु जी २४)

अनेक विद्वान, विशेष रूप से पाश्चात्य विद्वान, इस उलझन में हैं कि कर्म-संबंधी दोनों मतों की संगति कैसे बैठायी जाए? अर्थात एक कर्म सम्बन्धी मत यह है कि पिछले जन्मों के तमाम कर्मों का फल हमें इस जन्म में अवश्यमेव मिलता है। दूसरा अनुग्रह का सिद्धांत है। यह सत्य है कि संपूर्ण 'ग्रंथ साहिब' में कर्म और जन्म-जन्मांतर के सिद्धांत का प्रतिपादन है और बार-बार कथित है। लेकिन, ईश्वर की कृपा कहीं अधिक बलशाली है। पुनर्जन्म में फेर-बदल हो जाने से केवल मनमुख व्यक्ति ही डरता है। गुरमुख अतीत से सम्बन्ध विच्छेद कर, ईश्वरीय कृपा से मुक्ति प्राप्त करता है। गुरु नानक इस समस्या का भली-भांति समाधान करते हैं, जब वे कहते हैं—'करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु' (जपु जी—४)

हमें प्रसन्न होना चाहिए कि ईश्वर ने सर्वत्र अपने अनुग्रह की साक्षी अपने भक्तों को दी है। आदि ग्रंथ के प्रारंभिक और अंतिम शब्द हैं 'प्रसादि'। और नई बाईबल के सम्बन्ध में एक लेखक ने ठीक ही कहा है :

"समग्रतः, नई बाईबल से अधिक उपयुक्त और क्या हो सकता है जिसका एक मूल शब्द है कृपा या प्रसाद (Grace)। इसके प्रत्येक पृष्ठ पर हम कृपा की सर्वव्यापकता को अंकित कर सकते हैं और अन्त में आशीर्वाद के आशय से युक्त लिख सकते हैं—'महात्मा ईसा की कृपा सभी सन्तों पर हो।'
(रेवेलेशन २२ : २१)

समन्वय—'न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान', गुरु नानक के इन बहुधा उद्धृत शब्दों का उनके लिए चाहे कोई अर्थ रहा हो, यह स्पष्ट है कि गुरु नानक दोनों ही धर्मों के प्रति दायित्व अनुभव करते थे और उनका जीवन लक्ष्य समन्वय-साधना था। डॉ० आर्चर गुरु नानक के इस लक्ष्य के प्रमाण-स्वरूप, उनके द्वारा स्वीकृत धर्म साधना, जो अंशतः हिन्दु थी और अंशतः मुसलमान, का उल्लेख करते हैं—

"उन्होंने अपने समय के धर्मों का समन्वय करने की कोशिश की, यहाँ तक कि यात्रा में जो वेष-भूषा वे पहनते थे वह भी वृहत्तर विश्व के प्रति उनके सन्देश की प्रतीक थी। चूंकि वेष-भूपा धर्म-गुरुओं के साथ तदाकार होने का साधन था, अतः उनकी वेषभूषा सामंजस्यपूर्ण होती थी। वे सिर पर फकीरों या दरवेशों वाला पारसी मुस्लिम ढंग का कलन्दर पहनते थे। उनके माथे पर सिन्दूरी तिलक उनकी हिन्दू-साधना का प्रतीक था। उनके कंठ में हड्डियों का एक हार रहता था। उनके शरीर पर आम के रंग की एक जैकट रहती थी और उसके ऊपर एक सफेद चादर ढीले रूप में डाले रहते थे और उनके हाथ में माला होती थी।"[1]

पिनकाट भी गुरु नानक के समन्वय लक्ष्य की सफलता की प्रशंसा करते हैं—

"इस बात का अत्यधिक साक्ष्य मौजूद है कि गुरु नानक ने हिन्दू-धर्म और मुस्लिम-धर्म का समन्वय करने की ईमानदारी से साधना की थी। उन्होंने उन तत्त्वों पर बल दिया था जिन पर दोनों पक्ष सहमत हो सकें और जिन बातों पर भेद-भाव की गुंजाइश थी, उन्हें उन्होंने कोई महत्त्व नहीं दिया। इस बात से इन्कार करना असंभव है कि गुरु नानक ने, वस्तुतः अपने जीवन-काल में ही, काफी हद तक समन्वय साध लिया था और वे अपने पीछे एक ऐसी पद्धति छोड़ गए थे जो उनके शुभ कार्य को आगे बढ़ाने के लिए ही थी।"[2]

इसकी पुष्टि में वे गुरु नानक द्वारा सूफी शब्दावली के प्रयोग को उद्धृत करते हैं जैसे १ का प्रतीक परमेश्वर के लिए है; परमेश्वर प्यारे प्रियतम, प्रकाश पानी बिन मछली, ग़जल के एक चरण के अन्तिम शब्दों की लयात्मकता का और कविता की अतिम पंक्ति में उपनाम का प्रतीक है।[3]

गुरु नानक की मृत्यु का प्रसंग उनके उपदेश के प्रभाव को रेखांकित करता है। हिन्दू उनके शरीर को जलाना चाहते थे, मुसलमान उन्हें दफनाना चाहते थे। जब कफन उठाया गया तो वहां केवल फूल ही थे।

---

१. जॉन क्लार्क आर्चर, दि सिख्स, पृ० ७५, ७६।
२. डिक्शनरी ऑफ इस्लाम, आर्ट 'सिखिज्म', पृ० ५८३, ५९१।
३. वही, पृ० ४८३, ५३१।

ईसाई धर्म का मर्म भी समन्वय है। 'Gospel' शब्द का अर्थ ही है 'शुभ समाचार', ईश्वर से अपने खोए हुए सम्बन्ध को स्थापित करने की पद्धति से पैदा हुई प्रसन्नता की लहर। युद्धों, वर्गों और जातिगत घृणा के इन दिनों में उपयुक्त यही है कि समन्वय-साधना को आधार बनाकर ईसाई-धर्म की नव्यतम व्याख्या की जाए। "१६६७ की स्वीकारोक्तियाँ" (Confession of 1967) जो कि अमरीका के संयुक्त प्रैसबायाटीरियन चर्च द्वारा अपनायी गयीं, का यही मुख्य विषय है जिसके आधार पर ईसा मसीह के जीवन सन्देश का और उनके चर्च से जिस सेवा की आशा की जाती है, उसका निरूपण किया गया है। एक प्राचीन विषयवस्तु पर आधुनिक दृष्टि से बल देने के उदाहरणस्वरूप यहाँ एक उद्धरण, अंशतः, दिया जाता है—

ईसा मसीह परमेश्वर की समन्वयकारिणी क्रिया से युक्त होकर ही बुराई को परमेश्वर की निगाह में पाप मानते हैं। पाप कर्मों में लिप्त मनुष्य स्वयं को अपने जीवन का नियामक मान बैठते हैं, ईश्वर के और अपने साथियों के विरुद्ध हो जाते हैं और फिर संसार के शोषक और लुटेरे बन जाते हैं। परमेश्वर जो कि एक पुनीत चेतना है, मनुष्य में समन्वय के लक्ष्य को पूरा करता है। वह उन्हें इस योग्य बनाता है कि वे क्षमाशीलता को वैसे ही ग्रहण करें जैसे कि वे एक दूसरे को क्षमा कर देते हैं और ईश्वरीय शान्ति से वैसे ही प्रसन्नता अनुभव करें जैसे कि वे आपस में शान्ति स्थापित करते हैं।

नए जीवन का प्रादुर्भाव ऐसे समाज में ही होता है जहाँ मनुष्य जानते हैं कि ईश्वर मनुष्यों को प्यार करता है और उन्हें, वे कैसे भी हों, अपनी शरण में स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार वे स्वयं को मान्यता देते हैं और दूसरों को प्यार करते हैं, क्योंकि वे भली-भांति जानते हैं कि ईश्वरीय कृपा के बिना किसी मनुष्य की कोई शरण (आधार) नहीं है।

ईश्वर ने मनुष्यों को धरती पर एक सार्वभौम परिवार के रूप में उत्पन्न किया है। अपने समन्वयात्मक प्रेम के कारण वह भाई-भाई के बीच की दीवारों को तोड़ देता है और जातिगत या जाति संबंधी, वास्तविक या कल्पित अन्तर पर आधृत, हर प्रकार के भेद-भाव को, नष्ट कर देता है। ऐसे समागम, व्यक्ति और ईसाइयों के वर्ग जो भेद-भाव करते हैं, जो आधिपत्य करते हैं या जो सूक्ष्म रूप से ही सही, अपने साथियों का संरक्षण करते हैं, वे ईश्वरीय चेतना का विरोध करते हैं और जिस धर्म का पालन करते हैं, उसी को कलंकित करते हैं।

जैसे-जैसे देश अणु, रसायन, प्राणिशास्त्र सम्बन्धी अन्वेषण करते जाते हैं वैसे-ही-वैसे राष्ट्रों में समन्वय होना विशेष रूप से जरूरी होता जाता है क्योंकि

ऐसे देशों की मनुष्य-शक्ति और साधन रचनात्मक प्रयोगों से हटकर, मनुष्यता के नाश के भय की ओर ले जाते हैं। यद्यपि राष्ट्र इतिहास में ईश्वरीय उद्देश्यों को पूरा करते हों, पर, वह चर्च जो किसी एक राष्ट्र की ओर ईश्वरीय उद्देश्य से सम्बद्ध किसी एक जीवन-पद्धति की प्रभुसत्ता से तदाकार हो जाता है या पूर्ण मान्यता दे देता है, वह चर्च ईसा मसीह की महानता का निषेध करता है और उसके हुक्म को अस्वीकार करता है।

ईसा मसीह के माध्यम से मनुष्य की यह समन्वय साधना, इस बात को स्पष्ट कर देती है कि इस समृद्ध और सम्पन्न संसार में, दास बनाने वाली गरीबी, ईश्वर की सुन्दर सृष्टि में एक असह्य उल्लंघन है। चूंकि महात्मा ईसा ने अभावग्रस्त और शोषित लोगों के साथ स्वयं को तदाकार कर लिया था, अतः तमाम संसार के गरीब लोगों की दशा को सुधारने का कार्य, ईसा के शिष्यों का ही कार्य है।[1]

सन्त पाल ने अपने दूसरे पत्र में जो उन्होंने प्रथम शताब्दी में रोम की संघर्ष-पूर्ण बन्दरगाह कोरिंथ में रहने वाले ईसाइयों को सम्बोधित करके, सार-रूप में लिखा है :

"अतः जो भी ईसा के साथ जुड़ा है, वह एक नयी सृष्टि है। देखो, पुरातनता समाप्त हो गयी है और नयी चेतना का उदय हुआ है। यह सब ईश्वर की ओर से प्रदत्त है और ईसा के माध्यम से हमें उससे संयुक्त करता है और समन्वय सिद्धांत प्रदान करता है। अभिप्राय यह है कि ईसा में ईश्वर है जो सारे विश्व को उससे जोड़ता है, उनके उल्लंघनों को नहीं गिनता और हमें समन्वय का सिद्धांत प्रदान करता है। इस प्रकार हम तो ईसा के सन्देशवाहक हैं; हमारे माध्यम से ही ईश्वर अपना सन्देश देता है। हम ईसा की ओर से प्रार्थना करते हैं कि ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ लो।"

(सेकंड कार्नेथियनस ५ : १७-२०)

सन्त पाल और गुरु नानक के युगों में जीवन सीधा-सादा था, लेकिन हम अनुमान कर सकते हैं कि दोनों ने, जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं, समन्वय की वैयक्तिक, सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय जटिलताओं की पुष्टि की थी और '१९६७ की स्वीकारोक्तियों' के सिद्धांतों को मान्यता दी थी।

धर्म सन्देश सेवा—गुरु नानक की विस्तृत यात्राएँ और सभी प्रकार के धार्मिक लोगों से उनके संवाद, उनके धर्म-प्रचारक उत्साह की गवाही देते हैं। यदि जन्म साखियों में संग्रहीत आधी यात्राएँ भी प्रामाणिक हैं, तो वे गुरु नानक

---

१. दी कान्फेशन ऑफ १९६७, यू० एस० ए० के यूनाइटिड प्रैसबायटीरियन चर्च की साधारण सभा की कार्यवाहियों पर आधारित, खंड १, पृ० ७३१-७४०।

के धर्म की गतिशील विशेषता की प्रभावशाली ढंग से पुष्टि करती हैं—

"धर्म प्रचार की वृत्ति इस विचार से पैदा होती है कि किसी एक धर्म विशेष में सार्वजनीन विशेषताएँ हैं और आध्यात्मिक और नैतिक दायित्व की चेतना इसके उपदेशों के प्रसारण के लिए प्रेरित करती हैं।"[1]

डा० शेरसिंह इसी बात को इस प्रकार कहते हैं—

"निश्चय ही वह इन स्थानों पर अपने धर्म-सन्देश का उपदेश देने और लोगों को अपने धर्म में दीक्षित करने के लिए ही गए थे। कहा जाता है कि उन्होंने अन्य धर्मावलम्बी लोगों को सिख-धर्म में दीक्षित किया था। मरदाना, जो मूल रूप से एक मुसलमान था, उनका एक आज्ञाकारी साथी और शिष्य बना।"[2]

प्रोफेसर तेजासिंह भी, इसी प्रकार स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं—

"गुरु नानक सच्चे अर्थ में धर्म प्रचारक थे। उनका संपूर्ण जीवन धर्म-सन्देश का जीवन था। गुरु नानक ने दुनिया के किसी भी पैगम्बर से, अपेक्षाकृत कहीं अधिक, पृथ्वी के एक बड़े भाग की यात्रा की थी। यदि उस जमाने में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की कठिनाइयों और यात्राओं के दौरान जिन क्षेत्रों में वे गए वहाँ की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक अनेकरूपता को हम विचाराधीन रखें तो हम उस स्फूर्ति और धैर्य पर आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रह सकते जिनसे उन्होंने स्वयं को अपने समय की परिवर्तनशील शक्तियों के अनुरूप ढाला।

जो भी व्यक्ति अपने धर्म को विश्वास और विवेक से ग्रहण करता है, उसकी यह आकांक्षा होती है कि उसका धर्म प्रत्येक मानव का धर्म बन जाए। धर्म-प्रचार का आन्दोलन किसी भी धर्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। चर्च का या तो प्रसार होता है या फिर यह अनास्था के कारण नष्ट हो जाता है।"[3]

इस प्रकार गुरु नानक का सिख-धर्म संसार के धर्म-प्रचारार्थ धर्मों यथा बुद्ध-धर्म, इस्लाम और ईसाई-धर्म के समान है। गुरु नानक ने लक्षित किया कि यदि हमें अपनी भौतिक सामग्री अभावग्रस्त लोगों से सांझी करनी है, तो उस हालत में हमें अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों में भी सांझेदारी करनी चाहिए। उदाहरणस्वरूप, इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में ईसाई मत को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :

---

१. 'सामाजिक विचारों का विश्वकोश' 'कला' "मिशनरी" लेखक [illegible]।
२. शेरसिंह, फिलॉसफी ऑफ सिखिज्म, पृ० [illegible]।
३. तेजासिंह, गुरु नानक एण्ड हिज मिशन, पृ० १४, १६।

"ईसाई धर्म प्रचार का चरम तर्क, जैसा कि हमेशा होता है, ईसाइयों का यह विश्वास है कि उन्हें अपने उद्धारकर्त्ता के प्रति एक बहुमूल्य तोहफे के ऋण को चुकाना है और वे इसे अपने पास नहीं रख सकते। आधुनिक विश्व को इस तथ्य में यह उद्देश्य निहित प्रतीत हो सकता है कि तमाम देशों में एक सम्मिलित (और काफी हद तक धर्म-निरपेक्ष) सभ्यता का रूप-चित्र उभर रहा है। यह भी बहुत स्पष्ट है कि प्राचीन धर्म, काफी हद तक, इसके लिए अप्रासंगिक है। साथ ही संपूर्ण इतिहास इस बात का साक्षी है कि कोई भी समाज, किसी धार्मिक और नैतिक आधार के बिना जीवित नहीं रह सकता, और यह संभव प्रतीत होता है कि मानवता धर्म निरपेक्षता और ईसा के धर्म के बीच चुनाव करने की दिशा में अधिकाधिक अग्रसर होगी।"[1]

सच्ची धर्म-प्रचार भावना, धर्म-परिवर्त्तन को, अनिवार्यतः अपना लक्ष्य निर्धारित करती है। आधुनिक मानस 'धर्म-परिवर्त्तन' शब्द के प्रयोग से संकोच करता है, क्योंकि यह प्रायः एक धार्मिक समुदाय से दूसरे धार्मिक समुदाय में स्थानान्तरण और लेबिल में परिवर्त्तन के अर्थ में लिया जाता है जबकि धर्म-परिवर्त्तन का वास्तविक आशय जीवात्मा का ईश्वर के प्रति उन्मुख होना, मनमुख से गुरमुख बनना है। धर्म-परिवर्त्तन और इसके लाभों को एक प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता ने इस प्रकार वर्णित किया है :

"धर्म-परिवर्त्तन विशिष्ट हृदय-परिवर्त्तन, भावात्मक पुनर्जीवन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसका आगमन या निष्पत्ति, विशेष रूप से आकस्मिक होती है जिससे कि व्यक्ति के जीवन की दृष्टि, आन्तरिक सतुलन और आदतें, गतिशील ढंग से प्रभावित होती हैं। इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव, आध्यात्मिक सहजता और सुरक्षा, द्वंद्व का समाधान, एक स्वीकृत सिद्धांत के प्रति सर्वभावेन समर्पण की भावना, एक उच्च उद्देश्य के लिए समर्पण-भाव, समन्वय की उल्लासपूर्ण भावना, पैदा होती है। इसका परिणाम है 'आनन्द' और 'निस्वार्थ भावना'।"[2]

निश्चय ही गुरु नानक को सुलतानपुर में वेईं नदी के तट पर, ऐसी ही रहस्यात्मक अनुभूति का अनुभव हुआ था और अन्याय और अत्याचार के जिस अन्धकारपूर्ण युग में वे रहते थे, उसमें वे चाहते थे कि दूसरे भी मानसिक शान्ति का लाभ उठाएं।

ईसाई धर्म-प्रचार इतना सुपरिचित है कि यहाँ इसकी व्याख्या करने की कोई ज़रूरत नहीं। महात्मा ईसा मसीह का उदाहरण हमारे सामने है। जब उन्होंने

---

१. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, १४ वां संस्करण, १९३६ आर्ट मिशन्ज़, पृ० ६००
२. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ सोशल साइन्सेज, आर्ट "कन्वरशन", लेखक जासिफ जेस्टरो।

अपने मूल निवास नगर में अपने धर्मार्थ सन्देश की घोषणा की थी :

"परमात्मा की चेतना मेरे साथ है, क्योंकि उसने मुझे
नियुक्त किया है गरीबों को शुभ समाचार का सन्देश देने के लिए,
उसने मुझे भेजा है कि मैं बन्दियों की मुक्ति की घोषणा करूं
अंधों को दृष्टि दूं। जो शोषित हैं उन्हें मुक्त करूं
और ईश्वर को स्वीकृत वर्ष की घोषणा करूं।"

(दि गास्पेल ऑफ ल्यूक ४ : १८, १९)

महात्मा ईसा मसीह का सन्देश है :

"ईश्वर का संसार के प्रति इतना प्रेम था कि उन्होंने अपना एक मात्र पुत्र संसार को दे दिया। जो भी उसपर विश्वास करता है, वह नष्ट नहीं होता, बल्कि शाश्वत जीवन जीता है।" (दि गास्पेल ऑफ जॉन ३ :१६)

ईसा मसीह का अपने शिष्यों के प्रति अन्तिम आदेश था :

"स्वर्ग में और धरती पर, सारी सत्ता मुझे दे दी गई है। अतः जाओ, और सभी राष्ट्रों को, परमपिता और पुत्र की ओर से पवित्र आत्मा की ओर से अपने शिष्य बनाओ और इस धर्म में दीक्षित करो और मैंने तुम्हें जो आदेश दिए हैं, उनके पालन करने की शिक्षा उन्हें दो। और देखो, मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं इस युग के अन्त तक।" (दि गास्पेल ऑफ मैथ्यू २८ : १८ : २०)

इस आदेश की पूर्ति के लिए, सन्त पॉल यूरोप में गए और सन्त थॉमस, एक विश्वस्त परम्परा के अनुसार, दक्षिण भारत में आए और वहां ईसाई चर्च की स्थापना की। अतः केरल में आज भी हमें सन्त थॉमस के चर्च दिखाई देते हैं।

'१९६७ की स्वीकारोक्तियां' दृष्टि के विस्तार और विश्वास की दृढ़ता को प्रस्तुत करती हैं जो सन्दर्श-प्रचारात्मक धर्मों पर भली-भांति लागू हो सकती हैं :

"ईसाई अन्य धर्मों और अपने धर्म के बीच समानान्तरताएं ढूंढ़ता है और सभी धर्मों के प्रति उन्मुक्तता और आदर का भाव रखता है। जो ईसाई नहीं हैं, उनकी अन्तर्दृष्टि का उपयोग चर्च को सुधारने के लिए ईश्वर ने बार-बार किया है। लेकिन इंजील का समन्वयात्मक शब्द है—ईश्वरीय निर्णय, ईसाई धर्म सहित सभी धर्मों के सभी प्रकारों पर है। इस प्रकार, चर्च का प्रवर्त्तन, तमाम लोगों तक, चाहे वह किसी धर्म का पालन करते हो, या किसी भी धर्म का पालन न करते हों, धर्म-सन्देश को पहुंचाना है।"

(कन्फेशन्स ऑफ १९६७, पृ० ७३७)

उच्च धर्मों में, धर्म-प्रचार की क्रिया, प्रायः दोनों ही सम्बद्ध धर्मों को लाभ पहुंचाती है। उदाहरणस्वरूप, सिखों और ईसाइयों को एक दूसरे की जरूरत है। सिख-धर्म के लिए ईसाई-धर्म की प्रासंगिकता का जो सवाल है, इस संबंध में सिखों को स्वयं ही निश्चय करना चाहिए। इस संबंध में प्रोफेसर तेजासिंह

का मत इस प्रकार है :

"नयी युग चेतना के उदय के साथ, सिख धर्म को पश्चिम से लाभ हुआ है जो कि सिख-धर्म का, विशद दृष्टि और मुक्त चिन्तन के कारण, एक प्रकार से मित्र है। नया युग, अपने सार्वजनीन सम्बन्धों और विश्वव्यापी विचारों के साथ, हरेक धार्मिक विश्वास पर जबर्दस्त दबाव डालता है और उसका परीक्षण करता है। वे परम्पराएं और नियम जो युगों से लोगों के मन को सन्तुष्ट किए हुए थे, अब उनमें दरारें पड़ रही हैं, वे टूट रहे हैं और बवंडर में घिरे हुए पुराने जहाज के मस्तूलों के समान टुकड़े-टुकड़े होकर गिर रहे हैं। लगता है सिख धर्म ने ही इस तूफान का सामना किया है।"[1]

जहां तक ईसाई-धर्म के लिए सिख-धर्म की प्रासंगिकता का सम्बन्ध है, ईसाई सिख-धर्म द्वारा बल दिए गए सेवा-भाव से लाभ उठा सकते हैं—उदाहरण स्वरूप ईंटों के ढेर को स्वेच्छा से हटाना, सामाजिक समानता और लंगर आदि। उनका आध्यात्मिक अनुशासन, नियमित उपासना की उनकी आदत, उनकी स्तुति और ध्यान और अनेक सिख घरों में मन्दिर-कक्ष भी प्रशंसनीय हैं। निरन्तर वर्धमान धर्मनिरपेक्षता को देखते हुए, नैतिकता में सापेक्ष दृष्टि, आत्मा से सम्बद्ध बातों के प्रति उदासीनता, व्यक्तियों को चीजों में बदल देने वाली प्रवृत्ति को देखते हुए, यह ठीक प्रतीत होता है कि दोनों धर्म उस सब के प्रति मिलकर खड़े हों जो मानव-आत्मा को गिराता है और डा० आर्चर के शब्दों में "सभी के कल्याण के लिए संयुक्त प्रयत्न में सहयोग करें—सर्वाधिक तात्कालिक सहयोगी प्रयास जिसके सर्वोत्तम परिणाम निकल सकते हैं—वह है कि भातृ-भाव का अभ्यास किया जाए।"[2]

भावी जीवन—गुरु नानक का, निश्चय ही, पुनर्जन्म में विश्वास था। "गुरु के अनुसार, भावी जीवन दो प्रकार का है—आवागमन अथवा ईश्वर की उपस्थिति में आगमन जिसे परम ब्रह्म से तदाकार होना भी कहा गया है।"[3] जैसे-जैसे आत्मा आध्यात्मिक अनुभूति के खंडों में से गुजरती हुई चलती है, वैसे-वैसे अहं-भाव दूर हो जाता है और आत्मा पांचवें अथवा 'सच खंड' में प्रवेश करती है—यह अवस्था ईश्वर से तदाकार होने की आनन्दावस्था है जिसे मानव भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। और जैसा कि सन्त पॉल ने कहा है—"मैं ईश्वर की प्रत्यक्षानुभूति और साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहूंगा। मैं ईसा में एक ऐसे मनुष्य को जानता हूं जो चौदह साल

---

१. तेजासिंह, गुरु नानक एण्ड हिज़ मिशन, पृ० १५, १६।
२. आर्चर, दी सिख्स, पृ० ३३२।
३. शेरसिंह, फिलासफी ऑफ सिखिज़्म, पृ० २०२।

पहले तृतीय स्वर्ग में पहुंच गया था—सशरीर या शरीर से अतीत होकर, मैं नहीं जानता। केवल ईश्वर जानता है। और मैं जानता हूं यह मनुष्य स्वर्ग में था और इसने जो सुना उसे बताया नहीं जा सकता और कदाचित उसे लोग कह भी नहीं सकते।" (सेकंड कारिन्थियन्स १२.२-४)। ऐसा कुछ विश्वास सभी धर्मों के रहस्यवादियों में समान रूप से प्रतीत होता है। प्रश्न यह है कि क्या मानवीय व्यक्तित्व किसी न किसी रूप में जीवित रहेगा या नहीं और व्यक्तित्व जिसे हम उच्चतम विकास की संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं, और जिसमें सोचने, देखने, संकल्प करने, कर्म करने आदि गुणों से युक्त व्यक्ति निरपेक्ष ब्रह्म में विलीन हो जाने के लिए ही हैं ? यह कल्पना करना कठिन है कि ईश्वर से एकात्म होकर आनन्द की तीव्र आकांक्षा, गुरु नानक के व्यक्तित्व के विलीनीकरण में विश्वास को सूचित करती है। निश्चय ही आनन्द को चेतना की अपेक्षा है, जो कि व्यक्तित्व का एक गुण है। चूंकि यह अनुभूति मानवीय भाषा में वर्णित नहीं की जा सकती, अतः कदाचित हमें भी ईश्वरीय प्रेम पर मुग्ध होकर ईश्वर की स्तुतियां गाने में संतोष करना चाहिए और अपना भविष्य उस पर ही छोड़ देना चाहिए। गुरु नानक अपने बारह मासा में वतलाते हैं कि भरी जवानी में ईश्वर का खोजी व्यक्ति भले ही गलत रास्ते पर चला जाए, लेकिन यह आशा रहती है कि कूका जड़ों के समान बाल पक जाने पर भी ईश्वर अपनी कृपा से अद्वैत स्थापित कर देंगे, जैसे कि कहा भी है, 'सहज पके सो मीठा होय' जीवन के संघर्ष में यह आशा सदैव रहती है कि जिस प्रकार काले, गरजते हुए बादलों के बीच चन्द्रमा चमकता रहता है वैसे ही प्रेम का प्रकाश प्रियतम का मार्ग दिखा सकता है जहां जीवात्मा सदैव आनन्दावस्था में रह सकती है।

ईसाई का विश्वास है कि केवल व्यक्ति ही नहीं, समस्त प्रकृति एवं इतिहास, जीवन से परे ईश्वर के साम्राज्य में अपनी चरम परिणति प्राप्त करता है। एक बार हम फिर '१९६७ की स्वीकारोक्तियों' की ओर मुड़ते हैं यह जानने के लिए कि शाश्वत-जीवन और ईश्वरीय साम्राज्य से ईसाई क्या समझते थे।

ईसा से सम्बद्ध जीवन शाश्वत जीवन है। ईसा का उत्थान ईश्वरीय चिन्ह है कि वह मृत्यु से परे सृष्टि और समन्वय के कार्य को सिद्ध करेगा और ईसा द्वारा प्रवर्तित नए जीवन की पूर्ति करेगा। ईसा के शासन के, बाईबल में जो अन्तर्दृश्य और बिम्ब मिलते हैं जैसे कि स्वर्गिक नगर, पितृ आवास, एक नया स्वर्ग और पृथ्वी, विवाह संबंधी प्रीति भोज, एक न खत्म होने वाला दिन, समाज के बिम्ब के रूप में परिणत होते हैं। यह साम्राज्य उन सब पर ईश्वर की विजय का प्रतिनिधि है जो उसकी इच्छा का विरोध करते हैं या उसकी सृष्टि को नष्ट करते हैं। अभी भी संसार में ईश्वर का शासन एक जागरण के रूप में उपस्थित है, जो लोगों में आशा का संचार करता है और संसार को चरम

निर्णय और मुक्ति की प्राप्ति के लिए तत्पर करता है।

इस आशा से उत्पन्न आवश्यकता के कारण चर्च-कार्य करने में संलग्न होता है और एक वेहतर विश्व के निर्माण के लिए प्रयत्नशील होता है। चर्च-पृथ्वी पर ईश्वरीय साम्राज्य को न तो सीमित प्रगति के रूप में ग्रहण करता है और न ही निराशा और पराजय के सम्मुख घुटने टेक देता है। चर्च स्थिर आशा से, आंशिक उपलब्धियों से परे, ईश्वर की अंतिम विजय की ओर दृष्टिपात करता है।

"अब तो केवल वही जिसकी शक्ति हमारे भीतर सक्रिय है, वह हमारे कहने या सोचने की अपेक्षा कहीं अधिक कार्यरत है, उसी की गौरव-गरिमा चर्च में और ईसा मसीह में सदैव शताब्दियों तक रहेगी (आमीन)।"[1]

१. कन्फैशन ऑफ १९६७, जनरल एसेम्बली की कार्यवाहियां, १९६७, पृ० ७३५, ७४०।

: ११ :

धार्मिक नियमनिष्ठता और गुरु नानक

बलवन्त सिंह आनन्द

अक्सर हम पूरी तरह यह नहीं समझ पाते कि व्यक्तियों तथा प्रकृतियों पर अतीत कितना गहरा प्रभाव छोड़ता है; एक ओर यदि यह प्रेरणा का स्रोत हो सकता है तो साथ ही निरर्थक बोझ भी। इसलिये यह आवश्यक है कि कार्यरत ज्ञानविरोधी तथा प्रतिगामी शक्तियों को छोड़ प्रगतिशील अथवा प्रगामी शक्तियों के चुनाव और समर्थन का सचेत प्रयास होना चाहिए। किन्तु हमें यह भी याद रखना होगा कि अतीत कोई लबादा नहीं जिसे आसानी से उतार कर फेंका जा सकता है; यह सदा ही बना रहता है, और यदि इस पर नज़र न रखी जाये और इसकी आलोचनात्मक परीक्षा न की जाये तो यह वर्तमान तथा भविष्य को प्रभावित करता ही रहता है। धर्म के क्षेत्र में इस प्रकार का दृष्टिकोण तो और भी आवश्यक है, क्योंकि आमतौर से लोग धर्म को अकेला छोड़ देते हैं क्योंकि इसे इतना व्यक्तिगत, इतना पवित्र तथा इतना रहस्यवादी मान लिया जाता है कि इससे छेड़छाड़ करना मुनासिब नहीं समझा जाता।

धर्म में नियमनिष्ठता अथवा **आकारिकता** अत्यन्त प्राचीन काल की एक विरासत है, तथा विकास के हर क़दम पर पुजारी वर्ग की कोशिश यही रही है कि वे धर्म में **आकारिकता** अथवा **औपचारिकता** को और बढ़ायें, और इस तरह लोगों पर अपना अधिकार भी बढ़ाते जायें। आदिकालीन समाज में पुजारीवर्ग जिन्हें **बाजीगर** माना जाता, कर्मकाण्डों, पूर्वजों की पूजा तथा बलि द्वारा पवित्रता-अपवित्रता से सम्बद्ध होते, क्योंकि यही कुछ तो जादुई धर्म के विशेष लक्षण थे। आदिम समाज में जादू-टोना लोगों के जीवन का एक अंग था। एक यथार्थ था और इसके ज़ोर पर सब कुछ संभव था; दौलत मिलती और अच्छी फ़सल उगती; इसके बल से खतरे दूर हो जाते, प्रिय-प्रेम की प्राप्ति होती, वर्षा होती और दुश्मन हार कर भाग खड़ा होता। जादू-टोना आदिम मनुष्य का धर्म तथा कर्मकाण्ड इस धर्म का अति आवश्यक अंग था।

इन्सान जब आदिम अवस्था से आगे बढ़ा और कृषि समाज का सदस्य बना तो नये देवताओं की रचना की गयी। विकास प्रक्रिया, मनुष्य तथा ईश्वर, दोनों पर लागू हुई। मनुष्य के विकास में जीवन के एक स्थायी रूप—उसके

अन्तर्जीवन की झलक मिलने लगी। आदिम युग के धूमिल प्रेतों तथा राक्षसों की जगह अब विशिष्ट हितों वाले परिष्कृत देवताओं ने ली। फलस्वरूप वैदिक युग के अनेकेश्वरवाद का प्रारम्भ हुआ, और इंद्र, उषा, सूर्य, अग्नि, वरुण तथा सोम नये देवताओं के रूप में स्थापित हुए। वैदिक देवता अपने कायिक रूप में प्राकृतिक प्रतिभास को व्यक्त करते, तथा होमर (यूनानी दार्शनिक लेखक) के देवताओं की तरह वे देवता भी मनुष्यों के ही आवर्धित रूप थे जिनमें मनुष्य-गत वासनाएं, द्वेष तथा कामनाएं वर्त्तमान होतीं। फिर भी उनकी आराधना की जाती तथा उनसे समृद्धि, दीर्घजीविता तथा प्रसन्नता जैसे जीवन के वरदानों की याचना की जाती। उनकी पूजा का रूप अब प्रार्थना थी। किन्तु पूर्वजों की पूजा तथा वलि में विश्वास, यद्यपि परिष्कृत रूप में, ज्यों का त्यों, वना ही रहा तथापि उनकी प्रार्थना भी एक प्रकार का जादुई मंत्र होती जिससे सम्बोधित देवता से, याचक की इच्छा पूरी करने की मांग की जाती। वलि के समय उच्चरित होने वाली प्रार्थनाओं को जादूई मंत्रों तथा वशीकरण के रूप में सुरक्षित रखा गया, और इनके वारे में धारणा यह थी कि इनके वल पर प्राकृतिक घटनाओं जैसे मौसम के चक्र पर नियंत्रण किया जा सकता है; रण में विजय प्राप्त की जा सकती है तथा समृद्धि तथा पारिवारिक सुख की प्राप्ति की जा सकती है। प्राकृतिक प्रतिभासों के पीछे छिपी सम्पूर्ण सत्ता के अस्पष्ट वोध के भी चिन्ह प्रकट होने लगे थे। वैदिक दर्शन अब सर्वेश्वरवाद (pantheism) तथा वहुदेवपूजन (polytheism) को छोड़ एकेश्वरवाद (monoism) की ओर वढ़ा जिसके अनुसार विश्व में तथा विश्व से परे एक सर्वोच्च सत्ता की उपस्थिति मानी गयी।

(२)

नगर वने तो देवताओं का ओहदा भी वढ़ा। छोटे देवतागण भुला दिये गये और प्रजापति, विष्णु, शिव तथा रुद्र जैसे वड़े देवताओं की पूजा होने लगी। गृह वने तो मंदिरों का भी निर्माण हुआ और मंदिरों के साथ पुजारी भी आये। जादूगरों की हैसियत (यद्यपि अब तक काफी वदल चुकी थी) अब ब्राह्मण अर्थात् पुजारी को मिली। यहूदी, यूनानी, रोमन तथा ईरानी, सभी सभ्यताओं में पुजारी को महत्वपूर्ण दर्जा दिया गया है लेकिन भारत जैसा अनन्य पद कहीं नहीं मिला। प्रारम्भिक आर्यों के समाज में सवसे मुख्य तथा प्रभावशाली वर्ग के रूप में ब्राह्मण का आविर्भाव हुआ। यहां तक की सरदारगण तथा कालान्तर से राजागण भी ब्राह्मण पुजारियों का आर्शीवाद पाकर ही अपना अधिकार-प्रयोग करते थे।

प्रारम्भ में ब्राह्मण, विद्वान तथा पवित्र वर्ग के रूप में सामने आये, जिनका पवित्र काम था धार्मिक अनुष्ठानों का पालन तथा अपने शिष्यों को विद्या प्रदान करना। वैदिककाल में उनकी विद्या, पवित्रता तथा जीवन की सरलता के लिये

उनका आदर होता था। किन्तु जब रजवाड़ों की ओर से उन्हें धन तथा मूल्यवान उपहारों से लादा जाने लगा तो वे एक विशेषाधिकारी वर्ग के रूप में माने जाने लगे, और कालान्तर में इतने मानास्पद बन गये कि समाज के सभी अन्य वर्गों का, ईश्वर के नाम पर ही, शोषण करने तथा विलासिता में डूबने लगे। धन तथा पद ने उन्हें भ्रष्ट कर दिया। धन और अधिकार से बढ़कर आत्मा का हनन करने वाला अन्य कुछ नहीं। इसके अतिरिक्त, ब्राह्मणों के अवनतिकाल में धार्मिक नियमनिष्ठता और रस्मों ने इतना ज़ोर पकड़ लिया कि वे अपने आप में एक संस्था बन गयीं और असली धर्म की ही जगह ले बैठीं। पूजा के नाम पर अनात्मिक, भावनाहीन तथा यंत्रवत् रस्म-अदायगी होने लगी। यह वह समय था जब, ब्राह्मण के पृथ्वी पर हिन्दू धर्म के सबसे बड़े कोषाध्यक्ष के रूप में स्थापित होने के अतिरिक्त चतुर्वर्ण व्यवस्था का भी उद्भव हुआ। वर्णव्यवस्था को यह कह कर उचित बताया गया है कि इससे जातीय विशुद्धता बनी रहती है, तथा समाज के विभिन्न वर्गों में श्रम का विभाजन तथा विशेषीकरण भी ठीक रहता है। इसके पक्ष में चाहे कुछ भी कह लें, वर्णव्यवस्था ने सदियों तक समाज के पूरे के पूरे भागों को दासता तथा पतन के गर्त में डाल दिया। समय के ताल पर विभिन्न दर्शन व्यवस्थाओं को स्वीकारे तथा नकारे जाने के साथ-साथ, भारत में कितने ही साम्राज्य बने और बिगड़े। इन अवधियों में ब्राह्मण का भाग्य भी डांवांडोल होता रहा; एक ओर तो वह अश्वमेध यज्ञ करता, दूसरी ओर पूर्ण सर्वनाश से त्राण के लिये गुरु तेग़ बहादुर से सहायता की अपेक्षा भी करता। किन्तु धार्मिक कूटनीति में ब्राह्मण सबसे अधिक दक्ष था। कोई भी युग या कोई भी समय हो, हिन्दू समाज में अपना स्थान उसने सर्वोच्च ही बनाये रखा। जब मूर्तियों की स्थापना हुई तो उसने मंदिर पूजा की व्यवस्था दी तथा जुलूसों और तीर्थयात्राओं के अनेक प्रकार के नियम बना डाले। आदिम समाज के जादूगर से उसे विरासत में पूर्वजों की पूजा, बलिपूजा, शाप और वरदान की शक्ति पवित्रता और भ्रष्टता की अभिधारणायें, रीतिरिवाज तथा कर्मकाण्ड, वर्णव्यवस्था और मन्दिर पूजा मिली। हिन्दू धर्म की व्यापकता तथा उदारता ने उसकी एक और प्रकार से सहायता की। हिन्दू धर्म की छत्रछाया इतनी पर्याप्त थी कि उसके नीचे सभी प्रकार के विश्वास आ सकते थे। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि कोई एक ईश्वर में या अनेक ईश्वर में विश्वास करता हो, या किसी ईश्वर में विश्वास करता ही न हो; हिन्दू धर्म को इसकी चिन्ता न थी कि कोई शिव की या विष्णु अथवा शक्ति की उपासना करता है; अपने को हिन्दू कह देना ही हिन्दू धर्म का सदस्य होने के लिये काफ़ी होता। इसकी स्वांगीकरण-शक्ति ने बुद्ध धर्म तथा जैन धर्म को आत्मसात कर लिया, तथा इन धर्मों के त्याग, तपस्या तथा शारीरिक यातना सम्बन्धी विश्वासों को अपना बना लिया। इन सबसे ब्राह्मण

को अपने सर्वोच्च पद को बनाये रखने में सहायता मिली। जब तक समाज ब्राह्मण को पुजारी मानता तथा धार्मिक संस्कारों को सम्पन्न कराने वाला एक मात्र व्यक्ति समझता, हर किसी को मन्दिर में आने की आज्ञा थी। यह एक कटु सत्य है कि अपने निजी लाभ के लिये उसने मन्दिरों में अनैतिक आचरण तथा भ्रष्टता को पनपने दिया।

इसके अतिरिक्त, हिन्दू समाज के स्थायी तथा संपूर्ण शोषण के लिए ब्राह्मण ने सामाजिक व्यवस्था के धार्मिक पक्ष को इस प्रकार संगठित किया कि जन्म से मृत्यु तक, प्रत्येक अवस्था में, ब्राह्मण की सेवायें नितान्त अनिवार्य बन गयीं। जन्म, मुण्डन संस्कार, यज्ञोपवीत धारण, सगाई तथा ब्याह सम्बन्धी अनेक रस्मों, मनुष्यों के अपवित्र होने तथा शुद्धीकरण के लिये, घरों, संस्थाओं, यज्ञों तथा तीर्थों में, जलूसों तथा मन्दिरों में और फिर मृत्यु के समय, ब्राह्मण एक न एक संस्कार सम्पन्न करने के लिये बुलाया जाता।

मुसलमानों के आगमन से भारत की सांस्कृतिक एकता खंडित हो गयी। अब दो सांस्कृतिक धारायें समानान्तर होकर बहने लगीं। इस्लाम ने हिन्दू धर्म में विलयन से इन्कार किया। इसकी स्पष्ट निष्ठा थी, सैन्यवादी, मतांधी तथा व्यष्टिवादी। ब्राह्मण का जोड़ीदार था मुल्ला; वह भी सुल्तानों और मुग़लों के अधीन एक विशेषाधिकारी व्यक्ति हुआ। मुस्लिम काल में ब्राह्मण अपने खोल में सिमट गया और अधिक रूढ़िवादिता तथा परम्परानिष्ठता के द्वारा अपना रक्षात्मक प्रतिरोध करने लगा। उसमें शहीदों वाला साहस और बल नहीं था, न वह कोई राजनीतिक क्रांतिकारी ही था। वह केवल उचित समय की प्रतीक्षा करता रहा। कुछेक सूफ़ियों और फ़कीरों को छोड़, बाकी मुल्ला भी धन तथा विशेषाधिकार के भक्त हो गये, तथा उनकी दिलचस्पी अपने धार्मिक अधिकारों के प्रयोग और काफ़िरों को मुसलमान बनाने में होने लगी।

(३)

गुरु नानक के आगमन के पहले, ब्राह्मणों और मुल्लाओं के अलावा योगी तथा सिद्ध भी गेरुए कपड़े में देश में घूमा करते। ये कपड़े साधना के प्रतीक माने जाते। ये तीन प्रकार के लोग थे। प्रथम प्रकार वाले शिवभक्त एक दण्डी होते जो हाथ में एक डन्डा लेकर चलते, दूसरे तीन डन्डे वाले त्रिदण्डी थे जो विष्णु के उपासक थे, तथा तीसरा एक मिश्रित दल था जो अधिकतर गोरखनाथ के अनुयायी होते। वे लोग अपने डन्डे, मालायें तथा गांजे की चिलमें लिये, शरीर में भस्म पोते तथा माथे पर अपने विशेष टीका चिह्न लगाये जगह-जगह घूमा करते। वे यतित्व, शारीरिक यातना, तथा तपस्या में विश्वास रखते क्योंकि वे समझते कि इनके द्वारा उन्हें चमत्कारिक शक्तियां उपलब्ध होतीं। कभी वे

महान संन्यासी तथा रहस्यद्रष्टा रहे होंगे किन्तु मध्ययुग में उनका नैतिक पतन तथा ह्रास हो चुका था। वे किसी भी रूप में जन सेवा नहीं करते, उल्टे जनता से ही अपनी सेवा की मांग करते। भोली जनता से धन ऐंठने के लिये वे उन्हें शाप का डर तथा वरदान का प्रलोभन देते। जनता पर उनका काफ़ी प्रभाव था तथा उत्तरी भारत के धार्मिक जीवन पर इनकी प्रधानता थी।

(४)

सुल्तानपुर में वेंई नदी के तट पर महान् रहस्यदर्शन की अनुभूति के बाद जब गुरु नानक अपने लक्ष्य की ओर चल पड़े तो वे इस निश्चय पर पहुंचे कि समाज में परिवर्तन तभी लाया जा सकता है जब लोगों की चिन्तन प्रक्रिया में ही क्रान्ति को जन्म दिया जाए। यद्यपि गुरु नानक ने अपनी भक्ति रचनाओं में राजनीति पर भी कुछ विचार व्यक्त किये हैं, फिर भी वह राजनीति की ओर उन्मुख नहीं थे, अतः राजनीतिक क्रांति का प्रश्न नहीं उठता। उन्होंने सामाजिक क्रांति को विधान के अर्थ में नहीं बल्कि नैतिक जीवन तथा आत्मिक अनुभूति पर आधारित समझा। इतिहास बताता है कि सामाजिक क्रांति कभी भी जनता अथवा संसद द्वारा प्रस्ताव पास करने से नहीं आती, यह तो मानव-जीवन को उन्नत बनाने वाले दैविक तथा धार्मिक नेताओं द्वारा आती है। इसलिये गुरु नानक ने जीवन भर दो चीज़ों पर ज़ोर दिया, नैतिक रहन-सहन तथा आत्मिक अनुभूति। धर्म की पवित्रता की राह रोकने वाली सारी बाधाओं और संस्कारों को उन्होंने हटाने की चेष्टा की। उनका विश्वास था कि नैतिक आचार ही धर्म का आधार है, उत्तम कर्म, निःस्वार्थ सेवा, तथा सत्य और पवित्रता के बिना आत्मिक अनुभूति संभव नहीं है। जब मनुष्य सत्य को जीवन का मूल स्रोत बना लेता है, तभी वह आत्मिक अनुभूति के द्वार पर अपने क़दम रख देता है। जीवन के ये दोनों पक्ष दृढ़ता से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, और इनके बिना मोक्ष भी संभव नहीं है।

धर्म की पवित्रता स्थापित करने के लिये गुरु नानक को ब्राह्मणों, मुल्लाओं तथा संन्यासियों जैसे अधिकार क्षेत्रों, जहां रूढ़िवादिता तथा परम्परावादिता पल रही थी, के विरुद्ध मोर्चा लेना पड़ा। गुरु को उन सभी विश्वासों से जूझना पड़ा जो ब्राह्मणों ने आदिम समाज के जादूगरों से प्राप्त किया था तथा जिनमें अपने रस्म-संस्कार भी जोड़ दिये थे। उन्हें लोगों में सच्ची उपासना की भावना फिर से जगानी पड़ी, तथा आत्मा में जड़ पकड़ गयी उदासीनता, जड़ता और क्लान्ति को हटाना पड़ा। झूठ का पर्दा हटाकर उन्होंने लोगों को सत्य के सामने खड़ा कर दिया। निरर्थक रीति-रिवाजों और संस्कारों की व्यर्थता को सिद्ध कर उन्होंने पुजारियों के लम्बे-चौड़े दावों को ग़लत साबित कर दिया।

मूर्तियों और बिम्बों की पूजा से उन्हें हटा कर उन्होंने एक तथा एकमात्र परमेश्वर की ओर उन्हें लगा दिया। संक्षेप में, उन्हें आडम्बर, अंधविश्वासों निर्धारित रस्मों तथा संस्कारों से लड़ना पड़ा, मानव आत्मा को मुक्त करना पड़ा तथा लोगों को ईश्वर की सच्ची उपासना तथा आत्म-प्राप्ति की राह दिखानी पड़ी।

गुरु नानक ने **मूल मंत्र** में ईश्वर की संकल्पना की नयी परिभाषा दी। उन्होंने ईश्वर को "एक, तथा एकमात्र माना, जिसे सत्य, कर्तार, सर्वव्यापी, निर्भर, निर्वैर, अमर, अजन्मा, स्वयंसिद्ध, ज्ञानदाता तथा प्रसादमय" कहकर पुकारा। आदि में सत्य, आदिम युग में सत्य वह सदा सत्य, सदा सत्य है, रहेगा।" सोरठ राग में उन्होंने और अधिक स्पष्टता से परम सत्य की व्याख्या अविभाज्य, अनन्त, अबोध्य, अगोचर, अकाल, अभवितव्य, अजातीय, अजात, स्वयंसिद्ध, निर्विकार तथा निर्वैर जैसे विशेषणों से की है। प्रतिमाओं और बिम्बों के स्थापन के विरोध में उन्होंने जपु जी में कहा, "ईश्वर को न बिठाया जा सकता है, न उसे बनाया जा सकता है। वह तो स्वयं पवित्रजन्मा है।" गुरु नानक का ईश्वर दूरस्थ नहीं कि उस तक पहुँचा न जा सके। वह तो एक निजी ईश्वर है जो प्रेम और भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। वे उसे अपने प्रभु तथा मालिक के रूप में मानते हैं, एक सच्चा पादशाह जो सच्चा मित्र तथा साथी है, तथा जो अपने भक्तों की सहायता और रक्षा के लिए आने को तैयार भी रहता है। गुरु नानक ने ईश्वर को सर्वोत्तम प्रेमी तथा मानव को उसकी प्रेयसी के रूप में भी प्रस्तुत किया है। ईश्वर माता, पिता, बंधु तथा सखा भी है। इस प्रकार का ईश्वर **भक्ति मार्ग** द्वारा ही प्राप्त होता है, अर्थात् पूर्ण प्रेम तथा भक्ति, आत्म-त्याग तथा पूर्ण आत्म-समर्पण हुए। गुरु नानक के लिये उस धर्म का कोई महत्त्व नहीं जिसमें धार्मिक तथा आत्मिक अनुभूति न हो। इसलिये वे बार-बार इस बात पर ज़ोर देते हैं कि मनुष्य को चाहिए कि वह परम ब्रह्म में पूर्ण विश्वास करे तथा चिन्तन और **नाम सिमरन** के साथ बिताये गए पुण्यमय जीवन द्वारा उसके साथ एकाकार होना सीखे। गुरु नानक के रहस्यवाद में सांसारिक दैनिक कर्तव्यों में सक्रिय भाग लेते हुए ही, परमात्मा के साथ निरन्तर साहचर्य स्थापित करने का आदेश है। गुरु नानक ने संन्यास, तपस्या, मठवादिता तथा शारीरिक यंत्रणा द्वारा पूजा की निन्दा की; उन्होंने इस पर बल दिया कि जीवन का आधार **सत्** (सत्य) तथा उपासना का आधार **नाम** है।

जीवन के आध्यात्मिक तथा नैतिक निरूपता के बाद गुरु नानक ने लोगों को धर्म के खोखले आचारों से खींचने की चेष्टा की। **नाम सिमरन** तथा चिन्तन पर बल डालकर उन्होंने पूजा के लिये पुजारी की आवश्यकता को खत्म कर दिया। लोगों की भाषा पंजाबी में अपनी **बानी** लिख तथा इसे उन तक पहुंचाने योग्य सरल कर उन्होने अप्रत्यक्ष रूप से विद्वान पंडितों का काम खत्म

करवा दिया जिन्हें वेदों तथा भगवद्गीता के पाठ तथा संस्कृत श्लोकों को समझाने के लिये बुलाया जाता। उन्होंने धर्म को लोगों के निकट ला दिया, तथा एक ऐसे अनुशासित सामाजिक तथा धार्मिक जीवन का समर्थन किया जिसमें उपासना दैनिक जीवन का अंग थी और घरों में ही की जा सकती थी। सिखधर्म बिना पुजारी के अपना काम चला लेता, हर सिख स्वयं पुजारी के रूप में सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवों के समय धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न कर सकता था। पुजारीगण भ्रष्टाचार, रूढ़िवाद तथा मतांधता के केन्द्र बन चुके थे, और उन्हें हटाना, उपासना की पवित्रता तथा धार्मिक बंधन से आत्मा को मुक्त कराने की दिशा में उठाया गया एक महान् क़दम था। अभाग्यवश, पुजारीगिरी सिखों में भी स्थापित हो गयी, तथा भ्रष्टाचार और पतन उस सीमा तक पहुंच गया कि बीसवीं सदी के दूसरे दशक में गुरुद्वारों को मुक्त कर पंथीय नियंत्रण में लाने के लिये सिखों को बड़ी कुर्बानियां देनी पड़ीं। इन कुर्बानियों के बावजूद, इतिहास ने एक विचित्र मोड़ लिया है, एक बार फिर शक्ति तथा अधिकार लोलुपता ने गुरुद्वारों को राजनीतिक दांवपेंच का मोहरा बना रखा है।

गुरु नानक ने ब्राह्मणों के लिये सलाह के बाद अच्छे शब्द कहे, "ओ ब्राह्मण, उस पार जाने के लिये तू ईश्वर को अपनी पूजा का लक्ष्य बना, सदाचरण को तुलसीमाला मान तथा प्रभु नैया पर सवार हो जा; प्रभु का नाम जपता हुआ उसकी उदारता की मांग कर, तेरा बेड़ा पार हो जाएगा।"[1] काज़ी को उन्होंने बताया कि ऐसा मुसलमान कौन है:—

"मुहब्बत यदि मस्जिद हो, और आस्था इबादत की चटाई,
ईमानभरी ज़िन्दगी अगर हो कुरान,
ग़रीब मिज़ाजी हो खतना, संयम रोज़ा, हो,
तभी सच्चे मुसलमान तुम हो।
काबे का हज न कर, नेकी करे अगर,
हाथ में सचाई के दामन रूह का हो,
अल्लाह का शुक्रिया गर हो जबान पर,
उसकी मर्ज़ी की माला जप रहा हो तू,
तो ख़ुदा तेरी ग़ैरत का ख्याल रखेगा।"[2]

योगियों के लिये गुरु नानक ने योग का असली अर्थ समझाते हुए कहा :—

"योग नहीं विरंगा चोला, नहीं योगी का डंडा,
नहीं छिपा योग भस्म भभूत में,

---

१. राग बसंतु हिंडोल।
२. राग माझ की वार।

नहीं कान की वालियों में, नहीं मुंडाये सिर में,
नहीं तुरही फूंक बजाने में।
माया के बीच रहो पर मोह से दूर यदि,
योग की सच्ची अवस्था तभी तुम पाओगे।
दुनिया का चक्कर लगाओ, या तीर्थों नहाओ,
योगावस्था नहीं तुम पाओगे।
माया के बीच रहो, पर मोह से दूर यदि,
सबमें, योग की सच्ची अवस्था तभी तुम पाओगे।"[1]

(गुरु नानक के संसार में वर्ण-व्यवस्था की कोई जगह न थी, हर अवसर पर उन्होंने इसकी निंदा की और इसकी खिल्ली उड़ाई।) जन्मजात होने से ही कोई ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं बनता, किन्तु "ब्राह्मण तो वह है जो ईश्वर के ज्ञान की धाराओं में डुबकियां लगाता है तथा केवल उसी को जानता है जिसके प्रकाश से तीनों लोक प्रकाशवान् है।" एक और बानी में गुरु नानक ने कहा है कि वर्ण के आधार पर नहीं, बल्कि अपने हृदयों में स्थित सत्य के आधार पर मनुष्यों का सम्मान होगा। वर्ण-व्यवस्था के सारे भेदों को नष्ट करने के लिये ही लंगर (सामूहिक भोजनालय) की संस्थापना की गयी। गुरुद्वारों के साथ भी, सिवाय उनके जो गुरुओं के जन्म स्थानों अथवा ऐतिहासिक यादों से सम्बद्ध हैं, कोई विशेष महत्त्व नहीं जोड़े गये हैं। ये लोगों के इकठ्ठे होकर कीर्त्तन करने अथवा ज्ञानपूर्ण प्रवचन सुनने के सामूहिक स्थल हैं। किन्तु प्रत्येक घर स्वयं एक गुरुद्वारा है तथा हर प्रकार का अनुष्ठान वहां किया जा सकता है। यह एक महत्त्वपूर्ण क़दम था, जिसके कारण मंदिरों से सम्बद्ध सभी भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता हटा दी गयी। यह प्रभु के घर को निर्मल बनाने तथा साथ ही हर घर को मंदिर बनाने की एक सर्वोत्तम क्रिया थी।

गुरु नानक के आगमन से पहले बलि प्रथा में विश्वास पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया था, किन्तु पूर्वजों की पूजा तथा शुद्धि-अशुद्धि के विचार अभी भी ब्राह्मणों द्वारा फैलाये जाते रहे थे। पितरों की पूजा ब्राह्मणों के लिये आमदनी का सामयिक साधन थी, क्योंकि इसी व्यवस्था के द्वारा लोग अपने पितरों को परलोक में सामान आदि भेजा करते थे। हरिद्वार में गुरु नानक ने इस धारणा पर व्यंग किया। वहां उन्होंने देखा कि लोग अपने पूर्वजों को पानी का अर्पण दे रहे हैं, उन्होंने विपरीत दिशा में पानी फेंकना शुरू किया। पूछने पर उन्होंने जवाब दिया कि वे कर्तारपुर में अपने खेतों को पानी दे रहे हैं। "अगर आप अपने पितरों को किसी अनजाने लोक तक पानी भेज सकते हैं, तो निश्चय ही मैं अपने

---

१. राग सूही।

इतने जाने पहचाने गांव तक तो फ़सलों के लिए पानी भेज ही सकता हूँ।" सबक़ साफ़ था और असर सीधा पड़ा। एक और बानी में वह कहते हैं "लोग भगवान को भेंट चढ़ाते हैं, उन्हें खाता ब्राह्मण है। इसके बदले लोगों को भगवान से इस लोक और परलोक के लिए आत्मिक शांति की मांग करनी चाहिए क्योंकि भगवान् के प्रेम से बढ़कर और कुछ नहीं।" **आसा दी वार** में, जो विद्वता तथा उपदेश की दृष्टि से साहित्य में बेजोड़ है, गुरु नानक ने ब्राह्मण के जीवन के अनेकानेक पक्षों पर आघात किया है, जैसे उसके प्रतीक, उसकी लोलुपता, माथे पर सिन्दूर टीका तथा खाने-पीने और रसोई में शुद्धता सम्बन्धी उसके हठ पर। गुरु नानक कहते हैं कि शुद्धता तो हृदय की शुद्धता तथा परम सत्य की उपासना से ही मिलती है।

राग आसा में यज्ञोपवीत के बारे में उन्होंने ब्राह्मणों को एक नया सूत्र प्रदान किया, "करुणा की रुई, संतोष का धागा, संयम की गांठ तथा सत्य की पेंच से बना हुआ आत्मा का पवित्र जनेऊ पहनो। यह न टूटेगा, न गंदा होगा, न कमज़ोर होगा, न जलेगा।" इसके साथ ही उन्होंने यज्ञोपवीत सम्बन्धी अभिधारणा को तोड़ दिया, तथा इस पर और अधिक टिप्पणी की अब आवश्यकता नहीं है।

तीर्थयात्रा प्राचीन काल से लोकप्रिय रही है तथा ब्राह्मणत्व ने उस पर बहुत ज़ोर दिया है। यदि उद्देश्य यह हो कि किसी जगह या व्यक्ति से सम्बद्ध पवित्रता और भक्ति की भावना और वातावरण को ग्रहण किया जाए तब तो यह भले के लिए ही है; किन्तु यदि पाप के प्रायश्चित तथा देवताओं के आशीर्वाद के लिये ही तीर्थयात्रा की जाए तो यह केवल अपने आपको धोखा देना होगा। गुरु नानक ने तीर्थयात्रा की नितान्त व्यर्थता का पर्दाफ़ाश किया। "चोर का शरीर तथा कुटिल मन लेकर तू तीर्थ स्नान के लिये निकल पड़ा है। तेरा एक भाग धुलता है, पर बाकी भाग दुबारा गंदे हो जाते हैं। बाहर से तू साफ़ हो जाता है जैसे कोई उस कद्दू को ऊपर से धो दे जो अन्दर कीड़ों से भरा हो। ऐसे स्नानों के बाद भी चोर तो चोर ही रहेगा, किन्तु सन्त तो बिना तीर्थ-स्नान के ही ईश्वरीय आशीर्वाद प्राप्त करता है।" एक और **बानी** में वह कहते हैं, "ईश्वर का नाम ही अड़सठ तीर्थों के पुण्य के बराबर है; हां, प्रभु का नाम लेते ही सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है।"

गुरु नानक ने ब्राह्मणों को सिंहासनच्युत किया, तथा मन्दिरों को व्यर्थ क़रार दिया। अब वर और शाप देने वाला कोई न रहा, न रस्मों और कर्मकाण्डों के लिये मन्दिर रहे। गुरु नानक ने धार्मिक रस्मों में सादगी पर ज़ोर दिया, और आरती तक की आज्ञा न दी, क्योंकि जलते हुए मिट्टी के दीपक तथा धूपबत्ती और फूलों के अर्पण में रस्मों की ही आकर्षक झांकी मिलती है। पुरी के जगन्नाथ मन्दिर में आरती होते देख उनके मन में एक विचार कौंध गया। मैं किस प्रकार

की आरती अपने प्रभु को चढ़ाऊँ ? उत्तर एक अत्यन्त मार्मिक तथा शब्दसौष्ठव से परिपूर्ण बानी में प्रकट हुआ:—

"सारा आकाश दीप-थाल हैं, सूरज-चाँद दीपक में, और थाल में नक्षत्र-मण्डल रत्नों की तरह जड़े हुए हैं। मलय पवन है तथा धरती के फूलों की खुशबू लिये हवायें दौड़ी आ रही हैं। मैंने तुम्हारी पूजा इन्हीं से की।"

ऐसी थी उनकी पूजा; सरल, सहज, तथा निर्मल जो सीधे हृदय से आती थी।

इन सबका क्या अर्थ हुआ ? गुरु नानक के लिये धर्म, प्रतीकों, रस्मों और तीर्थयात्राओं में न था। वह धर्म के औपचारिक तथा बाह्य रूप से विमुख हुए और उन्होंने अन्तर्जीवन पर जोर दिया, जिसमें चिन्तन तथा नैतिक जीवन हो। मनुष्य अपने में निहित परम को पा सकता है। दैविक सत्य, ज्ञान और विद्या से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अन्तर्प्रज्ञा (direct intuition) से प्राप्त होता है। गुरु नानक का मार्ग भक्ति मार्ग है जहां धर्म आत्मनिष्ठ होता है तथा इस पर जहां वैयक्तिक गहरा रंग चढ़ता है। प्रेम तथा भक्ति तथा गुरु की कृपा से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। गुरु नानक का रहस्यज्ञान **नाम सिमरन** का रहस्यज्ञान है, संसार में रहते हुए भी संसार से अलग, कार्यशील रहते हुए भी शांतचित्त। प्रेम, भक्ति तथा उस सर्वव्यापी की उपस्थिति की चेतना ही गुरु नानक के धर्म के अंग हैं। अपनी आस्था को उन्होंने "सिद्ध गोष्ठ" में इन शब्दों में व्यक्त किया है :

"कमल या हंस के समान मैं जल में रहते हुए भी डूब नहीं सकता। वह, जो ईश्वर के सन्देश का मनन करता है तथा कामनाओं के बीच रहते हुए भी स्वयं कामना नहीं रखता, उसे दुःख नहीं सताता। वह आवागमन से मुक्त है।"

: १२ :

समता तथा मुक्ति के अग्रदूत—गुरु नानक

डा० सीताराम बाहरी

मानवता के अन्दर विश्वास की एक ऐसी निगूढ़ चिंगारी रहती है जो इतिहास के अंधकारमय दिनों में भी आशा की किरण चमकाए रहती है।[1] तैमूर लंग की स्वार्थान्धता तथा उस द्वारा किए गए हिन्दुओं के जनसंहार से साधारण जनता के दिल पर नृशंसता तथा हिंसा की एक गहरी छाप बैठ गई। इसका परिणाम यह हुआ कि रामानन्द (१४१० ई०) के शिष्यों तथा विभिन्न वर्गों के योगियों ने परलोक वृत्ति एवं संसार त्याग की भावना का प्रचार किया। सिकंदर लोधी (१४१८ से १५१५ ई०) जैसे धर्मांध शासक के राज्य काल में घृणा तथा वैमनस्य के बीज पनपे। पंथ प्रकाश के अनुसार सिकन्दर ने गुरु नानक को इस कारण बन्दी बनाया कि गुरु जी ने उसे चमत्कार दिखाने से इन्कार कर दिया था। वास्तव में इस दण्ड का कारण था गुरु नानक द्वारा उस समय के शासक वर्ग की अपने पदों में कड़ी आलोचना। उदाहरणस्वरूप इस आलोचना का रूप इस पद में देखा जा सकता है :

कलि काती राजे कासाई
धरम पंख करि उडरिआ
कूड़ु अमावस सचु, चन्द्रमा
दीसै नाहीं कह चड़िआ।
(माझ दी वार, पृ० १४५)

---

१. (क) समाज के सामने आने वाली नित्य प्रति की नई-नई चुनौतियों का नाम ही प्रगति है और इन चुनौतियों का सृजनात्मक शक्ति से सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा सामना किया जाता है।" ए० जी० टॉयनवी : ए स्टडी आफ हिस्ट्री, खण्ड ३, पृ० २४८।

(ख) अज्ञात में निहित सामाजिक प्रक्रियाएं, किन्तु इनसे भी बढ़कर जनसाधारण के सच्चे पराक्रम ही ऐसे महान व्यक्तियों के उत्थान की परिस्थितियां पैदा कर देते हैं, जोकि उज्ज्वल भविष्य के लिए जनता के संघर्ष का संचालन कर सकें अथवा इसके विपरीत मृतप्राय वर्गों के इतिहास के प्रगति प्रवाह के विरुद्ध निर्दय अवरोध का संचालन कर सकें।

—वाई० कौरिमनिस्की; प्रो० टॉयनबी की 'फलासफी आफ हिस्ट्री', पृ० १४।

(कलियुग एक छुरी है, शासक बूचड़ बन चुके हैं। धर्म पंख लगा कर उड़ गया है अर्थात् धर्म विलीन हो चुका है। झूठ-असत्य की भयानक काली रात का अखंड शासन जग चुका है और सत्य का चन्द्रमा कहीं भी उदय हुआ दिखाई नहीं देता।)

(गुरु नानक ने जाति, वर्ग या लिंग भेद का अन्तर न करते हुए सदा दलित तथा पिछड़े वर्गों के लोगों से सहानुभूति प्रदर्शित की,) जैसा कि उन्होंने बाबर (पृ० ७२३) द्वारा किए गए आक्रमण के समय सय्यदपुर में मुसलमान स्त्रियों के साथ किए गए दुर्व्यवहार के प्रति अपनी करुण भावना को कड़े शब्दों में व्यक्त किया। उनके इस उदार दृष्टिकोण ने उन्हें शीघ्र ही उत्तर भारत का लोकप्रिय नेता बना दिया।[1] यहां तक कि पठान भी पीर के रूप में उनकी पूजा करने लगे। उन्होंने अपने समय के समाज का स्पष्ट तथा विस्तृत चित्रण किया। और उस समय की समस्याओं की कलात्मक व्याख्या भी की :

बीउ बीजि पाति लै गए अब किउ उगवै दालि (पृ० ४६८)

(आत्मसम्मान नष्ट हो गया है, बीज निकाल फेंका गया है—अतः अब दाल कैसे उग सकती है) इस चित्रण में सामाजिक ढांचे की फूट तथा विघटन की स्पष्ट झलक दिखाई देती है।

नानकपूर्व सुधारवादी सन्तों की गतिविधियां धार्मिक उपदेशों तथा धार्मिक रचनाओं तक ही सीमित रहीं। वल्लभाचार्य ने संन्यास प्रवृत्ति का तो खण्डन किया किन्तु भक्ति काव्य की सामान्य भाषा पलायन की भावना से ओतप्रोत रही। यही कारण है कि इस साहित्य में सामाजिक तथा राजनैतिक भावनाएं ठीक अभिव्यक्ति नहीं पा सकीं।

(गुरु नानक का दृष्टिकोण तो क्रान्तिकारी था किन्तु उनके द्वारा दिया गया समस्याओं का समाधान तर्कयुक्त तथा शान्तिपूर्ण था। हिन्दू मन पौराणिक अन्धविश्वास, औपचारिकता तथा मूर्तिपूजा की बौद्धिक दासता से तुरन्त मुक्त हो गया था।[2] दूसरी ओर नानक द्वारा प्रस्तुत की गई इस्लामी रीति रिवाजों की व्याख्या से इस्लामी विद्वत्मण्डल को अपने अन्तर में झांकने का अवसर भी मिला। उन्होंने पुजारी वर्ग के खोखलेपन का भंडाफोड़ किया और पंडित-मुल्ला

---

१. स्वामी दयानन्द ने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि "यह सच है कि जिस समय नानक जी पंजाब में हुए थे, उस समय पंजाब संस्कृत विद्या से सर्वथा रहित, मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय उन्होंने लोगों को बचाया।" (हिन्दी संस्करण, पृ० ३७८)

२. "उनके उपदेश केवल मात्र ज्ञान का पुनरुद्धार तथा पुनः स्थापन है।" डॉ० रघुवीरसिंह दुग्गलः गुरु नानक का दर्शन, पृ० ११; भारत के धर्म, बार्थ, पृ० २३४।

३. इस गुरु मन्त्र में भी उन्होंने ईश्वर को अकाल मूरत, अजोनी (अयोनि) अर्थात समय की सीमा से परे, जन्म और मृत्यु से रहित कहा है।

के कृत्यों की कड़ी भर्त्सना की, जो इतिहास के प्रगति की ओर बढ़ रहे चरणों में समाप्तप्राय: वर्गों के अन्ध प्रतिरोध की शृंखला बन रहे थे।[1]

गुरु नानक ने लिखा है कि—

कादी कूड़ु बोलि मलु खाई
ब्राह्मणु नावै जीआ घाइ
जोगी जुगति न जाणै अंधु
तीने ओजाड़े का बन्धु। (धनासरी, पृ० ६६२)

(काज़ी झूठ बोलता है और गन्दगी खाता है अर्थात् अपने को नीच बनाता है। ब्राह्मण गंगाजल से स्नान करता हैं किन्तु पानी में जीवित जीवाणुओं को मारता है; अन्धा योगी योग के अनुशासन को समझता नहीं है। तीनों ही अपने अपने आधार को खोखला करने में लगे हुए हैं।)

नानक ने जनता के सामने यह सिद्धान्त रखा कि पवित्र जीवन स्वयं सत्य से भी अधिक मूल्यवान है (पृ० ६२)। उन्होंने 'शबदसूर' अर्थात् वचन का पालन करने वाले वीर और 'कर्मन का सूर' अर्थात् कर्त्तव्य का पालन करने वाले वीर का आदर्श प्रस्तुत किया। वस्तुतः वह सामाजिक जीवन से सभी प्रकार की तन्द्रा, खिन्नता तथा निराशा को निकाल फेंकना चाहते थे और जनता को कथनी तथा करनी—दोनों में सत्यपूर्ण तथा क्रियाशील बनाना चाहते थे। उनके सहज योग के प्रयोग जीवन की सभी विधाओं में बहुत ही सफल सिद्ध हुए। वह अपने शिष्यों के जीवन में दर्शन का व्यावहारिक रूप देखना चाहते थे न कि यह कि उनके शिष्य केवल दर्शन का अध्ययन मात्र करके रह जाएं। अतः उन्होंने अपने कर्तारपुर के महान् धार्मिक केन्द्र में जाति तथा वर्ग रहित समाज का आदर्श प्रस्तुत किया। इस केन्द्र को सही अर्थों में एक ऐसा स्थान कहा जा सकता है जहां सर्वोदय भावना ने सर्वप्रथम जन्म लिया।[2] यहां पर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम करना होता था और वह अपने साथियों के साथ मिलकर अपनी कमाई का उपयोग करता था।

वह प्रभु की सत्ता[3] में विश्वास रखते थे और शासक तथा शासित के बीच की खाई को पाटना चाहते थे—

[illegible]
[illegible] सों [illegible]।

---

1. [illegible]
2. [illegible]
3. [illegible]

कहत नानकु गुर सचे की
पउड़ी रहसी अलखु निवासी ।

(मारू काफी, पृ० १०१६)

(गुरु नानक मूलतः मानव-मात्र के मुक्तिदाता थे—जैसा कि उन्होंने जपु जी के पहले ही पद में व्यक्त किया है। यह पद मूल मन्त्र के नाम से विख्यात है। विश्व के धार्मिक इतिहास में पहली बार नानक ने ईश्वर के दो नए नाम दिए—निर्भउ (निर्भय अर्थात् निडर, भय रहित)[1] और निरवैर (विना द्वेष या कटुता के)। ईश्वर के इन रूपों के प्रचार के द्वारा वह अपने शिष्यों में भय तथा आक्रमण की भावनाओं का अभाव देखना चाहते थे।)

उन्होंने ऐसे लोगों की दशा पर चिन्ता और दुख प्रकट किया जो अपमानित या दलित होकर भी जीना चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति जो कुछ भी खाते हैं, वह पाप से दूषित होता है। नानक के ही शब्दों में—

जे जीवै पति लथी जाई।
सभु हरामु जेता किछु खाइ। पृ० १४२

किन्तु प्रेम और सत्य जीवन जीना सहल नहीं है—इसके लिए भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। "यदि तुम सचमुच प्रेम का खेल खेलना चाहते हो, तो सर हथेली पर रख कर आओ, तभी तुम मेरे सत्य के रास्ते पर पग बढ़ा सकते हो।"[2]

(गुरु नानक बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न थे। उनका अनुभव बहुत गहरा था और इसके बल पर ही वह सही निर्णय कर सकते थे। वह रूढ़िवादी नहीं थे। अपितु धर्म और समाज के क्षेत्र में वह निर्पेक्ष व्यवहार के पक्ष में थे। जपु जी के चौदहवें पद में वह स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं, "बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी साम्प्रदायिकता के घेरे में नहीं बंधता क्योंकि उसका सच्चा सम्बन्ध धर्म के साथ है।"[3]) अपनी एक और रचना में उन्होंने लिखा—'जेते जिआ तेते वाटानु'[4]

---

१. नौवें गुरु, गुरु तेग बहादुर ने अपने श्लोक में इस शब्द की और विस्तार से व्याख्या की है : 'भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आनि,' पृ० १४१७।
(निर्भय वह व्यक्ति है जो किसी को भय दिखाता नहीं और न ही वह किसी से भयभीत होता है।' आक्रामकता का अभाव ही अहिंसा है।

२. जउ तउ प्रेम खेलण का चाऊ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ।
आदि ग्रन्थ, पृ० १४१२।

३. 'मंनै मगु न चलै पंथु, मंनै धरम सेती सनबंधु।' १४, जपुजी
'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः'

४. गुरु नानक द्वारा अपनी कविताओं तथा पदों में प्रयुक्त लोक गीतों की धुनों और मुहावरों से स्पष्ट है कि ग्रामीण जनता या साधारण जनता की भाषा का प्रयोग कर उन्होंने लोक-भाषा और लोक-संगीत के स्तर को ऊपर उठाया।

(पृ० ९५२) अर्थात् संसार में जितने जीव हैं उतने ही पंथी हैं। किन्तु मनुष्य केवल आत्मसंयम और अपने मन पर विजय पाने से ही विजयी हो सकता है—

मनि जीते जगु जीतु[1]

पांच ऐसे डाकू या विकार हैं जो मनुष्य के मन पर आक्रमण करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। ये विकार हैं—शक्ति तथा धन का लोभ, जन्म का अहंकार, सौन्दर्य तथा यौवन।[2]

वर्गगत मतभेदों से ऊपर उठकर ही व्यक्ति अपने को मनुष्य के सच्चे मानव धर्म के तेजोमय प्रकाश से दीप्त अनुभव करता है। इसी विचारधारा के प्रचार द्वारा नानक ने द्वेष और कलह से पीड़ित विश्व में प्रेम, ऐक्य तथा शांति—सिख-धर्म की नई तथा स्वस्थ लहर चलाई।

नानक लिखते हैं "मेरे लिए समस्त ब्रह्माण्ड एक पावन मण्डल है। जो भी सत्य से प्रेम करता है वह धर्मात्मा है।" सभी खाद्य तथा सभी पेय जो उस प्रभु की देन हैं, पवित्र हैं।"[3]

इस सम्बन्ध में जान मैलकौम ठीक ही लिखता है :

"ब्रह्म तथा मुहम्मद के एकदम प्रतिकूल विश्वासों में समत्व स्थापित करने की महान् तथा उपकारक भावना से प्रेरित होकर नानक ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को अपने सिद्धान्तों के झण्डे तले एकत्र करने का प्रयास किया। इस प्रयास में उन्होंने दोनों पक्षों को अपने-अपने विश्वासों तथा रिवाजों के उन अंशों को त्यागने के लिए प्रेरित किया जिन्हें वह उनके पूज्य ईश्वरों के प्रति अशोभनीय समझते थे।"[4]

अनेक विचारकों ने 'मानव भ्रातृत्व' और 'मानव के प्रति प्रेम और सेवा' (सामाजिक सेवा) जैसे सिद्धांतों पर अपने विचार प्रकट किए हैं, जिनका गुरु नानक ने प्रचार किया और अपने व्यावहारिक जीवन में उन पर आचरण भी किया। उदाहरणस्वरूप, स्वामी विवेकानन्द ने लाहौर में अपने एक भाषण में बड़े जोरदार शब्दों में कहा था[5] :

"पिछले ज़माने में यहीं पर नानक ने विश्व प्रेम के अपने अद्वितीय सिद्धांत का प्रचार किया। इस धरती पर विश्व मात्र को—न केवल हिन्दुओं अपितु मुसलमानों को भी—गले लगाने के लिए उनका विशाल हृदय सदा खुला रहा

---

१. जपु साहिब (दसवें गुरु की रचना), पद २८।
२. आदि ग्रंथ, पृ० १२८८।
३. एम० ए० मैकालिफ 'सिख रिलिजन', खण्ड १, पृ० २४८।
४. जान मैलकौम, ए स्कैच ऑफ दी सिक्ख, एशियाटिक रिसर्चेज़, खण्ड ९, १८४०।
५. १८९७ में।

और उनकी भुजाएं सदा फैली रहीं ।"

'धर्मनिरपेक्षता' शब्द से उन दिनों सभी अपरिचित थे किन्तु निर्गुण भक्ति सम्प्रदाय की नीति से इस भावना को प्रबल समर्थन अवश्य मिला। गुरु नानक ने अनवरत यह प्रचार किया कि 'सभना-जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि ना जाई' (अर्थात् समस्त सृष्टि का पोषक एक ही ईश्वर है। मैं उसे एक पल भर के लिए भी विस्मृत नहीं कर सकता) । जपु० ५ । ऐसा प्रतीत होता है कि 'सोऽहम्' की वेदान्त भावना को गुरु नानक ने 'सो मैं' के रूप में अभिव्यक्त किया है।

उन्होंने समस्त वरदान और सौंदर्य के स्रोत ब्रह्म से विलग हुई आत्मा (अहम्) की स्थिति का सुस्पष्ट चित्रण किया है। "जब तक हम अपने 'मैं' को उस प्रभु के साथ एकाकार नहीं कर देते, हमें मोक्ष की स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती।"[१] "ईश्वर प्रेम है, शाश्वत है, और प्रेरणा स्रोत है। क्रोध तथा आत्म-प्रवंचना का त्याग करने से अहं की समाप्ति होती है।"[२]

उनका दृष्टिकोण इतना उदार था कि उन्होंने अपनी रचनाओं में ईश्वर के इस्लामी सम्बोधनों का खुला प्रयोग किया, उदाहरणत :

"अलाहु, अलखु, अगंम, कादरु, करणहारु, करीमु
सम दुनी आवण-जावणी, मुकामु एकु रहीमु।"[३]

एक अष्टपदी (राग गौड़ी, पृ० २२३) में गुरु ने यह संकेत दिया है कि ईश्वर तो एक है, चाहे रास्ते दो हैं—"राह दोवै खसमु एको जाणु"[४] जीवन के दो मार्ग हैं अर्थात् हिन्दू और दूसरा मुस्लिम किन्तु ये दोनों यह मानते हैं कि सर्वोच्च प्रभु एक ही है। दया धर्म का मूल गुण या लक्षण है। और नानक ने 'गुरमुख' उस व्यक्ति को कहा है जिसके हृदय में दया हो (अंन्तरि जाणै सरब दइआ), पृ० ४४० ।

गुरु नानक का व्यक्तित्व, दृष्टिकोण और सामाजिक आचरण बहुत प्रभावशाली थे। उन्होंने सज्जन ठग, नूरशाह वली कंधारी और अनेक प्रबल पठानों का हृदय परिवर्तन किया। उनके शिष्य एकता और मानव भ्रातृत्व में विश्वास रखते थे। गुरु और उसके पन्थ के मुख्य स्थान करतारपुर ने उत्तर भारत को एक नई आशा और नए भविष्य का सन्देश दिया। पूरनसिंह की 'टैन मास्टर्ज़'

---

१. आदि ग्रंथ, पृ० १४२।
२. वही पृ० १२३२।
३. वही, पृ० ६४।
४. उस व्यक्ति के लिए जिनके मन में उलझन शेष न रही हो, हिन्दू और तुर्क समान हैं। गुरु गोविन्द सिंह: 'चौबीस अवतार—आमुख' 'जाकै छूट गयो भ्रम उर का, तेह आगे हिन्दू किया तुरका'।

नामक पुस्तक के आमुख में अर्नेस्ट राईस ने लिखा है :—"किन्तु न तो कबीर और न ही रामानन्द को आध्यात्मिक जीवन के नियमों पर वह दक्षता प्राप्त थी, जिससे कि वे भारत में नई आत्मा का संचार कर पाते।"[1]

गुरु नानक चाहते थे कि नैतिकता को आदर्श आचरण के रूप में क्रियान्वित किया जाए। और उन्होंने रूढ़ि तथा आधुनिकता, कल्पना तथा उद्यम, आध्यात्मिकता तथा समाजवाद में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उनकी शिक्षा के वृहत्तर आधार में बौद्धों के 'ध्यान' तथा 'संघ शक्ति', वैष्णवों की 'भक्ति' तथा 'सेवा धर्म' और इस्लाम के 'एकेश्वरवाद' तथा 'भ्रातृत्व' बड़ी सहजता के साथ समा गए।[2] उन्होंने नाथपंथियों की क्रान्तिकारी भावनाओं को भी अपना लिया था।

गुरु नानक ने कठोर साम्प्रदायिकता और जातिगत अलगाव का घोर विरोध किया। वह निम्न तथा दलित वर्ग से अपना संपर्क बनाए रखने में गर्व अनुभव करते रहे :—

"नीचा अन्तरि नीच जाति, नीचीहू अति नीचु
नानकु तिनकै संगि साथि, वडिआ सिउ किआ रीस"

(नीच जाति के लोगों में मैं सबसे नीच हूं, नीचतम से भी नीच हूं। नानक ऐसे लोगों में और उनके संग हैं। ऊंचे लोगों के साथ कोई सम्बन्ध या उनके साथ कोई तुलना नहीं।[3])

उन्होंने निस्स्वार्थ भावना की प्रशंसा तो की है किन्तु संसार से भाग कर 'संन्यास' ले लेने का पक्ष नहीं लिया क्योंकि उनके मन को 'सहज योग' सदा भाता रहा। गुरु नानक मानव के एकपक्षीय विकास में विश्वास नहीं करते थे। अपितु वह तो मनुष्य के भौतिक तथा आध्यात्मिक सर्वपक्षीय विकास के प्रति प्रयत्नशील रहे। उनका विश्वास संन्यास में कभी नहीं रहा। वह तो स्वाभाविक और सहज जीवन में विश्वास रखते थे।[4]

उनका 'अजपाजाप'[5] वस्तुतः जीव का परमात्मा के साथ सम्पर्क स्थापित

---

१. पूरन सिंह, टैन मास्टर्ज़, पृ० १३ (भूमिका)।
२. 'सिखमत सर्वव्यापकता की आर्य (वैदिक) विचारधारा और सामी लामहदूद (असीम) का समन्वय प्रस्तुत करता है।" मि० हाल्ड वीरम वोल्टर, सिखिज़्म—लिविंग स्कूल्ज़ ऑफ रिलिजन, वि फर्न, आउटलाइन्ज़ सीरीज़, लिटल फील्ड, १६५८, पृ० १६६।
३. श्री राग, पृ० १५।
४. गुरमुख निहालसिंह, दी ट्रिब्यून, दिनांक, १८ नवम्बर, १६५६।
५. पढ़ि पढ़ि पंडितु वादु वखाणै ॥ भीतरि होदी वसतु न जाणै। (पंडित ऐसे बात करता है जैसे ईश्वर बाहर कहीं बहुत दूर स्थित है। वह मूर्ख यह नहीं जानता कि वह तो भीतर ही वास करता है)—आदि ग्रंथ, पृ० १५२।

के लिए प्रशिक्षण मात्र है :—

सोहं आपु पछाणीऐ सबदि भेदि पतीआइ—पृ० ६०

अतः उन्होंने आचार्यों तथा पंडितों द्वारा खड़े किए गए पंडिताऊपन के गोरखधंधे पर कभी विश्वास नहीं रखा।[1] उनके नम्र तथा कोमल स्वभाव में महान प्रतिभा छिपी हुई थी, जो सदा अलौकिक ज्ञान से दीप्त रहती थी। साधु टी० एल० वस्वानी ने नानक के गहरे प्रभाव का मूल्यांकन इन शब्दों में किया है :—

"नानक ने भारतीय इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया। समय की परतें खुलने के साथ-साथ न जाने कितने और महान् व्यक्ति संसार में जन्म लेंगे किन्तु मेरा विश्वास है कि नानक की विनम्रता को पार करने वाला कोई नहीं होगा। जब भारत अपने स्वत्व को प्राप्त होगा और सही अर्थों में वह एक स्वतंत्र राष्ट्र बनेगा—न कि केवल मात्र धर्मनिरपेक्ष राज्य का ढोंग—तो इस देश के नागरिक नानक में मानव इतिहास के सर्वगुण सम्पन्न प्रतिभाओं में से महानतम आत्मा के रूप में विश्वास और श्रद्धा रखेंगे।"[2]

दूसरी ओर नानक एक बड़े सुधारक भी थे। उनके हृदय में धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्ति पाने की तीव्र इच्छा से प्रेरित एक क्रान्तिकारी भावना भी थी :—

भ्रम का संगलु तोड़ि निराला, हरि अन्तरि हरि रसु पाइआ।

पृ० १०४१

"भ्रम तथा अन्धविश्वासों की कड़ियां निराले ढंग से तोड़ दी गई हैं—यह ज्ञान प्राप्त करे कि ईश्वर तो सर्वदा हृदय में स्थित है।"

नानक द्वारा दिया गया समता का विचार उनकी दया और अनुकम्पा की गहन अनुभूति का परिणाम था।[3]

गुर-सबदी सभु ब्रह्म पछानिआ, आतम रामू सबाइआ।"[4]

(सभी गुरु के शब्दों द्वारा अर्थात् गुरु के बताए मार्ग पर चल कर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। नानक कहते हैं कि यह सब राम की ही परम आत्मा है।) जब व्यक्ति अन्य सभी को अपने से श्रेष्ठ समझता है तो वह अन्य किसी को निम्न

---

१. दर दरसन का प्रीतमु होवै। मुकति बैकुंठै करै किआ।
(जो ईश्वर का दर्शन करने का इच्छुक है वह मोक्ष या स्वर्ग की कामना क्यों करेगा।)

२. वस्वानी, ए प्रोफैट ऑफ दी पीपल, पृ० ४६।

३. डंकन ग्रीन लैस लिखता है :—"सिखमत पूर्व धर्मों की पुनरावृत्ति मात्र नहीं है अपितु उनका पूर्णतः संशोधित रूप है—इतना पूर्ण और सही कि इसे नितान्त नई उद्भावना के अतिरिक्त कुछ और नहीं कहा जा सकता।'—दि गास्पल ऑफ दि गुरु ग्रंथ साहब, पृ० १७१।

४. आदि ग्रंथ, पृ० १०४३।

स्तर पर कैसे देख सकता है ।

"तीनों लोक में ही प्रकाश देदीप्यमान है किन्तु उसकी झलक अलग-अलग (रूपों) भागों में दिखाई देती है ।" (पृ० ५९६)

"नानक उत्तमु नीचु न कोइ"

(नानक कहते हैं कि सभी उत्तम हैं । यहां नीच तो कोई है ही नहीं) ।[1]

गुरु नानक सभी मानव मात्र की सहज समानता में विश्वास रखते थे, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म या वर्ग से सम्बन्ध रखता हो ।[2]

अपने अनेक पदों में गुरु नानक मानव की इस समानता की ओर संकेत करते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि मोक्ष सभी के लिए उपलब्ध है यदि व्यक्ति ईश्वर के नाम का जाप करे :—

"नानक छूटसि साचै नाइ"[3]

(नानक कहते हैं कि मोक्ष सच्चे नाम के जाप द्वारा ही प्राप्त होगा ।)

'मुकति महासुख गुर सबदु बीचारि ।[4]

(मुक्ति उसे प्राप्त होती है जो नाम का जाप करता है ।)

"जिनि सचे सिउ चितु लाइआ । जगजीवनु दाता पाइआ ।"[5]

(जो अपने मन को सत्य पर स्थिर कर लेते हैं, वह सब कुछ देने वाले, सभी को जीवन दान देने वाले ईश्वर को पा लेते हैं ।[6])

समता का भाव दयायुक्त अहिंसा की भावना से गहरे रूप से सम्बद्ध है ।[7]

"दइआ दिगंबरु देह बीचारी । आपि मरे अवरा नह मारी ।"

(मानव देह दिगम्बर अर्थात् दया का साकार रूप है । मनुष्य स्वयं तो चाहे मर जाए किन्तु दूसरों को नहीं मारता ।)

"यदि आप अपना कल्याण चाहते हो तो दूसरों का पूरी तरह भला करते हुए भी अपने को 'नीचहू ते नीच' समझो ।"[8]

गुरु नानक देव ईश्वर को समस्त ज्ञान का स्रोत मानते थे । इसीलिए वह

---

१. जपुजी साहब, पद ३३ ।
२. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १०५ ।
३. आदि ग्रंथ, पृ० १२५६ ।
४. वही, पृ० ९४२ ।
५. वही पृ० ४६६ ।
६. वही, पृ० ३५७ ।
७. गुरुमुख की भक्ति की उच्चतम स्थिति का चित्रण करते हुए गुरु नानक ने फिर अहिंसा और निःस्वार्थ भावना पर जोर दिया है: जोती जोति मिलाईऐ सुरती सुरति संजोगु । हिंसा हउमै गतु गए नाही सहसा सोगु । वही, पृ० ११ ।
८. जे लोड़हि चंगा आपणा करि पुनहु नीचु सदाईऐ, पृ० ४६५ ।

उसे 'गुरु'—'सतगुरु' के नाम से पुकारते थे।

गुरु तथाकथित ऊंची और नीची जाति के लोगों में अन्तर नहीं करता, अपितु उन्हें एक ही पूर्ण में समन्वित करता है।

अतः वह समता का सम्बन्ध मुक्ति से बताते हैं और इस बात पर जोर देते हैं कि समता के बिना उद्धार संभव नहीं।[1]

किसी भी धार्मिक नेता का धर्मोपदेश प्रायः उसके समय की ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ से अलग नहीं होता। गुरु नानक ने भी अपने प्रचार द्वारा समाज में होने वाले प्रभाव का अनुभव किया।[2] उन्होंने अनुरक्ति और विरक्ति के बीच सन्तुलन स्थापित किया। उनका विश्वास था कि भक्त पारिवारिक जीवन व्यतीत करता हुआ भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है—

१. पुत्र कलत्र विचे गति पाई। पृ० ६६१।

२. गृहु बनु समसरि सहजि सुभाइ। पृ० ३५१[3]

पलायनपूर्ण संन्यास की भावना का प्रचार बुद्ध और महावीर द्वारा किया गया था। उनका यह विश्वास था कि केवल मुनि या भिक्षु ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है। संन्यासियों के इस दृष्टिकोण ने निम्न वर्ग और विशेष रूप से स्त्री जाति की मुक्ति के मार्ग में बाधाएं उपस्थित कर दीं।

आसाम के महान् सुधारक सन्त श्री शंकरदेव (१४४९-१५६६ ई०) ने स्त्रियों को, जो नामघरों में किए जाने वाले कीर्तनों में सम्मिलित होने को ललकती थीं, पूजा के समान अधिकार नहीं दिए।

कबीर भी इस पुरानी धारणा का विरोध नहीं कर पाए। उल्टा उन्होंने कंचन-कामिनी को निंदित बताया। इसके विपरीत गुरु नानक ने स्त्रियों को समान अधिकार दिए और स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि उस स्त्री जाति की भर्त्सना करना अनुचित है, जो राजाओं और राजयोगियों की जन्मदात्री है।[4]

नानक ने राग सूही (पृ० ७६२-७६३) में अपनी 'सुचज्जी' नामक रचना में नारीत्व का आदर्श प्रस्तुत किया है। एक और शबद में उन्होंने कहा है कि उन व्यक्तियों का जीवन सार्थक और सफल है जो शक्ति तथा अर्थ सम्पन्न

---

१. (क) ततु निरंजनु जोति सबाई सोहं भेदुन कोई जीउ, पृ० ५९९।
   (ख) नानक सतिगुरु ऐसा जाणिऐ जो सभसे लए मिलाइ जीउ, पृ० ७२।
   (नानक कहते हैं कि उसे सतगुरु मानो जो सभी को ईश्वर से मिलाए।)

२. देखिए, 'हिन्दू व्यू आफ लाइफ', डा० राधाकृष्णन, पृ० २५।

३. इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि शंकर गृहस्थ के जीवन की परिसमाप्ति अन्त में संन्यासी के जीवन में होने पर जोर देते हैं।

४. सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान, आदि ग्रन्थ, पृ० ४७३।

किन्तु विनम्र और निरहंकार स्त्रियों के संसर्ग में रहते हैं। (८५)

नानक वाणी की इस मर्यादा ने किसी भी सिख धार्मिक या सामाजिक उत्सव में स्त्रियों के अलगाव का कोई अवसर नहीं रहने दिया। पंजाब का इतिहास साक्षी है कि सिख स्त्री किसी भी धार्मिक, सामाजिक, और यहां तक कि राजनैतिक आन्दोलनों में भी अपने पुरुषों से कभी पीछे नहीं रही। इनमें से कुछ ने तो मुग़लों और अंग्रेजों के विरुद्ध वीरता से लड़ने तक का भी साहस दर्शाया।

पूंजीवाद और भीख

भीख वृत्ति मूलतः समाज के पूंजीवादी ढांचे की देन है। इसीलिए नानक ने मायाधारी (पूंजीपति) या धनाढ्य की भर्त्सना की है। उन्होंने पूंजीपति को शिक्षा दी की वह ज़रूरतमंद को दान दे और अपने आपको निर्धन या दीन के उद्धार के लिये प्रयोग किए जाने के हित अपने धन के ट्रस्टी या अभिरक्षक समझें।[1]

दूसरी ओर गुरु नानक ने भीख मांगने की वृत्ति की एक सामाजिक बुराई कह कर निन्दा भी की। उन्होंने अपने साथी हिन्दू सन्तों की इस बात के लिए कड़ी निन्दा की कि वे लोगों से छीनी हुई भिक्षा पर जीते हैं और उन्होंने लोगों को श्रम का सम्मान करने की शिक्षा दी।[2]

नानक के अनुसार तो संन्यासी और उपदेशक को भी मांगना नहीं चाहिए —'अचिन्त मिले त खाए।' अर्थात् उसे उसी में सन्तोष करना चाहिए जो विना मांगे और सोचे उसे अकस्मात् प्राप्त हो।

१. जो अपने भोजन के लिए मांगने जाता है, वह चाहे अपने को गुरु या

---

१. (क) दइआ जाणै जीअ की किछु पुनु दानु करेइ—आदि ग्रंथ, पृ० ४६८।
(यदि तुम जीवन दान देने वाली दया से परिचित हो तो दान दो और अच्छे कर्म करो)।
(ख) घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछानहि सेइ। वही पृ०, १२४५।
(नानक कहते हैं जो अपनी खून-पसीने की कमाई में से दान देता है, वही सत्य के मार्ग को पहचानता है।)
(ग) संचउ संची भए विकार। वही, पृ० २२२।
(धन या पूंजी विकारों का भंडार है।)
(घ) पापां बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई। वही, पृ० ४१७।
(पाप किए विना पूंजी जमा नहीं होती। जब तुम मरोगे या संसार छोड़ कर जाओगे तो यह धन सम्पत्ति साथ नहीं जाएगी।)

२. एन० आर० रोज़ 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलीजन एण्ड एथिक्स' सिखों पर लेख।

पीर कहलवाए। उसकी अर्चना मत करो (या उसके पांव मत छुओ)।[1]

२. जो निराकार ब्रह्म के साथ अपना साक्षात्कार हुआ बताता है, उसे मांगने जाने की क्या आवश्यकता है।[2]

३. योगी! जब तुम ईश्वर से एकाकार होने का दावा करते हो, और तुम्हें कोई चिन्ता वा कष्ट नहीं है, तो क्या तुम्हें भिक्षा के लिए दर-दर की ठोकरें खाते लाज नहीं आती।[3]

इन तथा अन्य ऐसे ही पदों से नानक के सामाजिक आदर्शों की झलक मिलती है। वह चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति समाज के प्रति उपयोगी कार्य करे और ईश्वर तथा मानव की सेवा में रत सामान्य, स्वस्थ और अच्छा जीवन व्यतीत करे। डा० गोपाल सिंह दर्दी लिखते हैं कि "सही या सामान्य जीवन न तो वासनात्मक जीवन के एक छोर को छूता है और न ही तुकहीन संन्यास और आत्मदाह के दूसरे छोर की ओर झुकता है। अर्थात् वह मध्य मार्ग पर चलता है।"[4]

गुरु नानक ने सहज योग को सामान्य, स्वाभाविक और व्यावहारिक जीवन स्वीकार किया, जिससे मानसिक सन्तुलन और सामाजिक समता प्राप्त होती है।

१. केवल वही सच्चे वैरागी हैं, जिनकी नाम के प्रति सच्ची भक्ति और श्रद्धा है। उन्हें किसी प्रकार का शोक, वियोग की पीड़ा, रोग या अन्य कष्ट व्याप्त नहीं होता।[5]

२. जो सदा अपने हृदय में नाम प्रेम की ज्योति जलाए रहते हैं—वे पूर्ण शान्ति और आनन्द का उपभोग करते हैं।[6]

३. जब भक्त गुरु की कृपा से अमृत को चख लेता है और ईश्वर के चरणों में उसे शरण मिल जाती है तो वह सांसारिक सुख-दुख के प्रभाव से अतीत हो जाता है।[7]

नित्शे की कल्पना के परम मनुष्य की अपेक्षा गुरु नानक ने गुरमुख—आदर्श-पुरुष का चित्रण अधिक कलात्मक सौन्दर्य से किया है

---

१. गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ, तो कै मूलि न लगीऐ पाइ—आदि ग्रंथ, पृ० १२४५।

२. निरंकारि जो रहै समाइ। काहे भाखिआ मंगणि जाइ—वही, पृ० ६०३।

३. जोगी बसि रहहु दुबिधा दुखु भागै।
घरि घरि मांगत लाज न लागै—वही, पृ० ६०३।

४. गोपालसिंह दर्दी, गुरु ग्रन्थ साहब (अंग्रेजी) खण्ड १, पृ० ३३।

५. नाम रते केवल वैरागी, सोग विजोग विसरजित रोग—आदि ग्रन्थ, पृ० ५०४।

६. सुख सहजे जपि रिदै मुरारि—आदि ग्रन्थ, पृ० २२२।

७. हरख सोग ते रहहि निरासा, अमृतु चाखि हरि नाम निवासा।
—आदि ग्रन्थ, पृ० ११८६

१. जाति वरन से भए अतीता, ममता लोभु चुकाइआ। पृ० १३४५।
(वह जाति और वर्ण के भेदों से परे रहता है और स्वार्थ भाव तथा लोभ का निराकरण करता है।)

२. सुखु-दुखु जिह परसे नहीं लोभ, मोह, अभिमानु।
कहु नानक सुन रे मना, सो मूरत भगवान।—पृ० १४२६

(नानक कहते हैं कि ऐ मन! वह पुरुष साकार भगवान है जिस पर सुख-दुख का कुछ भी प्रभाव नहीं होता, लोभ, मोह, और अभिमान जिस पर वश नहीं कर सकते।)

तीसरे गुरु अमरदास ने गुरु नानक को समदर्शी कहा है—जो समस्त प्राणी मात्र को समदृष्टि और आसक्ति रहित भाव से देखता है।

"जो समता की मूर्ति है—वह सब के लिए स्तुत्य है।"[1]

पांचवे गुरु अर्जुन देव ने गुरु नानक को महान मुक्तिदाता कहा है—

"फूटो आंडा भरम का मनहि भइओ परगासु
काटी वेरी पगह ते, गुरि कीनी बंदि खलासु।"[2]

(भ्रम का अण्डा फूट गया। मन में प्रकाश हो गया। गुरु ने पांव की बेड़ियां काट दी हैं और मन को मुक्त कर दिया है।)

---

१. ईशोपनिषद भी इसी भाषा में कहता है:—
यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैव भूद्विजानतः तत्र को मोह कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।
(जो व्यक्ति जीवन की एकता और सभी प्राणियों में अपनी ही आत्मा को देखता है, उसे कोई मोह या शोक नहीं होता।)

२. आदि ग्रन्थ, पृ० १००२।

: १३ :

क्या ईश्वर इतिहास में व्याप्त है ?

(इस प्रश्न के सन्दर्भ में गुरु नानक का उत्तर)

प्रो० मोहन सिंह दीवाना

(१)

इस प्रश्न के उत्तर में गुरु गोविन्दसिंह की वाणी की व्याख्या मैं अपने एक लेख में कर चुका हूँ। यह लेख, 'गुरु गोविन्दसिंह का काल, इतिहास और धर्म सम्बन्धी परिकल्पना' शीर्षक से धर्मों के इतिहास की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद के मलमर्ग अधिवेशन में सन् १९६७ में प्रस्तुत किया गया था। गुरु साहब के उत्तर की विस्तृत व्याख्या मैंने अपनी पुस्तक 'गुरु गोविन्द सिंह की परमात्मा की परिकल्पना' में की है जो जनवरी १९६७ में निरंकारी दरबार सैक्टर १८, चण्डीगढ़ से प्रकाशित हुई थी। गुरु गोविन्दसिंह का प्रत्युत्तर (१६६६-१७०८) प्रवर्त्तक गुरु नानक के चुनौतीपूर्ण प्रश्नोत्तरों पर आधृत था। सन् १५२४-२६ में जब मुगल बाबर ने पंजाब पर आक्रमण किया था तभी ये प्रश्नोत्तर गुरु नानक के हृदय से स्वतः फूट पड़े थे। गुरु नानक की मनःस्थिति का मूल्यांकन करने के लिए इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि वे अफगान सिकन्दर लोधी के शासनकाल में रहे थे जिसने मूर्त्ति-भंजक की उपाधि हथियाने के लिए बड़े पैमाने पर भगीरथ प्रयत्न किये थे। गुरु गोबिन्दसिंह ने भी औरंगजेब को संबोधित पद्यात्मक विजय-पत्र में इस उपाधि पर, व्यंग्य रूप में अपना हक जतलाया था।

प्रस्तुत लेख, सरदार गुरुमुख निहालसिंह के अनुरोध पर, शीघ्रता में—केवल दो सप्ताह में, लिखा गया है। ज़ाहिर है कि यह अध्ययन संक्षिप्त और अपर्याप्त है। क्या ईश्वर इतिहास में व्याप्त है और यदि है तो कैसे? इस प्रश्न के प्रति गुरु नानक की प्रतिक्रिया इस लेख में व्यक्त है। यह प्रश्न ईश्वर की सापेक्षता में ही उठाया गया है। इसमें ईश्वर के प्रतिद्वंद्वी मनुष्य और मनुष्य के प्रतिद्वंद्वी यंत्र की इतिहास में व्याप्ति पर विचार नहीं किया गया है।

संक्षेप में, गुरु नानक का उत्तर इस प्रकार था :

१. हाँ, वह इतिहास के रूपाकार के निर्माण और प्रक्रिया में व्याप्त है।

२. वह इतिहास के संचालन और पथ-निर्देशन में, अनिवार्यतः भागीदार है।

३. इतिहास दोहरी भूमिका निभाता है—दो समानान्तर मार्गों पर ।
४. इतिहास में ईश्वर की व्याप्ति पैगम्बर और सन्त के रूप में अभिव्यक्त होती है ।

गुरु नानक इस बात से सन्तुष्ट नहीं थे, अतः उन्होंने कहा :

५. इतिहास में ईश्वर की व्याप्ति या तो 'खेल' के अर्थ में थी—भले ही इसका रूप निर्मम हो या फिर असुर शक्तियों के विनाश के अर्थ में थी अथवा दोनों रूपों में ।

वेदों के समय से ले करके बाईबल और कुरान के युगों तक यानी १०वीं शताब्दी तक इतिहास में ईश्वर की अवतार रूप में सम्पृक्ति मानी जाती थी । गुरु गोबिन्दसिंह ने ईश्वर की अवतार रूप में सम्पृक्ति को समीकरण के माध्यम से सही सही व्यक्त किया है :

अकाल=काल=भगवती (काली)=कृपाण=राज

दसवीं शताब्दी से मनुष्य ने इतिहास में ईश्वर की व्याप्ति सन्त के रूप में परिकल्पित या महसूस करनी शुरू कर दी थी (सन्त, भक्त, सत्गुरू, गुरु आदि द्वारा ।) नानक ने गुरु अथवा सत्गुरु को, अवतार के विरोध में, बड़े प्रभावशाली ढंग से, ज़ोर देकर, व्यापक अर्थ में प्रतिष्ठित किया और सन्त और पैग़म्बर के पारस्परिक सम्पूर्ण विरोध का विस्तृत विवेचन करके उन्होंने अपनी स्थिति को स्पष्ट किया और सुदृढ़ बनाया । वास्तव में नानक ने ऐसे बीस 'विरोधों' और विभिन्नताओं का उल्लेख किया । उन्होंने विपक्ष का खंडन करने और उनकी कमज़ोरियों को उभारने के लिए, इन विरोधों और विभिन्नताओं का सुन्दर ढंग से, प्रभावशाली प्रयोग किया । इससे उनके अपने कार्य की गरिमा पर प्रकाश पड़ा । गुरु नानक यह जानते थे कि विरोध कभी पूर्णतः निरपेक्ष नहीं होते । कुछ विद्वानों के अनुसार इनमें परस्पर सामंजस्य होता रहता है और कई अन्य चिन्तकों के अनुसार अन्तर-रूपांतरण की प्रक्रिया चलती रहती है । गुरु नानक ने इसीलिए हिब्रू, ईसाई, मुसलमान और हिन्दु धर्मो के रसूल, पैगम्बर, अवतार, यहाँ तक कि जैन तीर्थंकरों और बुद्ध की (बोद्धि सत्त्व की नहीं) विशेषताओं और कार्य-व्यापारों की, सन्त के साथ संगति बैठाकर सन्त की स्थिति को सुदृढ़ बनाने में संकोच नहीं किया । परिणामस्वरूप गुरु नानक के सत्गुरु नानक से पूर्व के उन भक्तों, सन्तों और पैग़म्बरों से कहीं अधिक उच्च और सक्रिय हैं जिनकी प्रशस्तियां दक्षिण के अलवार और उत्तर के रामानन्दी वैष्णव गाया करते थे । गुरु को अवतार से ऊंचा स्थान कैसे दिया गया है ? इसका विवेचन हम आगे करेंगे ।

(२)

गुरु नानक इस धारणा से प्रारंभ करते हैं कि ईश्वर ने स्वयं दो रास्ते

बनाए हैं और वह स्वयं ही इन दोनों रास्तों का स्वामी है। (१-२२२-४१) एक अन्य स्थल पर वे कहते हैं : दो प्रकार—दो पथ हैं जो कि उसने (ईश्वर ने) बनाए हैं और जिनका वह परिचालन करता है। जहां तक गुरु नानक का प्रश्न है वे इस द्वैत, विभेद और विरोध को स्वीकार कर लेना ही काफी मानते हैं; ईश्वर के कार्यकलापों के लिए कोई पूछ-ताछ नहीं की जा सकती। ईश्वर को न तो अपनी अच्छी या बुरी, स्वतंत्र या परतंत्र, ज्ञानयुक्त या अज्ञानमय सृष्टि की सार्थकता सिद्ध करने की ज़रूरत है, न मनुष्य को ही अपने शुभ-अशुभ, सुख-दुःख, जन्म और मृत्यु के लिए, ईश्वरीय इच्छा और विधान के सिवा, अन्य निमित्त या कारण तलाशने की ज़रूरत है। मनुष्य के लिए पूर्व-जन्म के कर्मों का मुखापेक्षी होने की भी ज़रूरत नहीं है जिनके व्यापार और फल इस जन्म में भी चलते रहते हैं, और न ही उसे निरन्तरता, क्षति-पूर्ति और सुरक्षा के लिए भविष्य में ताकने की आवश्यकता है। गुरु नानक का कहना है कि जो द्वैत सभी क्षेत्रों और तमाम स्तरों पर अभिव्यक्त है वह ईश्वर की लीला का अनिवार्य नाटकीय पहलू है—ईश्वरीय सृष्टि के अर्थ में ही नहीं, सृजन-प्रेरणा के अर्थ में भी। ईश्वर को स्वयं अपनी सृष्टि-रचना के कार्य में प्रकृति को अपना सहयोगी बनाना पड़ा और यह अद्‌भुत नाटक निश्चय ही उसके अपने आनन्द और मौज के लिये रचा जाता है और इससे उसे सृजन-पूर्व अनुग्रह का अभ्यास होता है। अच्छाई और बुराई दोनों दुनिया में मौजूद हैं। बुराई सद्-असद-निरपेक्ष और शोषण पर आधृत होने के कारण शक्तिशाली होती है, अतः उसकी जीत होती है। एक दर्शक और निर्देशक की हैसियत से सृष्टि से जुड़े होने के कारण ईश्वर असुर विनाशक लोगों को उत्पन्न करता है। एक स्थल पर गुरु नानक ईश्वर को असुर निकंदन के नाम से पुकारते हैं। हिन्दुओं की मान्यता है कि ऐसे असुर-निकंदन अवतार होते हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश की सृष्टि-कार्यरत त्रिमूर्त्ति के वंशज होते हैं जिन पर परमेश्वर का शासन है। अन्य लोग ऐसे संहारकर्त्ताओं को संदेशवाहक, मसीहा, राजा, नियामक, राजाधिराज, उपनामधारी, पादरी, देवता और ऋषि भी कहते हैं। यह उचित ही है कि उनका बल कर्म पर है, विचार पर नहीं। वे तलवार को महत्त्व प्रदान करते हैं, जातियों और राज्यों की स्थापना करते हैं। वे अपने अनुयायियों को कट्टर पद्धतियों और संकीर्ण विचारधाराओं का अनुवर्ती बनाते हैं और इस संसार पर ज़ोर देते हैं और अन्य अपर लोकों में संसार की निरन्तरता का विश्वास दिलाते हैं।

हालांकि वे मुक्ति दिलाने का वादा करते हैं। पर, उनका वादा सच प्रतीत नहीं होता क्योंकि उनके अनुयायियों को भी उनपर विश्वास नहीं हो पाता। बाह्य-जगत् में यह सद्-असद् का संघर्ष-पथ है—उस मनुष्य का बाह्य संघर्ष-पथ जिसके भीतर एक ब्रह्मांड है जो बाहरी ब्रह्मांडों के सम्मिलित रूप जितना

विशाल है। इस भौतिक संसार में काल, तलवार, देवी शक्ति, सत्ता और कानून पूर्णरूपेण सक्रिय रहते हैं। गुरु नानक ने, व्यक्तिगत रूप से इस दूषित भौतिक खेल को अपने करोड़ों देशवासियों के साथ देखा था। वे दूसरे पथ पर, विशेषत:, ईश्वर के संतों और गुरुओं द्वारा बनाए गए पथ पर स्वयं चलना चाहते थे और दूसरों को चलाना चाहते थे।

गुरु नानक ने प्रारंभ में ही विपक्ष की कमज़ोरियों की ओर अंगुली-निर्देश किया। उन्होंने पैगम्बरी के अन्तर्गत आने वाले देवी-देवताओं और अवतारों की कमियों को बताया। गुरु नानक के अनुसार पैगम्बर या अवतार, प्रथमत:, एक सत्ताधारी, उत्पीड़क और संहारकर्त्ता होता है। दूसरे, संहार में और मानवपरक भूमिका में कुछ विशिष्ट महानता नहीं होती। तीसरे, जो न्याय, समानता और व्यवस्था पैगम्बर प्राप्त करता है या अपने अनुवर्तियों को दिलाता है, वह अमानवीयता से कलंकित होती है। इसके अनन्तर गुरु नानक यह बताते हैं कि पैगम्बरी की पहुंच से परे कौन-कौन सी बातें हैं यानी वे बातें जो पैगम्बर अपने अनुयायियों को नहीं दिला सकता। (क) ईश्वर का साक्षात्कार (ख) यहाँ और अभी ईश्वरीय साम्राज्य में प्रवेश (ग) काल पर विजय अथवा जन्म-मरण से मुक्ति और शाश्वतता की अनुभूति (घ) विवेक से भी परे की शान्ति जिसमें सभी प्रकार की वासनाओं का अन्त हो जाता है, (जीवनपद 'निर्वाण' का पर्याय है) और (ङ) आत्म-ज्ञान जिससे तात्पर्य है—१. त्रैलोक्य (काल विभाजन के अर्थ में) के आवश्यक ढांचे और प्रक्रिया का ज्ञान। २. अहं-नाश ३. परमेश्वर के नाम से प्यार, ४. ईश्वरीय प्रासाद के द्वार पर निरन्तर नमन। ५. मनुष्य की पूर्णता या मनुष्य के लिए ईश्वरीय इच्छा की तलाश। प्रश्न यह है कि गुरु क्या कर सकता है ? ईश्वर और मनुष्यता के मुकाबले में उसकी क्या स्थिति है ? सच्चा और पूर्ण गुरु कौन है ? शिष्यत्व के लिए क्या शर्तें हैं ? निम्नलिखित मूलसूत्र अपने ढंग से इन प्रश्नों का उत्तर देते हैं—

१. गुरु और परमेश्वर (मुरारी) में कोई भेद नहीं। (I-[illegible])
२. गुरु के बिना मुक्ति संभव नहीं। (I-११३४)
३. गुरु तुरिया अवस्था तक ले जा सकता है। (I-[illegible])
४. गुरु ने मुझे 'अदृश्य' के दर्शन करा दिए। गुरु के शब्द से मैं सर्वत्र ब्रह्म का साक्षात्कार करने में समर्थ हुआ। (I-१०४३)
५. गुरु या पीर का शब्द गहन और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। (I-९३५)
६. गुरु हम में सच्चाई और सहजता पैदा कर सकता है। (I-४१५)
७. गुरु देव है—अजेय देव। गुरु-सेवा से हमें त्रैलोक्य (अतीत, वर्तमान, भविष्य) का ज्ञान उपलब्ध होता है। (I-११२६)
८. उसकी एक कृपा-कोर भवसागर से पार कराने में सहायक है।

९. गुरु-सेवा से जीवात्मा स्वयं को पहचानता है। (I-४१५०)
१०. गुरु-सेवा के माध्यम से जीवात्मा अपनी आँखों से ईश्वर के दर्शन करता (I-४१३)
११. ईश्वर अपने सन्तों को त्रैलोक्य देखने की दृष्टि देता है। (I-२२४)
१२. गुरु का शब्द दैवी संगीत और वैदिक अनुभूति का नाद है। (I-८७९)
१३. जब गुरु मिल जाता है तो वह हमें ईश्वरीय प्रासाद तक ले जाता है। (I-१०४३)
१४. पूर्ण गुरु वह है जिसने हमारे भीतर छिपे पाँच गुप्तचरों को बाहर निकाल दिया हो। (I-३०४)
१५. हम देवी-देवताओं की उपासना कर सकते हैं पर उनसे हम क्या माँग सकते हैं और वे हमें क्या दे सकते हैं? (I-४२०)
१६. कृष्ण की तरह कालिया नाग नथ लेने से क्या हो सकता है? काम को यदि तुमने दमन कर भी लिया तो क्या? कृष्ण की तरह सैकड़ों गोपियों से प्रेम-क्रीड़ा करने से भी क्या हो सकता है? विष्णु की तरह समुद्र-मन्थन करके मोती निकाल लेने के परिणामस्वरूप क्रोधित असुरों और हताश देवताओं में झगड़े के सिवा क्या हुआ?

(३)

उपर्युक्त मूल कथनों का अध्ययन अब एक भिन्न कोण से करना होगा जिससे कि हमें दो सम्बद्ध प्रश्नों के उत्तर मिल सकें :—(१) पैगंबर की अपेक्षा सन्त पर बल देने के पीछे जो परिवर्तित दृष्टि है वह उस सामाजिक-राजनीतिक स्थिति में कहाँ तक संगत और उपयोगी थी जिसमें गुरु नानक रहते और काम करते थे? (२) : गुरु के ज़रिये मनुष्य को सीधा ईश्वर की ओर ले जाने वाले इस दूसरे पंथ के चलने से इतिहास में ईश्वर की व्याप्ति पर क्या प्रकाश पड़ता है? दूसरे इस प्रश्न की अनेक शाखाएँ और जटिलताएँ हैं। दुष्ट वर्ग की शक्तियों की ग़िरफ़्त में से शुभ वर्ग की शक्तियों को मात्र मुक्ति दिलाना, समृद्धि को बढ़ाना, ईश्वर के भौतिक ब्रह्मांड के रहस्यों को गहराई से जानने की दिशा में प्रवृत्त, मनुष्य के मानसिक, नैतिक, भौतिक संतुलन और उसकी बौद्धिक प्रगति को क़ायम रखना ही क्या ईश्वरीय दाय या सम्पृक्ति है? पैगम्बर की तलवार और अहंरहित मनुष्य की काव्यात्मकता का क्या कोई विकल्प है? ईश्वरत्व, आत्म-ज्ञान, ईश्वर के साम्राज्य, सहयोगियों, स्त्रियों और प्रायः मनुष्यों के उत्थान की दिशा में मनुष्य ने जो साहसिक अभियान किये हैं, उन्हें देखते हुए आत्म-संयमित मनुष्य का क्या महत्त्व है?

इन मूल वाणियों से एक बात स्पष्ट है। मनुष्य के लिए ज़रूरी नहीं है कि

वह देवी-देवताओं, विधि-विधान की पुस्तकों, विधि-नियामकों, राजाओं और पुरोहितों का मुंह देखता रहे, और जो प्रथाएं और प्रतीक, रीतियां और साधन वे सुझाएँ, उन्हीं का अनुवर्ती रहे। मनुष्य को अब उन तरीकों पर विश्वास नहीं करना होगा जो उसे लौह-पिंजरों, इस्पाती और उग्र धार्मिक अनुशासनों में रहने के लिए बाध्य करते हैं। अब मनुष्य न तो स्वर्ग के स्वप्न संजो सकता है, और न नरक से नफ़रत कर सकता है। अब मनुष्य जन्म और मरण को स्वतः आरोपित, कर्मफल से उत्पन्न, आकृष्ट और प्रेरित नहीं मान सकता। अब मनुष्य स्वयं को जन्म-अपराधी, पापी, ईश्वरीय कृपा से वंचित, अपने चारों ओर व्याप्त क्रूरता और मृत्यु की क्षति-पूर्ति करने वाले प्रकाश और अनुग्रह की उष्णता से रहित, नहीं मान सकता। मनुष्य के लिए अब जरूरी नहीं है कि वह काल से भयभीत हो या कालातीतता की आकांक्षा करे। मनुष्य अब स्वयं को हेतु-विद्या के अर्थ में ही नहीं, वर्तमान अर्थों में भी भविष्यहीन या लक्ष्यविहीन नहीं मान सकता। और अन्त में मनुष्य स्वयं को अन्य मनुष्यों, अन्य प्राणियों, अन्य लोकों, ईश्वर के निवास स्थान और दरबार से असम्बद्ध नहीं मान सकता। इस पथ के राही को उस अतिथि के समान सम्मान और सहानुभूति से देखा जाता है, पथ भूले पुत्र की तरह जो घर लौट रहा हो और जिसने शीघ्र ही दरबार में पहुँच जाना हो। इस रास्ते पर चलने वाला यह मुसाफिर सुरक्षित भी रहता है जबकि यात्रियों की सर्वाधिक संख्या दूसरे रास्ते पर होती है जो महात्मा को मारने और महात्मापन को बदनाम करने में संकोच करते हैं और इस प्रकार कठिन रास्ते को अपनाने की अपेक्षा सरल रास्ते में पलायन कर जाते हैं। आध्यात्मिक पथ के राही को इस आरोप का सामना करने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह मानता है कि शुरू से ही ईश्वर ने कृपापूर्वक उसे इस दूसरे रास्ते पर डाला है और इसी पर उसने चलना है, वही उसे कृपा करके गुरु से मिलाएगा, सेवा में प्रवृत्त करेगा जिससे कि वह अपने परिवार को, अपने सहयोगियों और अपने अन्य असंख्य लोगों को मुक्ति दिला सकेगा। द्वितीय पथ के यात्री पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह स्वयं नाम स्मरण करता है और अपने उदाहरण से अन्य लोगों को नाम स्मरण और नाम उच्चारण में सहायता करता है। गुरु के शिष्य अर्थात गुरु उन्मुख व्यक्ति को, अपनी बारी आने पर गुरु की भूमिका निभानी होती है और अपने जीवन को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करके गुरु द्वारा दिए गये 'शबद' के अर्थों की व्याख्या करनी होती है।

(४)

प्रश्न हो सकता है कि ईश्वर आध्यात्मिक इतिहास, मानवीय आत्मा के इतिहास, विचारों, भावनाओं, प्रेम और समर्पण आदि प्रतिबद्धताओं, सौंदर्यात्मक

९. गुरु-सेवा से जीवात्मा स्वयं को पहचानता है। (I-४१५०)
१०. गुरु-सेवा के माध्यम से जीवात्मा अपनी आँखों से ईश्वर के दर्शन करता (I-४१३)
११. ईश्वर अपने सन्तों को त्रैलोक्य देखने की दृष्टि देता है। (I-२२४)
१२. गुरु का शब्द दैवी संगीत और वैदिक अनुभूति का नाद है। (I-८७९)
१३. जब गुरु मिल जाता है तो वह हमें ईश्वरीय प्रासाद तक ले जाता है। (I-१०४३)
१४. पूर्ण गुरु वह है जिसने हमारे भीतर छिपे पाँच गुप्तचरों को बाहर निकाल दिया हो। (I-३०४)
१५. हम देवी-देवताओं की उपासना कर सकते हैं पर उनसे हम क्या माँग सकते हैं और वे हमें क्या दे सकते हैं? (I-४२०)
१६. कृष्ण की तरह कालिया नाग नथ लेने से क्या हो सकता है? काम को यदि तुमने दमन कर भी लिया तो क्या? कृष्ण की तरह सैकड़ों गोपियों से प्रेम-क्रीड़ा करने से भी क्या हो सकता है? विष्णु की तरह समुद्र-मन्थन करके मोती निकाल लेने के परिणामस्वरूप क्रोधित असुरों और हताश देवताओं में झगड़े के सिवा क्या हुआ?

(३)

उपर्युक्त मूल कथनों का अध्ययन अब एक भिन्न कोण से करना होगा जिससे कि हमें दो सम्बद्ध प्रश्नों के उत्तर मिल सकें :—(१) पैगंबर की अपेक्षा सन्त पर बल देने के पीछे जो परिवर्तित दृष्टि है वह उस सामाजिक-राजनीतिक स्थिति में कहाँ तक संगत और उपयोगी थी जिसमें गुरु नानक रहते और काम करते थे? (२) : गुरु के ज़रिये मनुष्य को सीधा ईश्वर की ओर ले जाने वाले इस दूसरे पंथ के चलने से इतिहास में ईश्वर की व्याप्ति पर क्या प्रकाश पड़ता है? दूसरे इस प्रश्न की अनेक शाखाएँ और जटिलताएँ हैं। दुष्ट वर्ग की शक्तियों की गिरफ़्त में से शुभ वर्ग की शक्तियों को मात्र मुक्ति दिलाना, समृद्धि को बढ़ाना, ईश्वर के भौतिक ब्रह्मांड के रहस्यों को गहराई से जानने की दिशा में प्रवृत्त, मनुष्य के मानसिक, नैतिक, भौतिक संतुलन और उसकी बौद्धिक प्रगति को क़ायम रखना ही क्या ईश्वरीय दाय या सम्पृक्ति है? पैगम्बर की तलवार और अहंरहित मनुष्य की काव्यात्मकता का क्या कोई विकल्प है? ईश्वरत्व, आत्म-ज्ञान, ईश्वर के साम्राज्य, सहयोगियों, स्त्रियों और प्रायः मनुष्यों के उत्थान की दिशा में मनुष्य ने जो साहसिक अभियान किये हैं, उन्हें देखते हुए आत्म-संयमित मनुष्य का क्या महत्त्व है?

इन मूल वाणियों से एक बात स्पष्ट है। मनुष्य के लिए ज़रूरी नहीं है कि

वह देवी-देवताओं, विधि-विधान की पुस्तकों, विधि-नियामकों, राजाओं और पुरोहितों का मुंह देखता रहे, और जो प्रथाएं और प्रतीक, रीतियां और साधन वे सुझाएं, उन्हीं का अनुवर्ती रहे। मनुष्य को अब उन तरीकों पर विश्वास नहीं करना होगा जो उसे लौह-पिंजरों, इस्पाती और उग्र धार्मिक अनुशासनों में रहने के लिए बाध्य करते हैं। अब मनुष्य न तो स्वर्ग के स्वप्न संजो सकता है, और न नरक से नफ़रत कर सकता है। अब मनुष्य जन्म और मरण को स्वतः आरोपित, कर्मफल से उत्पन्न, आकृष्ट और प्रेरित नहीं मान सकता। अब मनुष्य स्वयं को जन्म-अपराधी, पापी, ईश्वरीय कृपा से वंचित, अपने चारों ओर व्याप्त क्रूरता और मृत्यु की क्षति-पूर्ति करने वाले प्रकाश और अनुग्रह की उष्णता से रहित, नहीं मान सकता। मनुष्य के लिए अब ज़रूरी नहीं है कि वह काल से भयभीत हो या कालातीतता की आकांक्षा करे। मनुष्य अब स्वयं को हेतु-विद्या के अर्थ में ही नहीं, वर्तमान अर्थों में भी भविष्यहीन या लक्ष्यविहीन नहीं मान सकता। और अन्त में मनुष्य स्वयं को अन्य मनुष्यों, अन्य प्राणियों, अन्य लोकों, ईश्वर के निवास स्थान और दरबार से असम्बद्ध नहीं मान सकता। इस पथ के राही को उस अतिथि के समान सम्मान और सहानुभूति से देखा जाता है, पथ भूले पुत्र की तरह जो घर लौट रहा हो और जिसने शीघ्र ही दरबार में पहुँच जाना हो। इस रास्ते पर चलने वाला यह मुसाफिर सुरक्षित भी रहता है जबकि यात्रियों की सर्वाधिक संख्या दूसरे रास्ते पर होती है जो महात्मा को मारने और महात्मापन को बदनाम करने में संकोच करते हैं और इस प्रकार कठिन रास्ते को अपनाने की अपेक्षा सरल रास्ते में पलायन कर जाते हैं। आध्यात्मिक पथ के राही को इस आरोप का सामना करने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह मानता है कि शुरू से ही ईश्वर ने कृपापूर्वक उसे इस दूसरे रास्ते पर डाला है और इसी पर उसने चलना है, वही उसे कृपा करके गुरु से मिलाएगा, सेवा में प्रवृत्त करेगा जिससे कि वह अपने परिवार को, अपने सहयोगियों और अपने अन्य असंख्य लोगों को मुक्ति दिला सकेगा। द्वितीय पथ के यात्री पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह स्वयं नाम स्मरण करता है और अपने उदाहरण से अन्य लोगों को नाम स्मरण और नाम उच्चारण में सहायता करता है। गुरु के शिष्य अर्थात गुरु उन्मुख व्यक्ति को, अपनी बारी आने पर गुरु की भूमिका निभानी होती है और अपने जीवन को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करके गुरु द्वारा दिए गये 'शबद' के अर्थों की व्याख्या करनी होती है।

(४)

प्रश्न हो सकता है कि ईश्वर आध्यात्मिक इतिहास, मानवीय आत्मा के इतिहास, विचारों, भावनाओं, प्रेम और समर्पण आदि प्रतिबद्धताओं, सौंदर्यात्मक

प्राथमिकताओं, नैतिक-परोपकारी दायित्वों में किस प्रकार सम्पृक्त है ? वाणी इस मत को बिल्कुल स्पष्ट कर देती है कि इतिहास अर्थात् जाति, राष्ट्र, सम्प्रदाय और व्यक्ति आदि की ईश्वर में दिलचस्पी या उसके प्रति प्रतिबद्धता की अपेक्षा ईश्वर इतिहास में कहीं अधिक व्याप्त है ।

१. ईश्वर बहुत थोड़े पैग़म्बरों को भेजता है, पर सन्त बहुत बड़ी संख्या में आते हैं जो सभी वर्गों और जातियों में सदैव प्रकट होते हैं। वे ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करते हैं, उसकी महिमा गाते हैं, उसके गुणों का गान करते हैं, उसके अनुग्रह, क्षमाशीलता या दानशीलता, उसके पथ-निर्देशन, सुरक्षा और पूर्णता को चरितार्थ करते हैं ।
२. ईश्वर गुरुओं के हृदयों में, उनकी वाणी में, ईश्वरीय नामों में, गुरु के व्यक्तित्व में, ईश्वर की अपनी ही कृपा-दृष्टि में, निवास करता है। इन पदों से ईश्वर जीवात्माओं को अपनी ओर आकृष्ट करता है ।
३. ईश्वर शब्द रूप में, स्वयं को भक्तों, सन्तों, ब्राह्मणों और जैनियों के समक्ष प्रत्यक्ष करता है । शब्द जो कि स्वतः निसृत होता है लोकभाषा में रचित संपूर्ण, गहन और बहुआयामी कविता के समान है ।
४. ईश्वर सन्तों को प्रेरित करता है कि वे उसकी स्तुतियाँ गाएँ ताकि जीवात्माएँ उसकी ओर आकर्षित हों ।
५. गुरुओं की कृपा के द्वारा, जिन्हें ईश्वर स्वयं भेजता है या पैदा करता है, ईश्वर के सर्वव्यापक या सर्वशक्तिमान रूप के दर्शन किये जा सकते हैं ।
६. ईश्वर निर्धनों के दुःख में दुःखी होता है और सन्तुष्ट लोगों के साथ आनन्दित होता है ।
७. ईश्वर अपने भक्तों में विस्मय और आश्चर्य की भावना उत्पन्न करता है और उनके दुःखों को दूर करता है ।
८. ईश्वर सदैव सुनता है, देखता है और व्याप्त है ।
९. जब जीवात्मा अपने अहं को शांत कर लेता है तो उसके भीतर ईश्वरीय इच्छा प्रत्यक्ष होती रहती है ।
१०. ईश्वर अपने भक्त को गले लगाने के लिए हमेशा तत्पर रहता है और उसके पापों को क्षमा कर देता है ।
११. ईश्वर अपने भक्त की रक्षा करता है ताकि पाप और पीड़ा उसे छू भी न सकें ।
१२. ईश्वर अपने प्रेमियों को, यहां, अभी कालजयी बनाता है ।
१३. ईश्वर अपने भक्तों को सदा-सर्वदा के लिए अपनी उपस्थिति का आनन्द प्रदान करता है ।

१४. ईश्वर स्वेच्छा से और अपने ढंग से सम्पूर्ण सत्य और न्याय की व्यवस्था करता है।
१५. ईश्वर घोषित करता है कि उसे स्वतः आरोपित वाह्यारोपित अनुशासन, आत्म-संयम, तपस्या, हठ और निग्रह से प्राप्त नहीं किया जा सकता।
१६. ईश्वर के प्रति समर्पण का द्वार, सभी के लिए, विना किसी शर्त के, खुला है।
१७. पति-पत्नि के संबंध और दृष्टि में व्याप्त महिमा और सौंदर्य, मधुरता और अभेदता को ईश्वर ने अपने भक्तों के माध्यम से उसी रूप में उद्‌घाटित किया है जिस रूप में ईश्वर और भक्त, गुरु और शिष्य का सम्वन्ध है। प्रेम और प्रेमपूर्ण समर्पण सभी कर्मों और धर्मों का सम्पूर्ण पर्याय है।
१८. ईश्वर का निवास सत्य में और सन्त के हृदय में, दोनों स्थानों पर है।
१९. ईश्वर भक्त के माध्यम से स्पष्ट घोषित करता है कि यदि उसके दर्शन इस जगत् में नहीं किये जा सकते तो कहीं अन्यत्र भी उसके दर्शन नहीं हो सकते।
२०. सवसे अहम् सवाल यह है कि क्या ईश्वर ने जीवात्मा के भाग्य का एक रेखा-चित्र नहीं वनाया हुआ जिसका संचालन और निरीक्षण, जीवात्मा के अहं को ठेस पहुँचाए विना, होता है क्योंकि अहं भी ईश्वर का ही एक वरदान है। उसकी इच्छा और आदेश का यह रेखा-चित्र जीवात्मा के साथ हमेशा संलग्न रहता है उसकी सुरक्षा के लिए। इससे उसकी उपस्थिति का भी वोध होता है।

(५)

नितांत भ्रष्ट, पतित और विशृंखल समाज में सवसे वड़ी आवश्यकता ऐसे व्यक्तियों की है जो ईश्वर, प्रकृति, मनुष्य और समसामयिक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, और धार्मिक संस्थाओं के सम्वन्ध में सच्चाई को जोर देकर व्यक्त कर सकें। जो विना किसी द्वेष और हिंसा के, स्वर्ग के देवताओं और पृथ्वी के देवताओं की, निर्भीकतापूर्वक पोल खोल सकें, जो विश्वात्मा अथवा इतिहास-नियामक परमात्मा से, पीड़ित मनुष्यों के प्रति समवेदना जगाने और अत्याचारियों का नाश करने की अपील कर सकें, जो हर क्षेत्र में व्याप्त पाखंड, रुढ़ शास्त्र-विधि, क्रूरता, असमानता, दुष्टता, ऐश और शोषण का खंडन कर सकें, जो पापजनित पूंजीवाद का सीधे-सीधे विरोध कर सकें, जो दूसरे की पत्नी, दौलत, वड़ाई और भौतिक सेवा की लालसा को त्याग देने पर ज़ोर दे सकें और जो दूसरों के अधिकारों की स्वेच्छा से मान्यता देने पर वल दें। गुरु नानक ने यह सव स्वयं कहा और आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने सत्य और अहिंसा के लिए, धार्मिक कट्टरता और आध्यात्मिक दासता के विरुद्ध लड़ाई के लिए लोगों को दीक्षित किया। संक्षेप में, अपने मानववादी आन्दोलन द्वारा वे विशिष्ट व्यक्तियों

का चुनाव करना चाहते थे, शेरों और बकरियों को, मनुष्य रूप में उपस्थित करना चाहते थे।

गुरु नानक की भक्ति चेतना की शिक्षा की प्रासांगिकता पैगम्बरी चेतना की सापेक्षता में देखी जा सकती है जिसमें मूलतः, विश्वात्मवाद के लिए कोई गुंजाइश नहीं है और जनता पर, जिसका वास्तविक प्रभाव उत्तरोतर कम होता गया। इतिहास के ईश्वर का विस्फोट खलीफाओं, सम्राटों, नवाबों, मुल्लाओं और काज़ियों के रूप में हुआ था। पैगम्बर के हाथ की तलवार कसाई का चाकू बन गयी थी। धर्म के देवता को खुश करने के लिए मनुष्यों और स्त्रियों को निर्दयतापूर्वक बेचा और खरीदा जाता था। ऐसी स्थिति में कोई अन्य संहार-कर्त्ता ही सुधार कार्य कर सकता था। इस बीच द्वितीय पंथ के साधकों ने जीवात्मा को बचाने के लिए प्रयास किए। उन्होंने जीवात्मा को उस ईश्वर की ओर उन्मुख किया जो स्वयं निर्भय और ईर्ष्या-द्वेष-विहीन था और चाहता था कि उसके भक्त भय और शत्रुता को छोड़ दें। सन्त शान्ति के योद्धा बनना चाहते थे, जबकि पैगम्बर युद्ध के योद्धा की वांछा करते थे। भीरू दास अथवा कसाई शासक के बजाय सन्त योद्धा की तरह बलिदान करने का इच्छुक था।

यातना, बलिदान, समर्पण और ज्ञान तलवार की धार के समान हैं। जब गुरु नानक ने यातना को निदान और आनन्द को रोग कहा या जब उन्होंने मृत्यु से पूर्व मरने और अमर हो जाने की बात कही अथवा जब उन्होंने चिल्ला-कर कहा "वासना और लोभ के फेर में मत पड़ो। सिर को हथेली पर रखकर मेरे पास आओ। तभी मेरे प्रेमपूर्ण आलिंगन में तुम्हारा उद्वार होगा और तुम अमर हो जाओगे।" या जब उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि ईश्वर की पत्नियाँ कभी विधवा नहीं होतीं, तो वे, दरअसल, अपने श्रोताओं को बता रहे थे कि वे पैगम्बर और अनेक रूपधारी देवता बनें और काल के सद्प्रयोग से कालातीत बनें। ईश्वर में आस्था का प्रयोग इस उद्देश्य से किया गया कि मनुष्य और ईश्वर के समक्ष मनुष्य मात्र की समानता दिखाई जा सके; प्रेम, दया और क्षमाशीलता के दैवी गुण विकसित किए जा सकें और मृत्युंजय बोध के ज़रिये ईश्वर के साथ अभेदता प्राप्त की जा सके। दूसरे शब्दों में गुरु ने सन्तमत के अर्थ क्षेत्र का विस्तार किया और इसके अन्तर्गत पैगम्बरवाद और अवतारवाद के समा जाने वाले तत्त्वों को ले लिया और नृत्य, यौनाचार और आडंबरपूर्ण उपासना के विकृत तत्त्वों को जो हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायों के साथ जुड़े हुए थे, सन्तमत से बहिष्कृत कर दिया। गुरु नानक ने अपने साक्षात्कृत पदों में हिन्दू जीवधारी रचना और मुस्लिम अणु सिद्धान्त के भयंकर परिणामों को दिखाया है। ईश्वर के प्रति विद्रोही व्यक्ति का न तो मुस्लिम धर्म और समाज में कोई स्थान था और न ही हिन्दू धर्म और समाज में ही—यदि पल भर के लिए

ं कि १५वीं और १६वीं शतियों में हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज
अव्यवस्थित और संयुक्त रूप में चल रहा था।

(६)

ओं के आदर्शवाद और मुसलमानों के एकेश्वरवाद की सभी बुराइयों
रने का निदान गुरु नानक के पास था। नानक के जरिये ईश्वर ने
में परिणत होने वाले आकर्षण सिद्धांत की स्थापना की जो नानक के
और एक स्वामी, स्रष्टा, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता की याद दिलाता
निश्चय ही १५वीं शती के अन्त के लिए एक विशेष साक्षात्कार रहा
कि मानव-प्रगति और स्वाधीनता के लिए यह सिद्धांत पूर्ण, सशक्त
त आवश्यक था। इसके दो पक्ष थे—एक तो कल्पना को कंपा देने
रे आस-पास की अनेकता की अनन्तता का और दूसरा गुरुत्वाकर्षण
कता में एकता का, ब्रह्म की अन्तर रूपान्तरित अभेद सत्ता का।
की वाणी असंदिग्ध, स्पष्ट और विश्वसनीय है :—
क्षण असंख्य ब्रह्माण्ड बनते हैं और नष्ट होते हैं। माया के भी असंख्य
हैं। असंख्य देवी, देवता, पैगम्बर और सन्त हैं। ईश्वर के असंख्य नाम,
और मूल्य हैं। वह हमेशा युवा, अभिनव, निष्कलुष और प्रसन्न है।
 असंख्य दृश्य और अदृश्य खंड और अखंड रूप हैं।
दूसरे के क्षेत्र विस्तार को सीमित करने के प्रकाश में जो अन्तराव-
ान, अन्तः सम्बन्ध और अन्तर-रूपान्तरण की प्रक्रिया चलती है उससे
: इतिहास रहस्यवाद बन जाता है, प्रत्येक प्राणी ईश्वरत्व में भाग
है और पूर्व-योजना में क्रियात्मक रूप में निश्चय लेने वाला एक पल
जाता है। गुरु नानक कहते हैं : 'बूंद समुद्र में है और समुद्र बूंद में;
रात में समाई हुई है और रात दिन में; मनुष्य स्त्री में है और स्त्री
ष्य में, एकाग्रता और ध्यान शून्य में स्थित हैं और शून्य एकाग्रता और
न में; मन दैवी प्रकाश में स्थित है और दैवी प्रकाश मन में; राम
मा में है और आत्मा राम में; एक अनेक में है और अनेक एक में है;
मानस में है और मानस हँस में; जीव ब्रह्माण्ड में स्थित है और
ाण्ड जीव में; गुरु ईश्वर में समाहित है और ईश्वर गुरु में; ईश्वर
में स्थित है और नाम ईश्वर में।"
े हम ब्रह्म कहते हैं, वह सभी जीवात्माओं के रूप के समान है और वह
प भी है। वह निराकार है। सत्य के समान वह सत्य रूप है। वह
-रूप, प्रकाश-रूप, आनन्दरूप और सृष्टि-रूप है। वह काल रूप भी
और अकाल रूप भी। वह गुरु रूप है।

ईश्वर ब्रह्म है, इस सत्य और तथ्य की पुष्टि इस कथन से भी हो जाती है कि वह प्रकृति में स्वयं को अभिव्यक्त करता है ताकि वह इस दृश्य रूप नाटक में रस ले सके। 'शब्द' के अर्थ में भी वह शब्द रूप है।

जब अन्य कुछ भी नहीं था, तब भी वह है, जब सब कुछ है तब भी वह उसी रूप में है जिस रूप में था और जब कुछ भी नहीं रहेगा तब भी वह जिस रूप में था और जिस रूप में है उसी रूप में रहेगा। उसकी निरन्तर सृजनशीलता सहज, स्वाभाविक और अन्तः स्फूर्त क्रिया है। इन वाणियों से यह अर्थ निकलता है कि भले ही ईश्वर अभिव्यक्त हो या नहीं, पर वह इतिहास, पुराण, धर्म, दर्शन से भीतरी तौर पर सम्बद्ध है और इस अन्तः सम्बद्धता, जो कि लीलाम यी और नाटकीय है, का उसके लिए एक विधेयात्मक अर्थ है—आत्मानन्द, सदैव पूर्ण, भरा-पूरा और अखंड होने का अर्थ। ब्रह्म में विद्यमान अनेकता अविभक्त और अखंडित एकता ही है। पैगम्बर की अपेक्षा सन्त उसके अधिक निकट होता है। इसका कारण यह है कि साधारण मनुष्य उसे अधिक प्रिय है। उस मनुष्य की अपेक्षा जो सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक है, जो, यद्यपि, उसके आदेशानुसार अलगाव की भूमिका अदा करता है जिसका दर्जा अभेदता से निम्न स्तर का ही है। एक रास्ता वह है जो ईश्वरीय आदेश की परिधि में रहते हुए भी, ईश्वर से परे ले जाता है; दूसरा रास्ता एक अन्वेषण है ईश्वर तक पहुँचने का—घर की ओर वापसी का। पर क्या इसके साथ समूचा अन्तरिक्ष संचालन जुड़ा हुआ नहीं है और क्या यह एक ऐसा उदाहरण नहीं है कि एक पूर्व दिशा की ओर तो दूसरा पश्चिम की ओर उन्मुख प्रतीत होता है और लगता है कि ये मार्ग परस्पर मिलेंगे नहीं ? पर वास्तविकता यह है कि वे प्रत्येक पल एक दूसरे के समीप आते-जाते हैं मानो वे एक वृत्ताकार में घूम रहे हों। क्या यह एक ऐतिहासिक तथ्य नहीं है कि इस्लाम धर्म से सूफीमत का जन्म हुआ और गुरु नानक के लगभग सौ साल बाद गुरु गोबिन्द सिंह का प्रादुर्भाव हुआ ? गीता के अनुसार श्री कृष्ण, पैगम्बर और सन्त की भूमिकाओं को, एक साथ, निभाने पर बल देते हैं और स्वयं को धर्म के संरक्षक और मोक्ष प्रदाता कहते हैं। तथ्य यह है कि दो मार्ग हैं और दोनों का स्वामी सर्वशक्तिमान ईश्वर है। ईश्वर और धर्म, मार-काट और बचाव, कर्म और विचार के विरोधाभासपूर्ण नाटक के लिए अनिवार्यतः अपेक्षित इन दोनों मार्गों का संचालन ईश्वर करता है। कौन कह सकता है कि ईश्वरीय व्याप्ति केवल निर्देश-रूप है, साझेदारी के रूप में नहीं ?

: १४ :

भारतीय इतिहास में गुरु नानक की भूमिका

डा० गुरबख्शसिंह

सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रगति के क्षेत्र में सन् १४६९-१५३८ तक का समय महत् प्रेरणा का नहीं, बड़ी-बड़ी क्रियात्मक और विधेयात्मक उपलब्धियों का समय था। उस युग के गौरव का श्रेय कूटनीतिज्ञ या राजनीतिज्ञ को नहीं है बल्कि एक सन्त को है जिसने अपनी अन्तर्जात महानता, प्रखर बुद्धि और व्यावहारिक समझ द्वारा एक धार्मिक-पंथ की स्थापना की। इस पंथ ने उत्तर भारत के इतिहास में एक प्रभावशाली और रचनात्मक भूमिका अदा की। यह सन्त गुरु नानक थे। उनके सशक्त व्यक्तित्व का प्रभाव इतना महान् था और उनके सिद्धांतों की सार्वजनीन स्वीकृति से उत्पन्न प्रतिक्रिया इतनी व्यापक थी कि पंजाब का इतिहास वही बना जो गुरु के अनुयायियों ने सुनिश्चित किया—इससे अलग उसकी कोई पहचान न रही। पंजाब का भाग्य, यहाँ तक कि संपूर्ण उत्तर भारत का भाग्य, इस नये धर्म-पंथ की वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में विलय हो गया।

गुरु नानक के प्रादुर्भाव से एक शानदार नए युग का प्रवर्त्तन हुआ। गुरु नानक ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया—सामान्य लोगों में संकल्प भावना जगा कर और उन्हें इस बात के लिए प्रेरित कर कि वे तत्कालीन बल प्रयोग की राजनीति और पाखंडपूर्ण धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध निर्भीक और स्पष्ट शब्दों में आवाज उठाएँ। गुरु नानक के इस महत् कार्य के प्रति युग-मानस सदैव ऋणी और कृतज्ञ रहेगा। पंजाब के हिन्दुओं की जैसी दशा उन्होंने देखी थी, उससे कहीं बेहतर दशा में वे उन्हें ले आए।[1] गुरु नानक ने उन्हें एक भरपूर और ज़ोरदार झटका दिया। इससे वे उस जड़ता की स्थिति से जाग पड़े जिसमें वे शताब्दियों के अत्याचार और शोषण के परिणामस्वरूप पड़े हुए थे। तुर्की अल्पसंख्यक चूँकि अपनी अबाध प्रभुसत्ता स्थापित करने के इच्छुक थे, अतः उन्होंने लोगों को अवहेलित और अपमानित किया। इसका भयंकर दुष्परिणाम यह हुआ कि लोग स्वाधीनता की भावना खो बैठे। उनकी स्वाधीनता की भावना पूरी तरह कुचल दी गयी। लगता था, अपूरणीय क्षति उठा कर भी, वर्ण-व्यवस्था और पुरोहित-

---

२. जी० सी० नारंग, 'ट्रांस्फार्मेशन ऑफ सिखिज़्म' (१९५६), पृ० २७।

पुजारियों से पीड़ित समाज, अपनी आत्मा बेच चुका हो। इस प्रकार की निराशा-जनक स्थिति में, लोगों ने जब गुरु नानक के उदात्त और निर्भीक सन्देश को सुना तो उन्हें विश्वास हो गया कि एक ऐसे मसीहा का अवतार हुआ है जिस में अन्याय और अत्याचार की जड़ों पर आघात करने का साहस है। लोगों को लगा कि उनके सन्देश में समय की चुनौतियों के प्रति एक वस्तुपरक और सर्जनात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त है।[1] उन्हें तुरन्त इस बात का एहसास हो गया कि गुरु नानक का सन्देश ह्रासोन्मुख हिन्दू सभ्यता की स्नायुओं में नए रक्त-संचार के समान है। समस्त हिन्दू समाज को पुनःर्जीवित करने और बंधनों को तोड़ने के लिए गुरु नानक ने नए प्रयत्न किये। इसके लिए अपेक्षित था कि वे गति-शील भूमिका अदा करते ताकि वे उन बुराइयों का और उन लोगों का भी भंडा-फोड़ कर सकते जो खुले आम अन्याय, चालाकी और दूषित आचरण के कारण समाज में अपनी जड़ें और साख जमाए हुए थे। पुरोहितों और राज-नीतिज्ञों का बेतुका और अधम पतन उतना ही आश्चर्यचकित कर देने वाला था जितना कि गुरु नानक के शिष्यों का सीधा और तीखा आरोहण, जो गुरु नानक की शिक्षाओं को कार्यरूप में परिणत करने के लिए अत्यन्त उत्सुक और सक्रिय थे।

इतिहास में गुरु नानक के सही स्थान को उचित परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए पहले यह जरूरी है कि उस गलत प्रभाव को दूर किया जाए जो पाश्चात्य विद्वानों की नितान्त गलत धारणा के कारण बना है। इन विद्वानों ने अप्रामा-णिक भारतीय विद्वानों से संकेत लेकर यह स्थापित करने का प्रयत्न किया कि मूल रूप में गुरु नानक द्वारा प्रवर्तित सिख-पंथ उस सिख-पंथ से बहुत भिन्न था जिसका विकास दसवें गुरु ने आगे चलकर किया और जिसपर उनके अनुया-यियों ने अमल किया।[2] दरअसल, १७वीं और १८वीं शतियों में सिखों ने जो अद्वितीय और वीरोचित बलिदान किये, उनसे ये विद्वान इतने चकित और प्रभा-वित हुए कि वे स्थिति का ठीक जायज़ा भी न ले सके। सिखों के लिए यह ऊँचे दर्जे के बलिदान और महान संकट का समय था, लेकिन उनके आलोचक यह न समझ सके कि इस आन्दोलन की ऊपर से असमान दिखने वाली धाराओं में कार्य और लक्ष्य की गहरी समानता है। अतीत से एकदम विच्छेद की पूर्ण अनु-पस्थिति चूँकि सिख-धर्म की एक प्रमुख विशेषता है, अतः इसे एक गतिमान प्रक्रिया मानकर इसकी प्रगति पर विचार किया जाना चाहिए। इस आन्दोलन की विभिन्न विशेषताओं की अलग-अलग खानों में रख कर व्याख्या करने से

१. आर्नल्ड टॉयनबी, ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री, VIII, पृ० ४७५-७६।
२. वही, पृ० ४१४-१५।

कर इसे एक शानदार श्रद्धांजलि दी है। उनके मतानुसार १५वीं शताब्दी में मौजूद परिस्थितियों ने ऐसी संभावनाओं के द्वार खोल दिए कि सिख-धर्म स्वयं को अस्तप्रायः हिन्दू सभ्यता के विश्वजनीन चर्च के रूप में विकसित कर सके।[1] उनका विचार था कि केवल सिख-धर्म ही इस्लाम की चुनौती का प्रभावशाली और सर्जनात्मक उत्तर दे सकता था।[2] दरअसल गुरु नानक की शिक्षाएं हिन्दू संसार पर तुर्की आक्रमण का धार्मिक धरातल पर यथार्थ उत्तर थीं। उत्तरवर्ती सिखों के सामने जो समस्याएं थीं उनके प्रति उनकी दृष्टि यथार्थकारी और सुस्थिर नहीं थी, पर उन्हें इसका शानदार श्रेय देने के बजाय, सर जदुनाथ सरकार जैसे परवर्ती इतिहासकारों ने सिख धर्म की लक्ष्यगत बुनियादी एकता की उपेक्षा की और इस रूपान्तरण को उन्होंने अशुभ कहा।[3] इस प्रकार उनके निष्कर्ष विरोधात्मक और त्रुटिपूर्ण थे। आलोचनात्मक व्याख्या के परीक्षण में वे खरे न उतर सके। उनके अनुसार जब सिखों ने मुगल साम्राज्य की अन्याय और अत्याचारपूर्ण नीति के फलस्वरूप फौजी जीवन अपनाना स्वीकार कर लिया तो वे अपना जन्मसिद्ध आध्यात्मिक अधिकार खो बैठा।[4] उनकी मान्यता है कि गुरु गोविन्दसिंह का शस्त्र ग्रहण करना तानाशाही सैनिकवाद की ओर एक छलांग थी।[5] उनके मतानुसार गुरु गोबिन्दसिंह की सेना के विनष्ट हो जाने का यही कारण था। इस बात पर वे खेद व्यक्त करते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम धर्मों का समन्वय करने वाला सिख-धर्म, पतनशील हिन्दू सभ्यता के खंडहरों पर स्थापित न हो सका।[6] उन्होंने अपने आध्यात्मिक खजाने को एक भौतिक साम्राज्य स्थापित करने के विकृत राजनीतिक प्रयोग में गंवा दिया।[7] उन्होंने यह आशंका भी व्यक्त की है कि सिख-धर्म में समन्वयात्मक हिन्दू-धर्म का अंग बनने की प्रवृत्ति तेजी से उभर रही थी,[8] जिससे गुरु नानक की सर्जनात्मक प्रतिभा ने सिख धर्म को अलग प्रतिष्ठित किया था। पर टॉयनबी की आशंकाएं झूठी सिद्ध हुई हैं और उनके निष्कर्ष अप्रामाणिक और गलत साबित हुए हैं। टॉयनबी मानते हैं कि तलवार से हिंसा समाप्त हो जाती है। पर आश्चर्य है कि वे सिखों द्वारा तलवार के प्रयोग-औचित्य से इन्कार करते हैं। शान्त और

१. वही, VII, पृ० २५, ४२७, ४६३, ५३२।
२. वही, VIII, पृ० ४७५-७६।
३. वही, V, पृ० ५३७।
४. वही, V, ६६६, VII, ४६६।
५. वही, V, ६६५-६६६।
६. वही, V, पृ० ६६७।
७. वही, VII, पृ० ५३२।
८. वही, V, पृ० ६६७।

निष्क्रिय दृष्टिकोण रखने से सिखों के विरुद्ध उठा मुगलों की हिंसा का तूफान थम सकता था, ऐसा सोचने के लिए उनके पास क्या आधार है ? उनका यह डर कि सिख-धर्म का यह कथित 'विपथगमन'[1] सिख-धर्म के समावेशात्मक हिन्दू-धर्म में विलीन होने की ही एक प्रवृत्ति है, सही सिद्ध नहीं हुआ। सिखों का अस्तित्व 'इकाई' के रूप में कायम है—भारतीय समाज की अभिन्न और महत्वपूर्ण इकाई के रूप में। लगता है, टॉयनबी को इस महत्वपूर्ण तथ्य का ज्ञान नहीं था कि कबीर के २० लाख अनुयायी शान्तिपूर्ण मार्गों के प्रति प्रतिबद्ध होने के बावजूद अपने पुराने धर्मों—हिंदू धर्म और इस्लाम धर्म—में पुनः लौट गए थे।

सिख धर्म की दोनों धाराओं की प्रगति का सही मूल्यांकन करने के लिए यह जरूरी है कि हम विकास और उसके विधान को गुरु नानक और उनके परवर्तियों की, जो ज्योति को आगे ले गए, महत्वपूर्ण शिक्षाओं का पुनर्मूल्यांकन करें। सौभाग्य से हमारे पास स्रोत-ग्रंथ हैं जिनका अध्ययन करने से पता चलता है कि सिख धर्म के विकास में निरन्तरता है। इससे ऐसे आलोचकों के मतों की पोल खुलती है जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। सिख-धर्म के रूपान्तरण का गहन अध्ययन करने वाले डा० जी० सी० नारंग इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यद्यपि गुरु गोविन्दसिंह के नेतृत्व में सिखों की राजनैतिक आकांक्षाएं उभर कर सामने आई, पर परिवर्तन की वास्तविक प्रक्रिया बहुत पहले शुरू हो चुकी थी।[2] टॉयनबी ने स्वयं एक स्थल पर इस बात का समर्थन किया है कि गुरु नानक के तुरन्त बाद आने वाले गुरु अंगदेव की सैनिक अभ्यासों में अभिरुचि थी। सच तो यह है कि गुरु नानक ने पीड़ित मानवता के मूल रोग का सफलतापूर्वक पता लगा लेने के बाद ऐसे क्रान्तिकारी निदान सुझाए जिनसे देर या सवेर में ऐसे संकट पैदा होने अवश्यंभावी थे जिनके परिणामस्वरूप सद्-असद् शक्तियों में सीधा संघर्ष होता। सच यह है कि जो बीज गुरु नानक ने बोया वही गुरु गोविन्दसिंह के समय में पल्लवित हुआ। गुरु गोविन्दसिंह का समय सिख धर्म की समृद्धि का समय था। यह कहना नितान्त उपयुक्त होगा कि गुरु गोविन्दसिंह ने जिस तलवार को उत्साह और सफलता से चलाया 'उसके लिए इस्पात गुरु नानक ने दिया था।'[3] गुरु नानक के सिद्धांतों और साधनाओं को सक्रिय और सशक्त ढंग से लागू करने से देश में एक संकल्प-भावना का संचार हुआ था—आजादी खो जाने के प्रति घृणा व्यक्त करने के लिए ही नहीं बल्कि बुराई की जड़ों पर आघात करने के लिए भी जिससे कि अन्याय के सभी

---

१. टॉयनबी 'ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री' V, पृ० ६६७।
२. जी० सी० नारंग, 'ट्रांसफार्मेशन ऑफ सिखिज्म', पृ० १७।
३. वही।

चिन्हों को दूर किया जा सकता। यह सिखों का आध्यात्मिक अधिकार था जिसे उनके धर्म-संस्थापक ने उन्हें सिखाया था। इसे छोड़ने की बात तो दूर रही, वे दृढ़ संकल्प और अडिग आस्था से इसके साथ जुड़े रहे, जिससे इन्हें घोर यातनाएं भोगनी पड़ीं। इन यातनाओं को इन्होंने खुशी-खुशी और बहादुरी से सहन किया। इन्होंने अपने आध्यात्मिक अधिकार की रक्षा के लिए जो रक्त बहाया उसके परिणामस्वरूप उनकी धर्म- संस्था की नीवें सुदृढ़ बनीं और उस पर वे एक राष्ट्र का निर्माण कर सके जो अब भी सक्रिय और शक्तिशाली है।

इस नए धर्म-संघ की प्रगति के दोनों पक्षों में अभिरुचियों और अभिप्रायों की घनिष्ठ समानता के एक बार स्थापित हो जाने के पश्चात् गुरु नानक की इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका को समझा जा सकता है।

१५वीं और १६वीं शतियाँ हम लोगों के जीवन इतिहास में गंभीर चुनौतियों से परिपूर्ण थीं जिनके दूरगामी और क्रान्तिकारी परिणाम हुए। गुरु नानक ने अपने ७० साल की आयु-अवधि में (१४६९-१५३९) राजनैतिक क्षेत्र में तीन राजवंशों का उदय और दो का पतन देखा था। बहलोल लोधी और सिकन्दर लोधी ने प्रशासन को पुनर्गठित करने और विस्तृत अधिकृत क्षेत्र पर अपने अधिकार को सुदृढ़ करने के लिए जो सुनिश्चित और विवेकसम्मत कदम उठाए, उनके परिणाम तो अच्छे निकले, पर दुर्भाग्य से सिकन्दर की धार्मिक कट्टरता और इब्राहीम लोधी की प्रशासनिक अयोग्यता के कारण, ये अच्छे परिणाम भी पूर्णतः नष्ट हो गए। इनके शासन-काल में राज्य में सर्वत्र भ्रष्टाचार, अवनति और देश-द्रोह का बोलबाला रहा। ऐसा लगता था सारे देश की राज्य संस्था में गड़बड़ और अव्यवस्था फैल गयी हो और सम्मान, न्याय और पद खरीदे और बेचे जाते हों। लतीफ के मतानुसार "देश के शासक विलासिता और कामुकता की अथाह खाई में पड़े हुए थे।" विदेशी लोधी राजाओं के अधीन काम करने वाले यहाँ के देशी अधिकारी बेबस लोगों पर भयानक अन्याय करने पर कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते थे क्योंकि इन्हीं उपायों से वे अपने भ्रष्ट मालिकों को खुश कर सकते थे और इस प्रकार अपने लिए धन बटोर सकते थे। भाग्यवादी होने के कारण पीड़ित लोगों ने स्वयं को भाग्य के सहारे छोड़ दिया था। हालत बहुत खराब हो गयी थी क्योंकि अभागे लोग अपने अधिकारों और स्वाधीनता की चेतना भी खो बैठे थे। सच तो यह है कि उनकी आत्मा को कुचल दिया गया था। ऐसी परिस्थितियों में यह कोई सरल काम नहीं था कि लोगों को उनके यातना के बोध के प्रति सचेत किया जाता और व्याप्त भ्रष्टाचार, अन्याय और अत्याचार को दूर करने के लिए, उन्हें विधेयात्मक कार्य की ओर प्रेरित किया जाता। अज्ञान में डूबी हुई अनपढ़ जनता, राजनैतिक दृष्टि से, उस पतन की ओर से आंखें मूंदे हुए थी, जिसमें स्वाधीनता खो जाने के बाद यह पड़ी हुई

थी । जनता में जो लोग शास्त्री और स्वामी थे वे शासक [illegible] होने के नाते प्राप्त शक्ति के बल पर असहाय लोगों पर जुल्म करने को [illegible] रहते थे ताकि वे अपने स्वामियों की नजर में ऊपर उठ सकें और [illegible] सकें । चूंकि सारा प्रशासनिक और राजनैतिक ढांचा [illegible] अतः शासक गुलामों के प्रति सम्मान पैदा करने में असमर्थ थे [illegible] अवस्था के प्रति उनके मन में कठोर उपेक्षा भाव था । यह [illegible] थी जिसका सामना गुरु नानक ने किया था । वे निर्भीक होकर [illegible] और बुद्धि से अपने धर्म की दिशा में अग्रसर हुए थे । [illegible] सम्पर्क में आने की कोशिश की, एक स्थान से दूसरे स्थान तक भ्रमण किया और विदेश भी गए । उन्होंने महान धैर्य से लोगों में नयी चेतना और नयी [illegible] फूंकी । गुरु नानक ने न तो तलवार उठाई और न ही राजनैतिक [illegible] को दूर करने के लिए कोई संविधानिक संघर्ष किया क्योंकि [illegible] तब था ही नहीं और राष्ट्र की परिकल्पना या राष्ट्रीय भावना तब बिल्कुल नहीं थी । उन्होंने दुःसाहसी राजाओं और अन्य अधिकारियों की [illegible] और निर्भीकता-पूर्वक उन्हें जल्लाद और कुत्ते कहकर सम्बोधित किया ।[1] इस प्रकार उन्होंने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त किया । इस अर्थ में वस्तुतः ही उन्होंने नागरिकों की हैसियत से, राष्ट्रीय जागृति और नैतिक सुधार की भावना का संचार किया । 'संगत'[2] की स्थापना करके गुरु नानक ने एक मंच प्रदान किया जहां वे इकट्ठे हो सकते थे और अपने लाभ, दुःखों और शिकायतों पर विचार विमर्श कर सकते थे । गुरुमत के उत्थान और उसकी स्थापना में 'संगत' एक केन्द्रीय तत्त्व सिद्ध हुई । इस प्रकार 'गुरमत' [illegible] की एक शक्तिशाली और प्रजातांत्रिक संस्था के रूप में विकसित हुई । आज की [illegible] में गुरु नानक भले ही क्रांतिकारी न रहे हों, पर इसमें कोई संदेह कि उन्होंने एक क्रान्ति का बीजारोपण किया था जो उत्तरोत्तर अंकुरित हुआ और एक जोर-दार और शक्तिशाली नैतिक, आध्यात्मिक और राजनैतिक ताकत के रूप में फैल गया ।[3] इस प्रकार जब अन्याय और अन्यायियों का पर्दाफाश करने वाली संकल्प भावना पैदा हो गयी तो इसमें उन आध्यात्मिक नेताओं को भी अपने कायरपूर्ण त्याग[4] का एहसास हो गया जो व्यावहारिक जीवन की कठोर यथार्थ विभीषिकाओं का सीधा सामना करने में असमर्थ रहे थे । इस प्रकार राज-

---

१. मॉझ की वार ।

२. तेजसिंह, सिक्खिज्म (१९५१) २१० ।

३. जी० सी० नारंग, ट्रांसफार्मेशन ऑफ सिक्खिज्म, पृ० १७ ।

४. ए० बारथ, दी रिलिजन ऑफ इंडिया, अनुवादक रीव० जे० ।

नैतिक मुक्ति ही दिशा में एक सदृढ़ और वलशाली कदम उठाया गया था। त्याग को मुक्ति का सुनिश्चित साधन स्वीकार करने के स्थान पर, लोगों ने इसे वक्र दृष्टि से देखना शुरू कर दिया और जिन्दगी की कठोर और कटु लड़ाइयों को ईमानदारी और स्वेच्छा से लड़ने की तैयारी कर ली। गुरु नानक का उद्देश्य था लोगों में नयी दृष्टि और मानसिक प्रक्रियाओं का पूर्ण रूप से क्रान्तिकारी पद्धति पर विकास करना। परवर्ती इतिहास इसकी पुष्टि करता है कि उनका उद्देश्य कितने उदात्त और शानदार रूप में सिद्ध हुआ। उन दूरगामी और गौरवशाली उपलब्धियों के अतिरिक्त जो उनके अनुयायियों को राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में प्राप्त हुई, गुरु नानक का तात्कालिक प्रभाव भी वड़ा गहन और गंभीर था। उन्होंने धार्मिक कट्टरपंथियों द्वारा बुरी तरह से पीड़ित राष्ट्र में धार्मिक सहिष्णुता के एक नये युग का प्रवर्त्तन किया। इसमें सन्देह नहीं कि मुगलों ने ह्रासशील लोधी शासन की जड़ों पर आघात किया था, पर यदि मुगल न भी आए होते तो भी लोधी शासन का यही हाल होता। नयी शक्तियों के परिणामस्वरूप पैदा हुए वाह्य दवाव से उन्हें अपने अपराधों और अयोग्यताओं का एहसास हुआ। यह एहसास गुरु नानक के सन्देश से चरम विन्दु तक पहुंच गया और इसके वोझ तले वे नष्ट हो गए। निस्संदेह, मुगलों ने भी इस प्रवृत्ति को उकसाया। पर वे भी वंशानुगत शक्ति, दृढ़ता और क्रूरता खो वैठे और उन्होंने स्वयं को पेचीदा स्थिति में पाया। समाज इस प्रकार से रूपान्तरित हो गया था कि उन अफगानों ने भी यह सोचा कि धार्मिक उत्पीड़न की कुप्रथा से चिपटे रहना राजनैतिक दृष्टि से मूर्खतापूर्ण और सांस्कृतिक दृष्टि से असंभव होगा। गुलामों के प्रति अत्याचार और शोषण की वात तो दूर रही, अफगान आपसी हित की भावना से प्रेरित होकर उनके अधिकारों के रक्षक बन गए। गुरु नानक का सन्देश था सहिष्णुता का, व्यर्थ की प्रथाओं और निरर्थक रीति-रिवाजों, आडम्बरों को समाप्त करने का और इनके स्थान पर नाम-अराधन का सहारा लेने का। इस सन्देश का लोगों के हृदयों पर गहरा प्रभाव पड़ा था। शेरशाह की मृत्यु से जब अफगानों का पतन हो गया और परिणामतः मुगल राज्य पुनः स्थापित हो गया तो सम्राट अकवर ने इसी में बुद्धिमत्ता समझी कि कट्टर धार्मिकों की आक्रामकता, अतियों और अधिकारी वर्ग की क्रूरता को दूर किया जाय। विश्वभ्रातृ-भाव के सिद्धान्त के प्रसार और गुरु नानक तथा परवर्ती गुरुओं की सहिष्णुता की शिक्षा से अकवर उत्साहित हुए।[1] अकबर पर प्रायः अपने दंभी, पथभ्रष्ट और अपेक्षया अधिक कट्टर संवंधियों और परामर्शदाताओं का अत्यधिक दवाव रहता था। पर, उन्होंने इस दवाव

१. ए० डेविड, जी० ब्रेडले, ए गाइड टु दी वर्ल्ड रिलिजन (१९६३), पृ० १२५।

का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। यदि वे [illegible] देश की [illegible]
शील शक्तियों से सीधा-सीधा संघर्ष [illegible]
धिकारी—विशेष रूप से जहांगीर और औरंगजेब, [illegible]
और कार्यप्रणाली की बुद्धिमत्ता को [illegible]
क्रम को उलट देने की कोशिश की जिससे [illegible]
ने लोगों की अन्तरात्मा को जगा दिया था और [illegible]
को मिटा देने की संकल्प-चेतना पैदा कर दी थी। [illegible]
शक्तियों को बढ़ावा देने वाली किसी भी [illegible]
इससे, निस्संदेह, कटु और दीर्घकालिक संघर्ष की शुरुआत हुई, पर [illegible]
अन्याय पर न्याय की जीत हुई और भाई-चारे के [illegible]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गुरु नानक ने उन कुरीतियों को [illegible]
समझा था जिनसे हिन्दू और मुसलमान समाज पीड़ित थे। [illegible]
पुरानी रूढ़ियों के भार तले दबे हुए थे और [illegible]
सामर्थ्य खो बैठे थे। दूसरी ओर मुट्ठीभर तुर्की [illegible]
क्रान्त करने पर तुले हुए थे। शासन-तंत्र, [illegible]
तीनों वर्गों के विरोधाभासपूर्ण और [illegible]
ही पूरी तरह नष्ट नहीं हुई थी बल्कि जान-बूझकर एक [illegible]
किया गया था ताकि वे सभी लाभ उठा सकें। तुर्की [illegible]
था कि विचार, स्वतंत्रता, अन्याय, अत्याचार, और दमन के विरुद्ध [illegible]
क्रान्ति का पूर्व रूप है। अपनी सर्वोच्च सत्ता को बनाए रखने के लिए उन्होंने
सहज-विश्वास के प्रसार में योग देना जरूरी समझा। जिस प्रकार एक सहज
विश्वासी व्यक्ति क्रुद्ध देवता के प्रति श्रद्धा से नत हो जाता है, उसी प्रकार
उसके लिए किसी अन्यायी के अन्याय और दमन के प्रति झुक जाना भी सुविधा-
परक हो सकता है।[1] अतः ब्राह्मण-वर्ग जिस अन्ध-श्रद्धा की भावना को अपने
भक्तों में उपजा रहे थे, वह भावना तुर्की शासकों की दमन-नीति को निर्भयता-
पूर्वक आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रही थी। शासक-वर्ग और पुरोहित-वर्ग
के इस मौन समझौते से शासन के अन्य कर्मचारियों ने भी लाभ उठाया क्योंकि
अंध-श्रद्धा के प्रसार के माध्यम से वे अपनी आर्थिक शोषण की नीति से पीड़ित
लोगों को दिलासा दे सकते थे कि भौतिक सुख तो स्वर्ग की भूमिका बनाते हैं
बशर्ते कि वे ईश्वरीय इच्छा पर स्वयं को छोड़ दें! यह सहज विश्वासी जनता
पर तीन तरफा आक्रमण था और इससे एक दुष्चक्र चल पड़ा था। ज्यों-ज्यों
लोग अधिक सहज विश्वासी होते गए त्यों-त्यों उनमें तुर्की शासकों, ब्राह्मणों

१. बर्ट्रैंड रसेल, अंडरस्टैंडिंग हिस्ट्री, पृ० ७४-८०।

नैतिक मुक्ति की दिशा में एक सदृढ़ और बलशाली कदम उठाया गया था। त्याग को मुक्ति का सुनिश्चित साधन स्वीकार करने के स्थान पर, लोगों ने इसे वक्र दृष्टि से देखना शुरू कर दिया और जिन्दगी की कठोर और कटु लड़ाइयों को ईमानदारी और स्वेच्छा से लड़ने की तैयारी कर ली। गुरु नानक का उद्देश्य था लोगों में नयी दृष्टि और मानसिक प्रक्रियाओं का पूर्ण रूप से क्रान्तिकारी पद्धति पर विकास करना। परवर्ती इतिहास इसकी पुष्टि करता है कि उनका उद्देश्य कितने उदात्त और शानदार रूप में सिद्ध हुआ। उन दूरगामी और गौरवशाली उपलब्धियों के अतिरिक्त जो उनके अनुयायियों को राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में प्राप्त हुई, गुरु नानक का तात्कालिक प्रभाव भी बड़ा गहन और गंभीर था। उन्होंने धार्मिक कट्टरपंथियों द्वारा बुरी तरह से पीड़ित राष्ट्र में धार्मिक सहिष्णुता के एक नये युग का प्रवर्त्तन किया। इसमें सन्देह नहीं कि मुगलों ने ह्रासशील लोधी शासन की जड़ों पर आघात किया था, पर यदि मुगल न भी आए होते तो भी लोधी शासन का यही हाल होता। नयी शक्तियों के परिणामस्वरूप पैदा हुए बाह्य दबाव से उन्हें अपने अपराधों और अयोग्यताओं का एहसास हुआ। यह एहसास गुरु नानक के सन्देश से चरम बिन्दु तक पहुंच गया और इसके बोझ तले वे नष्ट हो गए। निस्संदेह, मुगलों ने भी इस प्रवृत्ति को उकसाया। पर वे भी वंशानुगत शक्ति, दृढ़ता और क्रूरता खो बैठे और उन्होंने स्वयं को पेचीदा स्थिति में पाया। समाज इस प्रकार से रूपान्तरित हो गया था कि उन अफगानों ने भी यह सोचा कि धार्मिक उत्पीड़न की कुप्रथा से चिपटे रहना राजनैतिक दृष्टि से मूर्खतापूर्ण और सांस्कृतिक दृष्टि से असंभव होगा। गुलामों के प्रति अत्याचार और शोषण की बात तो दूर रही, अफगान आपसी हित की भावना से प्रेरित होकर उनके अधिकारों के रक्षक बन गए। गुरु नानक का सन्देश था सहिष्णुता का, व्यर्थ की प्रथाओं और निरर्थक रीति-रिवाजों, आडम्बरों को समाप्त करने का और इनके स्थान पर नाम-अराधन का सहारा लेने का। इस सन्देश का लोगों के हृदयों पर गहरा प्रभाव पड़ा था। शेरशाह की मृत्यु से जब अफगानों का पतन हो गया और परिणामतः मुगल राज्य पुनः स्थापित हो गया तो सम्राट अकबर ने इसी में बुद्धिमत्ता समझी कि कट्टर धार्मिकों की आक्रामकता, अतियों और अधिकारी वर्ग की क्रूरता को दूर किया जाय। विश्वभ्रातृ-भाव के सिद्धान्त के प्रसार और गुरु नानक तथा परवर्ती गुरुओं की सहिष्णुता की शिक्षा से अकबर उत्साहित हुए।[1] अकबर पर प्रायः अपने दंभी, पथभ्रष्ट और अपेक्षया अधिक कट्टर संबंधियों और परामर्शदाताओं का अत्यधिक दबाव रहता था। पर, उन्होंने इस दबाव

---

१. ए० डेविड, जी० ब्रेडले, ए गाइड टु दी वर्ल्ड रिलिजन (१९६३), पृ० १२५।

का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। यदि वे ऐसा न करते तो देश की प्रगतिशील शक्तियों से सीधा-सीधा संघर्ष अवश्यंभावी हो जाता। अकबर के उत्तराधिकारी—विशेष रूप से जहांगीर और औरंगजेब, उनके द्वारा स्वीकृत नीति और कार्यप्रणाली की बुद्धिमत्ता को पहचान पाने में असमर्थ रहे। उन्होंने इस क्रम को उलट देने की कोशिश की जिसके भयंकर परिणाम हुए। गुरु नानक ने लोगों की अन्तरात्मा को जगा दिया था और उनमें अन्याय और अत्याचार को मिटा देने की संकल्प-चेतना पैदा कर दी थी। ऐसी स्थिति में दुष्ट शक्तियों को बढ़ावा देने वाली किसी भी चेष्टा का तीव्र विरोध होना ही था। इससे, निस्संदेह, कटु और दीर्घकालिक संघर्ष की शुरुआत हुई, पर अन्ततः अन्याय पर न्याय की जीत हुई और भाई-भाई के बीच संघर्ष का अन्त हुआ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गुरु नानक ने उन बुराइयों को सही तौर पर समझा था जिनसे हिन्दू और मुसलमान समाज पीड़ित थे। हिन्दू मृतप्रायः पुरानी रूढ़ियों के भार तले दबे हुए थे और स्वतंत्र रूप से मुक्त चिन्तन की सामर्थ्य खो बैठे थे। दूसरी ओर मुट्ठीभर तुर्की सैनिक मुसलमानों को पदाक्रान्त करने पर तुले हुए थे। शासन-तंत्र, अधिकारी-वर्ग और पुरोहित-वर्ग—इन तीनों वर्गों के विरोधाभासपूर्ण और अजीब समझौते के कारण केवल स्वतंत्रता ही पूरी तरह नष्ट नहीं हुई थी बल्कि जान-बूझकर एक बचकाना श्रद्धालू पैदा किया गया था ताकि वे सभी लाभ उठा सकें। तुर्की सैनिक दल यह जानता था कि विचार, स्वतंत्रता, अन्याय, अत्याचार, और दमन के खिलाफ उठने वाली क्रान्ति का पूर्व रूप है। अपनी सर्वोच्च सत्ता को बनाए रखने के लिए उन्होंने सहज-विश्वास के प्रसार में योग देना जरूरी समझा। जिस प्रकार एक सहज विश्वासी व्यक्ति क्रुद्ध देवता के प्रति श्रद्धा से नत हो जाता है, उसी प्रकार उसके लिए किसी अन्यायी के अन्याय और दमन के प्रति झुक जाना भी सुविधापरक हो सकता है।[1] अतः ब्राह्मण-वर्ग जिस अन्ध-श्रद्धा की भावना को अपने भक्तों में उपजा रहे थे, वह भावना तुर्की शासकों की दमन-नीति को निर्लज्जतापूर्वक आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रही थी। शासक-वर्ग और पुरोहित-वर्ग के इस मौन समझौते से शासन के अन्य कर्मचारियों ने भी लाभ उठाया क्योंकि अंध-श्रद्धा के प्रसार के माध्यम से वे अपनी आर्थिक शोषण की नीति से पीड़ित लोगों को दिलासा दे सकते थे कि भौतिक सुख तो स्वर्ग की भूमिका बनाते हैं बशर्ते कि वे ईश्वरीय इच्छा पर स्वयं को छोड़ दें! यह सहज विश्वासी जनता पर तीन तरफा आक्रमण था और इससे एक दुष्चक्र चल पड़ा था। ज्यों-ज्यों लोग अधिक सहज विश्वासी होते गए त्यों-त्यों उनमें तुर्की शासकों, ब्राह्मणों

---

१. बर्ट्रैंड रसेल, अंडरस्टैंडिंग हिस्ट्री, पृ० ७६-८८।

और मुल्लाओं के लाभ के लिए दास-वृत्ति के समान जी-हजूरी बढ़ती गई। इस प्रकार के घुटना-टिकाऊ समर्पण के कारण दासवृत्ति पैदा हुई जिससे कि शासक-वर्ग में और ज्यादा अत्याचार करने का दुःसाहस बढ़ा। गुरु नानक के लिए इस दुष्चक्र को तोड़ना जरूरी था। उन्होंने लोगों के रोगों को ठीक-ठीक समझा और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि विचार-स्वतंत्रता की मनाही के कारण विवेकशून्य परम्परा के प्रति श्रद्धा-भाव और दमनपूर्ण अत्याचारी सरकार के प्रति घटिया किस्म का मूर्खतापूर्ण समर्पण भाव पैदा हुआ है। शताब्दियों पुराने अतीत से गृहीत इन गौरवपूर्ण परम्पराओं के पूर्ण उन्मूलन के लिए ही गुरु नानक ने दूर-दूर तक यात्राएँ कीं। वे अपने परिवेश को समझना चाहते थे और मनुष्य-मनुष्य के बीच व्याप्त भ्रातृ-भाव की शिक्षा भी देना चाहते थे और बताना चाहते थे कि सभी एक ही परम-पिता परमात्मा की सन्तान हैं। पर, प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि गुरु नानक जिस स्वतंत्रता के आकांक्षी थे वह एक अराजकतावादी की निरपेक्ष या निर्बाध स्वतंत्रता नहीं थी। गुरु नानक का लक्ष्य था ऐसी स्वाधीनता जिसमें अनुशासन हो, स्वाभिमान के साथ-साथ विनम्रता हो। उनके तईं 'स्वाधीनता' का अर्थ था विवेकहीन परम्पराओं के प्रति लगाव से मुक्ति और 'अभिमान' का अर्थ बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान और मूलतः स्वाभिमान से था। इस प्रकार, आध्यात्मिक और भौतिक समस्याओं के समाधान के लिए एक बलशाली और सुविचारित दृष्टि का विकास हुआ। इसका फल भी सामने आया। हिन्दू मानस पौराणिकता के बन्धन से मुक्त हुआ।[1] ईश्वर की अवहेलना करके, उसे खंड-खंड में विभक्त करके, असंख्य बुतों की उपासना द्वारा ईश्वर का जो मज़ाक उड़ाया जाता था, वह बन्द हुआ।[2] आत्मा का स्थान ग्रहण कर लेने वाली देह उत्तरोत्तर महत्त्व-हीन होती चली गई और आत्मसत्ता का महत्त्व बढ़ता गया। जात-पांत से पैदा हुए बंधनों पर कठोराघात हुआ, मनुष्य-मनुष्य के बीच भ्रातृ-भाव के सांझे आदर्श पर आधृत समाज का मार्ग प्रशस्त हुआ, सही आचरण और नैतिक उन्नति पर बल दिया जाने लगा और दूसरी ओर खोखली और निरर्थक प्रथाओं की अपील समाप्त हो गई। यद्यपि पुरोहित-तंत्र पूरी तरह से नष्ट नहीं हुआ, तो भी वह बदनाम अवश्य हुआ और लोगों ने पुरोहितों की गर्वोक्तियों में विश्वास करना छोड़ दिया। इस उदात्त धर्म के उदय से, वे तमाम निषेधात्मक ताकतें जो समाज को भीतर ही भीतर खाए जा रही थीं, समाप्त हो गयीं। मनुष्य-मनुष्य के भ्रातृभाव और परमात्मा के पितृ-भाव जैसे विश्वजनीन

---

१. जी० सी० नारंग, ट्रांसफार्मेशन ऑफ सिखिज्म, पृ० २६।

२. बरजीलियस फर्म, लिविंग स्कूल ऑफ रीलिजन (१९५८), पृ० १९८।

सिद्धांतों के प्रभाव तले, सारे समाज ने एक धर्म निरपेक्ष जीवन-पद्धति को स्वीकारा और भविष्य में अपने कार्यकलापों के लिए, सामान्यतः, असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण को अपनाया ।[1] इस प्रकार एक ऐसा बीज बोया गया जो आगे चल कर बहुत बड़ी ताकत के रूप में पल्लवित हुआ जिससे देश के सामाजिक, आध्यात्मिक और आर्थिक इतिहास का रूप ही बदल गया ।

इस प्रकार, श्री वरजीलियस फर्म के कथनानुसार सिख धर्म, अनिवार्यतः चरित्र-प्रशिक्षण है[2]—ऐसा प्रशिक्षण जिसका निरीक्षण स्वयं गुरु नानक और उनके नौ उत्तराधिकारियों ने किया था । उनके अनुसार सिख धर्म के बुनियादी सिद्धांत थे—मनुष्यता की सेवा, मनुष्य-मनुष्य के बीच समानता, एक ईश्वर की आराधना, गुरु के अनुग्रह पर बल, न्यायसंगत और निःस्वार्थ कार्य के लिए तलवार चलाना और 'संगत' का प्रभावशाली ढंग से उपयोग करना ।[3] उन्होंने टॉयनवी के निराशाजनक विचारों से आश्चर्यान्वित ढंग से रुचिकर और शानदार तुलना करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि सिख धर्म आज भी एक जवर्दस्त शक्तिशाली और जीवंत आस्था है क्योंकि इसमें मानवीय ऊष्मा, उच्चकोटि की नैतिकता, सच्ची आध्यात्मिकता है और व्यावहारिक जीवन में इनका उपयोग होने के कारण इनका मूल्य है ।[4] वे आगे लिखते हैं—"जहाँ कहीं भी सिख हैं—वे जीवंत प्रमाण हैं गुरु नानक द्वारा प्रतिपादित मूल सिद्धांतों की उच्चता के और गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा प्रवर्तित खालसा के भातृ-भाव की स्थायी शक्ति के । तत्पश्चात, वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि सिख-धर्म की दो विशिष्ट विशेषताएं--समानता और प्रजातंत्र, लोगों के लिए जबरदस्त आकर्षण सिद्ध हो सकते हैं । उनके अनुसार समानता की भावना सिखों के मन में सदैव सर्वोपरि रही है । गुरुमत में, जिसके अन्तर्गत 'संगत' का संस्थान क्रियाशील रहता है, सभी सदस्यों को पूर्णत. समान धरातल पर रखा जाता है । गुरुमत और संगत के पीछे समानता की यह भावना इतनी तीव्र थी कि गुरुमत के राजनैतिक महत्त्व को नष्ट कर देने के वावजूद, रणजीतसिंह गुरुमत को प्रेरित करने वाली भावना को भुठला न सके । जव एक सिख के नाते दुर्व्यवहार का आरोप उन पर लगाया गया तो उन्हें अत्यन्त विनम्र भाव से विरादरी के सर्वोच्च न्यायालय के सामने आना पड़ा और उसके निर्णय के सम्मुख झुकना पड़ा । इस अपराध के लिए जो सज़ा उन्हें हुई, उसे भुगतने के लिए उन्होंने

---

१. जे० एन० फरकुहिर, माडर्न रिलीजस मूवमेंट्स इन इंडिया, ३३६ ।
२. जे० एन० फरकुहिर, वही, पृ० १९८-२०० ।
३. वरजीलियस फर्न, 'लिविंग स्कूल ऑफ रिलीजन', पृ० २११ ।
४. वही, पृ० २११ ।

स्वयं को प्रस्तुत कर दिया ।[1] गुरुमत के पीछे सक्रिय रहने वाली भावना के कारण ही गुरुमत सहर्ष स्वीकृत हुआ और इसके सभी निर्णय प्रतिशोध की भावना के विपरीत और अमित्रतापूर्ण नहीं थे, बल्कि सभी सदस्यों के हित में, यहाँ तक कि सजा पाने वाले व्यक्ति के हित में भी, ग्रहण किये जाते थे ।[2] गुरुमत सदस्यों के अधिकारों और विशेषाधिकारों का उतना प्रतिनिधि नहीं था जितना कि सारी बिरादरी के कल्याण का माध्यम माना जाता था । बरजीलियस फर्म ने गुरुमत के इस पक्ष की ओर संकेत किया है और उनका विश्वास है कि आज की अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाहियों में भी इसका लाभप्रद ढंग से प्रयोग किया जा सकता है ।[3]

१. वही, पृ० २०६ ।
२. वही ।
३. वही ।

: १५ :

बंगाल में सिख धर्म का प्रभाव

डॉ० आर० के० दासगुप्ता

रवीन्द्रनाथ ने अपनी आत्मकथा में लानू नाम के एक पंजाबी का उल्लेख किया है जो टैगोर घराने में काम करता था और जिसके लिए उनके मन में अपार स्नेह और सम्मान था। वे लिखते हैं—"जिस स्नेह भाव से हमने उसका स्वागत किया, वह स्नेह भाव स्वयं रणजीतसिंह के लिए उपयुक्त हो सकता था। वह केवल परदेशी ही नहीं बल्कि पंजाबी था और आश्चर्य है कि वह हमारा हृदय चुराकर ले गया।" वे आगे लिखते है—"हमारे मन में समस्त पंजाबी प्रदेश के लिए वही प्रशंसा का भाव था जो महाभारत के भीम और अर्जुन के लिए था। वे योद्धा थे और यदि वे कभी लड़े, और उत्सर्ग हो गए तो स्पष्ट रूप से शत्रु की ही किसी गलती के कारण। पंजाब के लानू का हमारे घर में होना हमारे लिए गौरवप्रद था।"

वीर जाति के इस व्यक्ति के प्रति हमारा यह स्नेह-भाव कोरी भावुकता ही नहीं था। टैगोर लानू को जानते थे और उस समय तक बंगाल के उच्च और प्रवुद्ध लोगों पर सिख धर्म और इतिहास का गहरा प्रभाव पड़ चुका था।

देवेन्द्रनाथ टैगोर का स्वर्ण-मन्दिर में आगमन

रवीन्द्रनाथ के पूज्य पिता श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर फरवरी १८७७ में अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर में आये थे और सांध्यकालीन आरती को सुनकर प्रभावित हुए थे।

प्रसिद्ध सिख प्रार्थना 'गगन में थाल, रविचन्द दीपक बने' को आरती के साथ गाया जाता हुआ सुनकर, उनकी धार्मिक-कल्पना पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने गुरुमुखी सीखने और 'आदि ग्रंथ' को मूल रूप में पढ़ने का निश्चय कर लिया।

श्री देवेन्द्रनाथ ने बंगाली में लिखित अपनी आत्मकथा में इस गीत को बंगाली लिपि में उद्धृत किया है और यह टिप्पणी दी है—"ब्राह्म-समाज में केवल सप्ताह में दो घंटे ही हम प्रार्थना करते हैं, पर, सिखों के हरि-मन्दिर में, रात-दिन पूजा होती रहती है। यदि कोई बेचैन और दुखी है तो वह रात के समय भी यहाँ

जा सकता है, प्रार्थना कर सकता है और शान्ति प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मसमाज के अनुयायियों को इस अच्छे उदाहरण का अनुसरण करना चाहिए।"

देवेन्द्रनाथ ब्रह्मधर्म की एक पुस्तक 'ब्रह्मोधर्म ग्रंथ' प्रकाशित कर चुके थे। जब वे अमृतसर पधारे तो सिख-धर्म में जिस चीज़ ने उन्हें आकृष्ट किया वह थी विश्वजनीन आस्था की धारणा और जात-पांत और रीति-रिवाजों का अस्वीकार।

उनकी आत्मकथा के प्रथम सम्पादक श्री प्रियनाथ शास्त्री ने उनके एक वक्तव्य का ज़िक्र किया है जिसमें वे यज्ञोपवीत छोड़ने के अपने निश्चय के समर्थन में सिख जाति का हवाला देते हैं। यह बात, अमृतसर में उनके आगमन से तीन वर्ष पूर्व १८५४ की है। ज़ाहिर है कि उस युग के बंगालियों के लिए सिख धर्म और इतिहास की जानकारी का महत्वपूर्ण स्रोत जे० डी० कनिंघम की पुस्तक 'सिखों का इतिहास' थी जो सर्वप्रथम १८४९ में प्रकाशित हुई थी। संभवतः देवेन्द्रनाथ ने इस ग्रंथ का द्वितीय संस्करण पढ़ा था और सिखों की जो प्रशंसा इसमें की गई थी, उसमें अपना सांझा समझते थे। इस प्रशंसा के कारण उन्हें ईस्ट इंडिया कम्पनी से अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी थी।

सिख धर्म पर प्रारंभिक बंगाली रचना

बंगाल में सिख धर्म पर लिखित सबसे पुराना लेख, संभवतः, 'नानकपंथी' नाम से [१७७२ शक चैत्र, (2nd Series) सन् १८५० में 'तत्वबोधिनी' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था (IV भाग का नम्बर xcii, प्र० १७६—८२)]। यह ब्रह्म-समाज की मासिक पत्रिका थी जो अगस्त १८४३ में चलाई गयी थी। इस लेख पर किसी के हस्ताक्षर नहीं हैं। पर जाहिर है कि यह लेख श्री अक्षशोयकुमार दत्त जैसे विशिष्ट बंगाली चिन्तक द्वारा लिखित है जिसने की 'भारतवर्ष उपासक सम्प्रदाय' (१८७०-१८८३) नामक पुस्तक में भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों का दो भागों में इतिहास लिखा था।

यह महत्वपूर्ण है कि लेखक सिखों की धार्मिक और राजनीतिक उपलब्धियों को भारतीय इतिहास की महान् घटनाएँ मानता है। गुरु नानक के अनुयायी पहले तो धार्मिक निष्ठा में एकमत थे और फिर शस्त्र चलाने में भी एक साथ थे। प्रथमतः, वे एक सम्प्रदाय के रूप में अपने धर्म के प्रति निष्ठावान थे, तदनन्तर, राष्ट्रीय संघर्ष में उन्होंने अद्वितीय पराक्रम का परिचय दिया था।

पर ब्रह्म-धार्मिक मानस को आकर्षित करने वाली जो विशेष बात थी वह थी सिख मत की सामासिक प्रकृति। गुरु नानक की वाणियों के सम्बन्ध में आगे कहा गया है—'वे (वाणियां) इस बात को पुष्ट करती हैं कि गुरु नानक

ने अपने धर्म को हिन्दू, वेदान्त और मुस्लिम-सूफी विचारों के आधार पर प्रवर्त्तित किया था।'

सिखों पर अगली महत्त्वपूर्ण रचना सन् १८५१ में प्रसिद्ध वंगाली मासिक 'विविधार्थ-संग्रह' के पहले तीन अंकों में छपी थी। इसका सम्पादन प्रसिद्ध भारत भारतीविज्ञ राजेन्द्रलाल मित्र ने किया था। सिख इतिहास पर लिखित इस हस्ताक्षर रहित लेख के लेखक की धारणा है कि सिख धर्म हिन्दू धर्म का ही एक अंग है। उनका कहना है "उनका (हिन्दुओं का) देश हमारा देश है और वे देश के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग में स्थित हैं और हम उनके साथ सम्बद्ध हैं।"

गुरु नानक की जीवनी

सिख धर्म और इतिहास में वंगालियों की रुचि १६वीं शताव्दी में तीव्रता से वढ़ी थी, यह वात जाहिर है गुरु नानक की वंगाली आत्मकथा से जो 'नानक का जीवन चरित' शीर्षक से १८६५ में प्रकाशित हुई थी। यह वंगाली आत्मकथा आर० एन० कस्ट की पुस्तक 'नानक की जीवनी' जो पिछले वर्ष छपी थी, का रामनारायण विद्यारत्न द्वारा किया गया अनुवाद था। कस्ट भारतीय लोक सेवा का सदस्य था। उसने प्रथम स्वाधीनता संग्राम के वाद पंजाव की संधिवार्ता में भाग लिया था और जव उसने यह पुस्तक लिखी तव वह स्वराष्ट्र सचिव था।

गुरु नानक की विस्तृत आत्मकथा के दो भाग 'नानक प्रकाश' के नाम से, दो भागों में, १८८५ और १८९३ में प्रकाशित हुए थे। इस पुस्तक में गुरु नानक की जीवनी, और उनके धर्म का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवेचन करना अभिप्रेत था। पर, वीमारी के कारण, इसका लेखक 'ग्रंथ' के दूसरे भाग को संपूर्ण करने में असमर्थ रहा। दूसरे भाग के अन्त में 'गगन में थाल रवि चन्द दीपक वने' का गद्यानुवाद किया गया है और मूल वाणी वंगाली लिपि में, एक पाद टिप्पणी के अन्तर्गत दी गयी है। परिशिष्ट में, गुरु नानक के परवर्ती नौ गुरुओं की संक्षित आत्मकथाएँ दी गयी हैं। यह पुस्तक ब्रह्म-समाज के एक सम्प्रदाय 'नव-विधान' द्वारा प्रकाशित की गई थी।

ब्रह्म-संगीत में सिख भजन

१९वीं शताव्दी के वंगाल में सिख धर्म के प्रति जो रुचि पैदा हुई, वह ब्रह्म-आन्दोलन की नयी धार्मिक चेतना द्वारा ही प्रेरित थी। ब्रह्म संगीत जो

ब्रह्मो समाज का प्रार्थना संकलन है, में गुरु नानक के ग्यारह भजन संग्रहीत हैं। ये भजन मूल रूप में बंगाली अक्षरों में दिये गये हैं—(१) 'ठाकुर तुम शरणाई आया' (सारंग महला-५), (२) 'राम सिमर राम सिमर रे तेरे काज हैं' (जयजयन्ती महला-५) (३) कुछल कठोर कपटी कामी ज्यो जनाही दियो तार स्वामी (कानड महला-५), (४) विसर गए सब तात पराये जब ते साधु संगत मोहे पाई (कंनड महला-५) (५) प्रभ इहाँ मनोरथ मेरा (देव गान्धारी महला-५), (६) गगन में थाल रवि चन्द दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती (धनसारी महला-१) (७) प्रभ जी तू मेरे प्राण आधार (बिलावल महला-५) (८) बिरथा कह्यो कौन सू मन की (आसा महला-९)

ये भजन ब्रह्म समाज से बाहर भी काफी प्रचलित थे और ये श्री दुर्गादास लहरी द्वारा १९०५ में बंगाली भजनों के एक संग्रह 'बंगालेर गान' में संग्रहीत किये गए थे। इस ग्रंथ में भी भजन मूल रूप में बंगाली लिपि में उद्धृत किये गए हैं। 'गगन में थाल रविचन्द दीपक बने' भजन रवीन्द्रनाथ के अनुवाद में भी दिया गया है जो सरला बाला सरकार द्वारा सम्पादित (फाल्गुन, १७९६ शक) 'तत्त्व बोधिनी पत्रिका' में १८७४ में स्टाटागन से प्रकाशित हुआ था।

बंगाली में जपुजी

जपुजी के प्रारंभिक अनुवाद, १९वीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में, 'नव जीवन', 'साहित्य-संहिता' और 'ब्रह्म-विधा' नामक साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। पुस्तक के रूप में पहला बंगाली अनुवाद लालबिहारी सिन्हा का 'जपुजी साहब' (१९०१) था। इसमें मूल पंजाबी वाणी बंगला अक्षरों में और फिर उसका अनुवाद दिया गया था। इसके चौदह वर्ष के बाद किरणचन्द्र दरवेश ने जपुजी का छन्दोबद्ध अनुवाद किया।

सतीशचन्द्र बैनर्जी ने जपुजी का श्रेष्ठ काव्यानुवाद किया है। वे ही इस ग्रंथ के पहले गंभीर बंगाली व्याख्याता हैं। श्री सतीशचन्द्र डाक्टर थे और कलकत्ता मेडिकल कालेज में औषधि-विज्ञान के असिस्टेंट प्रोफैसर थे। 'जपुजी' के सम्बन्ध में उन्हें लैफ्टिनेंट कर्नल बाबा हरकिशनसिंह से जानकारी प्राप्त हुई थी जो कि भारतीय मेडिकल सेवा के सदस्य थे और तीसरे गुरु के वंशधर लैफ्टिनेंट कर्नल बाबा जीवनसिंह के पोते थे।

बाबा हरिकिशन सिंह ने श्री सतीशचन्द्र से प्रार्थना की थी कि वे 'जपुजी' का, उनके चाचा के इंगलिश संस्करण से बंगाली गद्य में अनुवाद करें। श्री सतीशचन्द्र ने एक सिख विद्वान की सहायता से जपुजी को पढ़ा और इस सम्बन्ध में हिन्दी और अंग्रेजी आलोचनात्मक सामग्री का अच्छा-खासा अध्ययन

किया। यह ग्रंथ जब १९३७ में प्रकाशित हुआ, तो इसे धार्मिक कविता की एक महान् कृति के विद्वत्तापूर्ण संस्करण के रूप में ग्रहण किया गया।

बंगाल सिख प्रचार सभा, जो कि सिख-साहित्य के प्रचार के लिए कलकत्ता में स्थापित की गई थी, ने भी इस ग्रंथ को धार्मिक वाणी का महत्त्वपूर्ण भाष्य माना।

जपुजी के अन्य चार बंगाली संस्करणों के लेखक हैं—जैनेन्द्र मोहन दत्त, अविनाश चन्द्र मोजमदार, हरणचन्द्र चकलादर और जतीन्द्र मोहन चैटर्जी। मोजमदार के संस्करण में, जो १९१८ में छपा था, कुछ ऐसी टिप्पणियां हैं जिनसे लगता है कि वे अंग्रेजी स्रोतों पर ही निर्भर रहे हैं। जतीन्द्र मोहन ने गुरु अर्जुन कृत 'सुखमनी' का भी अनुवाद किया।

जपुजी : ज्ञान गीता

'जपुजी' का सब से उपयोगी बगाली संस्करण जतीन्द्र मोहन चैटर्जी का है जो कि १९४६ में छपा था। जतीन्द्र मोहन एक श्रेष्ठ विद्वान हैं और तुलनात्मक धर्म के गहन अध्येता हैं। पर, संभवतः, उनका गहरा पवित्र भाव ही उनके ग्रंथ को गुणवत्ता प्रदान करता है। गुरु नानक के धर्म के लिए उनका उत्साह उन्हें एक सिख दैवी-पुरुष की पदवी प्रदान करता है। वे जपुजी को ज्ञान-गीता, लोगों की धार्मिक पुस्तक, कहते हैं।

साठ पृष्ठ की अपनी भूमिका में वे कहते हैं—"यदि 'जपुजी' को लोगों के सामने प्रस्तुत किया जाए तो सारे देश में आध्यात्मिक पुनरुत्थान की भावना जग सकती है।" उन्होंने कहा कि जपुजी, विशेषतः, बंगालियों की धार्मिक कल्पना को आकर्षित करेगा। उन्होंने बताया कि विजय कृष्ण गोस्वामी 'आदि ग्रंथ' को भक्ति का महानतम् ग्रंथ मानते थे। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि 'जपुजी' में ज्ञान और भक्ति, साकारवाद और निराकारवाद का अत्यन्त संतोषजनक समन्वय हुआ है।

सिख इतिहास

१९वीं शताब्दी के बंगाल के धार्मिक आन्दोलन ने, विशेष रूप से ब्राह्मो आन्दोलनों ने, यदि सिख धर्म में, लोगों की रुचि पैदा की तो सन् १९०५ के स्वदेशी आन्दोलन ने सिख-इतिहास के प्रति लोगों के ध्यान को आकर्षित किया। यद्यपि सिख युद्धों पर बंगाली में पहला ऐतिहासिक ग्रंथ [illegible] में छपा था, पर स्वदेशी आन्दोलन के दौरान ही इस विषय पर [illegible]

चेतना पैदा हुई।

वरडकान्त राय की पुस्तक 'सिख युद्धेर इतिहास' में रणजीतसिंह की मृत्यु उपरान्त युद्धों का विवरण दिया गया है और महाराजा दिलीपसिंह का जीवन-वृत्त दिया गया है। प्रमाथनाथ सनयाल ने कनिंघम की पुस्तक 'सिखों का इतिहास' का बंगाली अनुवाद, दुर्गादास लहरी द्वारा लिखित कुछ अन्य अध्यायों के साथ, जिनमें द्वितीय सिख युद्ध का विवरण दिया गया था, प्रकाशित किया। गुरु गोविन्दसिंह की जीवनी पर आधृत एक काव्य-रूपक विपिन विहारी नान्दी ने १९०९ में प्रकाशित किया। एक अन्य नाटक 'सिखेर कथा' (१९१३) की विषय-वस्तु भी औरंगजेव के शासनकाल में व्याप्त सिख जीवन से सम्बद्ध थी। इस नाटक के लेखक श्री जतीन्द्र नाथ समादर ने कनिंघम की पुस्तक से सामग्री ली थी। सिख इतिहास और धर्म पर इस काल में लिखित सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ शरत्कुमार राय का 'सिख गुरु और सिख जाति' (१९१०) था जिसका आमुख रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा था।

गुरु गोविन्दसिंह के जीवन-चरित् ने बंगालियों की देशभक्तिपूर्ण कल्पना को गहरे में स्पर्श किया था। दसवें गुरु के जीवन पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ तिनकारी बनर्जी का 'गुरु गोविन्दसिंह' है जो कि सर्वप्रथम १८९६ में छपा था। इस जीवनी का पर्याप्त परिवर्द्धित संस्करण, जो १९१८ में प्रकाशित हुआ था, सिख-धर्म और इतिहास पर, बंगाली में प्रकाशित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में से एक है। ४५० पृष्ठों के इस ग्रंथ के प्रारंभिक ८४ पृष्ठों में गुरु नानक से लेकर गुरु तेग़बहादुर तक, सिख-धर्म का सिंहावलोकन किया गया है और शेष भाग में दसवें गुरु की विस्तृत जीवनी वर्णित है। भारतीय इतिहास में गुरु गोबिन्दसिंह की महान् उपलब्धि के सम्बन्ध में, अंग्रेज़ी में लिखित सब से प्रामाणिक ग्रंथ, इन्दुभूषण बैनर्जी का 'खालसा का विकास' (Evolution of Khalsa, 2 vols. 2nd ed. 1962) है, जो कलकत्ता विश्वविद्यालय में मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास के आशुतोष प्रोफैसर थे।

'आदि-ग्रंथ' : बंगाली में

उग्रवादी 'स्वदेश' नेता, कृष्णकुमार मित्र ने समस्त 'आदि-ग्रंथ' को बंगाली-गद्य में रूपान्तरित करने की योजना बनाई थी, लेकिन दुर्भाग्य से वे इस योजना को पूरा न कर सके। अपनी बंगाली आत्मकथा में कृष्णकुमार लिखते हैं कि श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने उन्हें 'ट्रम्पस' द्वारा अनुवादित 'आदि ग्रंथ' की प्रति दी थी और उन्होंने इसके कई अंशों का बंगाली में अनुवाद किया था। उन्होंने 'जन्म साखी' भी पढ़ी थी और गुरु नानक की जीवनी लिखनी भी शुरू

की थी। पर, दुर्भाग्य से, ये पांडुलिपियाँ एक रेल-यात्रा के दौरान गुम हो गईं।

इसी तरह से निराश होने के बाद उन्होंने एक सिख ग्रंथी से गुरुमुखी सीखी और सम्पूर्ण 'जन्म साखी' और 'आदि-ग्रंथ' का एक भाग पढ़ा। उन्हें शीघ्र पता चल गया कि ट्रम्पस् का अनुवाद मूल का विकृत-रूप है। जब वे दिसम्बर १९०८ में ग्रंथ को लिखना शुरू करने वाले थे, तो उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। पुलिस ने उनकी पुस्तकें और पांडुलिपियां ज़ब्त कर लीं और वे उन्हें कभी वापिस नहीं दी गईं। जेल में रहते हुए उन्होंने सिख-साहित्य का फिर से अध्ययन शुरू किया। वे दिन में लगभग १० घंटे 'नानक चरित' लिखने में लगाते थे। आगरा की जेल में उनपर निगरानी रखने वाला एक सिख था। उसने 'जन्म साखी' की अपनी प्रति एक मास के लिए उन्हें दे दी थी। बाद में, सुपरिन्टेंडेंट ने उन्हें एक प्रति लाहौर से मंगा दी थी।

कृष्णकुमार के 'नानक चरित्' की पांडुलिपियां और 'आदि ग्रंथ' के उनके अनुवाद गुम हो गए। ज़ाहिर है कि ऐसा पुलिस की असावधानी के कारण हुआ जो कि राजनीतिक कैदियों के पुनीत परिश्रम के प्रति उदासीन थी।

स्वदेशी आन्दोलन के एक अन्य राजनैतिक नेता अश्विनीकुमार दत्त ने लखनऊ की जेल में रहते हुए गुरुमुखी सीखी थी और 'आदि ग्रंथ' पढ़ा था। उनके कतिपय धार्मिक गीतों में गुरु नानक का प्रभाव देखा जा सकता है। इस बात का पता नहीं है कि उन्होंने 'आदि ग्रंथ' की किसी कविता का भी अनुवाद किया था या नहीं।

रवीन्द्रनाथ का दरबार साहब में आगमन

रवीन्द्रनाथ अपने पिता के साथ १८७२ में अमृतसर आए थे। ११ वर्ष की आयु में रवीन्द्रनाथ पर दरबार साहब की आराधनाओं का जो प्रभाव पड़ा, उसे उन्होंने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार लिखा है—"अमृतसर का दरबार साहब मेरी स्मृति में एक स्वप्न की तरह कौंधता है। प्रातःकाल के समय कई बार मैं अपने पिता के साथ सिखों के 'गुरु दरबार' के सरोवर के बीचोंबीच गया हूँ। वहाँ पवित्र कीर्त्तन सदैव गूंजता रहता है। पुजारियों के बीच आराम [illegible] हुए मेरे पिता कभी-कभी स्तुतिपरक भजनों में अपनी वाणी का [illegible] थे और इससे उनमें आत्मिक उत्साह आ जाता था और फिर [illegible] मिठाइयों का पवित्र प्रसाद लेकर वापिस आ जाते थे।" [illegible] का लेखक लिखता है कि शान्तिनिकेतन में ब्रह्म-समाज [illegible] सहयोग, प्रातःकालीन प्रार्थना और अध्यात्म-ग्रंथों से पाठ [illegible] गई वह, संभवतः, दरबार साहब की अखंड-पाठ की [illegible]

चलायी गई थी ।

टैगोर और गुरु गोविन्दसिंह

रवीन्द्रनाथ ने १८८५ में जब 'वीर गुरु' नाम से लेख लिखा तो उस समय तक बंगाली कल्पना पर सिखों के धार्मिक और राजनैतिक इतिहास का गहरा प्रभाव पड़ चुका था। रवीन्द्रनाथ का लेख 'वीर गुरु' अर्थात् गुरु गोविन्दसिंह, सन्त और राजनीतिज्ञ के रूप में उनके जीवन और कार्य का संक्षिप्त और संवेदनशील विवरण है और उनके धार्मिक दर्शन का शानदार सार रूप है। रवीन्द्रनाथ को जिस चीज़ ने सबसे अधिक प्रभावित किया वह बात यह थी कि गुरु साहब ने स्वयं को दैवी पुरुष मानने से इंकार किया और अपने शिष्यों को चेतावनी दी कि वे उन्हें ईश्वर के दास के अतिरिक्त कुछ न समझें।

इसी वर्ष, बाद में चलकर, उन्होंने 'सिख स्वाधीनता' नामक लेख लिखा जिसमें गुरु गोबिन्दसिंह की मृत्यु से लेकर पंजाब में सिख शक्ति के अभ्युदय का इतिहास अंकित है। वे इसे गुरु गोविन्दसिंह की उद्देश्य पूर्ति के नाम से पुकारते हैं।

तीन वर्ष के अनन्तर, १८८८ में, रवीन्द्रनाथ ने 'गुरु गोबिन्द' शीर्षक कविता की रचना की। इस विषय पर यह उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। इसमें दसवें गुरु का, उनके महान् कार्य की आध्यात्मिक तत्परता से सम्बद्ध, एक स्वगत कथन है। यह उद्भावना शायद उन्हें कनिंघम के उस सन्दर्भ से प्राप्त हुई थी जिसमें उन्होंने खालसा संस्थापक गुरु गोविन्दसिंह के ऐतिहासिक कार्य और उनके परवर्ती एकान्त जीवन की ओर संकेत किया था। कनिंघम का कथन है "गुरु गोबिन्दसिंह ने अपना एकान्त जीवन यमुना के तटवर्ती छोटी-छोटी पहाड़ियों में बिताया और कुछ वर्षों तक वे चीता और जंगली सूअर का शिकार करने में, फारसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने में, और अपनी जाति की गौरव-गाथाओं का वर्णन करने वाली पुरा-कथाओं से अपने मन को समृद्ध करते रहे।" रवीन्द्रनाथ आत्म-शिक्षा के इस काल को गुरु साहब के जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काल-खंड मानते हैं। कर्म-जीवन से पूर्व के इस चिन्तन परिपूर्ण जीवन के कारण ही, वे ईश्वरीय इच्छा के वाहक बन सके। कर्म-जीवन में कूदने से इन्कार करते हुए, वे कहते हैं, कि चिन्तन मनन के जीवन के उपरान्त, वे उस दिन की प्रतीक्षा करेंगे जब वे यह कह सकेंगे कि उन्होंने लोगों के साथ एकात्म-भाव अनुभूत कर लिया है, कि वे उनके कार्य के जरिये मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

'गुरु गोबिन्द' कविता के शीघ्र बाद 'निष्फल उपहार' कविता की रचना की

गई । 'वीर गुरु' नामक निबन्ध में रवीन्द्रनाथ ने एक प्रसंग उद्धृत किया है जिसमें गुरु और माया के अन्तर को स्पष्ट किया गया है । 'निष्फल उपहार' इस प्रसंग पर आधृत छोटी-सी पद्यात्मक कथा है । एक बार गुरु साहब के एक धनवान शिष्य ने, भेंटस्वरूप, सोने के कड़ों की एक जोड़ी दी । गुरु साहब ने उनमें से एक नदी में फेंक दिया । यह सोचते हुए कि संयोग से ऐसा हुआ है एक सिख ने एक तैराक से कड़ा ढूंढ़ निकालने के लिए कहा और उसे ५०० रु० का इनाम देने का वादा किया । तैराक ने जब गुरु जी से पूछा कि कड़ा किस जगह पर गिरा है तो गुरुजी ने दूसरा कड़ा भी उस ओर फेंक दिया । सिख और तैराक के लिए इतना काफी था यह समझने के लिए कि वास्तव में गुरु जी ने जान-बूझकर स्वर्ण का त्याग किया है ।

रवीन्द्रनाथ ने अपने एक पत्र दिनांक २८ फरवरी १८९३ में गुरु साहब के 'आत्म तत्परता' के लम्बे अरसे का पर्यवेक्षण किया है और इसकी तुलना महाभारत-पूर्व के पांडवों के अज्ञातवास से की है ।

गुरु गोबिन्द से सम्बद्ध रवीन्द्रनाथ की तीसरी और अंतिम कविता 'शेष शिक्षा' १८९९ में लिखी गई थी । तीन वर्ष पूर्व तिनकारी बैनर्जी ने पंजाबी में उपलब्ध स्रोतों के आधार पर, जो उन्होंने इस शोध कार्य के लिए प्राप्त किये थे, गुरु जी की जीवनी प्रकाशित की थी । इस जीवनी में गुरु गोविन्द की मृत्यु का विवरण, संतोखसिंह की पुस्तक 'सूरज प्रकाश' पर आवृत है । अपनी पुस्तक के अन्त में तिनकारी महोदय लिखते हैं कि गुरु गोविन्द की मृत्यु से सम्बद्ध कई विवरण हैं पर सिख विद्वानों के अनुसार 'सूरज प्रकाश' का विवरण ही सबसे अधिक प्रामाणिक है । जो विद्वान गुरु जी की मृत्यु के विभिन्न विवरणों से परिचित हैं, उनमें से अधिकांश ने, इनमें कुछ समान विशेषताएँ देखी हैं और इनमें सब से महत्त्वपूर्ण यह है कि एक पठान ने उनका वध किया था, और गुरु ने स्वयं पठान को वध करने के लिए आमंत्रित किया था । गुरु जी की मृत्यु से सम्बद्ध रवीन्द्रनाथ की कविता, न्याय के लिए वीरोचित आत्म-बलिदान की मार्मिक कथा है । गुरु गोविन्दसिंह ने एक पठान लड़के के साथ शतरंज खेलते हुए उसे उकसाया कि वह उन्हें मार कर अपने पिता का बदला ले । कवि का, संभवतः, विचार था कि गुरु जी की मृत्यु का विवरण उस महान् नायक को विशेष महत्ता प्रदान करता है जो अपने पिता के वध के विचार से ही वीरतापूर्ण कार्यों को करने की दिशा में प्रेरित हुआ था । रवीन्द्र गुरुमुखी अथवा फारसी स्रोतों से परिचित नहीं थे, पर अंग्रेजी और बंगला के माध्यम से भारतीय इतिहास के विस्तृत अध्ययन के फलस्वरूप उन्हें 'सूरज प्रकाश' का गुरु जी की मृत्यु का प्रसंग प्राप्त हो गया था और शानदार बात यह है कि

उनकी कविता में ऐसी पंक्तियाँ हैं जो गुलखान के अपनी माता को सम्बोधित शब्दों की याद दिला देते हैं।

रवीन्द्रनाथ का लेख 'शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह' जो १६१० में प्रकाशित हुआ था, में खालसा के विकास का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। उनके अनुसार खालसा का विकास विश्वजनीन भाईचारे के सिद्धांत के सैनिक और राष्ट्रीय मतवाद में रूपान्तरित हो जाने का सूचक है। वे यह तो मानते हैं कि ऐतिहासिक स्थिति के कारण ही इस नई दृष्टि का विकास हुआ, पर वे इतिहास की विडम्बना पर भी चिन्तित हो जाते हैं जिससे कि विश्वव्यापी प्रेम के सिद्धांत की रक्षा के लिए तलवार उठाने के लिए विवश हो जाना पड़ता है। खुशवन्तसिंह ने गुरु जी की परमात्मा की परिकल्पना को सैनिक रूपान्तरण की संज्ञा से अभिहित किया है जो अब ऐतिहासिक शोध का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। हम जानते हैं कि १६८६ में भंगानी के युद्ध के बाद गुरु साहब ने कहा था—"जब तमाम प्रयत्न किये जा चुके हों और सभी साधन आज़माये जा चुके हों तब तलवार को मियान से निकालकर चलाना न्यायसंगत है।"

रवीन्द्रनाथ ने अपने लेख में लिखा है कि एक महान् आस्था की रक्षा के लिए तलवार के प्रयोग की आवश्यकता ने सिख इतिहास को एक नया आयाम दिया।

बन्देवीर

सिख विषयवस्तु पर आधृत रवीन्द्रनाथ की एक अन्य कविता का शीर्षक है—'बन्देवीर।' इसमें बन्देसिंह और उसके पुत्र अजयसिंह के बलिदान की कथा वर्णित है।

'बन्देवीर' रवीन्द्रनाथ की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कविताओं में से एक है और बंगाल में शायद ही कोई ऐसा बालक होगा जो इस कविता के कुछ पद्यों का पाठ न कर सके। यह एक ऐसे पिता की दर्दनाक कहानी है जो एक निर्दय जल्लाद द्वारा सताया जाकर अपने पुत्र को मारने के लिए विवश है। रवीन्द्रनाथ ने इस प्रसंग को वीरोचित धैर्य की कथा के रूप में प्रस्तुत किया है—एक व्यक्ति जनता की निष्ठा और सम्मान के लिए अविश्वसनीय बलिदान करता है। व्यक्तिगत पीड़ा की यंत्रणा को अलौकिक सहनशीलता के चमत्कार से सार्थक बना दिया गया है। यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि मानवीय यंत्रणा की कहानी को व्यक्त करने वाली यह कविता उदात्त सहनशीलता के प्रभाव को गहराने में सफल हुई है।

सिखों का इतिहास

सिखों के इतिहास का बंगाली-मानस के लिए दोहरा आकर्षण है—इसका आकर्षण एक तो सुधारवादियों की धार्मिक कल्पना के लिए था और दूसरा राष्ट्रवादियों की राष्ट्रीय चेतना को उत्तेजित करने के लिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि सिखों के प्रति बंगाली दृष्टिकोण सदैव प्रशंसा, सम्मान और स्नेह का रहा है। और शूरवीर सिख जाति इस प्रकार की दृष्टि के सर्वथा योग्य पात्र हैं।

: १६ :

गुरु नानक : कवि के रूप में*

खुशवन्तसिंह

पिछले एक वर्ष से मेरा मुख्य काम गुरु नानक के कुछ चुने हुए पदों का अंग्रेज़ी अनुवाद करना रहा है। संयोग की बात है कि और कई वर्षों की तरह यह वर्ष भी मैंने लगातार यात्राओं में बिताया है, बारह महीनों में से मुश्किल से मैं तीन महीने घर पर रहा हूँ। अतः न मेरे पास शब्दकोश थे और न अनूदित कृतियां थीं, साथ ही कवि के देश का वातावरण भी नहीं था कि मुझे उनकी दृष्टि और लेखन का दृश्याभास ही प्राप्त होता। मैं दो कारणों से इन तथ्यों का उल्लेख कर रहा हूँ; पहला यह कि यद्यपि किसी भी कविता का दूसरी भाषा में अनुवाद करना असंभव नहीं तो कठिन ज़रूर है, मैंने गुरु नानक की कविताओं को समझने और उन्हें अंग्रेज़ी में ढालने का काम अत्यन्त कठिन, तथा कई बार तो असंभव पाया। दूसरा कारण यह है कि काम में भिड़ने का दर्द और वेदना तथा निराशा जितनी फलदायक तथा कभी-कभी आनन्ददायक गुरु नानक के विचारों के उद्भासन तथा उनके अंग्रेज़ी पर्यायों को ढूंढ़ने में साबित हुई, उतना और किसी काम में साबित नहीं हुई थी। इसका एकमात्र कारण यही है कि शब्दों के इस्तेमाल में गुरु नानक अत्यन्त मितव्ययी हैं, दूसरे कवि जो बात पूरे पद में कहेंगे, गुरु नानक उससे भी अधिक बात केवल एक पंक्ति में ही कह डालेंगे। जिस ढंग से वे प्रकृति चित्रण, कोई घरेलू स्थिति अथवा भावनात्मक सम्बन्धों तथा नैतिक संदेशों के संप्रेषण में सफल हैं, वैसा मेरी नज़र में कोई दूसरा कवि सफल नहीं हुआ है। मेरे लिए तो यह एक अद्भुत अनुभूति थी। चाहे मैं उत्तरी अमरीका के बर्फाच्छादित देहातों में रहा अथवा यूरोप के नम तथा कुहासे-भरे वसंत के बीच, या कि उस झील के पास जिसके हृदय में फुजयामा पर्वत प्रतिबिम्बित हो रहा था, ग्रीष्म बिताया हो, मैं अपने को पंजाब से घिरा महसूस करता रहा हूं। कभी मेरे सामने पंजाब के हरे-भरे सपाट मैदान सामने बिछ जाते जिन पर गर्मी का सूरज अपनी आग बरसा कर तपा रहा होता और धूल के बगूले बवंडरों की शक्ल में छल्ले बनाकर नाच रहे होते; फिर बरसाती बूंदें जिन्हें नहा कर गीला कर देतीं, और देखते ही देखते कच्चे गेंहुओं का एक हरा और पीला

* आकाशवाणी दिल्ली से ७-११-१९६८ को प्रसारित वार्ता।

समन्दर लहरा उठता और सरसों में फूल निकल आते । पंजाब के किसी घर से आवाजें मेरे कानों में आने लगतीं, मक्खन के मथे जाने की आवाज, चक्की की चर्रर घूं की एकरस आवाज तथा थप-थप करती हुई बहुत-सी [illegible] की आवाज । और इन सब से ऊपर आती किसी पैगम्बर की एक महान दैविक आवाज जो कुटिल आदमियों को झिड़कती हुई लोगों से कहती कि ध्यान करो, आराधना करो और इन्सानों की सेवा करो ।

मैं कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूं । 'आदि ग्रन्थ' में गुरु नानक के प्रायः एक हजार पद हैं । इनमें से कई प्राकृतिक दृश्यों को वर्णित करते हैं । मुझे इनमें से सर्वाधिक प्रिय है, बारा माह (बारहमासा) । इसमें मासों के अनुसार देश का रूप वर्णन है तथा हर वर्णन के बाद एक उपदेश है । जैसे प्रथम मास चैत में भौंरे गूंज रहे हैं, जंगलों में फूल भरे हुए हैं और आम के बागों में कोयल की पुकारें सुनी जा रही हैं । दूसरे मास वैसाख तक वसन्त कायम रहता है, जबकि "डालियां अपना नया सिंगार करती हैं । वसन्त के बाद जेठ आता है, धरती झुलसने लगी है…सूरज आग बरसा रहा है—आकाश गर्म है—धरती भट्ठे की तरह जल रही है… पानी से भाप छूटने लगी है किन्तु आत्मा कुछ ठंडी ही पड़ती है । "जब पर्वत शिखरों से सूर्य का रथ गुजर जाता है, धरती पर लम्बी छायाएं पड़ने लगती हैं, और दूबों में झींगुर बोलने लगते हैं ।" तब आता है सावन और साथ में आती हैं रिमझिम बूंदें । गुरुजी की पूरी कविता उद्धृत करना ही उचित होगा ।

सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए ।
मैं मनि-तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए ।।
पिर घरि नहीं आवै मरीए हावै दामनि चमकि डराए ।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए ।।
हरि बिनु नींद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सुखावए ।
नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंकि समावए ।।

गुरुनानक वर्षा से प्रभावित हुए बिना कभी न रह पाए । राग वडहंस रचना में उनकी एक अत्यन्त उत्कृष्ट कृति है जिसमें उन्होंने दृश्य और सौंदर्य के साथ-साथ मानव प्रेम के आनन्द तथा पीड़ा को व्यक्त करते हुए नैतिक संदेश भी दिया है ।

मोरी रुण-झुण लाइआ भैणे सावणु आइआ ।
तेरे मुंध कटारे जेवड़ा तिनि लोभी-लोभ लोभाइआ ।।
तेरे दरसन विटहु खनीए वंञा तेरे नाम विटहु कुरबाणो ।
जा तू ता मैं माणु कीआ है तुधु बिनु केहा मेरा माणो ।।
चूड़ा भंनु पलंघ सिउ मुंधे सणु बाही सणु बाहा ।
एते वेस करेंदीए मुंधे सहु रातो अवराहा ।।

ना मनीग्रारु न चूड़ीग्रा ना से वंगुड़ी ग्राहा ।
जो सह कंठि न लगीग्रा जलनु सि वाहड़ी ग्राहा ।।
सभि सहीग्रा सहु रावणि गईग्रा हउ दाधी कै दरि जावा ।
ग्रंमाली हउ खरी सुचजी तै सहि एकि न भावा ।।
माठि गुंदाई पटीग्रा भरीऐ माग संधूरे ।
ग्रगै गई न मंनीग्रा मरउ विसूरि विसूरे ।।
मैं रोवंदी सभु जगु रुना रुंनड़े वणहु पंखेरू ।
इकु न रुना मेरे तन का विरहा जिनि हउ पिरउ विछोड़ी ।।
सुपने ग्राइग्रा भी गइग्रा मैं जलु भरिग्रा रोइ ।
ग्राइ न सका तुझ कनि पिग्रारे भेजि न सका कोइ ।।
ग्राउ सभागी नीदड़ीए मतु सहु देखा सोइ ।।
तै साहिब की बात जि ग्राखै कहु नानक कीग्रा दीजै ।
सीस वढे करि बैसणु दीजै विणु सिर सेव करीजै ।।
किउ न मरीजै जीग्रड़ा न दीजै जा सहु भइग्रा विडाणा ।।

गुरु नानक का ग्रसली उद्देश्य ईश्वर की महानता का प्रचार तथा लोगों को प्रार्थना के लिये उत्प्रेरित करना था । प्रातःकालीन प्रार्थना 'जपुजी' में, जो उनकी ग्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है, वे बड़ी सफलता से इस उद्देश्य को प्राप्त करते हैं । इसका प्रारम्भ इस वक्तव्य के साथ हुग्रा है—

ईश्वर एक है ।
वही सबसे बड़ा सत्य है ।
वह सभी का निर्माता है ।
वह भय रहित ग्रौर शत्रुता रहित है ।
वह ग्रकालमूर्ति है ।
वह योनियों में नहीं पड़ता ।
वह स्वयं से प्रकाशित है ।
सत्गुरु की कृपा से वह प्राप्त होता है ।
ग्रादिकाल में भी वह सच था ।
युगों के प्रारंभ में भी वह सच था ।
ग्राज भी वह सच है ।
नानक कहते हैं—
वह सदा सच ही रहेगा । [1]

१. १ग्रोंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु ग्रकाल मूरति ग्रजूनी सैभं गुरुप्रसादि । जप, ग्रादि सचु जुगादि सचु है भी सचु । नानक होसी भी सचु । (जपुजी)

तत्पश्चात् गुरु एक प्रश्नावली प्रस्तुत करते हैं, प्रत्येक प्रश्न उनकी सीख-पद्धति का प्रतीक है :—

"सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार।
चुपै चुपि न होवई जे लाइ रहा लिव तार ।।
भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार।
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि ।।
किव सचि आरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि ।।
(जपुजी)

जपुजी के ही पद्यों में, गुरु के भीतर जैसे फिर किसी पवित्र आत्मा का आविर्भाव हुआ हो :

"इकदू जीभौ लख होइ लख हो वहि लख बीस ।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ।।
एतु राहि पति पवड़ी आ चड़िऐ होइ इकीस ।
सुणि गला आकास की कीटा आई रीस ।।
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ।।

आखणि जोरु चुपै नह जोरु। जोरु न मंगणि देणि न जोरु ।।
जोरु न जीवणि मरणि नहि जोरु । जोरु न राजि मालि मनि सोरु ।।
जोरु न सुरती गिआनि वीचारि। जोरु न जुगती छुटै संसारु ।।
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोई। नानक उतमु नीचु न कोइ ।।
राती रुति थिती वार । पवणु पानी अगनी पाताल ।।
तिसु विचि छापि रखी धरम साल ।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग। तिनके नाम अनेक अनंत ।।
करमी करमी होइ वीचारु । सचा आप सचा दरबारु ।।
तिथै सोहनि पंच परवाणु । नदरी करमि पवै नीसाणु ।।
कच पकाई ओथै पाइ । नानक गइआ जापै जाइ ।।

फिर मनुष्य मात्र के लिए उनका अंतिम प्रवोवन इस प्रकार है—
यदि तुम सच्चा सिक्का वनाना चाहते हो तो—
संयम को भट्टी वनाओ।
वुद्धि निहाई हो, ज्ञान हथौड़ी हो।
भय की धौंकनी हो, तपस्या की अग्नि हो।
प्रेम का पात्र हो, अमृत नाम उसमें गलाओ।
इस प्रकार सच्चा सिक्का ढलेगा।

परमात्मा की कृपा दृष्टि से, हे नानक,
साधक निहाल हो जाता है,

(जतु पहारा धीरजु सुनिआरु। अहरणि मति वेदु हथिआरु ॥
भउ खला अगनि तपताउ। भांडा भाउ अंमृतु तितु ढालि ॥
घड़ीऐ सबदु सची टकसालु। जिन कउ नदरि करमु तिनकार ॥
नानक नदरी नदरि निहाल ॥

संत कवि : गुरु नानक

डॉ० महीप सिंह

आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का साधन अपने आप में अपर्याप्त होता है, परन्तु अनुभूत सत्य को व्यक्त करने के प्रयत्न में साधक जब वाणी का प्रयोग करता है तो उसमें से काव्य-सरिता स्वयं फूट निकलती है। वास्तव में सत्य की अभिव्यक्ति के लिए काव्य एक स्वाभाविक साधन है। आत्मदृष्टा की अनुभूति यदि व्यक्त होना चाहे तो वह संगीत की ध्वनि से गुंजित हो उठने वाले काव्य के रूप में ही प्रकट होती है। इसीलिए संस्कृत आचार्यों ने काव्य के आनन्द को ब्रह्मानंद तुल्य 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहकर स्वीकार किया है।

गुरु नानक की रचनाओं के काव्य-पक्ष पर विचार करते समय, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि काव्य का कलात्मक सृजन उनका उद्देश्य नहीं था। उनके लिए कविता एक उद्देश्य का साधन मात्र है। वे सत्य के प्रचारक थे और कविता उस जीवनादर्श की पूर्ति का एक प्रभावशाली साधन थी। उस परम शक्ति के सम्मुख अपना पूर्ण आत्म-समर्पण उनके कवि-व्यक्तित्व की चरम उपलब्धि है। जहां कहीं उन्होंने अपने आपको कवि (शायर) कहकर व्यक्त किया है, वहां इस महती आकांक्षा को ही व्यक्त किया है—

सासु मासु सभु जीअ तुमारा तूं मैं खरा पिआरा।
नानकु साइरु एव कहतु है सचे परवदगारा॥

(धनासरी म० १)

महान् कविता में अनुभूति की सच्चाई और कल्पना का संयोग रहता है। गुरु नानक की अधिकांश कविता आध्यात्मिक कविता है, यद्यपि उसमें अपने युग की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों के मार्मिक चित्र भी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं। उनकी दोनों प्रकार की कविता आध्यात्मिक तथा लौकिक में प्राप्त सौन्दर्य इस बात पर आश्रित है कि उनकी सारी अनुभूति स्वयं-प्राप्त अनुभव द्वारा अर्जित है। काव्य का काव्यत्व इसी में है कि वह अन्तर्जीवन को व्यक्त करे। जिसका भाव-पक्ष जीवन में अनुभूत नहीं है उसकी कविता कृत्रिमता से अपने को मुक्त नहीं कर सकती। इसीलिए यह कहा जाता है कि महान् कविता दुधारी तलवार होती है। वह पाठक या श्रोता को तभी काट पाती है, जब उसने पहले कवि को ही काटा हो।

भारतीय काव्यशास्त्र में कविता पर विचार करते समय सर्वप्रथम ध्यान उस कविता द्वारा व्यंजित होने वाले रस पर जाता है। आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना है। रसानुभूति की दृष्टि से गुरु नानक की कविता उत्कृष्ट कोटि की है। भक्तिकाव्य में मुख्यत: शांत और शृंगार रस की व्याप्ति रहती है। सांसारिकता के प्रति विरक्ति और परम सत्ता से एक रूप होने की महती आकांक्षा से भरे अनेक पद गुरु नानक की वाणी में शांत रस का संचार करते हैं। वे कहते हैं—"अनाहत शब्द अनाहत गति से रुनुझुन-रुनुझुन बज रहा है। हे प्यारे राम, मेरा मन तुमसे पूरी तरह अनुरक्त हो गया है। सांसारिकता से वीतराग मन रात दिन राम में डूबा हुआ है और वह शून्य मंडल में घर पा गया है। सद्गुरु ने उस आदि पुरुष परमेश्वर का साक्षात्कार करा दिया है। वह अपने आसन पर स्थिर है। और मेरा मन उसमें विचारपूर्वक लग गया है। जो वैरागी पुरुष नाम में डूबे हैं, उन्हें रुनझुन-रुनझुन का आत्म-संगीत सुनाई पड़ रहा है।"[1]

इसी प्रकार एक अन्य पद में वे कहते हैं—

मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि।
जिन खिनु पलु नामु न वीसरै ते जन विरले संसारि ॥ १ रहाउ ॥
जोती जोति मिलाइऐ सुरती सुरति संजोगु।
हिंसा हउमै गतु गए नाही सहसा सोगु ॥
गुरमुखि जिसु हार मनि वसे तिसु मेले गुरु संजोगु ॥

(सिरी रागु—म० १

शृङ्गार रस

साहित्य में इस रस के दो रूप चित्रित किये गये हैं। पहला सांसारिक नर-नारियों के प्रणय लीलाओं से परिपूर्ण है, जिसे 'लौकिक शृंगार' कहते हैं। दूसरा स्वरूप वह है जिसमें प्रेम का आलम्बन कोई सांसारिक प्राणी न होकर परमात्मा ही होता है। गुरु नानक की रचनाओं में इस प्रकार के अलौकिक अथवा आध्यात्मिक शृंगार के मधुरतम चित्र उपलब्ध हैं। एक पद में गुरु

---

१. अनहदो अनहदु बाजै रुणझुणकारे राम।
मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम ॥
अनदिनु राता मनु वैरागी सुन मंडली धरु पाइआ।
आदि पुरखु अपरंपरु पिआरा सतिगुरि अलखु लखाइआ।
आसणि वैसणि थिरु नाराइणु तितु मनु राता वीचारे।
नानक नामि रते वैरागी अनहद रुण झुण कारे। (आसा म० १, छंत)

नानक ने जीवात्मा-रूपी स्त्री के पति-परमात्मा से संपर्क की चार अवस्थाएं बतलाई हैं। पहली अवस्था वह है जिसमें जीवात्मा-रूपी स्त्री परमात्मा-रूपी पति से अनजान रहती है। दूसरी अवस्था में उसे अपने प्रियतम का बोध होता है और उसमें यह विश्वास जागृत होता है कि वह गुरु की कृपा से मिल सकता है। तीसरी अवस्था में वह ससुराल पहुँचकर अपने प्रियतम से पूरी परिचित होती है और चौथी, अंतिम, अवस्था में वह भय तथा प्रेम भाव का श्रृंगार करके अपने प्रियतम के पास जाती है, प्रियतम उसे अपनी बना लेता है और सदैव उसके साथ रमण करता है।[1]

सामान्य नारी अपने पति को रिझाने के लिए श्रृंगार करती है। परन्तु जीवात्मा रूपी नारी कौन-सा श्रृंगार करे कि पति-परमेश्वर उससे प्रसन्न हो। गुरु नानक कहते हैं—श्वास-रूपी सूत के धागे में मन-रूपी मोती को पिरोकर उसे पहने। क्षमारूपी श्रृंगार को जीवात्मा-रूपी कामिनी अपने शरीर पर धारण करे, तो वह अपने प्रियतम की प्यारी बनती है। वह हरि नाम को कंठ-हार बनाती है, दामोदर नाम उसका दंदासा है, कर्त्ता ही उसके हाथ का कंगन है, मधुसूदन नाम उसकी मुद्रिका है, परमेश्वर नाम उसके रेशमी वस्त्र हैं, धैर्य उसकी मांग की पट्टी है, ईश्वर-प्रेम का रंग उसका सुरमा है, मन-रूपी मंदिर में वह विवेक का दीपक जलाती है, अपनी काया को प्रिय मिलन की सेज बनाती है तब ज्ञानस्वामी परमात्मा उसके साथ रमण करता है।[2]

पति-परमेश्वर के प्रेम में डूबी हुई जीवात्मा-नारी उसे एक क्षण के लिए भी नहीं भूलती। गुरु नानक कहते हैं, मैं उस प्रियतम को एक घड़ी भी क्यों विसराऊं। मैं उस पर बलिहारी हूं, उसी का गुणगान करके जीती हूं। इस संसार

---

१. पेवकड़ै धन खरी इआणी। तिसु सह की मैं सार न जाणी ॥
सहु मेरा एकु दूजा नहीं कोई। नदरि करे मेलावा होई ॥१॥ रहाउ ॥
साहुरड़ै धन साचु पछाणिआ। सहजि सुभाइ अपणा पिरु जाणिआ ॥२॥
गुर परसादी ऐसी मति आवै। ता कामणि कंतै मनि भावै ॥३॥
कहतु नानकु मैं भाव का करे सीगारु। सद ही सेजै रवै भतारु ॥४॥

२. मन मोती जे गहणा होवै पउणु होवै सूतधारी।
खिमा सीगारु कामणि तनि पहिरै रवै लाल पिआरी ॥१॥
लाल बहु गुणि कामणि मोही। तेरे गुण होहि न अवरी ॥१॥ रहाउ ॥
हरि हरि हारु कंठि लै पहिरै दामोदर दंतु लेई।
करि करि करता कंगन पहिरै इन विधि चितु धरेई ॥२॥
मधुसूदनु कर मुंदरी पहिरै परमेसरु पटु लेई।
धीरजु धड़ी बंधावै कामणि सीरंगु सुरमा देई ॥३॥
मन मंदरि जे दीपकु जाले काइआ सेज करेई।
गिआन राउ जब सेजै आवै त नानक भोगु करेई ॥४॥ (आसा, महला १)

में मेरा और कोई नहीं, हरि के विना में रह नहीं सकती। उसकी शरण ग्रहण करके मेरा शरीर पवित्र हो गया है। प्रभु की कृपा दृष्टि से महान् सुख की प्राप्ति हुई और गुरु-उपदेश से मेरा मन टिक गया है।[1]

जीवात्मा अपनी कल्पना में जब पति-परमेश्वर का चित्र खींचती है तो वह सौंदर्य से भरपूर होता ही है। गुरु नानक की कविता में इस प्रकार के अतीव सुहावने चित्र भी हैं जिनमें हरि का स्वरूप वर्णित है—

तेरे वंके लोइण दंत रीसाला।
सोहणे नक जिन लंमड़े वाला ॥
कंचन काइआ सुइने की ढाला।
सोवन ढाला कृसन माला जपहु तुसी सहेली हो।
जम दुआरि न होहु खड़ीआ सिख सुणहु मेहेली हो।
हंस हंसा वग वगा लहै मन की जाला।
वंके लोइण दंत रीसाला ॥७॥
तेरी चाल सुहावी मधुराड़ी वाणी।
कुहकनि कोकिला तरल जुआणी ॥
तरला जुआणी आपि भाणी इछ मन की पूरीए।
सारगं जिठ पगु धरे ठिमि ठिमि आपि आपु संधूरए ॥
स्री रंग राती फिरै माती उदकु गंगा वाणी।
बिनवंति नानकु दासु हरि का तेरी चाल सुहावी मधुराड़ी वाणी ॥

(वडहंस, म० १)

परन्तु प्रेम की तीव्रता संयोग के माध्यम से नहीं वियोग के माध्यम से अनुभूत होती है। संसार की सर्वोत्कृष्ट श्रृंगार कविता विरह की मार्मिक अभिव्यक्तियों की ही कविता है। गुरु नानक की कविता में प्रिय-वियोग में जीवात्मा-नारी की मनःस्थिति के जो चित्र मिलते हैं वे अपने में बेजोड़ हैं। विरहिणी क्या करे? उसके पास और विकल्प ही क्या है कि वह अपने पलंग की पाटियों के साथ अपनी चूड़ियां तोड़ डाले, अपनी बांहें भी क्षत-विक्षत कर दे। उसका इतना वेश और श्रृंगार किस काम का, जब उसका प्रिय दूसरे के साथ रमण कर रहा है। विरहिणी के पास न (गुरु रूपी) मनिहार है और न (भक्ति रूपी) चूड़ियां।

---

१. तू सुणि हरि रस भिने प्रीतम आपणे।
मन तनि रवत रवने घड़ी न वीसरे ॥
किउ घड़ी विसारी हउ बलिहारी हउ जीवा गुण गाए।
ना कोउ मेरा हउ किस केरा हरि बिनु रहणु न जाए ॥
ओट गही हरि चरण निवासे भए पवित्र सरीरा।
नानक द्रसटि दीरघ सुखु पावै गुर सबदी मनु धीरा ॥३॥ (तुखारी, म० १ बारहमाहा)

जो बांहें पति के गले के साथ नहीं लगती, उनका जल जाना ही अच्छा है।

विरहिणी ने बालों को भली प्रकार गूंथा, बीच से पट्टी निकाली, मांग में सिंदूर भरा। परन्तु इतना श्रृंगार करने पर भी वह प्रिय द्वारा स्वीकृत नहीं हुई। वह विसूर-विसूरकर मर रही है। उसे रोती देख सारा संसार रोने लगा, वन के पक्षी भी रोने लगे किन्तु विरहिणी के शरीर का वियोग, जिसने उसे प्रिय से अलग कर दिया है, न रोया।

प्रिय स्वप्न में आया और चला भी गया, विरहिणी उसके वियोग में आंसू भर कर रोई। न वह प्रिय तक जा सकी, न किसी को भेज सकी। हे भाग्य-शालिनी नींद, तू ही आ जा। कदाचित स्वप्न में ही प्रिय के दर्शन कर सकूं।[1]

प्रभु-विरह की इस स्थिति का ज्ञान सांसारिक व्यक्तियों को तो होता नहीं। वे अंतर की इस व्याधि को शारीरिक व्याधि समझते हैं और इसके उपचार के लिए वैद्य को बुला भेजते हैं। ऐसा वैद्य नब्ज़ टटोलकर रोग जानना चाहता है। उसे क्या पता कि विरह की किरक तो कलेजे में है—

वैद बुलाइया वैदगी, पकड़ि ढंडोले बांह।
भोला वैदु न जाणई, करक कलेजे मांहि॥

(मलार की वार)

करुण रस

गुरु नानक की दृष्टि में जीव की सर्वाधिक करुणाजनक स्थिति यह है कि वह विषयों के चक्कर में पड़कर सत्य-प्राप्ति के मार्ग को विस्मृत कर दे। जिस प्रकार हरिण मीठे फल के लोभ में फंस कर मर जाता है, जिस प्रकार भंवरा पुष्पों की आसक्ति में पड़कर दुःख पाता है उसी प्रकार सांसारिक प्राणी मायिक

---

१. चूड़ा भंनु पलग सिउ मुंधे सणु बाही सणु बाहा।
एते वेस करेदीए मुंधे सहु रातो अवराहा।'
ना मनीआरु न चूड़ीआ ना से वंगुड़ीआहा।
जो सह कंठि न लगीआ जलनु सि बाहड़ीआहा॥
... ...

माठि गुंदाईं पटीआ भरीऐ मांग संधूरे।
अगै गई न मंनीआ मरउ विसूरि विसूरे॥
मैं रोवंदी सभु जगु रुना रुंनड़े वणहु पंखेरु।
इकु न रुना मेरे तन का बिरहा जिनि हउ पिरहु विछोड़ी॥
सुपनै आइआ भी गइआ मैं जलु भरिआ रोइ।
आइ न सका तुझ कनि पिआरे भेजि न सका कोई॥
आउ सभागी नीदड़ीए मतु सहु देखा सोइ॥ (वडहंस, म० १)

पदार्थों के रस में पड़कर महान् कष्ट उठाते हैं। यमराज के दूतों द्वारा बांधे जाकर उनकी चोटें खाकर आर्त्तनाद करते हैं।[1]

गुरु नानक कहते हैं कि बिना हरि के मन वसे सांसारिक प्राणी चारों ही युगों में दुःखी रहते हैं—आयु के अंतिम प्रहर में उनके हाथ-पैर तथा समस्त शरीर कांपने लगता है, नेत्र अंधे हो जाते हैं और शरीर भस्म की तरह हो जाता है।[2]

वीर रस

गुरु नानक की वाणी में दीनता का भाव बहुत अधिक नहीं है। वे साधक का निर्भय होना बहुत आवश्यक मानते हैं। वे परमात्मा के भय के अतिरिक्त अन्य किसी भय को स्वीकार नहीं करते। सांसारिक भय को तो वे मन का शोर मात्र ही मानते हैं—

डरीऐ जो डरु होवे होरु। डरि-डरि डरणा मन का सोरु॥

(गउड़ी, म० १)

इसलिए सभी की रक्षा करने वाले सद्गुरु का एक बहुत बड़ा गुण उसका निर्भय होना भी है—

निरभउ सतिगुरु है रखवाला। भगति परापत गुरु गोपाला॥

(मारु सोहले म० १)

साधक के लिए उनका उपदेश है—संसार सागर को गुरु-शब्द का सहारा लेकर पार कर जाओ। आंतरिक दुविधा को अपने अंदर ही जला डालो। गुरु-शब्द रूपी धनुष को चढ़ाकर पांच बाणों (सत्य, संतोष, दया, धर्म और धैर्य) से यमराज को मार डालो।[3]

---

१. तूं सुणि हरणा कालिआ, की वाड़िऐ राता राम।
विखु फलु मीठा चारि दिन, फिरि होवै ताता राम॥
... ...
भवरा फूलि भवंतिआ दुखु अति [भारी राम।
मैं गुरु पूछिआ आपणा साचा वीचारी राम॥
सूरज चड़िआ, पिंडु पड़िया तेल तावणि तातओ॥
जम मगि बाधां खाहि चोटा सबद विनु बेतालिआ।
सचु कहै नानक चेति रे मन, मरहि भंवरा कालिआ॥ (आसा म० १)

२. कर कंपि चरण सरीरु कंपै नैण अंधुलै तनु भसम से।
नानक दुखीआ जुग चारे विनु नाम हरि के मनि वसे। (तुखारी म० १)

३. इहु भउजलु जगतु सबदि गुर तरीए।
अंतर की दुबिधा अंतरि जरीए॥
पंच बाण ले जम कउ मारै॥
गगनंतरि धणखु चड़ाइआ॥ (मारु सोहले)

साहित्य के इन प्रमुख रसों के अतिरिक्त अन्य रसों के उत्तम उदाहरण भी गुरु नानक की रचनाओं में उपलब्ध हैं। रौद्र रस को ही लीजिए। अपने समय के राजाओं, सामंतों, राज्य-कर्मचारियों द्वारा निरीह जनता पर किये जाने वाले अत्याचारों पर अपना तीव्र रोष प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा—इस युग के राजा सिंह के समान हिंसक हो गये हैं, उनके सामंत कुत्तों के समान लालची हैं और शान्त जनता को अनायास पीड़ित करते हैं। उनके नौकर अपने पैरों के नाखूनों से लोगों को जख्मी करते हैं और उनका लहू कुत्तों की तरह चाट जाते हैं। जहां इनके कर्मों की परख की जाएगी, वहां इन लोगों की नाक काट ली जाएगी।[1]

भारत में फैली हुई अनेक धर्म-साधनाओं की क्रिया किस सीमा तक घृणास्पद हो गई थी, इसका वर्णन उन्होंने 'माझ की वार' में किया है जो बीभत्स रस का अनुपम उदाहरण है—

सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी जूठा मंगि मंगि खाही।
फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा पाणी देखि सगाही॥

(ये लोग सिर के बाल नुचवाकर गंदा पानी पीते हैं और जूठी (रोटी) मांग-मांग कर खाते हैं। (वे) अपना मल फैला देते हैं और मुंह से गंदी सांस लेते हैं और पानी देखकर सहम जाते हैं।)

इसी प्रकार हास्य और व्यंग्य की चुटकियां भी उनकी कविता में यत्र-तत्र मिलती हैं। एक स्थान पर वे रासधारियों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं—"रासों में चेले बाजे बजाते हैं और गुरु नाचते हैं। नाचते समय गुरु पैरों को हिलाते हैं और सिर घुमाते हैं। पैरों को पटकने से धूल उड़-उड़ कर उनके बालों में पड़ती है। दर्शकगण उन्हें नाचते देखकर हंसते हैं।"[2] एक अन्य स्थल पर मुग़ल शासन के हिन्दू कर्मचारियों की 'बाहर कुछ अंदर कुछ' वाली नीति पर चोट करते हुए वे कहते हैं—"गऊ और ब्राह्मण पर तो तुम कर लगा रहे हो और गोबर से अपना घर लीप कर समझते हो कि तुम तर जाओगे। मलेच्छों का

---

१. राजे सीह मुकदम कुत्ते।
जाइ जगाइन बैठे सुत्ते॥
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ।
रतु पितु कुतिहो चटि जाहु॥
जिथै जीआं होसी सार।
नकीं वढीं लाइतबार॥ (रागु मलार, वार न० १)

२. वाइनि चेले नचनि गुर। पैर हिलाइनि फेरन्हि सिर।
उडि उडि रावा झाटै पाइ। वेखै लोकु हसै घरि जाइ॥

(आसा की वार न० १)

धान खाते हो और ऊपर से धोती, तिलक और माला धारण करते हो। घर के अंदर पूजा करते हो परन्तु ऊपर से तुर्कों को प्रसन्न करने के लिए उनके धर्म ग्रंथ पढ़ते हो और उन्हीं के जैसा रहन-सहन रखते हो।"[1]

बिंब विधान

गुरु नानक की कविता में प्रकृति से लिये हुए बिंब भी हैं और दैनिक जीवन से लिये हुए भी। प्राकृतिक बिंबों में ऋतुएं और उनका परिवर्तन, आकाश, सूर्योदय, सूर्यास्त, बादल, वर्षा, वायु, धूप और छाया, वन, उद्यान, वृक्ष, फूल, पौधे, नदियां और समुद्र, पशु, पक्षी आदि अनेक जीव-जंतु आदि सभी प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग किया गया है। गुरु नानक की आरती इस दृष्टि से उनके काव्य का सर्वोत्तम उदाहरण है जहां वे कहते हैं—"आकाश के थाल में सूर्य और चंद्रमा दीपक बन कर जल रहे हैं, नक्षत्रगण मोतियों के समान बिखरे हुए हैं। मलय पर्वत की ओर से आता हुआ अनिल धूप का काम देता है, हवा चंवर डुला रही है। और वृक्ष अपने सुंदर-सुंदर फूलों को उपहार में लेकर खड़े हैं। अनहद नाद की भेरी बज रही है। विश्व तेरे समक्ष क्या ही भली आरती कर रहा है।"[2]

बिंब हमारी मानसिक प्रतिमा के पर्याय हैं। ये प्रतिमाएं स्मृतिजन्य भी होती हैं और स्वनिर्मित भी। समर्थ कवि स्वनिर्मित प्रतिमाओं द्वारा हमारे सम्मुख नये-नये बिंबों का निर्माण करता है। गुरु नानक के काव्य में यह सामर्थ्य हमें स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। आसा राग की पट्टी में उन्होंने गुरुमुखी वर्णमाला के ३५ अक्षरों की मौलिक अर्थ-व्यंजना की है और उस माध्यम से नये-नये बिंबों का निर्माण किया है। यहां उस पट्टी से एक उदाहरण ही समीचीन होगा—'ब' का अर्थ है—ईश्वर चारों युगों को चौपड़ बनाकर खेल की बाजी खेल रहा है। सभी जीव-जंतुओं को उसने अपने इस खेल का मोहरा बनाया है और वह स्वयं पासा फेंक रहा है।[3]

---

१. गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई।
धोती टिका ते जपमाली धानु मलेछां खाई॥
अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई॥ (आसा की वार)

२. गगन में थाल रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फुलंत जोती॥
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती।
अनहता सबद वाजंत भेरी। (धनासरी म० १)

३. बबै बाजी खेलण लगा चउपड़ि कीते चारि जुगा।
जीअ जंत सभ सारी कीते पासा ढालणि आपि लगा॥ (आसा म० १ पटी)

रूपक

प्रत्येक काव्यात्मक बिंब कुछ अंशों में रूपात्मक होता है। गुरु नानक के काव्य की सर्वोत्तम छटा उनके द्वारा प्रयुक्त रूपकों में है। उन्होंने जीवन के विविध पक्षों से रूपकों को चुना और उन्हें आध्यात्मिकता, सदाचरण, जीवन दृष्टि, और जीवन-निर्माण की दिशा में बड़े प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया। उदाहरण के लिए 'जपुजी' का यह रूपक लीजिए। ईश्वर नाम का सिक्का किस प्रकार ढाला जाय ? गुरु नानक कहते हैं—"संयम की भट्टी हो, धैर्य सुनार हो, बुद्धि निहाई हो, ज्ञान हथौड़ी हो, परमात्मा का भय धौंकनी हो, तपश्चर्या अग्नि हो, भाव पात्र हो जिसमें नाम-रूपी अमृत गलाया हुआ सोना हो। इस प्रकार की सच्ची टकसाल में गुरु शब्द रूपी सिक्का ढालना चाहिए।"[1]

इसी प्रकार कृषि-जीवन से लिया यह रूपक देखिए—"मन हलवाहा हो, शुभ करनी की कृषि, श्रम का पानी हो तथा शरीर खेत हो। नाम का बीज हो, उसमें संतोष का सुहागा हो और नम्रता की बाड़ हो। भावपूर्ण कर्म करो वह बीज उसमें उगेगा और घर में भाग्य-उदय हो जाएगा।"[2]

रूपकों के चयन की दृष्टि से गुरु नानक की बहुज्ञता एवं सूक्ष्मदर्शिता द्रष्टव्य है। अमृत-रस वाली शराब कैसे बनती है ? गुरु नानक कहते हैं—"परमात्मा के ज्ञान को गुड़ बनाओ, ध्यान को महुआ बनाओ, शुभ करणी बबूल की छाल हो। भावना की भट्टी और प्रेम को पोचा बनाओ। इस प्रकार अमृत वाली मदिरा चुएगी।"[3]

गुरु नानक स्थापित मान्यताओं, मूल्यों और विश्वासों का विरोध नहीं करते बल्कि अपने रूपकों के माध्यम से उन्हें नया अर्थ दे देते हैं। पंडित उन्हें यज्ञोपवीत पहनाने आया तो उन्होंने कहा—"पंडित जी, यदि आपके पास दया की कपास से, संतोष के सूत से, संयम की गांठ और सत्य के पूरन से बना हुआ जनेऊ हो तो मुझे पहना दो।"[4]

---

१. जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु। अहरणि मति वेदु हथीआरु॥
भउ खला अगनि तपनाउ। भांडा भाउ अमृत तितु ढालि॥
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल। जिन कउ नदरि करमु तिन कार॥ (जपुजी, पउड़ी ३८)

२. मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु।
नामु बीज संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु॥
भाउ करम करि जंमसी से घर भागठ देखु॥१॥ (सोरठ म० १)

३. गुड़ करि गिआनु धिआनु करि धावे करि करणी कसु पाईऐ।
भाठी भवन प्रेम का पोचा इतु रसि अमिउ चुआईऐ॥ (आसा म० १)

४. दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पांडे घतु॥ (आसा म० १)

इसी प्रकार वे किसी मत, धर्म या विश्वास का खंडन भी नहीं करते। उसे भी वे अपनी मान्यता द्वारा नया अर्थ देते हैं। वे योगी से कहते हैं—"हे योगी, तुम संतोष और श्रम को मुद्रा बनाओ, इज्ज़त की झोली धारण करो, परमात्मा का ध्यान तुम्हारी विभूति हो, काल तुम्हारी कथा हो, तुम्हारी देह कुमारी की तरह पवित्र हो, युक्ति एवं विश्वास को ही डंडा बनाओ। सभी को अपना समझना ही तुम्हारा पंथ हो मन को जीतना ही संसार को जीतना है।"[1]

मुसलमान के लिए वे कहते हैं—"दया ही तुम्हारी मस्जिद हो, श्रद्धा ही तुम्हारे नमाज़ पढ़ने का वस्त्र मुसल्ला हो, हक की कमाई को कुरान बनाओ, शर्म को ही सुन्नत मानो, शील-स्वभाव को रोज़ा बनाओ। तभी तुम सच्चे मुसलमान बनोगे।"[2]

गुरु नानक सत्य के प्रचारक थे। कविता उनके संदेश की वाहक थी। अपने महान् संदेश की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने जिस काव्य का सृजन किया, उनकी वाणी का स्पर्श पाकर वह भी उतनी ही महान बन गई।

---

१. मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि विभूति।
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति॥
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु॥ (जपुजी, २८)

२. मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु।
सरम सुनंति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु॥ (माझ म० १)

: १८ :

पंजाबी भाषा और साहित्य को गुरु नानक की देन

सन्तसिंह सेखों

पंजाबी भाषा और साहित्य के विकास में गुरु नानक का महान् योगदान इतिहास में उनकी एक प्रमुख उपलब्धि है, तथा इस कारण से उनकी आध्यात्मिक महानता में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। वास्तव में, गुरु नानक को पंजाबी साहित्य का असली संस्थापक मानना पड़ेगा, पांचवें गुरु ने 'आदि ग्रंथ' में यदि शेख फरीद के श्लोकों को न संजोया होता तो या तो वे लुप्त ही हो जाते, अथवा जनपदीय संस्कृति के भ्रष्ट रूप में हमें प्राप्त होते। आज भी ये श्लोक जिस रूप में हमें प्राप्य हैं, उस पर 'गुरबानी' के मुहावरे की स्पष्ट छाप दिखती है, जिसके प्रथम रचनाकार गुरु नानक ही थे।

'आदि ग्रंथ' में गुरु नानक की रचनाएं कम से कम तीन शैलियों में लिखी गई हैं, जो प्रायः पंजाबी भाषा के उद्भव तथा विकास के तीन चरणों का संकेत देती हैं। एक तो है अपभ्रंश शैली, जिसका व्यवहार, हर जगह की गीत शैलियों से प्रभावित तथा भारतीय साहित्य की परम्परा के अनुकूल, संकोच और लज्जा का आवरण ओढ़े, उनके गीतों में हुआ है। इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण 'गुरु ग्रंथ साहिब' के अंत में लिखे गये श्लोकों में दिखता है। दूसरी शैली 'साधु भाषा' की छाप लिये हुए है। इसके अंतर्गत, 'दक्खनी ओंकार', 'सिद्ध गोष्ठी' तथा राग गौड़ी और मारू में रचित गुरु नानक की बहुत सी आध्यात्मिक कृतियां आ जाती हैं। तीसरी शैली जो आधुनिक पंजाबी के रूप और मुहावरों के समीप है, अधिकतर उन रचनाओं में व्यक्त होती है जिनमें सामाजिक तथा नैतिक आलोचनाएं हैं। फिर, इन रचनाओं में भी कुछ ऐसी हैं जिनमें और रचनाओं की अपेक्षा पश्चिमी पंजाब का मुहावरा अधिक स्पष्ट है। पश्चिमी पंजाब का मुहावरा अधिक गीतिमय भी है, जो 'सुही' तथा 'तुखारी' रागों में (विशेष रूप से बारामाह) में स्पष्ट है। अन्य रचनाओं के मुहावरे केंद्रीय हैं, जैसे 'आसा, वडहंस तथा विलावल' रागों में। गुरु नानक की रचनाओं की यह तीसरी शैली ही आज तक के सारे पंजाबी साहित्य का एक प्रकार से आधार रही है, और इसके अन्तर्गत प्रारम्भिक मुसलमान सूफी, जैसे शाह हुसैन, तथा कादिर यार और शाह मोहम्मद आ जाते हैं लेकिन इस परम्परा में सबसे महान् है, दूसरे गुरु से पांचवें गुरु तक तथा गुरुकालीन भाई गुरुदास, जिनके पश्चात भ

वीरसिंह से लेकर आज तक के सभी आधुनिक लेखक गिने जा सकते हैं।

यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि गुरु नानक ने अपनी रचनाओं के लिए पंजाबी माध्यम क्यों चुना ? और इसका उत्तर देना भी कठिन नहीं है।

गुरु नानक ने अपने पूर्ववर्त्ती, बुद्ध के समान, संस्कृत का बहिष्कार किया, जो कि उस समय न केवल जन-भाषा के रूप में समाप्त हो चुकी थी अपितु एक छोटे से वर्ग, मुख्यतया ब्राह्मणों के पुजारी वर्ग के अतिरिक्त, और कहीं भी समझी नहीं जाती थी। ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा का तीव्रता से ह्रास हो रहा था, और समूचे देश से उनके विरुद्ध विद्रोह की आवाज़ें सुनाई पड़ रही थीं। इसके विशेष कारण थे। विजेता इस्लाम-मतावलम्बियों के आक्रमण और ब्राह्मण धर्म की निराशाजनक राजनैतिक और सामाजिक असफलता। उन विद्रोही स्वरों में से एक स्वर गुरु नानक का भी था जिसने अन्य भक्ति-सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक उग्रता से अधोगत ब्राह्मणत्व की निन्दा की। साथ ही इसके पास कबीर, रविदास और नामदेव आदि भक्तों की अपेक्षा खेतिहर तथा निम्न व्यापारी को ऊपर उठाने के लिए एक अधिक उच्च सामाजिक आधार था। अपने मत की प्रकृति के अनुकूल ही वे ऐसी भाषा के व्यवहार की ओर प्रेरित हुए जो जनमानस के निकट थी, न कि संस्कृत प्रधान उस भाषा की ओर जो फिर से ब्राह्मण संस्कृति तथा धर्म द्वारा स्वीकृत थी, यद्यपि इसका रूप गुप्तकालीन संस्कृत के रूप से भी भ्रष्ट हो चुका था।

समय के अनुसार गुरु नानक को नए साहित्यिक माध्यम का प्रयोग करना ही था। वास्तव में उन्हें इसका विकास करना था। विकास के इस प्रयोग में उन्हें अपभ्रंश और साधु भाषा के रूपों का भी प्रयोग करना था जिसका भक्तों और साधुओं ने लगभग समस्त भारत में व्यवहार करना आरम्भ कर दिया था। परन्तु वह जनता की भाषा की ओर और आगे बढ़े और भाषा को उन्होंने जो विकास दिया वही बाद में पंजाब की भाषा कहलाई।

यह कहना सरल नहीं है कि उपर्युक्त तीसरी शैली में गुरु नानक की भाषा उस समय साधारण भाषा के कितने निकट थी। इसकी एक प्रमुख विशेषता है क्रिया अनिश्चित भूतकाल के रूप में प्रयोग, जो कि उसे साहित्यिक मार्ग से ही नहीं अपितु पचास वर्ष के उपरान्त 'जन्म साखी' में प्रयोग होने वाले गद्य से भी पृथक कर देता है। भाई गुरुदास के काव्य में भी सम्पूर्ण वर्तमान-क्रिया का लोप है। लाहौर के शाह हुसैन और झंग के दामोदर, भाई गुरुदास के समसामयिक हैं। दामोदर ने झंग-शाहपुर की पश्चिमी बोली का सर्वथा प्रयोग किया है, परन्तु उनके प्रयोग में इसका रूप आधुनिक मुहावरों और बोल-चाल के अधिक निकट है। परन्तु इन सबके द्वारा पद्य में रचना होने पर भी भाषा में अभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता नहीं दिखाई देती।

गुरु नानक के मुहावरों में और भी बहुत से तत्त्व हैं जिनका आधुनिक पंजाबी में परित्याग हो गया है जैसे, सम्बन्ध वाचक सर्वनाम, आधिकारिक सम्बन्ध बोधक, और आधुनिक पंजावी की अपेक्षा साधु-भाषा, राजस्थानी और व्रज रूपों से मिलते-जुलते कुछ क्रिया-रूप। ऐसा प्रतीत होता कि साधु भाषा की परम्परा का प्रभाव, तत्कालीन बोलचाल की भाषा की अपेक्षा गुरु नानक पर अधिक पड़ा। परन्तु इतने पर भी, कहीं-कहीं गुरु नानक के मुहावरे आकर्षक रूप से आधुनिक हैं तथा साहित्यिक पंजावी की परम्परा की प्रकृति, गुरु नानक, भाई गुरुदास और शाह हुसैन की परम्परा पर आधारित हुई दीखती है।

(२)

भाषा को निर्मित, पोषित और विकसित करने वाले प्रसिद्ध लेखकों का भाषा से सम्बन्ध इतना सरल नहीं होता। लेखक जन-साधारण की भाषा को कच्चे माल के रूप में ग्रहण करता है। परन्तु जब वह उसे साहित्य के रूप में जनता को लौटाता है तब वह इसमें कुछ योग कर चुका होता है, इसे सुनियोजित, परिष्कृत और समृद्ध किए होता है क्योंकि इस सम्बन्ध की परिपक्वता के उपरान्त भाषा अपने विकास में एक या अधिक स्तरों पर और प्रौढ़ होती है। जब गुरु नानक ने पंजावी भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया तब वह पूर्णतया समर्थ न रही होगी। साधारण लोग धार्मिक और सामाजिक संस्कार संस्कृत में करते थे। इस रीति से संस्कृत शब्दावली का कुछ अंश अवश्य ही मूल या थोड़े-बहुत परिवर्तित रूप में साधारण भाषा में प्रविष्ट हो गया होगा। परन्तु यह उनकी शब्दावली का आवश्यक अंग न बन सका होगा, क्योंकि भाषा की मौखिक शब्दावली सदैव उसकी लिखित शब्दावली से काफी कम होती है, और जब किसी भाषा का प्रयोग लिखने में अधिक नहीं होता, तब उससे व्यापक शब्दावली की आशा भी नहीं की जा सकती। अवश्य ही, उन दिनों भी जन-भाषा में किसी प्रकार का लेखन होता रहा होगा। उदाहरणस्वरूप, काफी पुराने समय से दूकानदारों और व्यापारियों की वहियों में टाकरे तथा लंडा लिपियों का प्रयोग होता रहा है जिसमें छोटे व्यापारों की सामान्य शब्दावली मिलती है। परन्तु इन लिपियों से तनिक भी परिचित व्यक्ति यह मानेगा कि वे काफी प्रारम्भिक हैं और स्वभावतः उनमें अपनी अभिव्यक्ति की सामर्थ्य भी इससे वेहतर नहीं हो सकती।

इतना कहना पर्याप्त होगा कि गुरु नानक ने धर्म और नैतिक शिक्षा के उच्च उद्देश्य के लिए ही पंजावी भाषा का प्रयोग किया, जिसका कि पहले हमारे विचार से, कुछ मुस्लिम सन्तों के अतिरिक्त अधिक प्रयोग नहीं हुआ था, जिन्होंने इसमें इस्लाम के कुछ अरबी शब्दों का समावेश किया होगा। शासन से ...

और व्यापार के कारण निश्चय ही कुछ अरबी-फारसी के शब्द लोगों की बोली में आ गए होंगे। परन्तु मुस्लिम सन्तों ने कभी-कभार के अतिरिक्त अपनी धार्मिक शिक्षाओं के लिए पंजाबी का प्रयोग नहीं किया। जो भी हो, उन्होंने गुरु नानक के समान पंजाबी को अपनी धार्मिक शिक्षा का मूल और सम्पूर्ण माध्यम नहीं बनाया। इस प्रकार, गुरु नानक ने पंजाबी भाषा को वृहत् धार्मिक और नैतिक शब्दावली दी, जिसका कि केवल एक छोटा-सा अंश ही सामाजिक और धार्मिक संस्कारों के द्वारा पंजाबी लोगों के सामने रहा होगा।

गुरु नानक की रचना, जैसे 'जपुजी' की धार्मिक और नैतिक पारिभाषिक शब्दावली के अंश का उसके साथ आने वाली राजनैतिक, शासकीय और व्यापारिक शब्दावली के साथ मूल्यांकन करना काफी रोचक होगा। उनकी अधिकांश धार्मिक और नैतिक उपदेशों वाली शब्दावली का मूल वेदान्त है। गुरु नानक के आने के पहले लोग यदि वेदान्त से परिचित भी रहे होंगे तो केवल पूजा-पाठ में काम आने वाले संस्कृत मंत्रों तक ही।

उदाहरण के लिए, समस्त 'मूल-मंत्र' और गुरु नानक की अन्य रचनाओं तथा 'जपुजी' के अनेक शब्द केवल गुरु नानक के उपदेशों द्वारा ही पंजाबी के लिखित रूप में स्थान पा सके हैं। निश्चय ही, बहुत से अरबी फारसी के शब्द गुरु नानक द्वारा अपनी रचनाओं में अपनाए जाने के उपरान्त ही, भाषा में पूरी तरह से समाविष्ट हो सके हैं। अवश्य ही गुरु नानक द्वारा प्रयुक्त बहुत से संस्कृत-वेदांत और अरबी-फारसी के मूल शब्द समाविष्ट होने में असमर्थ रहे हैं। जैसे कि अब भी नए राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रभावों और आवश्यकताओं के कारण बहुत से विदेशी शब्द और नामों का पंजाबी तथा अन्य आधुनिक भाषाओं में आयात हो रहा है और वे भी थोड़े या बहुत समय तक भाषा में रहने के बाद असम्पृक्त और परित्यक्त बन जाएंगे। इस समय की यह प्रक्रिया गुरु नानक के समय में चलने वाले इसी प्रकार के विधि-क्रम का कुछ संकेत दे सकती है।

दूसरे शब्दों में, गुरु नानक ने उस समय लिखित पंजाबी में, वेदांतिक-संस्कृत मूल वाली या इस्लामी अरबी-फारसी मूल वाली जिस धार्मिक और नैतिक शब्दावली का आयात किया था, उनमें से अधिकांश पंजाब के लोगों की आम भाषा से या तो गायब हो चुके थे अथवा लगभग विदेशी तत्त्व की भांति थे।

(३)

गुरु नानक की पंजाबी भाषा को देन केवल शब्दों, नामों और भावों के उधार या आयात के रूप में विवेचित नहीं की जा सकती। गुरु नानक ने भाषा के लिखित रूप को कारक के नियमों के अनुसार आकार भी दिया। इस भाषा

की आम बोली के वाक्य की अपेक्षा गद्य या पद्य की लिखित भाषा का वाक्य अधिक सुनियोजित और स्पष्ट है। इस क्षेत्र में भाषा के विकास में लेखक का योगदान यदि अधिक नहीं तो कम से कम उतना ही महान् है जितना कि शब्दावली के क्षेत्र में। भाषा की अधिकांश शब्दावली की अपेक्षा उसका कारक-बद्ध संयोजन और अन्तिम रूप कहीं अधिक सम्पूर्ण अंश है। जितनी सरलता से शब्दों, नामों और निश्चित भावों को उधार लिया जा सकता है उतनी सरलता से कारकबद्ध आकार और शैली को नहीं अपनाया जा सकता। लेखक को भाषा के स्वदेशीय साधनों से ही उसके समस्त कारकबद्ध आकार तथा शैली का परिष्कार और विकास करना होता है। यद्यपि उसका लघु आकार जन बोली की देन है परन्तु उच्च आकार, लगभग सारे का सारा लेखक का योगदान है। कभी-कभी आदर्श के रूप में लेखकों के सामने लोक-गीतों में आए काव्य-भावों को इस निहित धारणा के साथ रखा जाता है कि मूल रूप में वे भाव जन-साधारण के थे। यह धारणा प्रायः भ्रमपूर्ण है।

लोक-गीतों की सारी कविताएं और प्रभावात्मकता साधारण व्यक्ति के भावों, संवेगों और बुद्धिमत्ता की स्वतःप्रेरित अंतःस्फूर्त या अनुभव-जन्य अभि-व्यक्ति नहीं है। वास्तव में, जन-साधारण ने ये तत्व अधिकतर धार्मिक और नैतिक शिक्षा तथा रिवाजों से ही ग्रहण किए हैं। यह अनुमान किया जा सकता है कि आम लोगों में से केवल अधिक सुसंस्कृत व्यक्ति ही लोक-गीत या लोक-काव्य को योग देते हैं। हम विश्वास कर सकते हैं कि गुरु नानक के समय में भी पंजाबी लोगों के पास लोक-गीतों का काफी समृद्ध भंडार था। गुरु नानक ने निश्चय ही काफी उन्मुक्तता से इसका उपयोग किया होगा। परन्तु यदि हम उनके काव्य का निकटता से निरीक्षण करें तो उनमें लोकगीतों का योगदान इतना बड़ा नहीं पाएंगे जितना तथाकथित रसिक कवियों की रचनाओं में। इस अर्थ में गुरु नानक पद्य में लिखने वाले एक बौद्धिक और सामाजिक-दार्शनिक अधिक हैं, और एक लोकप्रिय कवि कहीं कम। उनके काव्य में लोक धुनों, छन्दों और भावों का बाहुल्य तो है, लेकिन फिर भी, ये सब उनके काव्य का बृहद् अंश नहीं है। अधिकतर तो उनकी अपनी ही प्रतिभा, ज्ञान, उन्नत भावों और बुद्धि का योगदान है। उदाहरण के लिए बारहमाह को लिया जा सकता है जो शायद उनकी कविताओं में सबसे अधिक गीतात्मक है। सामान्यतः बारहमाह काव्य-रचना का एक लोकप्रिय रूप है। परन्तु गुरु नानक के बारहमाह में उस समय के लोकगीत में प्रचलित तत्व बहुत कम आ पाए हैं। यहां तक कि [illegible] हुई बिजलियां, फूल और अधिकतर भाव में आए हुए स्थानीय [illegible] काफी मौलिक हैं। उनकी बहुत-, [illegible] ओंकार और [illegible] आध्यात्मिक रचनाओं में, लोकगीत के भाव बहुत ही कम [illegible]

दूसरी ओर इन्हीं रचनाओं में उपनिषदीय और रहस्यात्मक रूप आसानी से देखे जा सकते हैं। परन्तु इनका रूपान्तर और ग्रहण ही स्वयं में पंजाबी काव्य रूप को एक मौलिक योगदान है। अवश्य ही गुरु नानक ने पहिरे, अलाहणी, पट्टी इत्यादि लोक रूपों का उन्मुक्तता से प्रयोग किया है परन्तु यहां उद्देश्य लोक-रूपों से नितान्त भिन्न है। यह लौकिक की अपेक्षा आत्मिक है।

गुरु नानक की वार रचनाओं में यह अन्तर जितना स्पष्ट है उतना और कहीं नहीं; लोक काव्य के प्रेम और वीर रस में सने होते हुए भी गुरु नानक ने इन्हें आध्यात्मिक तथा नैतिक शुचिता प्रदान की है।

(४)

भाषा तो केवल एक माध्यम है जिसके द्वारा लेखक अभिव्यक्ति खोजता है। वास्तव में जो अभिव्यक्त किया जाता है वही साहित्य बन जाता है। तो आखिर वह क्या है जो गुरु नानक जन-साधारण की भाषा द्वारा अभिव्यक्त करना चाहते थे? पहली बात तो यह कि वह एक ऐसे संसार के लोगों को जीने की नई राह सिखाना चाहते थे, जिसमें हिन्दू और मुस्लिम धर्मों द्वारा बताए गए पुराने रास्ते न केवल अपर्याप्त थे, बल्कि अधिकतर लोगों की शांति और प्रतिष्ठा के लिए, सर्वथा विनाशकारी थे। संक्षेप में, अधिकतर लोग, विशेषकर हिन्दू अपने अपेक्षाकृत विदेशी शासकों से वह सहानुभूति नहीं पा रहे थे जो कि शांति और प्रतिष्ठा के जीवन के लिए आवश्यक है। ये शासक जनता के बहु-संख्यकों को हीन देवताओं के उपासक (काफ़िर) और घटिया जाति के प्राणी समझते थे। इन सहानुभूतिशून्य, घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखने वाले अत्याचारी शासकों को निकाल बाहर कर देने के शताब्दियों से किए गए प्रयासों में बार-बार असफल होने पर सामान्यतः लोग घोर निराशा से परलोक-मुखी हो गए, जबकि लोगों के एक बड़े वर्ग ने या तो सत्य ही विदेशी शासकों के धर्म को स्वीकार कर लिया, अथवा अवसरवादिता के अनुकूल उनके अनुचर और चाटुकार बन गए। गुरु नानक ने इनमें से किसी भी पथ का समर्थन नहीं किया। वह चाहते थे कि भारतीय लोग बिना निराश या अवसरवादी हुए प्रतिष्ठा और शांति से जिएं। सांसारिक क्रियाओं और आत्मिक आकांक्षाओं, दोनों के विषय में एक नई शिक्षा की आवश्यकता थी।

आधुनिक शब्दावली में हम कह सकते हैं कि वे लोगों को जीवन का नया सिद्धान्त और विचार-दृष्टि देना चाहते थे और इसके व्यवहार में उनका मार्ग-निर्देशन करना चाहते थे। इस प्रकार गुरु नानक की साहित्यिक रचनाएं तीन मुख्य श्रेणियों में बांटी जा सकती हैं। प्रथम, वो रचनाएं हैं जिनका सम्बन्ध उन नए और परिवर्तित आध्यात्मिक विश्वासों और विचारों से है जिनके द्वारा

वह लोगों का निर्देशन करना चाहते थे। ये रचनाएं अपनी प्रकृति में आध्यात्मिक कही जा सकती हैं। जपुजी, दक्खनी ओंकार, सिद्ध गोष्ठी और बहुत-सी अन्य कृतियां इसी श्रेणी में रखी जा सकती हैं। दूसरी श्रेणी में वह रचनाएं रखी जा सकती हैं जिनमें लोगों के गलत रीति-रिवाजों और कर्मकांडों की तीव्र आलोचना की गई है। गुरु नानक ने शायद ही कभी यह कहा हो कि लोगों के ग़लत रीति-रिवाज़ों और कर्मकांडों का मूल स्रोत विकृत या त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि प्राचीन विश्वासों और मतों के प्रति वे अत्यधिक श्रद्धायुक्त थे। अतः वे लोगों की अपने-अपने धर्म और विश्वास की अवहेलना के लिये ताड़ना करके सन्तुष्ट हो जाते। संभवतः यह गुरु नानक की शैली-मात्र या तकनीक हो। उन्होंने प्राचीन मतों और विश्वासों पर प्रत्यक्ष आक्रमण नहीं किया। परन्तु अप्रत्यक्ष रूप में, जीवन का निर्देश करते हुए, उन विश्वासों से उत्पन्न व्यवहार की अमानवीयता और भद्देपन की ओर संकेत करते हुए, उनकी अपर्याप्तता दिखाने में वे सफल रहे। आज भी जब धर्म जीवन का निर्देशन कर सकने में अपर्याप्त साबित हुआ है, तो बहुत से धर्म और समाज के सुधारक इससे भी कहीं कम से सन्तुष्ट हैं।

(५)

गुरु नानक का पुराने मतों और उनकी पौराणिक कथाओं की आध्यात्मिक कल्पनाओं का विरोध करने का ढंग आश्चर्यजनक रूप से तार्किक है। वह, हिन्दू और मुस्लिम दोनों के सृष्टि सम्बन्धी, पुराने सिद्धान्तों की सिद्धि तथा परलोक की धारणा, यहां तक कि नरक और स्वर्ग के सम्बन्ध में भी प्रश्न करते हैं। यहां वह अपने तर्क में सर्वथा अनुभवप्रेरित हैं। वह तब तक प्रत्येक आध्यात्मिक धारणा को परखते गए हैं, जब तक कि वह ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास या अविश्वास की तह तक नहीं पहुंच गए। और इसी बिन्दु से वह ईश्वर के प्रति ठोस तथा निर्विवाद विश्वास को अपनाते हैं। परन्तु गहराई से यदि सोचें तो यह कहना कठिन है कि वह वास्तव में किस प्रकार के ईश्वरत्व की धारणा को जन्म देते और उसमें विश्वास करते हैं। अवश्य ही, उनका ईश्वर होने और हो जाने की श्रेणियों से बाहर और परे है। वह निर्गुण है। परन्तु ऐसा केवल बुद्धि के क्षेत्र में है। भावनाओं के क्षेत्र में गुरु नानक उस ईश्वर में आस्था रखते हैं जो मानवता के प्रति दयावान और उदार है। संभवत दार्शनिक विश्लेषण की दृष्टि से यह ईश्वर एक दयालु जीवन शक्ति का प्रतिरूप है, जिसका विरोधी स्वरूप अधिकांश आधुनिक दार्शनिकों तथा पश्चिम के विचारकों ने 'दुरात्मा' के रूप में प्रस्तुत किया है।

गुरु नानक ने विश्व के सृजन और उदय सम्बन्धी सभी पूर्व-वैज्ञानिक, व्याख्यात्मक कल्पनाओं को अस्वीकार कर दिया। वह इसके विस्तार की कहीं सीमा नहीं पाते, न सातों स्वर्गों और सातों पातालों में और न ही अठारह हजार खंडों या इससे भी अधिक में। उन्होंने इस कल्पना को भी अस्वीकार किया कि धरती बैल के सींग पर टिकी हुई है। उनका केवल यही उत्तर है कि इसकी कोई सीमा नहीं है। सचमुच उनके अध्यात्म में बौद्धिक विस्मय है। यहां तक कि जब वह कल्पना करने को लालायित होते हैं, तब भी काव्य-विवेक के कारण इससे बच निकलते हैं। जपुजी में एक स्थान पर, इस्लामी विश्वास को स्वीकार करते हुए, वह यह कहते हुए संतुष्ट हैं कि ईश्वर के शब्द से ही यह सारा विस्तार अस्तित्व में आया है। फिर 'आसा दी वार' के आरम्भ में 'वृहदारण्यक' के साथ सहमत होते हुए वह गाते हैं कि सबसे पहले, उसने स्वयं का निर्माण किया और फिर अपने आनन्द के लिए विश्व की रचना की। 'दक्खनी ओंकार' में उन्होंने ओम् और ओंकार को आदि कारण कहा, भले ही बीच में ब्रह्म रहा या न रहा हो। यह ओम् ही तीनों लोकों का सार है। इस संसार के पीछे यही एक ज्योति है, जो किसी विशेष ढंग से नहीं, अपितु स्वयं ही उत्पन्न हुई है।

'सिद्ध गोष्ठी' में वह इसी प्रश्न का उत्तर यह कहते हुए देते हैं, "आरम्भ में नितान्त विस्मय की धारणा थी। फिर वह अखंडित शून्य में रहा।" राग मारू सोहिला में वह कहते हैं, "यहां खरबों वर्षों से अभेद्य अन्धकार था। उस अनन्त इच्छा के अंतर्गत न कोई धरती थी और न आकाश। न कोई दिन, न कोई रात, न चन्द्र और न सूर्य, और वह स्वयं एक महाशून्य में समाहित रहता था।" यहां वह फिर ब्राह्मणवाद, योग और इस्लाम की सभी आध्यात्मिक धारणाओं और कल्पनाओं को त्याग देते हैं और अपना निष्कर्ष देते हैं, "जब उसे इच्छा हुई, उसने इस विश्व की रचना की और बिना किसी दृश्य-यन्त्र के, इसके विस्तार को आधार दिया।" जैसा अक्सर वह अपने कल्पनात्मक मूर्ति भंजन प्रणाली में करते आए हैं, यहां भी वे ब्रह्मा, विष्णु और शिव की कल्पना तथा इस विश्व को असत्य और भ्रमपूर्ण मानने की धारणाओं को स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं।

परन्तु गहराई से विचार करने पर वह इन कल्पनाओं से खेलते प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ जपुजी में उन्होंने मानव जीवन की मर्यादा, नैतिक विचारों और दैवी प्रसार में निर्धारित की है।

(६)

भले ही आधुनिक वैज्ञानिक युग में पूर्व-धारणाओं और कल्पनाओं के साथ इस संघर्ष की उपेक्षा की जाए, हालांकि आज के युग के सारे यथार्थपूर्ण कार्य-

कलापों के बावजूद इसमें भी मानव-भाग्य सम्बन्धी कल्पनाओं के लिए मोह है। गुरु नानक की सामाजिक आलोचना और नैतिक यथार्थ का ऐतिहासिक और अनुभवजन्य मूल्य आज अधिक है। बार-बार वह हिन्दू और मुस्लिम, दोनों के न्यायविरुद्ध, अन्धविश्वासी और शोषणात्मक आचरणों की प्रताड़ना करते हैं। वह मानवता को सर्वथा वीतराग, नैतिकता की दृष्टि से उन्नत तथा समाज और राजनीति में एक शोषणहीन जीवन की ओर ले जाने का प्रयत्न करते हैं। भले ही उस सामन्तवादी शासन में, जिसमें कि वह रहते थे या पूंजीवादी शासन में, जिसमें कि आज हम रहते हैं, वैसा स्वच्छ जीवन संभव है या नहीं, यह दूसरी बात है। यहां तक कि मुगल सामन्तवादी शासन द्वारा, उनके अनुयायियों को भी इस प्रकार के तटस्थतापूर्ण जीवनयापन की आज्ञा नहीं थी। परन्तु फिर भी सभी कालों के लिए इस आलोचना और प्रेरणा की सार्थकता बनी रहेगी।

सिख घरों में विवाह या ईश वन्दना जैसे अवसरों पर या सिख गुरुद्वारों में प्रभात समूह गान के रूप में 'आसा दी वार' काफी लोकप्रिय है। इसके बहुत से श्लोक सरकारी अधिकारियों और धार्मिक वाक्छल तथा अन्धविश्वास की आलोचना से भरे पड़े हैं। उदाहरण के लिए, एक बहुत प्रभावशाली स्थल इस प्रकार है—

"लोभ और पाप राजा और मंत्री हैं
और असत्य कर वसूलने वाला है।
लालसा को सलाह के लिए बुलाया है
और सभी मन्तव्य के लिए बैठे हैं।
लोग, अन्धे और ज्ञान-रहित हैं
मृतकों के समान सब कुछ स्वीकार कर रहे हैं।
धर्मोपदेशक नाचते, गाते
और विभिन्न भूमिकाएं करते हैं।
जोर से चीखते हुए, वह तथाकथित वीरों
के कृत्यों का गान कर रहे हैं।
अज्ञानी पंडित नकली तथ्यों में आनन्दित हैं
अपने प्रेम और भंडार में लीन।"[1]

---

१. लबु पापु दुइ राजा महता कूड़ु होआ सिकदारु।
कामु नेबु सदि पुछीऐ बहि बहि करे बीचारु॥
अंधी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु।
गिआनी नचहि वाजे वावहि रूप करहि सीगारु॥
ऊचे कूकहि वादा गावहि जोधा का वीचारु।
मूरख पंडित हिकमति हुजति संजै करहि पिआरु॥

हिन्दू कर वसूलने वालों और अधिकारियों को सम्बोधित करते हुए वह उनकी भर्त्सना करते हैं :—

"तुम गाय और ब्राह्मण पर तो कर लगाते हो,
फिर गाय का गोबर तुम्हें मुक्ति कैसे दे सकता है ?
तुम धोती पहनते, तिलक लगाते और माला जपते हो
लेकिन मलेच्छों के हाथ से खाते भी हो।
घर में तुम पूजा करते हो लेकिन बाहर
मुस्लिम ग्रन्थ पढ़ते हो और तुर्की आचरण को अपनाते भी हो।"[1]

इसी प्रकार वह शव की दाह-क्रिया और गाड़ने के सम्बन्ध में झूठे तर्कों, पशुओं के मांस को खाने, यज्ञोपवीत धारण करने, औरतों की अपवित्रता और दूसरे हिन्दू तथा मुस्लिम विवेकहीन और अधम आचरणों की कड़ी आलोचना करते हैं।

उनके समूचे कृतित्व में यह सामाजिक और राजनीतिक आलोचना इतनी विस्तृत नहीं है। परिमाण में यह उनके लेखन का एक छोटा-सा ही भाग है। लेकिन यह एक ऐसे दृष्टि-विकास और तीव्र मानववाद का प्रदर्शन करता है, जो किसी भी साहित्य की बहुमूल्य सम्पत्ति हो सकते हैं। जिस किसी भी रूप में उन्हें तुर्की शासन की क्रूरता, मुगल आक्रमण, ब्राह्मणों की अल्पान्धता, वाक्-छल और पाखंड दिखाई दिए हैं उन्होंने उसकी बेरोक निन्दा की है। बाबर के आक्रमण के कारण जनता को जो पीड़ा और दीनता झेलनी पड़ी, उसके प्रति उनकी व्यथा युग की साहित्यिक चेतना के लिए अनोखी है। इस व्यथा में उन्होंने केवल शासकों, जनता के संरक्षकों की ही स्पष्ट निन्दा नहीं की अपितु स्रष्टा को भी धिक्कारा जिसने गरीब भारत पर यह सब आपत्ति आने दी। वह स्रष्टा से पूछते हैं, "जब लोग पीड़ा से क्रन्दन करते हैं, क्या तुम कष्ट अनुभव नहीं करते ?"

उन्होंने तलवार और अग्नि के रोष में तथा युद्ध की मार से कराहते हुए बहुसंख्यक लोगों का अत्यन्त मर्मभेदी वर्णन किया है :—

"अगणित पुजारियों ने उसका मार्ग रोकने का प्रयत्न किया,
जब उन्होंने मीर (बाबर) के आने के बारे में सुना।
मस्जिदों और मन्दिरों में आग लगा दी गई,
और राजकुमारों के टुकड़े कर उन्हें धूल में फेंका गया।
कोई मुगल अन्धा नहीं हुआ, किसी के

---

१. गऊ बिराहमण कउ करु लावहु गोबरि तरणु न जाई।
धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई॥
अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई।

जादू और शाप का दुश्मन पर कोई असर नहीं पड़ा।

× × ×

हिन्दुओं, तुर्कों, भट्टियों और ठाकुरों की स्त्रियों के,
कपड़े फाड़े गए, उनके सिर फूट गए और पांव घायल हुए,
या वह मौत के घाट उतार दी गईं।
उन्होंने रात कैसे बितायी,
जिनके प्रियतम घर नहीं लौटे ?" (राग आसा)[१]

एक दूसरे स्थान पर उन्होंने बाबर के आक्रमण का वर्णन इन शब्दों में किया :—

"वह काबुल से आया, साथ पाप की सेना लिए,
वह बलपूर्वक उपहार मांगता है।
काजी और ब्राह्मण की जबान नहीं चलती,
शैतान ब्याह रचवा रहा है।
आदर और कर्तव्य दोनों छिपे पड़े हैं,
असत्य गर्व से सभापतित्व कर रहा है।
मुस्लिम औरतें कुरान पढ़ती और भय से खुदा को पुकार रही हैं,
स्त्रियां निम्न-जातियों की, तथा दूसरी हिन्दू औरतों का भी
इसी समूह में शुमार हुआ है।
हत्या की वेदी पर नानक गीत गाता है
और रक्त का तर्पण अर्पित करता है। (राग तिलंग)[२]

उन्होंने पंजाबी लेखन में पहली बार जिस गीतात्मकता का आयात किया,

---

१. कोटी हू पीर वरजि रहाए जा मीरु सुणिआ धाइआ।
थान मुकाम जले विज मंदर मुछि मुछि कुइर रुलाइआ॥
कोई मुगल न होआ अंधा किनै न परचा लाइआ॥

× × ×

इक हिंदवाणी अवर तुरकाणी भटिआणी ठकुराणी॥
इकना पेरण सिर खुर पाटे इकना वासु मसाणी॥
जिनके बंके घरी न आइआ तिन किउ रैणि विहाणी॥

२. पाप की जंज लै कावलहु धाइआ।
जोरी मंगै दानु वे लालो॥
सरमु धरमु दुइ छपि खलोए।
कूड़ु फिरै परधानु वे लालो॥
मुसलमानीआ पड़हि कतेबा।
कसट महि करहि खुदाइ वे लालो॥
खुन के सोहिले गावीअहि नानक।
रतु का कुंगू पाइ वे लालो॥

शायद विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से वह सदा ही बेजोड़ है। यह गीति भाव, मुख्यतया, उनकी तथा उनके सभी अनुयायियों की आत्मा की रक्षा करने वाली उस दैवी आत्मा के मिलन से सम्बन्धित है। परमात्मा उनके लिए वह प्रियतम है जिसे उद्दाम भावना, ऐन्द्रियकता और आत्मिकता से अनुभव किया जा सकता है। उसे प्रसन्न किया जा सकता है, आलिंगन किया जा सकता है, उसके साथ सोया जा सकता है और जिसे अपना पूर्ण और निर्बाध समर्पण किया जा सकता है। उनके लिए यह प्रसंग पूर्ण दैवी हो सकता है परन्तु साहित्य के प्रसंग में यह मानवीय भावना, साथ ही शारीरिक सौन्दर्य से भरपूर है। उदाहरण के लिए, एक स्थान पर उन्होंने मानव-प्राणी को इस प्रकार सम्बोधित किया है :—

"उन्नत पयोधरों वाली स्त्रियो !
गम्भीरता से विचारो
वक्ष की इतनी कठोरता से
तुम अपनी सास का अभिवादन कैसे करोगी ?"[1]

और फिर :—

"प्रिये, गारे से निर्मित शैलशिखरों जैसे
संगमरमर के भवनों को
मैंने खंड-खंड होते गिरते देखा है।
तब अपने उन्नत वक्षों पर इतना गर्व क्यों करो ?"[2]

(श्लोक)

एक दूसरे स्थान पर वह गाते हैं :—

"नानक, जब सावन की बूंदें पड़ती हैं
तो चार प्राणियों में वासना भर जाती है,
सांप, हिरण, मछली और प्रेमी
जिनके घरों में प्रिय का साथ है।"[3]

(वार मल्हार)

संभवत: गीतात्मक भावना का चरम बारामाह तुखारी में हुआ है जहां उनके जन्म-स्थान के वनों का स्थानीय रंग भी हैं :—

---

१. उतंगी पैउहरी गहिरी गंभीरी ॥
ससुड़ी सूहीआ किव करी ॥
निवणु न जाइ थणी ॥

२. गचु जि लगा गिड़वड़ी सखीए धउल हरी ॥
से भी ढहदे डिठु मै मुंध न गरबु थणी ॥ (सलोक वारां ते वधीक)

३. नानक सावणि जे वसै चहु उमाहा होइ ।
नाग मिरग मछीआं, रसीआं घरि धनु होइ ॥

"चैत सुहाना बसंत भला है, और भंवरों की मधुर गुनगुनाहट,
वन में सारी वनस्पति खिली हुई है,
प्रियतम अब तो घर लौटो।
यदि प्रिय घर न आए
तो प्रिया कैसे सुख अनुभव कर सकती है ?
वियोग और विरह ने शरीर को क्षत-विक्षत कर दिया है।
आम्र-वृक्षों पर कोयल मधुर गीत गाती है,
परन्तु मेरे अवयवों की पीड़ा असहनीय है।
भंवरा फूलों से लदी डालियों पर मंडराता है
किन्तु मैं तो मर रही हूं। मैं कैसे जी सकती हूं, ओ मां ?
नानक, चैत अवश्य ही सुख लाएगा,
यदि प्रभु, मेरा प्रियतम मेरे घर आएगा।"[१]

इसी प्रकार सावन में :—

"मैं इस घोर वर्षा की ऋतु में रस से पग गई हूं।
अपने स्वामी को तन मन से प्रेम करती हूं मैं,
किन्तु वह तो परदेस गये हैं।
वह घर नहीं आते, मैं दुःख से मरी जा रही हूं,
बिजलियों की चमक मुझे डराती है।
सेज पर अकेले होना कितना कठिन है,
हे मां, यह पीड़ा तो मृत्यु के समान है।
प्रभु के बिना मुझे भूख और नींद कैसे आ सकती है ?
अब तो तन के कपड़े भी कष्ट देते हैं।
नानक, वही पत्नी सुखी है जो,
प्रिय की बांहों में बद्ध है।"[२]

---

१. चेतु बसंतु भला भवर सुहावड़े।
वन फूले मंझ बारि मैं पिरु घरि बाहुड़ै॥
पिरु घरि नहीं आवै धनु किउ सुखु पावै बिरहि बिरोध तनु छीजै।
कोकिल अंबि सुहावी बोलै किउ दुखु अंकि सहीजै॥
भंवर भवंता फूली डाली किउ जीवा मरु माए॥
नानक चेति सहजि सुखु पावै जे हरि वरु घरि धन पाए॥

२. सावणि सरस मना घण वरसहि रुति आए।
मैं मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए॥
पिरु घरि नहीं आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि डराए।
सेज इकेली खरी दुहेली मरणु भइआ दुखु माए॥

यह स्पष्ट ही देखा जा सकता है कि उनकी गीति-कल्पना सामन्तवादी समाज के प्रसंग में, दाम्पत्य सम्बन्धों की भावनात्मक प्रकृति से ली गई है। इस समाज में प्रेम लगभग पूर्णतया पत्नी का कार्य कर रहा है जिसे वह अपने पति द्वारा दी गई सुरक्षा, प्रेम और आदर के बदले में समर्पित करती है। इसी के अनुसार गुरु नानक जब इस सम्बन्ध को आत्मिक स्तर तक उठाते हैं तो ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए वह मनुष्य को पत्नी की स्थिति में, और ईश्वर को पति की स्थिति में देखते हैं।

इसी प्रकार, उन्होंने ईश्वर के सामने मनुष्य के दायित्व को, साहूकार के ऋणी या उसके स्वामी के नौकर के रूप में देखा है।

दूसरी तुलना जो उन्हें प्रिय है, वह है स्वामी और सेवक की, जो फिर सामन्तवादी सामाजिक प्रसंग से अपनी मान्यता पाती है। परन्तु गुरु नानक ने इस सम्बन्ध को कुछ विशेष काव्य-लय से पुकारा है, उदाहरणतया एक स्थान पर वह गाते हैं :—

"तुम सुल्तान हो, और मैं तुम्हें मियां कह सम्बोधित करता हूं,
क्योंक यह तुम्हारी प्रशंसा हो सकती है ?"[1]

(राग बिलावल)

निश्चय ही इस प्रगीतात्मकता के पीछे के सामाजिक और निजी कारण का विश्लेषण करना रोचक होगा। कभी-कभी यह लगता है कि वियोग की वेदना केवल आत्मिक नहीं है। उसमें राजनीतिक-सामाजिक संकेत भी हैं। जैसा कि ऊपर देखा जा सकता है, गुरु नानक अपने देश की दयनीय राजनीतिक स्थिति के प्रति जागरूक थे। उदाहरण के लिए, एक स्थान पर वह शोक प्रगट करते हैं :—

"प्राण छोड़ कर मर क्यों नहीं जाते,
जब स्वामी ऐसे विमुख हो गए हैं ?"[2]

(राग वडहंस)

तुर्की कुशासन और बाबर के आक्रमण ने उनकी और जनता की जो दुर्दशा की, उसका यह कितना व्यथापूर्ण चित्रण है !

हरि बिन नींद भूख कहु कैसी कापड़ु तनि न सखावए।
नानक सा सोहागणि कंती पिर कै अंक समावए॥

१. तू सुलतान कहा हउ मीआ।
तेरी कवन वडाई॥

२. किउ न मरीजै जीअड़ा।
न दीजै जा सहु भइआ विडाणी॥

गुरु नानक देव और आध्यात्मिक संगीत

कुंवर मृगेन्द्र सिंह

"राग[1] नाद[2] शबदि सोहणे जा लागै सहिज धिआन ॥"[3]

(१)

श्री गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणी द्वारा संगीत को व्यावहारिक सुख, (हलत सुख) धार्मिक वा मानसिक (पलत सुख), और आध्यात्मिक (नित्य सुख) का एकमात्र साधन बताया है। उन्होंने मनुष्य के व्यावहारिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक जीवन में एक विशेष भाग संगीत कला को दिया है।

यह सत्य है कि श्री गुरु नानक देव जी से पूर्व भी, भक्ति मार्ग के भक्त अपनी शब्द-वाणी को राग और ताल में रच कर कीर्तन रूप में संगीत के वादन यन्त्रों के साथ गाया करते थे। पर श्री गुरु नानक देव जी ही हैं जिन्होंने कीर्तन को एक नई चमक, नई धारणा, नई धारा और आध्यात्मिक तात्पर्य (लक्ष्य) दर्शाया है।[4]

श्री गुरु नानक देव जी के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि कीर्तन सभा रूपी हो। इसकी मुख्यता प्रभु की कीर्ति करने में है चाहे वह अकेले मनुष्य द्वारा की जाय या बहुत से मनुष्यों के सामूहिक रूप में हो। यह कहा जाता है कि संगीत सभा में गाने-बजाने के अनेक मन्तव्य हो सकते हैं—जो कि हर बार धार्मिकता तथा अध्यात्मिकता नहीं रखते। श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं:—

"रागि नादि मनु दूजै भाइ। अन्तरि कपटु महादुःखु पाइ।"[5]

आगे, श्री गुरु नानक देव जी के अनुसार, कीर्तन, वाणी को तोते की न्याईं रट करके गायन करना ही नहीं है। भाव यह है कि इस प्रकार से गायन करने

---

१. यहां राग शब्द का अर्थ मार्ग और देशी संगीत के राग व तालों का सांकेतिक है।
२. यहां नाद शब्द का अर्थ संगीत के वादन तन्त आदि यन्त्र द्वारा नादोत्पत्ति है।
३. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब पृष्ठांक ८४९ राग बिलावल म० १-२।
४. डाक्टर मोहनसिंह ओबराय लिखते हैं: गुरु नानक देव ने अपने से पूर्व के किसी भी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा अनेक प्रकार के छंद, कविता, राग, रागिनियों और घरों का अधिक प्रयोग किया। उन्होंने नये छंदों का निर्माण भी किया।
५. गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० १३४३ राग प्रभाती म० १-४।

से और बिना गुरुवाणी की गहराई की तह में पहुंचना, वा समझना और यथार्थ लक्ष्य जानना कीर्तन नहीं। कीर्तन को केवल पारिभाषिक रूप में ही शुद्ध नहीं होना चाहिये। भाव यह है कि भाषा, व्याकरण, छन्द शिक्षा और कला आदि को ही प्रतिपादन करे, अपितु उसका दायरा, भावार्थ और दार्शनिक मन्तव्य संगीत यन्त्रों द्वारा गाते समय सम्पूर्ण रूप से स्पष्ट होना चाहिये।[1] जिस प्रकार से श्री गुरु नानक देव जी आसा राग में लिखते हैं:—

राग नादु नहीं दूजा भाउ। इतु रंगि नाचहु रखि-रखि पाउ ॥२॥
भउ फेरी होवे मन चीति। वहंदिआ उठदिया नीता नीति ॥"[2]

श्री गुरु नानक देव जी ने संगीत प्रणाली का प्रयोग केवल जीवात्मा की अनित्य-सगुण-मुक्ति इसी जीवावतारिक जन्म में प्राप्त करने के लिये ही नहीं किया, अपितु नित्य-निर्गुण मुक्ति प्राप्त करने का पूर्ण विश्वास दिया है। विचार-धारा के बहुत सोपान हैं जो कि आध्यात्मिक संगीत के ऊंचे प्रभाव द्वारा मन की अनेक वृत्तियों को थाम लेते हैं। यह सत्य है कि सिख गुरुओं के अनुसार नित्य-निर्गुण-मुक्ति ब्रह्मज्ञान के बगैर सम्भव नहीं।[3] परन्तु संगीत का उस विद्या के साथ मिलकर चलने के साथ व्यवहारिक प्राप्ति होनी सम्भव हो जाती है। यह **करणी** ही सबसे विशेषता रखती है। और सिख गुरुओं ने भी इसी बात के ऊपर बार-बार ज़ोर दिया है और विशेषता दर्शाई है कि शास्त्रीय ज्ञान का अनुभव **करणी** के द्वारा ही परीक्षा में हो सकता है। इसीलिये सिख-धर्म को **करणी प्रधान** धर्म प्रतिपादन किया जाता है।[4]

अन्तिम तात्पर्य—नित्य निर्गुण मुक्ति—को प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु को सोपान से सोपान चढ़ कर तीन प्रकार के ताप, दुःख, निवृत्त करने होते हैं जो आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक नाम से प्रसिद्ध हैं।[5]

१. प्रथम प्रकार के आधिभौतिक दुःख रूप ताप की निवृति के लिये वैदिक संगीत प्रथा के अनुसार **षडज ग्राम** का प्रयोग संगीत शास्त्रों में प्रतिपादन किया गया है।
२. द्वितीय प्रकार के आध्यात्मिक दुःख रूप ताप की निवृति के लिये चतुर्थ स्वरीय **मध्यम स्वर** के द्वारा वैदिक संगीत प्रथा के अनुसार **मध्यम ग्रामका** संगीत शास्त्रों में प्रतिपादन किया गया है और यही आध्यात्मिक व **मार्ग** संगीत का आधार भी है। तथा—

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ० ५६५ राग वडहंस, म० १।
२. वही, पृ० ३५० राग आसा, म० १।
३. वही, पृ० ६८४ राग धनासरी, म० ६।
४. श्री भाई गुरुदास जी छन्द अंक, ४३७ और ५४२ आदि।
५. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ० ७१४, राग टोडी म० ५—१३ : ८ : १।

३. तृतीय प्रकार के आधिभौतिक दुःख—जो कि गरमी, सरदी, भूचाल आदि स्वरूप हैं—इस ताप की निवृत्ति के लिये वैदिक संगीत प्रथा के अनुसार **गन्धार स्वरीय गन्धार ग्राम** प्रतिपादित किया गया है।

ऊपर बताए गये तीन दुःखों के अतिरिक्त मनुष्य मन में जन्म से ही तीन और दोष भी होते हैं यथा पाप रूप मल, विक्षेप और अज्ञान। इन दुःखों और दोषों की निवृत्ति संगीत और दार्शनिक ज्ञान व ब्रह्मज्ञान के समन्वय द्वारा ही हो सकती है। अन्य शब्दों में **मनोविज्ञान, तर्क,** तथा **आध्यात्मिक विद्याओं** का सम्बन्ध, तथा **क्रियात्मक संगीत** और **प्रभु नाम सिमरन** आदि इनके सब के सम्बन्ध ही मन के त्रिदोषों के तीन सोपान (Stages) में दूर करने की सामर्थ्य रखते हैं।

प्रारम्भ में, संगीत एक नया सामाजिक चित्र पेश करता है जबकि वह कीर्त्तन सभा (संगीत) रूप में सुना जाता है। सभा में संगीत (गायन) मन को पवित्र करता है और मनुष्य को पाप करने से रोकता है। इस द्वारा यह मन का प्रथम दोष पाप को दूर करता है जबकि यह सामाजिक और व्यवहारिक संगीत उत्पन्न कर देता है। जिसको शास्त्रों में कर्म काण्डी वा शरीयत की कोटि का बताया गया है।

द्वितीय, संगीत में मन की एकाग्रता उत्पन्न होती है जिस द्वारा मन के द्वितीय दोष, विक्षेप (Fickleness) की निवृत्ति हो जाती है। इसका प्रतिपादन विस्तारपूर्वक आगे स्पन्दन, गूंज, कम्पन आदि के द्वारा किया जायगा।

संगीत द्वारा मन की एकाग्रता उत्पन्न हो जाने से शनैः शनैः सत्य-ज्ञान का अनुभव प्रगट होने लगता है।

तृतीय, संगीत द्वारा जीव में अज्ञान रूप द्वैताभाव निवृत्त हो जाता है और अनेकता में एकता का ज्ञान अनुभव होने लग जाता है। इस प्रकार से संगीत सभा में गाई अनेकता में ईश्वरीय एकता का अनुभव संगीत से प्रत्येक पुरुष के मन में प्रगट होने लग जाता है। शनैः शनैः प्रति दिन संगीत सभा में जाने से सिख गुरुओं तथा भक्तों की वाणी की सत्यता और अनेकता में उस वाहिगुरु का एक अस्तित्व उनके मन में अनुभव होने लग जाता है। १ ओंकार की दार्शनिक सत्यता श्री मूल मन्त्र के प्रतिदिन श्रवण से अनुभव होने लग जाती है यथा—मूल मन्त्र:

"१ओंकारसतिनामु करतापुरुष निरभउ-
निरवैरु अकालमूरति अजूनि सैभं गुरप्रसादि।"[1]

जिज्ञासु को शनैः शनैः इस प्रकार आध्यात्मिक अनुभव संगीत [illegible]

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, मूल मन्त्र, पृ० १।

लग जाता है। वह श्री गुरु नानक देव जी और अन्य गुरु तथा भक्तों की वाणी को गाता हुआ उन्ही के धार्मिक और दार्शनिक ज्ञानरूप सिक्खी को प्राप्त कर लेता है। श्री गुरु नानक देव जी स्वयं कहते हैं :

"एको एकु कहा सभु कोई हउमै गरबु विग्रापै ॥
अन्तरि बाहरि एकु पछाणै इउ घरु महलु सिञापै ॥
प्रभु नेड़ै हरि दूरि ना जाणहु एको स्रिसटि सबाई ॥
एककारु अवरु नहीं दूजा नानक एकु समाई ॥५॥"[१]

आध्यात्मिक संगीत (शब्द) द्वारा अन्तर्यामी (Omniscient) प्रभु का तादात्म्य अभेद (identification) जो अपरत्व (Subjective) और परत्व (Objective) में एक चेतनता (Consciousness) का दिव्य दृष्टि रूप अनुभव (Mystic realization) हो जाता है। श्री भगवत गीता १८ : २० में भी यही लिखा हुआ है और अपरोक्ष ब्रह्मात्म ज्ञान सम्बन्धी योग दर्शन ३ : ५ में भी इस प्रकार से एकी-भाव मन की धारणा को संयम कहा है।

(श्री गुरु नानक देव जी के अनुसार कथनी ज्ञान काफी नहीं है। करनी ही सत्यता में महत्व रखती है। अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों का अनुभव उन्हीं के यथार्थ करनी पर ही सम्भव होता है।) इसके द्वारा ही दिव्य दृष्टि अनुभव (Mystic realization) उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण आध्यात्मिक मार्ग संगीत मनुष्य मात्र के लिये सब से सुलभ साधन है। यह सहज से ही मनुष्य को सर्व श्रेणियों में से लंघा देता है। इस प्रकार से अध्यात्म मार्गी संगीत प्रथम श्रेणी से लेकर अन्तिम श्रेणी पर्यन्त प्रयुक्त हो जाता है। इसलिये संगीत की महत्ता व्यवहारिक सुख, धार्मिक सुख तथा आध्यात्मिक नित्य सुख प्रदान करने वाला बहुत ही महत्ता वाला एक ही साधन है।

स्वभावानुसार मन चंचल है जो कि स्थिर नहीं रहता। सबसे महान् समस्या यही है कि मन को किस प्रकार से जीता जाय जिससे वह पूर्ण रूप से विक्षेप दोष रहित हो जाय। वैदिक धार्मिक प्रथा अनुसार अनेक साधनों का वर्णन किया गया है यथा—प्रणव योग, अध्यारोपावाद योग, लय चिन्तन योग, महावाक्य ज्ञानयोग शब्द श्रवण योग, वर्ण दृष्ट योग, त्राटक योग, कुण्डलनी योग क्रिया योग, अष्टांग योग, हठयोग, प्राणायाम (हवस-इ-दम-सूफी मियां मीर) हरि-संकीर्तन आदि। परन्तु इन में से श्री गुरु नानक देव जी ने हरि-संकीर्तन का समन्वय सहज योग की दार्शनिक धारा के क्रियात्मक (**करणी**) स्वरूप में ही प्रयुक्त करके उत्तमता दर्शाई है। यही गीता के कर्म्म-योग निष्ठा के अन्तर्गत दृष्टव्य भी है। वह निष्ठा तीन वस्तुओं का समूह है यथा—

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ० ९३० राग रामकली, म० १-५।

कर्म्म, भक्ति और ज्ञान जो कि सोपान से सोपान चढ़ते जीवात्मा की उन्नति का मार्ग है और जिससे कि अन्त में वह नित्य सुख रूप मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। श्री गुरुओं की अलौकिक घर की वाणी के संगीतात्मक प्रयोग द्वारा तथा प्रेम के सहित गायन से उसका फल प्रेमा भक्ति और प्रभु के साथ आध्यात्मिक तादात्म्य, आत्मिक अभेद्य सम्बन्ध का आनन्द अनुभव है।

(३)

सिख धर्म के संगीत में हरि नाम के बिना और कोई भी वस्तु गायन में नहीं आती। वह संगीत के वादन यन्त्रों के साथ हो अथवा उनसे बिना हो। संगत, सिख धर्म के आधारभूत सामाजिक रूप को प्रतिष्ठित करती है। आगे चल कर आर्थिक जीवन को बांध कर यथार्थ स्वर देता है। सिख को भीख मांगने की आज्ञा नहीं है, ना ही दूसरों के दान पर जीवन निर्वाह की आज्ञा है। अतः उसको सत्यता और ईमानदारी भाव धार्मिक कमाई से जीवन निर्वाह ही योग्य है। संगीत के साथ-साथ अध्यात्म विद्या का सीखना आवश्यक हो जाता है। और प्रभु की कीर्ति और नाम सिमरन का अभ्यास करना भी सिखाया जाता है। इस प्रकार से आध्यात्मिक संगीत व्यवहारिक और धार्मिक जीवन को बराबर तुलनात्मक रूप में प्रतिपादन करके उपस्थित करता है। हरि-संकीर्तन मन को प्रभावित करता हुआ उसको वशीभूत करता हुआ तथा सांसारिक और आत्मिक काम, अर्थात् इच्छाओं को सांसारिक सुख, धार्मिक सुख तथा अध्यात्मिक सुख की ओर उत्थान करता जाता है। अतः मन का सम्बन्ध अपरत्व (subjective) और परत्व (objective) के आध्यात्मिक प्रभाव से युक्त हो जाता है। अतः यह आवश्यक है कि उसमें स्थिरता के अनन्तर दृढ़ता भी आ जाती है। यह अवस्था आध्यात्मिक संगीत द्वारा बहुत ही सरल व सहज रूप से ही प्राप्त हो जाती है व प्राप्त की जा सकती है। अन्य साधनों के मुकाबले में संगीत द्वारा मन की एकाग्रता आहत-नाद कर्णेन्द्रिय से श्रवण द्वारा उत्पन्न कर देती है जो कि मन के अन्दर अनाहत नाद की उत्पत्ति कर देता है। संगीत द्वारा श्रवणेन्द्रियों का स्पन्दन महत्व रखता है। यद्यपि संगीत अन्य इन्द्रियों को भी स्पन्दित करता है परन्तु वैज्ञानिक दर्शनशास्त्र के अनुसार शब्द आकाश तत्त्व का ही विशेष गुण माना जाता है जो अन्य चार तत्त्व जो परमाणु रूप है उनसे भिन्न है और जो अन्य चतुर्तत्वों यथा पृथ्वी, जल, तेज और वायु में भी प्रगट होकर सुनाई देता है। परन्तु इनमें शब्द के प्रभाव होने से उनके विशेष गुणों में कोई परिवर्तन नहीं आता। उनका विशेष गुणों में भाव गन्ध, रस, रूप, और स्पर्श में कोई अन्तर नहीं होता परन्तु इन चारों तत्त्वों के गुण आकाश तत्त्व के गुण आकाश तत्त्व में उत्पन्न

लग जाता है। यह श्री गुरु नानक देव जी और अन्य गुरु तथा भक्तों की वाणी को गाता हुआ उन्हीं के धार्मिक और दार्शनिक ज्ञानरूप सिक्खी को प्राप्त कर लेता है। श्री गुरु नानक देव जी स्वयं कहते हैं :

"एको एकु कहा सभु कोई हउमै गरबु विग्रापै ॥
अन्तरि बाहरि एकु पछाणै इउ घरु महलु सिञापै ॥
प्रभु नेड़ै हरि दूरि ना जाणहु एको स्रिसटि सबाई ॥
एकंकारु अवरु नहीं दूजा नानक एकु समाई ॥५॥"[1]

आध्यात्मिक संगीत (शब्द) द्वारा अन्तर्यामी (Omniscient) प्रभु का तादात्म्य अभेद (identification) जो अपरत्व (Subjective) और परत्व (Objective) में एक चेतनता (Consciousness) का दिव्य दृष्टि रूप अनुभव (Mystic realization) हो जाता है। श्री भगवत गीता १८ : २० में भी यही लिखा हुआ है और अपरोक्ष ब्रह्मात्म ज्ञान सम्बन्धी योग दर्शन ३ : ५ में भी इस प्रकार से एकी-भाव मन की धारणा को संयम कहा है।

(श्री गुरु नानक देव जी के अनुसार कथनी ज्ञान काफी नहीं है। करनी ही सत्यता में महत्व रखती है। अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों का अनुभव उन्हीं के यथार्थ करनी पर ही सम्भव होता है।) इसके द्वारा ही दिव्य दृष्टि अनुभव (Mystic realization) उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण आध्यात्मिक मार्ग संगीत मनुष्य मात्र के लिये सब से सुलभ साधन है। यह सहज से ही मनुष्य को सर्व श्रेणियों में से लंघा देता है। इस प्रकार से अध्यात्म मार्गी संगीत प्रथम श्रेणी से लेकर अन्तिम श्रेणी पर्यन्त प्रयुक्त हो जाता है। इसलिये संगीत की महत्ता व्यवहारिक सुख, धार्मिक सुख तथा आध्यात्मिक नित्य सुख प्रदान करने वाला बहुत ही महत्ता वाला एक ही साधन है।

स्वभावानुसार मन चंचल है जो कि स्थिर नहीं रहता। सबसे महान् समस्या यही है कि मन को किस प्रकार से जीता जाय जिससे वह पूर्ण रूप से विक्षेप दोष रहित हो जाय। वैदिक धार्मिक प्रथा अनुसार अनेक साधनों का वर्णन किया गया है यथा—प्रणव योग, अध्यारोपावाद योग, लय चिन्तन योग, महावाक्य ज्ञानयोग शब्द श्रवण योग, वर्ण दृष्ट योग, त्राटक योग, कुण्डलनी योग क्रिया योग, अष्टांग योग, हठयोग, प्राणायाम (हबस-इ-दम-सूफी मियां मीर) हरि-संकीर्तन आदि। परन्तु इन में से श्री गुरु नानक देव जी ने हरि-संकीर्तन का समन्वय सहज योग की दार्शनिक धारा के क्रियात्मक (करणी) स्वरूप में ही प्रयुक्त करके उत्तमता दर्शाई है। यही गीता के कर्म्म-योग निष्ठा के अन्तर्गत दृष्टव्य भी है। वह निष्ठा तीन वस्तुओं का समूह है यथा—

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ० ९३० राग रामकली, म० १-५।

ज़ोरदार पुष्टि से इस साधन का समर्थन किया है और आत्मिक लक्ष्य प्राप्त करने का सबसे सुलभ मार्ग दर्शाया है।

जिस प्रकार से ऊपर कहा जा चुका है कि यदि दो यन्त्र भाव दो सितार पूर्ण स्वर में मिले हैं और एक सितार पर बजाया जाय तो दूसरी सितार स्वयं ही गूंजती देखी जाती है और दोनों सितारों की तरंगें भी स्वयं ही स्वतः (सहजे) ही प्रतिध्वनित रूप से कम्पायमान होती है। इसी प्रकार से मन भी सहज से ही अन्तर्यामी प्रभु की सर्वव्यापक, शक्ति—जो प्रत्येक जीवात्मा में चिदाभास रूप है—के कारण कम्पन भाव सम्पन्न करता रहता है। जबकि संगक शब्द गाया व बजाया जाता है और भिन्न-भिन्न स्वरों के सपतिकों को लांघा जाता है, जब कोई स्वर मन के कम्पन के साथ समन्वित रूप से मिलकर प्रतिध्वनित होने लग जाता है, और वह गूंज बहुत ही प्रबल होकर, तादात्म्य होकर मन में हो जाती है, उस समय मन उस एक स्थानीय शब्द में स्थित हो जाता है। इससे पीछे फिर उस ही देश से मन सांगीतक रस की लहर में उसके पीछे-पीछे चल पड़ता है जो कि बाहिके आहत-नाद के अभेद रूप से प्रतिध्वनित राग, ताल और ध्वनि के अनुसार लीन हो जाता है। इस प्रकार से मन को अभ्यन्तर से ही शनैः शनैः अगवाई, शिक्षा और मार्ग प्राप्त होता है ताकि जो वह एकाग्रता, शान्ति और आनन्द उसको प्राप्त हो सके। इसका लक्ष यह है कि नित्य आनन्द का प्रादुर्भाव (manifestation) सहज में ही होने लग जाता है। जितना मन एकाग्र होगा उतना ही आध्यात्मिक रूप आनन्द का प्रभाव घर (ताल) राग और श्री गुरु वाणी रूप शब्द से होगा। यह धार्मिक आनन्द आध्यात्मिक आनन्द में परिवर्तन हो जावेगा जो कि सबसे उच्चतर है और यह अवस्था बारम्बार अनुभव की जाय तथापि जितने समय भी इस अवस्था में रहा जा सके, रहा जाये। इसको स्वकल्प समाधि (mystic trance) भी कहते हैं। इस प्रकार से लगातार इसके अभ्यास से सहज में ही मन में शान्ति, आनन्द, और आनन्द का यथार्थ अनुभव रूपी ज्ञान हो जाता है।

संगीत रत्नाकर के अनुसार (१ : ३०) मनुष्य को चतुर्पदार्थ भाव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष एक ही संगीत के द्वारा ही सहज में प्राप्त किया जाता है। परन्तु सिख धर्म के श्री गुरुओं ने इनको ईश्वर की देन माना है। जो ईश्वर सबकी इच्छा पूर्ण करता है और उसकी कृपा प्रसाद द्वारा ही नाम स्मरण और हरिकीर्त्तन प्राप्त होता है। जिस प्रकार से श्री गुरु जी कहते हैं:

धरम अरथ अरु काम मोष मुकति-पदारथ नाथ।
सगल मनोरथ पूरिआ नानक लिखिआ माथ ॥ १ ॥[1]

१- श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ० ६२७, राग रागवली, म० ५ ॥

नहीं किये जा सकते। इसलिये चार तत्त्वों से भिन्न आकाश को पांचवा तत्त्व अध्याहार करना पड़ा जिसमें आकाश में शब्द गुण की स्थिति सम्भव हो सके।

यह प्रसिद्ध है कि स्पन्दन व कम्पन के बिना शब्द की उत्पत्ति असम्भव है, अतः कम्पन भी शक्ति से बिना उत्पन्न नहीं हो सकता। सत्य तो यह है कि यह दोनों ही तत्काल (simultaneous) सम्बन्धी है। जैसे कि आधुनिक विज्ञान-वादियों ने आज प्रत्यक्ष सिद्ध किया है। यही कारण है कि श्री गुरु नानक देव जी ने कर्त्ता पुरुष-वाहिगुरु को विश्व का उत्पत्ति कर्त्ता (Creator), पालन-कर्त्ता (Sustainer) और संहार कर्त्ता (Destroyer) प्रतिपादन करते हुए दर्शाया है कि यह केवल विश्व का उपादान कारण (Material Cause) और निमित्त कारण (Efficient Cause) और शक्ति का सम्वाई कारण सब कुछ है। इस परिस्थिति के ईश्वर को श्री गुरु नानक देव जी के पंचम स्वरूप श्री गुरु अर्जुन देव जी ने शक्ति सबल वैदान्तिक नाम से ईश्वर को इस प्रकार से प्रतिपादित किया है :

'आपे सकती सबल कहाइआ।'[1]

इस प्रकार से प्रभु की शक्ति से ही यह सम्पूर्ण विश्व और इसमें अनेक ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति हुई है। इसलिये इन—अकाल पुरुष—की शक्ति का नाम शब्द ब्रह्म भी शास्त्रों में कहा है और यह ओंकार का भी पर्यायवाची शब्द है जो कि इस विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार का वाचक है। इसलिये इस शक्ति की स्थिति घट-घट में व्यापक है और सर्वव्यापक होने के कारण एक-एक जीवात्मा के अन्दर भी स्थित है। इसी कारण से श्री गुरु नानक देव जी कहते हैं :—

सभ महि जोति जाति है सोई।
तिसकै चानणि सभ महि चानुणु होई।
गुरसाखी जोति परगटु होई ॥ २ ॥[2]

संगीत के शाब्दिक वैज्ञानिक ग्रन्थकार और उन्हों के प्रयोग, शब्द और शब्द की प्रतिध्वनि के सम्बन्ध में यह बहुत ही स्पष्टतया सिद्ध कर चुके हैं कि यदि दो तन्त के वादन एक साथ स्वर में मिले हों तो एक के बजाने से दूसरे की तारें भी अपने-आप ही प्रतिध्वनित होकर गूंजने लगती हैं यद्यपि उनमें प्रत्यक्ष से कोई भी सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार से प्रतिध्वनि ही मन को जीतने की ताली (Key) जाननी चाहिये जो कि बाहर की आध्यात्मिक संगीत की ध्वनि के साथ मन भी उसी प्रतिध्वनि के साथ अन्दर आध्यात्मिकता के साथ गूंजने लग जाता है। इसीलिये श्री गुरु नानक देव जी ने

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ० १०८२, राग मारू सोहिले, म० ५॥
२. वही, पृ० १३ और ६६३, म० १॥

वाणी का संकेत किया गया है यथा : महला १,२,३,४,५,६, व भक्त कबीर, नामदेव आदि। परन्तु आगे, राग से पूर्व महले के साथ घर के लोगों का भी संकेत किया गया है। संस्कृत में घर गृह का वाचक है। जैसे आसा महला १, घर ६ आदि।

घर का यथार्थ अभिप्राय (significance) क्या है? यह एक बुझारत रही है।

संगीत रत्नाकर में तीन प्रकार के घरों का वर्णन आता है और 'लैं' सम्बन्धी मार्ग संगीत के ताल को गृहताल प्रतिपादन किया है। इस विशेष आध्यात्मिक संगीत में लैंकारी का मार्ग-ताल दिया है जो कि राजे महाराजों के दरबार में देशी शास्त्रीय संगीत के ताल से भिन्न था। यही घर श्री गुरुओं ने अपने आध्यात्मिक संगीत की प्रथा में अपनाया है जिसकी यहां विशेष प्रतिष्ठा बनती है। इस लेख के लेखक के अनुसार पटियाले के सुप्रसिद्ध निर्मल सन्त श्री तारा-सिह नरोत्तम ने घर शब्द को अपने 'गुरुमत निरणय सागर' में वर्णन करके सिद्ध करने का प्रयास किया है। जहां कि उन्होंने घर शब्द राग को ग्रह स्वर माना है। परन्तु यह बात अयुक्त प्रतीत होती है क्योंकि उसमें अंक के संकेत की आवश्यकता नहीं रहती। इससे अधिक १७ स्वरों का अस्तित्व भी नहीं है। परन्तु १७ घरों का वर्णन श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के आसा राग में प्रतिपादित है।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब के आन्तरिक प्रमाण से यह प्रतीत होता है कि घर स्वर वाचक नहीं अपितु ताल वाचक है। संगीत रत्नाकर और अन्य संगीत ग्रन्थों में यह स्पष्ट लिखा है :—

"देह में मुख प्रधान है। नाक मुख में प्रधान है।
ताल के बिना गीत नाक के बिना मुख वत है।।"[1]

इसीलिये श्री गुरु नानक देव जी के आध्यात्मिक संगीत में घर आध्यात्मिक लय व ताल का संकेतिक सिद्ध होता है। क्योंकि घर शब्द का प्रयोग केवल रागों के साथ ही होता देखा जाता है और उन शब्दों के साथ नहीं देखा जाता जिनका रागों के साथ सम्बन्ध नहीं है। श्री गुरुओं द्वारा ही बहुत स्थानों में संकेत भी देखा जाता है कि यह शब्द अन्य शब्द के घर में गाया जाना चाहिये जैसे, 'एक सवान के घर गावना' वा 'पहिरिआं के घर गावना' आदि।

(५)

शास्त्रीय संगीत प्रणाली के अतिरिक्त, श्री गुरुओं ने लोक संगीत की प्रणाली

---

१. संगीत रत्नाकर तथा नारद राग माला।

(४)

सर्व कलाओं में से संगीत कला उच्चतर मानी गई है। पर आध्यात्मिक संगीत का दायरा, लोक तथा शास्त्रीय और व्यवहारिक संगीत से अधिक चौड़ा, गहरा व गम्भीर है। इसीलिये आध्यात्मिक संगीत के कलाकार को विद्वान, कलाकार दोनों गुणों का ज्ञाता होना आवश्यक है। यहां ही बस नहीं, उसको सर्व विद्यक दर्शनकार के महान दायरे का भी अनुभव होना चाहिए। उसमें निरहंकारता और दया के गुण स्वाभाविक ही होने चाहिये और किसी भी अवस्था में विद्या-अहंकारी नहीं होना चाहिये।

सिख गुरुओं की वाणी में संगीत के शास्त्री तथा लौकिक दोनों ही प्रणालियां उपलब्ध हैं। बिना संशय श्री गुरु वाणी में शास्त्रीय संगीत का प्रभाव सबसे अधिक है। श्री गुरुओं की वाणी में दक्षिणी संगीत के रागों का भी प्रभाव उत्तरी संगीत के समक्ष देखा जाता है।

यद्यपि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में ३१ राग और उनके उपरूपभेद हैं। जिस प्रकार से राग गउड़ी में (शुद्ध) गउड़ी, गउड़ी, दीपक, गउड़ी पूर्वी, गउड़ी पूर्वी दीपकी, गउड़ी चेती, गउड़ी गुआरेरी, गउड़ी बैरागणी, गउड़ माला, आदि। इसी प्रकार से और रागों में भी जानना योग्य है। जैसे टोडी के २२ रूप प्रसिद्ध हैं। कानडे के १८ प्रकार, सारंग मल्हार कल्याण और बिलावल के १२ प्रकार, ८ प्रकार के केदारे, बिहाग (बिहागड़ा सम्मिलित) और सारंग आदि के प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार से श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में ३१ रागों से अधिक राग हो जाते हैं।

द्वितीय, यह प्रतीत होता है कि श्री गुरुओं ने कई स्थानों में दक्षिण संगीत पद्धति के राग उत्तरी संगीत पद्धति के रागों के स्थान में प्रयोग किये हैं, और उनको भी महत्ता दी है जिस प्रकार से राग रामकली दक्खणी आदि।

तृतीय, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में कई एकछन्द एक ही राग में आए हैं, जो कि अन्य रागों में प्रयुक्त नहीं किये गये हैं। इसका यह कारण है कि वह उस ही राग के देश, काल, रस, भाव, वातावरण आदि के अनुसार ही प्रभावशाली होने सम्भव हो सकते हैं और अन्य काल आदि के समय ठीक नहीं प्रतीत होते।

चतुर्थ, यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि श्री गुरुओं ने केवल प्राचीन संस्कृत प्रणाली के संगीत के रूप ही नहीं प्रयोग किये अपितु उन्होंने सबसे प्रथम फारसी के स्वरूप भी अपनाये हैं। इसलिए कीर्तनियों को यह हठधर्मी नहीं करनी चाहिये कि सम्पूर्ण गुरुवाणी के शब्द केवल प्राचीन संस्कृत प्रणाली के अनुसार ही गायन किए जाएँ।

अन्त में, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में प्रत्येक श्री गुरु जी की वाणी का भक्त की

प्राप्ति (नित्य सुख) के लिये उद्योगशील हो जाता है।

४. इस से जिज्ञासु को जीवन-मुक्ति अवस्था की प्राप्ति के अन्तर देहपात के काल में कैवल्य-मुक्ति जो नित्य सुख रूप है प्राप्त करने की सामर्थ्य देता है।

५. इसीलिये संगीत सब से सुलभ कला मानी गई है जिसके द्वारा जीवन का यथार्थ उद्देश्य प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार से श्री गुरु अर्जुन देव जी लिखते हैं :—

"हरिकीरतनु सुर्ण हरिकीरतनु गावै
तिसु जन दुःखु[1] निकट नहीं आवै ॥२॥"[2]

---

१. यहां दुःख का अर्थ तीनों ताप रूप दुःखों का सांकेतिक समझना चाहिये।
२. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृ० १९०, राग गउड़ी, म० ५।

के भी बहुत रूपों को भी स्थान दिया है। सब से विशेष रूप वार का है। श्री गुरुओं से पूर्व ढाडी और मरासी (ढोली) वार गाया करते थे जिनमें राजे और बहादुरों की बहादुरी के कार्यों का वर्णन होता था। जिस प्रकार से डा० सुरिन्दरसिंह कोहली आसा दी वार से सम्बन्धित लेख में लिखते हैं :—

"गुरु नानक ने लोग गीत दे वार दी प्रणाली नू आपणा लिआ जिस करके लोकां विच बहादरी दी रूह सामाजिक ते धार्मिक पख्खा तो पैदा हो जावे।" श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में २२ वारां महला १, ३, ४, ५ गुरुओं की रची मिलती हैं। उनको रागों में श्री गुरु वाणी के अन्त में तथा भक्त वाणी से पूर्व लिखा मिलता है। अतः ६ वारों में लोक ध्वनियों का भी सम्बन्ध अंकित किया मिलता है। परन्तु जिस राग में ध्वनि लिखी मिलती है उसी का आधार वही राग शास्त्रीय संगीत अनुसार संकेतित है। वार की ध्वनि में घर का कहीं भी वर्णन ना आने से वार वार के छन्द की लय है शास्त्री संगीत अनुसार मात्रा-ताल जाननी योग्य है। जो कि शास्त्रीय संगीत परम्परा अनुसार लेख-वद्ध(Notation) कहीं और ही लेख में दिखाया जा सकता है।

द्वितीय, श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में लोक संगीत सम्बन्धी और भी बहुत संकेत मिलते हैं जो कि सांसारिक व्यवहारिक जीवन में लोकाचार करके ढाडी, मरासी रागी आदि गाते देखे जाते हैं। जैसे कि जन्म समय के गाने, विवाह और घोड़ी चढ़ने के समय के गाने, विवाह की लावां के गीत, प्यार के अनेक गीत—यथा ढोला—आदि अथवा मरण काल के गीत अलाहणीयां (कीरने) आदि सबका संकेत मिलता है। यद्यपि अधिकतर यह गीत सांसारिक प्रेम आनन्द और दुःख सम्बन्धी प्रतीत होते हैं पर वह गूढ़ गम्भीर दार्शनिक अर्थ सम्बन्धी होते हैं जिनके ज्ञान से मनुष्य को सांसारिक सतह से उत्थान करके आध्यात्मिक सतह पर पहुँचने का अवकाश मिल जाता है। यहां यह कथन करना यथायोग्य होगा कि जो शब्द इस लोक ध्वनि की प्रणाली के हैं और इस प्रणाली के अनुसार गाये जाते हैं उनका भी आधार शास्त्रीय संगीत ही है जिन्हें रागों के शिरलेखों के नीचे श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में वह शब्द अंकित किये गये हैं। अन्तिम निचोड़ तथा निष्कर्ष में, आध्यात्मिक संगीत से पांच वस्तुओं की प्राप्ति सिद्ध होती है:—

१. यह मन को शान्ति और आनन्द प्रदान करते हुए तीनों दोषों को निवृत्त करने का एक मात्र साधन है।

२. यह मनुष्य को इस योग्य बना देता है कि वह सत्संग में सम्मिलित हो करके आध्यात्मिक वातावरण का लाभ उठाते हुए व्यावहारिक सूझ और सुख (हलत सुख) को प्राप्त करता है।

३. आध्यात्मिक संगीत मन को एकाग्रता द्वारा उत्थान करते हुए धार्मिक व जीवात्मिक आनन्द की ओर ले जाता है जिससे पलत सुख व अनेकता में एकता की

है और हर सुबह, हर सिख, और गुरु नानक के शिष्य द्वारा इसका पाठ किया जाता है, सिख-धर्म में दीक्षित होने के लिए अर्थात् अमृत चखने के समय 'जपुजी' ही सर्वप्रथम वाणी अथवा ईश्वरीय स्तुति की रचना है जिसका पाठ किया जाता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने स्वयं ऐसा किया था और उन्होंने पांच प्यारों को दीक्षित करने के लिए, पहली बार अमृत बनाया था और केशगढ़ साहिब आनन्दपुर में १६६६ में खालसा पंथ की स्थापना की थी।

प्रत्येक सिख का कर्त्तव्य है कि वह प्रातःकाल ब्रह्म-मुहूर्त्त में, भक्ति-भाव से 'जपुजी' का पाठ करे। जपुजी में स्वयं गुरु नानक कहते हैं कि प्रातःकालीन ब्रह्म-मुहूर्त्त में जबकि रात्रि के आराम के बाद, मन ताजा और पवित्र होता है, ईश्वरीय कृपा और सच्चे नाम का ध्यान (मनन) करना चाहिए।

स्वर्गीय प्रो० पूरनसिंह लिखते हैं—"जब मैं सोचता हूँ कि प्राचीन काल में सिख-गुरु के शिष्य, जपुजी की पौड़ियों का पाठ कर जीवन सार्थक बनाते थे तो मैं आनन्द और कृतज्ञता से भर उठता हूँ। मेरे सिख पूर्वजों द्वारा इस दैवी गीति के बार-बार पढ़ने का प्रभाव इतना गहरा था······कि जब मैं ठंडे पानी में डुबकी लगाता था तो बरबस मेरे कंठ से गीत फूट निकलता था जैसे कि उषा-काल के समय पक्षी चहचहाने लग जाते हैं।"[1] प्रो० पूरनसिंह इस अनुभव के साथ अपनी आत्म-स्वीकारोक्ति सम्बद्ध करते हुए कहते हैं—"जपुजी के रचयिता के प्रेम के कारण मैं मृत्यु से बच सका हूँ। अन्य लोगों के समान मैंने भी गुरु की पौड़ियों के बार-बार पाठ करने की उपयोगिता पर, प्रायः, सन्देह किया था, लेकिन स्वयं अपने पर जो वास्तविक परीक्षण मैंने किए उनसे मुझे पता चला कि 'जपुजी' के बिना मनुष्य मृतवत् है—जपुजी के बिना मनुष्य का अन्त हो जाता है···"[2] आज भी अनेक सिख ऐसे हैं जो पूरनसिंह की भांति यदि उन्हें रोजमर्रा की रोटी और 'जपुजी' में चुनाव करना पड़े, तो 'जपुजी' को ही चुनेंगे।

(३)

गुरु नानक ने अपनी रचनाओं को सुरक्षित रखने में बहुत ध्यान दिया था। इन रचनाओं को अपने परवर्ती गुरु अंगद को सौंप दिया था ताकि
...द भी प्रसारित किया जा सके। सरदार कपूरसिंह के
...ये हैं कि दूसरे गुरु, गुरु अंगद ने, गुरु ग्रंथ साहिब
...की रचना की थी। गुरु नानक की वाणी जो एक
...में थी, उस साक्षात्कृत वाणी को एक हस्तलिपि
...अंगद ने किया। ये हस्तलिपियां, गुरु नानक

: २० :

जपुजी : एक विवेचन

प्रो० प्रकाशसिंह

सिख धर्म-ग्रंथ अर्थात् आदि-ग्रंथ का प्रारंभ जपुजी से होता है जो ३८ पौड़ियों की एक रचना है। इसमें दो श्लोक हैं—एक प्रारंभ में और दूसरा अन्त में। यह रचना दस दैवी गुरुओं अथवा आध्यात्मिक गुरुओं में से सर्व-प्रथम एवं शिरोमणि गुरु नानक द्वारा रचित है, जिन्होंने अन्य गुरुओं के सहयोग से सिख-धर्म और समाज की आधारशिला रखी थी।

जपुजी में सिख-धर्म और दर्शन का सारतत्त्व निहित है और शेष 'ग्रंथ-साहिब' को जपुजी में समाहित मूलभूत विचारों की व्याख्या कहा जा सकता है।

"जपुजी उन हृदयों की उपज है जिन्होंने ईश्वरीय चेतना का आस्वाद चख लिया है और जिनके शब्द शताब्दियों तक लोगों को प्रेरित करते हैं कि वे जीवन में आध्यात्मिकता के प्रवेश के लिए स्वयं को तैयार करें।"

स० गुरमुख निहालसिंह के शब्दों में—"आध्यात्मिक साहित्य में, जपुजी की तुलना, उपयुक्त रूप में ही, गीता और नए ईसाई-मत के साथ की जा सकती है। जिस प्रकार गीता में हिन्दू धार्मिक दर्शन का सार निहित है, और नए ईसाई-धर्म में ईसाई-धर्म की बुनियादी विशेषताएं हैं, उसी प्रकार सिख धार्मिक दर्शन का सारतत्त्व जपुजी में संग्रहीत है।"[1]

समस्त 'आदि ग्रंथ' में जपुजी ही ऐसी रचना है जो संगीत अथवा राग-रागनियों के अनुरूप नहीं लिखी गई है। इस में जो पौड़ियां हैं वे वाद्य-यंत्रों की संगति में गाने के लिए नहीं है। 'आदि ग्रंथ' में जो अन्य पौड़ियां हैं, वे विशेष लय और रागों के अनुरूप लिखी गई हैं और वे उन रागों में गाए जाने के लिए ही हैं। 'आदि ग्रंथ' के अन्त में जो सवैये और श्लोक हैं, वे कतिपय अन्य अपवाद हैं।

(२)

जपुजी को सर्वत्र 'आदि-ग्रंथ' की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना माना जाता

---

१. जी० एस० देदी की पुस्तक 'सॉम ऑफ लाइफ' के आमुख में स० गुरमुख निहालसिंह का मत, सिख पब्लिशिंग हाउस, पृ० ६।

है और हर सुबह, हर सिख, और गुरु नानक के शिष्य द्वारा इसका पाठ किया जाता है, सिख-धर्म में दीक्षित होने के लिए अर्थात् अमृत चखने के समय 'जपुजी' ही सर्वप्रथम वाणी अथवा ईश्वरीय स्तुति की रचना है जिसका पाठ किया जाता है। गुरु गोबिन्दसिंह ने स्वयं ऐसा किया था और उन्होंने पाँच प्यारों को दीक्षित करने के लिए, पहली बार अमृत बनाया था और केशगढ़ साहिब आनन्दपुर में १६६६ में खालसा पंथ की स्थापना की थी।

प्रत्येक सिख का कर्त्तव्य है कि वह प्रातःकाल ब्रह्म-मुहूर्त्त में, भक्ति-भाव से 'जपुजी' का पाठ करे। जपुजी में स्वयं गुरु नानक कहते हैं कि प्रातःकालीन ब्रह्म-मुहूर्त्त में जबकि रात्रि के आराम के बाद, मन ताजा और पवित्र होता है, ईश्वरीय कृपा और सच्चे नाम का ध्यान (मनन) करना चाहिए।

स्वर्गीय प्रो० पूरनसिंह लिखते हैं—"जब मैं सोचता हूँ कि प्राचीन काल में सिख-गुरु के शिष्य, जपुजी की पौड़ियों का पाठ कर जीवन सार्थक बनाते थे तो मैं आनन्द और कृतज्ञता से भर उठता हूँ। मेरे सिख पूर्वजों द्वारा इस दैवी गीति के बार-बार पढ़ने का प्रभाव इतना गहरा था······कि जब मैं ठंडे पानी में डुबकी लगाता था तो बरबस मेरे कंठ से गीत फूट निकलता था जैसे कि उषा-काल के समय पक्षी चहचहाने लग जाते हैं।"[1] प्रो० पूरनसिंह इस अनुभव के साथ अपनी आत्म-स्वीकारोक्ति सम्बद्ध करते हुए कहते हैं—"जपुजी के रचयिता के प्रेम के कारण मैं मृत्यु से बच सका हूँ। अन्य लोगों के समान मैंने भी गुरु की पौड़ियों के बार-बार पाठ करने की उपयोगिता पर, प्रायः, सन्देह किया था, लेकिन स्वयं अपने पर जो वास्तविक परीक्षण मैंने किए उनसे मुझे पता चला कि 'जपुजी' के बिना मनुष्य मृतवत् है—जपुजी के बिना मनुष्य का अन्त हो जाता है···" आज भी अनेक सिख ऐसे हैं जो पूरनसिंह की भांति यदि उन्हें रोजमर्रा की रोटी और 'जपुजी' में चुनाव करना पड़े, तो 'जपुजी' को ही चुनेंगे।

(३)

गुरु नानक ने अपनी रचनाओं को सुरक्षित रखने में बहुत ध्यान दिया था। उन्होंने इन रचनाओं को अपने परवर्ती गुरु अंगद को सौंप दिया था ताकि उनका सन्देश उनके बाद भी प्रसारित किया जा सके। सरदार कपूरसिंह के अनुसार "वास्तविक तथ्य ये हैं कि दूसरे गुरु, गुरु अंगद ने, गुरु ग्रंथ साहिब नामक पुस्तक के सार रूप की रचना की थी। गुरु नानक की वाणी जो एक से अधिक हस्तलिपियों के रूप में थी, उस साक्षात्कृत वाणी को एक हस्तलिपि में संग्रहीत करने का काम गुरु अंगद ने किया। ये हस्तलिपियाँ, गुरु नानक

---

१. पूरनसिंह, 'स्पिरिट-बॉर्न पिपल', पृ० १०६।

: २० :

जपुजी : एक विवेचन

प्रो० प्रकाशसिंह

सिख धर्म-ग्रंथ अर्थात् आदि-ग्रंथ का प्रारंभ जपुजी से होता है जो ३८ पौड़ियों की एक रचना है। इसमें दो श्लोक हैं—एक प्रारंभ में और दूसरा अन्त में। यह रचना दस दैवी गुरुओं अथवा आध्यात्मिक गुरुओं में से सर्व-प्रथम एवं शिरोमणि गुरु नानक द्वारा रचित है, जिन्होंने अन्य गुरुओं के सहयोग से सिख-धर्म और समाज की आधारशिला रखी थी।

जपुजी में सिख-धर्म और दर्शन का सारतत्त्व निहित है और शेष 'ग्रंथ-साहिब' को जपुजी में समाहित मूलभूत विचारों की व्याख्या कहा जा सकता है।

"जपुजी उन हृदयों की उपज है जिन्होंने ईश्वरीय चेतना का आस्वाद चख लिया है और जिनके शब्द शताब्दियों तक लोगों को प्रेरित करते हैं कि वे जीवन में आध्यात्मिकता के प्रवेश के लिए स्वयं को तैयार करें।"

स० गुरमुख निहालसिंह के शब्दों में—"आध्यात्मिक साहित्य में, जपुजी की तुलना, उपयुक्त रूप में ही, गीता और नए ईसाई-मत के साथ की जा सकती है। जिस प्रकार गीता में हिन्दू धार्मिक दर्शन का सार निहित है, और नए ईसाई-धर्म में ईसाई-धर्म की बुनियादी विशेषताएं हैं, उसी प्रकार सिख धार्मिक दर्शन का सारतत्त्व जपुजी में संग्रहीत है।"[1]

समस्त 'आदि ग्रंथ' में जपुजी ही ऐसी रचना है जो संगीत अथवा राग-रागनियों के अनुरूप नहीं लिखी गई है। इस में जो पौड़ियां हैं वे वाद्य-यंत्रों की संगति में गाने के लिए नहीं है। 'आदि ग्रंथ' में जो अन्य पौड़ियां हैं, वे विशेष लय और रागों के अनुरूप लिखी गई हैं और वे उन रागों में गाए जाने के लिए ही हैं। 'आदि ग्रंथ' के अन्त में जो सवैये और श्लोक हैं, वे कतिपय अन्य अपवाद हैं।

(२)

जपुजी को सर्वत्र 'आदि-ग्रंथ' की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना माना जाता

---

१. जी० एस० टेंडी की पुस्तक 'सॉम ऑफ लाइफ' के आमुख में स० गुरमुख निहालसिंह का मत, सिख पब्लिशिंग हाउस, पृ० ६।

है और हर गुरुद्वारे, हर सिख, और गुरु नानक के शिष्य द्वारा इसका पाठ किया जाता है, सिख-धर्म में दीक्षित होने के लिए अर्थात् अमृत चखने के समय 'जपुजी' ही सर्वप्रथम वाणी अथवा ईश्वरीय स्तुति की रचना है जिसका पाठ किया जाता है। गुरु गोविन्दसिंह ने स्वयं ऐसा किया था और उन्होंने पाँच प्यारों को दीक्षित करने के लिए पहली बार अमृत बनाया था और केशगढ़ साहिब आनन्दपुर में १६९९ में खालसा पंथ की स्थापना की थी।

प्रत्येक सिख का कर्त्तव्य है कि वह प्रातःकाल ब्रह्म-मुहूर्त में, भक्ति-भाव से 'जपुजी' का पाठ करे। जपुजी में स्वयं गुरु नानक कहते हैं कि प्रातःकालीन ब्रह्म-मुहूर्त में क्योंकि रात्रि के आराम के बाद, मन ताजा और पवित्र होता है, इसलिए प्रभु और उनके नाम का ध्यान (मनन) करना चाहिए।

स्वर्गीय प्रो० पूरनसिंह लिखते हैं—"जब मैं सोचता हूं कि प्राचीन काल में सिख-गुरु के शिष्य, जपुजी की पौड़ियों का पाठ कर जीवन सार्थक बनाते थे तो मैं आनन्द और कृतज्ञता से भर उठता हूं। मेरे सिख पूर्वजों द्वारा इस दैवी गीति के बार-बार पढ़ने का प्रभाव इतना गहरा था……कि जब मैं ठंडे पानी में डुबकी लगाता था तो बरबस मेरे कंठ से गीत फूट निकलता था जैसे कि उषा-काल के समय पक्षी चहचहाने लग जाते हैं।"[1] प्रो० पूरनसिंह इस अनुभव के साथ अपनी आत्म-स्वीकारोक्ति सम्बद्ध करते हुए कहते हैं—"जपुजी के रचयिता के प्रेम के कारण मैं मृत्यु से बच सका हूं। अन्य लोगों के समान मैंने भी गुरु की पौड़ियों के बार-बार पाठ करने की उपयोगिता पर, प्रायः, सन्देह किया था, लेकिन स्वयं अपने पर जो वास्तविक परीक्षण मैंने किए उनसे मुझे पता चला कि 'जपुजी' के बिना मनुष्य मृतवत् है—जपुजी के बिना मनुष्य का अन्त हो जाता है…"[1] आज भी अनेक सिख ऐसे हैं जो पूरनसिंह की भांति यदि उन्हें रोजमर्रा की रोटी और 'जपुजी' में चुनाव करना पड़े, तो 'जपुजी' को ही चुनेंगे।

(३)

गुरु नानक ने अपनी रचनाओं को सुरक्षित रखने में बहुत ध्यान दिया था। उन्होंने इन रचनाओं को अपने परवर्ती गुरु अंगद को सौंप दिया था ताकि उनका सन्देश उनके बाद भी प्रसारित किया जा सके। सरदार कपूरसिंह के अनुसार "वास्तविक तथ्य ये हैं कि दूसरे गुरु, गुरु अंगद ने, गुरु ग्रंथ साहिब नामक पुस्तक के सार रूप की रचना की थी। गुरु नानक की वाणी जो एक से अधिक हस्तलिपियों के रूप में थी, उस साक्षात्कृत वाणी को एक हस्तलिपि में संग्रहीत करने का काम गुरु अंगद ने किया। ये हस्तलिपियाँ, गुरु नानक

---

१. पूरनसिंह, 'स्पिरिट-बॉर्न पिपल', पृ० १०६।

: २० :

जपुजी : एक विवेचन

प्रो० प्रकाशसिंह

सिख धर्म-ग्रंथ अर्थात् आदि-ग्रंथ का प्रारंभ जपुजी से होता है जो ३८ पौड़ियों की एक रचना है। इसमें दो श्लोक हैं—एक प्रारंभ नें और दूसरा अन्त में। यह रचना दस दैवी गुरुओं अथवा आध्यात्मिक गुरुओं में से सर्व-प्रथम एवं शिरोमणि गुरु नानक द्वारा रचित है, जिन्होंने अन्य गुरुओं के सहयोग से सिख-धर्म और समाज की आधारशिला रखी थी।

जपुजी में सिख-धर्म और दर्शन का सारतत्त्व निहित है और शेष 'ग्रंथ-साहिब' को जपुजी में समाहित मूलभूत विचारों की व्याख्या कहा जा सकता है।

"जपुजी उन हृदयों की उपज है जिन्होंने ईश्वरीय चेतना का आस्वाद चख लिया है और जिनके शब्द शताब्दियों तक लोगों को प्रेरित करते हैं कि वे जीवन में आध्यात्मिकता के प्रवेश के लिए स्वयं को तैयार करें।"

स० गुरमुख निहालसिंह के शब्दों में—"आध्यात्मिक साहित्य में, जपुजी की तुलना, उपयुक्त रूप में ही, गीता और नए ईसाई-मत के साथ की जा सकती है। जिस प्रकार गीता में हिन्दू धार्मिक दर्शन का सार निहित है, और न ईसाई-धर्म में ईसाई-धर्म की बुनियादी विशेषताएं हैं, उसी प्रकार सिख धार्मि दर्शन का सारतत्त्व जपुजी में संग्रहीत है।"[1]

समस्त 'आदि ग्रंथ' में जपुजी ही ऐसी रचना है जो संगीत अथवा रा रागनियों के अनुरूप नहीं लिखी गई है। इस में जो पौड़ियाँ हैं वे वाद्य-यं की संगति में गाने के लिए नहीं है। 'आदि ग्रंथ' में जो अन्य पौड़ियाँ हैं, विशेष लय और रागों के अनुरूप लिखी गई हैं और वे उन रागों में गाए ज के लिए ही हैं। 'आदि ग्रंथ' के अन्त में जो सवैये और श्लोक हैं, वे कति अन्य अपवाद हैं।

(२)

जपुजी को सर्वत्र 'आदि-ग्रंथ' की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना माना

---

१. जी० एस० बेदी की पुस्तक 'सॉम ऑफ लाइफ' के आमुख में स० गुरमुख निह का मत, सिख पब्लिशिंग हाउस, पृ० ६।

दैनिक नियम था कि वे प्रातःकाल जपुजी का पाठ किया करते थे और सायं:-काल सोदार और आरती गाते थे।

'जपुजी साहब' की पौड़ियाँ, वस्तुतः, कब रची गईं? क्या सभी पौड़ियाँ एक ही समय में रची गईं अथवा क्या कुछ एक समय में तो अन्य दूसरे समय में लिखी गईं? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। जो निश्चित प्रतीत होता है वह यह कि जब गुरु नानक ने करतारपुर में अंतिम रूप से डेरा डाल लिया तो तब जपुजी अपने वर्त्तमान रूप में संपूर्ण थी।

तो भी, रचना की सही तिथि जानना भक्त के लिए ज़रूरी नहीं है क्योंकि ऐसी उदात्त वाणियों अथवा पवित्र पुस्तकों पर तिथि नहीं दी जाती। ये पुस्तकें अपने सिद्धांतों के समान ही कालजयी हैं।

इस सम्बन्ध में जिन विभिन्न मतों का प्रवर्त्तन किया गया है, उनका हवाला देना यहाँ उचित होगा :—

१. जन्म-साखियों में दिए गए उपर्युक्त मतों के अलावा, भाई मनीसिंह का यह विश्वास था कि गुरु नानक ने सिद्धों और योगियों से विचार-विनिमय के बाद 'जपुजी' की रचना की थी।

२. कतिपय सूत्रों का विश्वास है कि जपुजी की विभिन्न वाणियाँ, अवसर के अनुरूप, भिन्न-भिन्न समय पर रची गई थीं—उदाहरणार्थ, ऐसा विश्वास है कि २२वीं पौड़ी की रचना उस समय हुई थी जब मक्का और बगदाद में काजियों और मुल्लाओं के साथ उनकी बातचीत हुई थी।

३. भाई मनीसिंह के मत का ही किंचित परिवर्तित रूप यह है कि गुरु नानक ने सिद्धों के साथ अपनी बातचीत का पूरा ब्योरा, अपने मुख्य शिष्य भाई लहणा, जो बाद में गुरु अंगद के नाम से प्रसिद्ध हुए, को दिया था और प्रारंभिक श्लोक की रचना के अनन्तर, गुरु अंगद से कहा था कि 'जपुजी' के शेष भाग को वे लिखें जैसे कि उन्हें समझाया गया है।[1] भाई सन्तोखसिंह रचित "सूरज प्रकाश" (गुरु प्रताप सूरज)[2] के आधार पर डा० मोहनसिंह ने ऐसा ही विचार व्यक्त किया है।

४. भाई साहब सिंह और डॉ० एस० एस० कोहली जैसे सिख विद्वानों [illegible] है कि 'जपुजी' की रचना सिखों के पथ-प्रदर्शन और आध्यात्मिक उन्नति [illegible] गुरु नानक ने तब की थी जब उन्होंने करतारपुर में डेरा डाल

[illegible] [illegible]र पर कहा जा सकता है कि संभवत जपुजी की

[1] ए० टी० एस० एस०।

[2] [illegible]न [illegible] [illegible]न'।

द्वारा, गुरुमुखी अक्षरों में लिखी गई थीं, इसमें सन्देह के लिए गुंजाइश नहीं है।"[१]

'आदि ग्रंथ' की मूल प्रतिलिपि जो पाँचवें गुरु अर्जुनदेव ने स्वयं संकलित और संशोधित की थी, अब भी जिला जालंधर (पंजाब) के करतारपुर में सुरक्षित पड़ी है। श्री एम० ए० मेकालिफ ने इस ओर संकेत किया है—"सिख-धर्म का, सिद्धांतों की प्रामाणिकता की दृष्टि से, अन्य अधिकांश धर्म-पद्धतियों से अन्तर है। विश्व-प्रसिद्ध महान् गुरुओं में से अनेक ऐसे हैं जो अपनी वाणी की एक पंक्ति भी नहीं छोड़ गए हैं और परम्परा और दूसरों द्वारा प्रदत्त जानकारी से ही हमें मालूम हो पाता है कि उन्होंने क्या सन्देश दिया था......पर, जैसा कि हम जानते हैं, सिख गुरुओं की वाणियाँ, जिस रूप में उन्होंने शिक्षाएँ दी थीं, उसी रूप में सुरक्षित हैं। उन्होंने कविता के माध्यम को अपनाया था, जो सामान्यतः, प्रतिलिपिकों द्वारा बदला नहीं जा सकता और हम, कालान्तर में, उनकी विभिन्न शैलियों से परिचित हो जाते हैं...।"[२]

इस प्रकार 'आदि-ग्रंथ' में जपुजी का मूल पाठ प्रामाणिक है, यद्यपि गुरु नानक द्वारा लिखित मूल प्रतिलिपि अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

(४)

गुरु नानक की जन्म-साखियों में इस बात का उल्लेख है कि जब गुरु सुलतानपुर में रहते थे तो वे रोज़ निकटवर्ती वेंईं नदी में स्नान करने के लिए जाया करते थे। जब वे २७ वर्ष के थे, एक दिन प्रातःकाल वे नदी में स्नान करने के लिए गए और तीन दिन तक उनके संबंध में पता न चल सका कि वे कहाँ हैं। वृत्तांतों में कहा गया है कि तब गुरु को ईश्वर का साक्षात्कार हुआ था, उन पर ईश्वर की कृपा हुई थी और ईश्वर का नाम जपने की उन्हें दीक्षा मिली थी। उन्होंने शिष्यों को नाम जाप की प्रेरणा दी थी और समस्त मानवता को सच्चे धर्म की शिक्षा दी थी। दैवी अनुकम्पा के प्रतीक रूप में ईश्वर ने नानक को एक अमृत का प्याला प्रदान किया था। वृत्तांतों में इस बात की साक्षी मौजूद है कि इस दैवी अनुभव की प्रेरणा के वशीभूत होकर ही गुरु नानक ने मूल मंत्र का उच्चारण किया था जिससे कि जपुजी साहिब का प्रारंभ होता है। जन्म साखियों के लिखे जाने के पूर्व भी, भाई गुरदास ने (१५५८-१६३९) अपनी प्रथम वार में कहा था कि जब गुरु नानक ने अपनी यात्राओं को पूरा करके करतारपुर के स्थान पर डेरा डाला तो उस समय सिखों का यह

---

१. कपूरसिंह, Prasharprasna (वैसाखी ऑफ गुरु गोविन्दसिंह), पृ० २३३।
२. एम० ए० मेकालिफ, 'दी सिख रिलीजन', खंड १, भूमिका।

दैनिक नियम था कि वे प्रातःकाल जपुजी का पाठ किया करते थे और सायं-काल सोदार और आरती गाते थे।

'जपुजी साहब' की पौड़ियाँ, वस्तुतः, कब रची गईं? क्या सभी पौड़ियाँ एक ही समय में रची गईं अथवा क्या कुछ एक समय में तो अन्य दूसरे समय में लिखी गईं? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। जो निश्चित प्रतीत होता है वह यह कि जब गुरु नानक ने करतारपुर में अंतिम रूप से डेरा डाल लिया तो तब जपुजी अपने वर्त्तमान रूप में संपूर्ण थी।

तो भी, रचना की सही तिथि जानना भक्त के लिए ज़रूरी नहीं है क्योंकि ऐसी उदात्त वाणियों अथवा पवित्र पुस्तकों पर तिथि नहीं दी जाती। ये पुस्तकें अपने सिद्धांतों के समान ही कालजयी हैं।

इस सम्बन्ध में जिन विभिन्न मतों का प्रवर्त्तन किया गया है, उनका हवाला देना यहाँ उचित होगा :—

१. जन्म-साखियों में दिए गए उपर्युक्त मतों के अलावा, भाई मनीसिंह का यह विश्वास था कि गुरु नानक ने सिद्धों और योगियों से विचार-विनिमय के बाद 'जपुजी' की रचना की थी।

२. कतिपय सूत्रों का विश्वास है कि जपुजी की विभिन्न वाणियाँ, अवसर के अनुरूप, भिन्न-भिन्न समय पर रची गई थीं—उदाहरणार्थ, ऐसा विश्वास है कि २२वीं पौड़ी की रचना उस समय हुई थी जब मक्का और बगदाद में काजियों और मुल्लाओं के साथ उनकी बातचीत हुई थी।

३. भाई मनीसिंह के मत का ही किंचित परिवर्तित रूप यह है कि गुरु नानक ने सिद्धों के साथ अपनी बातचीत का पूरा ब्यौरा, अपने मुख्य शिष्य भाई लहणा, जो बाद में गुरु अंगद के नाम से प्रसिद्ध हुए, को दिया था और प्रारंभिक श्लोक की रचना के अनन्तर, गुरु अंगद से कहा था कि 'जपुजी' के शेष भाग को वे लिखें जैसे कि उन्हें समझाया गया है।[1] भाई सन्तोखसिंह रचित "सूरज प्रकाश" (गुरु प्रताप सूरज)[2] के आधार पर डा० मोहनसिंह ने ऐसा ही विचार व्यक्त किया है।

४. भाई साहब सिंह और डॉ० एस० एस० कोहली जैसे सिख विद्वानों का मत है कि 'जपुजी' की रचना सिखों के पथ-प्रदर्शन और आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरु नानक ने तब की थी जब उन्होंने करतारपुर में डेरा डाल लिया था।

उपर्युक्त मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि संभवत जपुजी की

---

१. त्रिलोकनाथ, 'जपुजी शतक', १९७०, ए० डी० एस० एस०।
२. डा० मोहनसिंह, 'पंजाबी भाषा विज्ञान अते गुरमत ज्ञान'।

द्वारा, गुरुमुखी अक्षरों में लिखी गई थीं, इसमें सन्देह के लिए गुंजाइश नहीं है।"[१]

'आदि ग्रंथ' की मूल प्रतिलिपि जो पांचवें गुरु अर्जुनदेव ने स्वयं संकलित और संशोधित की थी, अब भी जिला जालंधर (पंजाब) के करतारपुर में सुरक्षित पड़ी है। श्री एम० ए० मेकालिफ ने इस ओर संकेत किया है—"सिख-धर्म का, सिद्धांतों की प्रामाणिकता की दृष्टि से, अन्य अधिकांश धर्म-पद्धतियों से अन्तर है। विश्व-प्रसिद्ध महान् गुरुओं में से अनेक ऐसे हैं जो अपनी वाणी की एक पंक्ति भी नहीं छोड़ गए हैं और परम्परा और दूसरों द्वारा प्रदत्त जानकारी से ही हमें मालूम हो पाता है कि उन्होंने क्या सन्देश दिया था······पर, जैसा कि हम जानते हैं, सिख गुरुओं की वाणियाँ, जिस रूप में उन्होंने शिक्षाएँ दी थीं, उसी रूप में सुरक्षित हैं। उन्होंने कविता के माध्यम को अपनाया था, जो सामान्यतः, प्रतिलिपिकों द्वारा बदला नहीं जा सकता और हम, कालान्तर में, उनकी विभिन्न शैलियों से परिचित हो जाते हैं···।"[२]

इस प्रकार 'आदि-ग्रंथ' में जपुजी का मूल पाठ प्रामाणिक है, यद्यपि गुरु नानक द्वारा लिखित मूल प्रतिलिपि अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

(४)

गुरु नानक की जन्म-साखियों में इस बात का उल्लेख है कि जब गुरु सुलतानपुर में रहते थे तो वे रोज़ निकटवर्ती वेंई नदी में स्नान करने के लिए जाया करते थे। जब वे २७ वर्ष के थे, एक दिन प्रातःकाल वे नदी में स्नान करने के लिए गए और तीन दिन तक उनके संबंध में पता न चल सका कि वे कहाँ हैं। वृत्तांतों में कहा गया है कि तब गुरु को ईश्वर का साक्षात्कार हुआ था, उन पर ईश्वर की कृपा हुई थी और ईश्वर का नाम जपने की उन्हें दीक्षा मिली थी। उन्होंने शिष्यों को नाम जाप की प्रेरणा दी थी और समस्त मानवता को सच्चे धर्म की शिक्षा दी थी। दैवी अनुकम्पा के प्रतीक रूप में ईश्वर ने नानक को एक अमृत का प्याला प्रदान किया था। वृत्तांतों में इस बात की साक्षी मौजूद है कि इस दैवी अनुभव की प्रेरणा के वशीभूत होकर ही गुरु नानक ने मूल मंत्र का उच्चारण किया था जिससे कि जपुजी साहिब का प्रारंभ होता है। जन्म साखियों के लिखे जाने के पूर्व भी, भाई गुरदास ने (१५५८-१६३९) अपनी प्रथम वार में कहा था कि जब गुरु नानक ने अपनी यात्राओं को पूरा करके करतारपुर के स्थान पर डेरा डाला तो उस समय सिखों का यह

---

१. कपूरसिंह, Prasharprasna (वैसाखी ऑफ गुरु गोविन्दसिंह), पृ० २३३।

२. एम० ए० मेकालिफ, 'दी सिख रिलीजन', खंड १, भूमिका।

दैनिक नियम था कि वे प्रातःकाल जपुजी का पाठ किया करते थे और सायं-काल सोदार और आरती गाते थे।

'जपुजी साहब' की पौड़ियाँ, वस्तुतः, कब रची गईं ? क्या सभी पौड़ियाँ एक ही समय में रची गईं अथवा क्या कुछ एक समय में तो अन्य दूसरे समय में लिखी गईं ? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। जो निश्चित प्रतीत होता है वह यह कि जब गुरु नानक ने करतारपुर में अंतिम रूप से डेरा डाल लिया तो तब जपुजी अपने वर्त्तमान रूप में संपूर्ण थी।

तो भी, रचना की सही तिथि जानना भक्त के लिए जरूरी नहीं है क्योंकि ऐसी उदात्त वाणियों अथवा पवित्र पुस्तकों पर तिथि नहीं दी जाती। ये पुस्तकें अपने सिद्धांतों के समान ही कालजयी हैं।

इस सम्बन्ध में जिन विभिन्न मतों का प्रवर्त्तन किया गया है, उनका हवाला देना यहाँ उचित होगा :—

१. जन्म-साखियों में दिए गए उपर्युक्त मतों के अलावा, भाई मनीसिंह का यह विश्वास था कि गुरु नानक ने सिद्धों और योगियों से विचार-विनिमय के बाद 'जपुजी' की रचना की थी।

२. कतिपय सूत्रों का विश्वास है कि जपुजी की विभिन्न वाणियाँ, अवसर के अनुरूप, भिन्न-भिन्न समय पर रची गई थीं—उदाहरणार्थ, ऐसा विश्वास है कि २२वीं पौड़ी की रचना उस समय हुई थी जब मक्का और बगदाद में काजियों और मुल्लाओं के साथ उनकी बातचीत हुई थी।

३. भाई मनीसिंह के मत का ही किंचित परिवर्तित रूप यह है कि गुरु नानक ने सिद्धों के साथ अपनी बातचीत का पूरा ब्यौरा, अपने मुख्य शिष्य भाई लहणा, जो बाद में गुरु अंगद के नाम से प्रसिद्ध हुए, को दिया था और प्रारंभिक श्लोक की रचना के अनन्तर, गुरु अंगद से कहा था कि 'जपुजी' के शेष भाग को वे लिखें जैसे कि उन्हें समझाया गया है।[1] भाई सन्तोखसिंह रचित "सूरज प्रकाश" (गुरु प्रताप सूरज)[2] के आधार पर डा० मोहनसिंह ने ऐसा ही विचार व्यक्त किया है।

४. भाई साहब सिंह और डॉ० एस० एस० कोहली जैसे सिख विद्वानों का मत है कि 'जपुजी' की रचना सिखों के पथ-प्रदर्शन और आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरु नानक ने तब की थी जब उन्होंने करतारपुर में डेरा डाल लिया था।

उपर्युक्त मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि संभवत जपुजी की

---

१. शिभोनाथ, 'जपुजी शतक', १७०१ ए० डी० एम० एस०।
२. डा० मोहनसिंह, 'पंजाबी भाषा विज्ञान अते गुरमत ज्ञान'।

रचना विभिन्न समयों में हुई थी और एक संश्लिष्ट रचना के रूप में इनका संकलन गुरु नानक ने करतारपुर के स्थान पर किया था और अपने शिष्यों को वाणियों का पाठ करने, पथ-प्रदर्शन करने और प्रेरणा देने के लिए अपनी शिक्षाओं का सार-संक्षेप दिया था।

(५)

समस्त जपुजी को, मोटे तौर पर चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(i) पहले सात पद, (ii) अगले २० पद (iii) इसके बाद के चार पद (iv) और शेष ७ पद। पहले सात पदों में अध्यात्म की खोजी जीवात्मा की समस्या को समझाया गया है और सहज रूप में प्रस्तुत किया गया है। अगला भाग पाठक को उत्तरोत्तर साधन-पथ की ओर अग्रसर करता जाता है जब तक कि जीवात्मा को महान् सत्य का साक्षात्कार नहीं हो जाता। तीसरे भाग में ऐसे व्यक्ति के मानसिक रुझानों और दृष्टि का वर्णन किया गया है जिसने कि अध्यात्म का आस्वाद चख लिया हो। अन्तिम भाग में समस्त साधना का सार प्रस्तुत किया गया है जो स्वयं में बहुत अधिक मूल्यवान है क्योंकि इस भाग में सत्य और शाश्वत सत्य, साधना पथ की ओर उन्मुख मननशील आत्मा के आध्यात्मिक विकास के चरणों का प्रत्यक्ष वर्णन किया गया है। 'जपुजी' के और भी उपविभाग किये जा सकते है—जैसे, दो श्लोक और ३८ पौड़ियां, कुल मिला कर ४० पौड़ियां जिन्हें चार-चार पौड़ियों के वर्ग में बांटा जा सकता है।[1]

(६)

'जपुजी' का उद्देश्य सत्य का साक्षात्कार पाने के लिए प्रयत्न करना है और उसे प्राप्त करना है। इसके लिए जो साधना-पद्धति अपनायी गई है, उसे आज की शब्दावली में चिन्तन की वैज्ञानिक पद्धति कहा जा सकता है। पहले यह सवाल उठाया गया है कि सत्य की प्राप्ति कैसे होगी और मिथ्या का पर्दा कैसे टूटेगा? गुरु, क्रमशः, साधना-पथ का निर्देश करते हैं। वे चिन्तन और उपासना के वाह्याडंबरों की व्यर्थता बताते हैं और हमें स्व-चिंतन के लिए प्रेरित करते हैं। वे धार्मिक जीवन से सम्बद्ध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को, एक-एक कर लेते हैं, एक सच्चे गुरु के समान, पहले वे अपने अनुभवों को ही प्रस्थान बिन्दु मानते हैं और फिर उसी आधार पर हर समस्या पर विचार करने को कहते हैं। इसके अनन्तर वे समस्या से सम्बद्ध सभी संभव सामग्री देते हैं और साधना-

१. विस्तार के लिए देखिए लेखक की पुस्तक 'जप विहार', एस० जी० पी० सी० १९६५, पृ० १३, १४।

प्रक्रिया का अन्तः सम्बन्ध बताते हैं। अगले चार पद समस्या का समाधान करने के ढाँचे को सूचित करते हैं और फिर जल्दी ही उसका सच्चा समाधान भी दे देते हैं। इसके बाद गुरु जिस नई अन्तर्दृष्टि से हमें सम्पन्न करते हैं, उसका व्यापक महत्त्व और अभ्यास भी हमें अनुभव कराते हैं। और इस प्रकार हमारे चिन्तन की प्रक्रिया में इतना जबरदस्त परिवर्त्तन आ जाता है कि चरम रहस्य, मानवता रूपी निम्न धातु को, अध्यात्म-प्रेरित जीवन के विशुद्ध स्वर्ण में रूपान्तरित कर देता है।

(७)

जपुजी में ईश्वर के एक होने, नाम-सिमरन अथवा भक्ति-मत पर अर्थात् ईश्वर के प्रति प्रेम-निवेदन पर बल दिया गया है। इसके लिए जरूरी है कि मन, वचन और कर्म से भगवद्-इच्छा के प्रति पूर्ण समर्पण किया जाए।

'जपुजी' का महान् विषय है—मानव मुक्ति की सनातन समस्या। इससे हमें ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति होती है और आत्मसाक्षात्कार के व्यावहारिक साधना-मार्ग का निर्देशन प्राप्त होता है। गुरु नानक हमें आध्यात्मिक-सत्ता अर्थात् स्रष्टा का दर्शन कराते हैं और परब्रह्म में विलीन होने का रास्ता बताते हैं।

स० गुरुमुख निहालसिंह के शब्दों में "जपुजी में कुछ बुनियादी प्रश्न उठाए गए हैं। इसमें मानवीय अस्तित्व और सृष्टिकर्त्ता से मिलाप आदि मसलों पर विचार किया गया है। विगत शताब्दियों के भारत में प्रचलित धर्म-साधनाओं का इसमें संक्षेप रूप में वर्णन किया गया है और इसमें धार्मिक मसलों से सम्बद्ध दार्शनिक पहलुओं पर विचार किया गया है। इसमें समाधान दिया गया है और ईश्वर तक पहुँचने की सिख साधना-पद्धति का वर्णन किया गया है। जपुजी के पाठक का ध्यान दैवी-पुरुष, एक सर्वोच्च चेतना, जीवन और प्रकाश का उत्स निरंजन और स्रष्टा, पर केन्द्रित करता है।[१]

'जपुजी' में भगवद नाम के मूलाधार पर, सामाजिक और आध्यात्मिक अर्थ में, विशद और सम्मिलित रूप में धर्म का प्रवर्त्तन किया गया है। 'मंगलाचरण' में भगवान का परिचय, मूल मंत्र के रूप में, जो एक है, सनातन है, प्रेममय परमेश्वर है, वह मनुष्यों में अनुचित भेदभाव नहीं करता है, यद्यपि उच्च या नीच उसकी इच्छा से ही पैदा हुए हैं। जपुजी के सर्वशक्तिमान परमेश्वर लोगों के कर्मों को नहीं, उनकी भावनाओं को देखते हैं और समस्त मानवता में व्याप्त शिवं शक्ति को विचाराधीन रखते हैं। जे० आर्चर के अनुसार हिन्दू

---

१. स० गुरुमुख निहालसिंह, जपुजी साहब का आमुख, अनु० पूरनसिंह, तृतीय संस्क० पृ० ५।

भारतवर्ष में, यह बात, असाधारण रूप में, एक आशावादी स्वर है।[1]

गुरु नानक का मत है कि ईश्वर को किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। "उसका वर्णन मनुष्यों की भाषा में नहीं किया जा सकता···समस्त जीवात्माओं का मुक्तिदाता एक ही है; मैं उसे कभी न भूलूं"; "गुरु नानक ने कम-से-कम, तत्कालीन विश्रृंखल हिन्दू धर्म के अधिकांश प्रचलित विचारों और साधनाओं का खंडन किया है और इस्लाम के एकेश्वरवाद की कट्टरता को कम किया है वे देवताओं को न तो मनुष्यों के अपूर्ण मनों के उपयुक्त नॉवल के समान समझते हैं और न ही वे संसार को माया या भ्रम का क्षेत्र ही समझते हैं। इसके बावजूद, गुरु नानक परम्परागत और परिवेशगत प्रभाव की साक्षियों से सर्वथा मुक्त नहीं हैं।"[2]

'जपुजी' में गुरु नानक जिस प्रकार के संसार त्याग की सिफारिश करते हैं, उसे बाह्याडंबरों, तीर्थयात्राओं और तपजनित एकान्त से निभाया या अनुभव नहीं किया जा सकता बल्कि नाम का पाठ और समझ सब कुछ प्रदान करने वाला है। *यदि भक्त केवल नाम का ही चिन्तन करें तो वह सभी विश्वों,* सभी खंडों और प्रत्येक वस्तु को जान लेता है। यदि वह नाम-सुमिरन करता है और नाम के प्रति प्रेम-भाव को समझ लेता है तो वह तमाम पापों और दुःखों का निवारण कर लेता है और नाम के द्वारा उसकी मुक्ति निश्चित हो जाती है।

'जपुजी' में एक ही मत के दो पक्ष—कर्म और पुनर्जन्म, के प्रचलित, परम्परागत और स्वदेशी सिद्धान्तों के चिह्न मिलते हैं। "पिछले दो हजार वर्षों में कोई भी पूर्णतः भारतीय चिन्तक अथवा सुधारक, इन सिद्धान्तों की अवहेलना नहीं कर सका है अथवा अवहेलना नहीं की है और उस सीमा तक गुरु नानक एक भारतीय थे।"[3] और 'जपुजी' के अनुसार नाम ही है जो भक्त को कर्म के बन्धन से और आवागमन के चक्र से मुक्त करता है।

लेकिन गुरु नानक के तत्त्व निरूपण में ईश्वरीय इच्छा या ईश्वर के हुक्म का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। "वह जो भी इच्छा करता है, वह पूरी होती है।" "जो कुछ उसे अच्छा लगता है, वह करता है, किसी के हुक्म के अधीन हुए बिना" जो तिसु भावै सोई करसी हुक्म न करणा जाई। गुरु नानक ने भक्ति-सिद्धान्त का उपदेश दिया था, न कि कर्म-सिद्धान्त का। 'जपुजी' में परब्रह्म की प्रेमपूर्ण दयालुता पर जोर दिया है इसमें शिक्षा दी गयी है कि "मनुष्य को बीज बोने

१. आर्चर, 'दी सिक्स', पृ० ११६।
२. वही, पृ० ११०।
३. वही, पृ० ११६।

की ही नहीं काटने की भी स्वतंत्रता है", 'आपे बीजि आपे ही खाहु ।' गुरु नानक यह भी बताते हैं कि "आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारू ।"

(८)

गुरु नानक ने प्रचलित साहित्यिक परम्परा के अनुरूप अपने विचारों को कविता में अभिव्यक्त किया पर "उन्होंने कविता के नियमों को अपने चिन्तन पर कभी हावी नहीं होने दिया ।"[1] जपुजी में केवल एक प्रकार के पद्यात्मक-विधान की एकरसता नहीं है, गुरु नानक ने पदों का विधान इस प्रकार से किया है कि वे प्राय: लम्बी से छोटी और फिर छोटी से लम्बी पंक्तियाँ लिखने लग जाते हैं। कभी कभी-लम्बी पंक्तियों के बीच में वे छोटी पंक्तियाँ रख देते हैं जिस से कि मूल-चिन्तन पर बल दिया जा सके। गुरु नानक अपने कथ्य और कथन को मुख्य मानते हैं और इसके लिए वे कभी-कभी लय की अपेक्षाओं को भी त्याग देते हैं। इसी कारण उनके विभिन्न पदों की संख्या में भी अन्तर है। पर, यह उनकी साहित्यिक कला की विशेषता है कि लम्बाई और लय में तमाम प्रकार की विभिन्नता होते हुए भी भाषा का प्रवाह सर्वत्र लयात्मक और आकर्षक है।

यद्यपि 'जपुजी' एक विशुद्ध दार्शनिक ग्रन्थ है तथापि इसमें एक नाटकीय तत्त्व भी है जो उनके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए अत्यधिक महत्व रखता है। २८वां पद इस पुस्तक के समग्र तर्क की काव्यात्मक परिणति है। २८वें से ३१वें पदों तक, प्रत्येक पद की अंतिम दो पंक्तियों में यह नाटकीय अभिव्यक्ति है— 'आदेसु तिसै आदेसु'। सर्वोच्च उत्स तो वही आदि-पुरुष है जो सभी युगों में अपरिवर्त्तनीय रहता है।

'जपुजी' में महत्त्वपूर्ण दार्शनिक सत्यों को सुन्दर, अर्थपूर्ण और संक्षिप्त भाषा में और काव्यात्मक रूप में अभिव्यक्त किया गया है। अतः महान् गुरु की इस महान कृत्ति की व्याख्या करना तो दूर, इसे समझना भी आसान नहीं है। लेकिन, जो इसमें प्रयुक्त भाषा को जानते हैं उनके लिए इसका पाठ करना उदात्तकारी और उर्ध्वोमुखी है। यह पंजाबी भाषा में पहली धार्मिक और रहस्यवादी रचना है और साहित्य के रूप में इसका महत्व महान् है।[2]

(९)

'जपुजी' की मूल भाषा गुरु नानक के समय की पंजाबी है। इसमें सीधे-सादे शब्दों का प्रयोग किया गया है। तो भी, तथ्य यह है कि 'जपुजी' सिक्ख धर्म-

---

१. सोहनसिंह, 'दी सीकर्स पाथ', पृ० xxii।
२. हरबन्ससिंह, 'गुरु नानक्स कंट्रिब्यूशन टु पंजाबी लैंग्वेज एण्ड लिट्रेचर'।

ग्रंथ की सर्वाधिक कठिन रचना है क्योंकि गुरु नानक प्राचीन संस्कृत सूत्रों के रचयिताओं के समान नितांत आवश्यक से अधिक एक अक्षर भी नहीं लिखते हैं।

पंजाबी भाषा का प्रयोग, पहले कभी, ऐसे बड़े कार्य को सम्पन्न करने के लिए नहीं किया गया था। इसकी शब्दावली अत्यल्प थी और धार्मिक और दार्शनिक विषयों के लिए तो इसका इस्तेमाल कभी नहीं किया गया था। पंजाबी भाषा पर यह गुरु भार था और सचमुच यह एक आश्चर्य है कि गुरु नानक ने इस कार्य को शानदार सफलता से सम्पन्न किया। आज जब कि हमें अधिक साधन अभिव्यक्ति की सुविधाएं उपलब्ध हैं, हम अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए पंजाबी भाषा का इस्तेमाल उससे आधे कौशल से भी नहीं कर सकते जिस कौशल से 'जपुजी' में गुरु नानक ने भाषा का प्रयोग किया है।[1]

जपुजी और गुरु ग्रंथ साहिब की अपनी-अपनी विशिष्ट भाषा है। अपने निजी अक्षर अथवा लिपि और यहां तक कि उनका अलग-अलग व्याकरण है। गुरु की वाणी से प्रस्फुटित होने के कारण यह लिपि गुरुमुखी के नाम से पुकारी जाती है। जपुजी 'गुरुवाणी' में है जो कि गुरु नानक बोलते थे, यद्यपि अक्षरों का आविष्कार उन्होंने नहीं किया था। अपनी विशिष्ट भाषा और सशक्त शैली के माध्यम से गुरु नानक ने "जपुजी में सर्वोच्च सत्य और उसकी सनातन खोज संबंधी उच्च बौद्धिक और अमूर्त्त विचारों को स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया।"

आर्चर के शब्दों में, "विशिष्ट लिपि वाली यह विशिष्ट भाषा, सिख धर्म के प्रवर्त्तक के धर्म सन्देश के संप्रेषण के लिए, उनके पवित्र धर्म ग्रन्थों के लिए और उनके धर्म के लिए, सिखों की अभिव्यक्ति का एक शानदार माध्यम बनी।"[2]

जपुजी की पुरानी पंजाबी भाषा, सिद्ध भाषा अथवा सन्त भाखा (सन्तों की भाषा) का ही परिष्कृत रूप है जिसमें ब्रज भाषा की पुट है। इसमें हिन्दू-धर्म के कई पुराने तत्व हैं, अनेक अप्रचलित देशी और आंचलिक शब्द हैं, कुछ अरबी और कुछ फारसी शब्द हैं जान-बूझ कर अथवा परिस्थितियों के दबाव से भाषा का एक प्रकार से कायाकल्प हो गया। शब्दावली के धार्मिक प्रयोग से सम्बद्ध भाषा-विज्ञान का सर्वाधिक दिलचस्प पहलू है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कैसे एक नए सम्प्रदाय ने, एक महत्वपूर्ण सीमा तक, अपनी शब्दावली बनायी।[3]

गुरु नानक ने संस्कृत प्रयोग की परम्परा को तोड़ने की कोशिश की और अपनी भाषा के माध्यम से जनसाधारण तक पहुंचे। उन्होंने लोगों को उनकी

---

१. तेजासिंह 'दी जपुजी', पृ० ७।
२. आर्चर, 'दी सिक्खस', पृ० १०६।
३. वही, पृ० १०६।

को मानने और आत्म-समर्पण के जीवन द्वारा ही हो सकती है। वह सृष्टिकर्त्ता और ज्ञान दाता के रूप में हम सब से सम्बद्ध है। सांसारिक प्रक्रियाओं के संचालक के रूप में तथा सदा सक्रिय 'हुक्म' अथवा 'संकल्प' के रूप में, उसकी उपस्थिति का अनुभव हमें होना ही चाहिए। प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यता और प्रकाश के अनुसार उसकी स्तुति करने का प्रयत्न करता है, उसके कार्यों और उसकी जबर्दस्त शक्ति को अभिव्यक्त करता है। उसकी सच्ची उपासना यह है कि हम उसके शिवत्व की प्रेम-पूर्ण स्मृति को निरन्तर हृदय में संजोए रखें। उसकी कृपा को पाने का और कोई रास्ता नहीं। यह उसका उदात्तम गुण है जो हमारी आत्माओं को महत्त्व मंडित करता है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि एकमात्र वही है, जो हम सबको, सब-कुछ प्रदान करने वाला है, और जो पूर्णतः प्रकाश-स्रोत है। हमें कर्म के भ्रामक विचार को छोड़ देना चाहिए और गुरु की वाणी की ओर ध्यान देना चाहिए। अकल्पनीय लम्बी उमर, उपाधियाँ और प्रसिद्धि की अपेक्षा यह कहीं बेहतर है। निरन्तर उसी का ध्यान करने से हमारे तमाम दोष और दुःख दूर हो जाते हैं और हम उच्चतम ज्ञान, बुद्धिमत्ता और अच्छाई के उदात्त स्तर पर और आध्यात्मिकता के प्रवेश-द्वार तक पहुँच जाते हैं। गुरु जी की शिक्षा ईश्वरीय-ज्ञान में हमारी दिलचस्पी पैदा करेगी जैसे कि भौतिक प्रकृति में वह व्यक्त है। भौतिक-ज्ञान के अध्ययन से पदार्थ और मन के सच्चे संबंध का हमें अनुभव होगा। फिर हमारे भीतर, जो सत्य है, जो उद्वेगरहित है, जो शिव है, उसके ज्ञान का विकास होगा और इस प्रकार हम जीवन की एक सुस्थिर दृष्टि प्राप्त कर सकेंगे। और तब हम सभी क्षेत्रों में पौरुष के श्रेष्ठतम गुणों को भी प्राप्त कर सकेंगे। उसके नाम का निरन्तर ध्यान सभी बुराइयों से हमें बचाए रखेगा, हमें सही मार्ग की ओर उन्मुख करेगा और उच्चतम लक्ष्य की ओर ले जाने में हमारा पथ-प्रदर्शन करेगा। दैवी लक्ष्यों के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण का पहला परिणाम तो यह होगा कि हमारी आत्मा की तमाम इन्द्रियाँ जग जाएंगी। सत्य के मार्ग पर चलते हुए फिर कोई द्वन्द्व नहीं रह जाता और धर्म एक अनिवार्य और परस्पर जोड़ने वाली शक्ति के रूप में उदित होता है। हम केवल अपनी मुक्ति की बाबत नहीं सोचते हैं, बल्कि अन्य लोगों की मुक्ति के संबंध में भी सोचना शुरू करते हैं। धीरे-धीरे हम ईश्वर के दरबार में स्वीकृत और सम्मानित, सच्चे प्रतिनिधि मनुष्य बन जाते हैं। धार्मिक क्षेत्र की तमाम असफलताएँ, इस सिद्धांत को न मानने का परिणाम हैं कि ईश्वरीय सत्ता के लिए जो आनन्दप्रद है वही अवश्यमेव शुभ भी है। पाप और दुःख पहले की तरह अब भी मौजूद हैं क्योंकि हम भूल जाते हैं कि जो उसे अच्छा लगता है वही शुभ है और जो उसे घृणाप्रद लगता है, वही बुरा है। हम चाहे निश्चित शब्दावली में उसे सम्बोधित करने के लिए विवश हों

पर वह किसी एक सम्बोधन अथवा किसी एक स्थान को किसी दूसरे सम्बोधन अथवा स्थान पर तरजीह नहीं देता है। उसकी समस्त रचना उसी के नाम की अभिव्यक्ति है। ब्रह्मांड में उत्पन्न सभी चीजें ईश्वरीय हुक्म को मानती हैं, और इस प्रकार उसके गौरव में योग देती हैं। ईश्वर के प्रति प्रेम-भाव हृदय को पवित्र करके, पाप रहित कर देता है, यद्यपि प्रत्येक आत्मा को अब भी अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। लेकिन पूर्णता की ओर बढ़ते हुए और अपने पाप-पंक को धोते हुए गुणी या निर्गुणी की शब्दावली के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए बल्कि हमें सक्रिय रूप से सर्वशक्तिमान प्रेम का अभ्यास करना चाहिए। तीर्थ-यात्राएँ, तपस्याएँ और यांत्रिक रूप से किए गए दान निरर्थक हैं, ईश्वरीय कार्य के लिए सच्ची निष्ठा की अपेक्षा है। अच्छे कर्मों के बिना किसी प्रकार की उपासना नहीं हो सकती। वह सत्य है, सुन्दर है, और शिव के लिए हृदय की सनातन इच्छा है। ईश्वर महान् है और महान् ही उसकी सृष्टि है। केवल वह स्वयं, असंख्य लोकों में अपने कार्य के रहस्यों को अपनी अनन्त उदारता को और महानता को जानता है। हम उसे गहराई से नहीं जान सकते। हम उसके अनन्त वरदानों के लिए उसके प्रति केवल कृतज्ञ हो सकते हैं। प्रेम का वरदान असीम रूप से महान् है। ईश्वर के सम्बन्ध में प्रेमपूर्ण विचार के समान और कुछ नहीं है। ईश्वर और उसकी सत्यता सभी वस्तुओं से अधिक मूल्यवान् हैं। यद्यपि हम सत्य का उच्चारण करने का प्रयास करते हैं, पर इस प्रयास में हम बुरी तरह से विफल होते हैं, क्योंकि सत्य शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। ईश्वर अपने गौरव सहित उच्चतम स्वर्ग में स्थित है, ब्रह्मांड पर शासन करता है और विश्व के प्रत्येक प्राणी की स्तुति स्वीकार करता है। समस्त सृष्टि स्वर्ग के द्वार पर खड़ी होकर उसकी स्तुतियाँ गाती है। उसके सिवा सभी नश्वर हैं, वे आते हैं, और चले जाते हैं, केवल वह रहता है—एक, सनातन और अपरिवर्तनशील। सभी गुणों और आत्म-समर्पण के मोती से शोभित होकर, आओ, हम सच्चे अर्थ में उसकी उपासना करें। हम, उसकी कृपा के बिना, स्वयं पर निर्भर होकर कुछ नहीं कर सकते। ईश्वरीय कृपा के आधार के बिना तमाम व्यवस्थाएं झूठी हैं। वह हमारे ऊपर कृपा करता है और फिर वह देखता है कि हम कैसे अच्छा या बुरा, इसका उपयोग करते हैं। हमें पथ-निर्देशन के लिए केवल प्रार्थना करनी चाहिए, बलपूर्वक इसे हथियाने का प्रयास नहीं करना चाहिए क्योंकि बल से हम कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। आध्यात्मिकता के सर्वोच्च सोपान पर हमें धीरे-धीरे पहुँचना है। भौतिक धरातल पर सही और गलत के द्वंद्व के पार जाकर ही, जो कानून का विषय है, तर्क, आत्म-संघर्ष, धर्म के उच्च सोपानों और अन्त में, सत्य के उच्चतम सोपान पर आत्मा आरूढ़ होती है। आत्मा को विविधता, सुन्दरता, शक्ति और अन्ततः सना-

को मानने और आत्म-समर्पण के जीवन द्वारा ही हो सकती है। वह सृष्टिकर्त्ता और ज्ञान दाता के रूप में हम सब से सम्बद्ध है। सांसारिक प्रक्रियाओं के संचालक के रूप में तथा सदा सक्रिय 'हुक्म' अथवा 'संकल्प' के रूप में, उसकी उपस्थिति का अनुभव हमें होना ही चाहिए। प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यता और प्रकाश के अनुसार उसकी स्तुति करने का प्रयत्न करता है, उसके कार्यों और उसकी जबर्दस्त शक्ति को अभिव्यक्त करता है। उसकी सच्ची उपासना यह है कि हम उसके शिवत्व की प्रेम-पूर्ण स्मृति को निरन्तर हृदय में संजोए रखें। उसकी कृपा को पाने का और कोई रास्ता नहीं। यह उसका उदात्तम गुण है जो हमारी आत्माओं को महत्त्व मंडित करता है। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि एकमात्र वही है, जो हम सबको, सब-कुछ प्रदान करने वाला है, और जो पूर्णतः प्रकाश-स्रोत है। हमें कर्म के भ्रामक विचार को छोड़ देना चाहिए और गुरु की वाणी की ओर ध्यान देना चाहिए। अकल्पनीय लम्बी उमर, उपाधियाँ और प्रसिद्धि की अपेक्षा यह कहीं बेहतर है। निरन्तर उसी का ध्यान करने से हमारे तमाम दोष और दुःख दूर हो जाते हैं और हम उच्चतम ज्ञान, बुद्धिमत्ता और अच्छाई के उदात्त स्तर पर और आध्यात्मिकता के प्रवेश-द्वार तक पहुँच जाते हैं। गुरु जी की शिक्षा ईश्वरीय-ज्ञान में हमारी दिलचस्पी पैदा करेगी जैसे कि भौतिक प्रकृति में वह व्यक्त है। भौतिक-ज्ञान के अध्ययन से पदार्थ और मन के सच्चे संबंध का हमें अनुभव होगा। फिर हमारे भीतर, जो सत्य है, जो उद्वेगरहित है, जो शिव है, उसके ज्ञान का विकास होगा और इस प्रकार हम जीवन की एक सुस्थिर दृष्टि प्राप्त कर सकेंगे। और तब हम सभी क्षेत्रों में पौरुष के श्रेष्ठतम गुणों को भी प्राप्त कर सकेंगे। उसके नाम का निरन्तर ध्यान सभी बुराइयों से हमें बचाए रखेगा, हमें सही मार्ग की ओर उन्मुख करेगा और उच्चतम लक्ष्य की ओर ले जाने में हमारा पथ-प्रदर्शन करेगा। दैवी लक्ष्यों के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण का पहला परिणाम तो यह होगा कि हमारी आत्मा की तमाम इन्द्रियाँ जग जाएंगी। सत्य के मार्ग पर चलते हुए फिर कोई द्वन्द्व नहीं रह जाता और धर्म एक अनिवार्य और परस्पर जोड़ने वाली शक्ति के रूप में उदित होता है। हम केवल अपनी मुक्ति की बाबत नहीं सोचते हैं, बल्कि अन्य लोगों की मुक्ति के संबंध में भी सोचना शुरू करते हैं। धीरे-धीरे हम ईश्वर के दरबार में स्वीकृत और सम्मानित, सच्चे प्रतिनिधि मनुष्य बन जाते हैं। धार्मिक क्षेत्र की तमाम असफलताएँ, इस सिद्धांत को न मानने का परिणाम हैं कि ईश्वरीय सत्ता के लिए जो आनन्दप्रद है वही अवश्यमेव शुभ भी है। पाप और दुःख पहले की तरह अब भी मौजूद हैं क्योंकि हम भूल जाते हैं कि जो उसे अच्छा लगता है वही शुभ है और जो उसे घृणाप्रद लगता है, वही बुरा है। हम चाहे निश्चित शब्दावली में उसे सम्बोधित करने के लिए विवश हों

: २१ :

आसा दी वार

डॉ० एस० एस० कोहली

(१)

गुरु नानक की लम्बी रचनाओं में 'जपुजी' के उपरांत 'आसा दी वार' बड़ी महत्त्वपूर्ण कृति है। 'जपुजी' का पाठ सिखों के द्वारा उषा-काल में साध-संगति में बैठने से पूर्व किया जाता है, जबकि 'आसा दी वार' का गायन प्रतिदिन साध-संगति के बीच वाद्य-यन्त्रों की ध्वनि पर संगीतज्ञों के द्वारा किया जाता है। ये दोनों रचनाएँ सिखों के लिए सदैव प्रोत्साहन का माध्यम बनी रही हैं, तथा अनुयायियों का पथ-प्रदर्शन करतीं एवं उच्च आध्यात्मिक जीवन-प्राप्ति के लिए संघर्ष का संदेश देती हैं। तथापि, इन दो में से 'आसा दी वार' अधिक व्याख्यात्मक और विश्लेषणात्मक है।

गुरु नानक से पूर्व चारणों एवं भाटों के द्वारा अनेक वीर-रसात्मक गीत लिखे गए, जिनमें प्रायः युद्ध-क्षेत्र पर वीरता प्रदर्शन करने वाले वीरों का अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशस्ति-गान किया गया था। इन वीर-गीतों को 'वार' कहा जाता था। लोक-काव्य की इस परम्परा को गुरु नानक ने जन-मानस के नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में साहस प्रदर्शनार्थ काव्य-शैली के रूप में अपनाया। उन दिनों भारत में आध्यात्मिक जीवन पतन की निम्नतम स्थिति में था। गुरु नानक से पूर्व भक्ति आन्दोलन के सन्त-महात्माओं ने अपने-अपने प्रदेश अथवा क्षेत्र में जनता के नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के उत्सर्ग का प्रयत्न किया था। पंजाब अनेक युद्धों की रण-भूमि रहा था, अतः गुरु नानक तथा उसके उत्तराधिकारियों के लिए स्वभावतः ही जनता की वीर-भावना को दिशा-निर्देश देकर आध्यात्मिक उत्थान का आह्वान करना अपेक्षित था।

गुरु नानक ने तीन वारें लिखीं—माझ दी वार, आसा दी वार तथा मलार दी वार—और ये सब गुरु ग्रंथ में संगृहीत हैं। गुरु नानक के उत्तराधिकारियों ने भी 'वारें' लिखने की पद्धति का अनुकरण किया। तृतीय गुरु अमर दास ने चार वारें लिखीं, चतुर्थ गुरु रामदास ने आठ तथा गुरु अर्जन देव ने छः वारें रचीं। कुल मिलाकर आदि ग्रंथ में बाईस वारें हैं, जिनमें एक 'वार' गुरु अर्जुन देव के दरबार के भाटों, सत्ता एवं बलवंड, के द्वारा लिखी गई है। आदि ग्रंथ के सहस्रों छन्द पदों की भान्ति ये वारें भी संगीत के सांचे में ढली

तन सत्य का अनुभव प्राप्त होता है। वह अपनी कृपा उन लोगों पर करता है जो पवित्र शब्द के प्रति निष्ठा के ज़रिए आत्म-शुद्धि का प्रयत्न करते हैं जिसके लिए पवित्रता, धैर्य, प्रेम आदि गुण अपेक्षित हैं। ये गुण अन्य लोगों के साथ रोज़मर्रा के व्यवहार और निरन्तर यातना और बलिदान में अर्जित किये जा सकते हैं। यहीं हमें ईश्वर और अपने झूठ तुच्छ अहं के बीच चुनाव करना होता है और इस चुनाव के अनुरूप ही हमारी भावी स्थिति होती है—अज्ञान-रूपी अंधकार में एक दुःखद भटकन अथवा ईश्वर में आनन्दपूर्ण अवस्थिति। जो इसमें सफल हो जाते हैं, उनके चेहरे ईश्वरीय उपस्थिति के प्रकाश से कान्तिमान हो उठते हैं।

: २१ :

आसा दी वार

डॉ० एस० एस० कोहली

(१)

गुरु नानक की लम्बी रचनाओं में 'जपुजी' के उपरांत 'आसा दी वार' बड़ी महत्त्वपूर्ण कृति है। 'जपुजी' का पाठ सिखों के द्वारा उषा-काल में साध-संगति में बैठने से पूर्व किया जाता है, जबकि 'आसा दी वार' का गायन प्रति-दिन साध-संगति के बीच वाद्य-यन्त्रों की ध्वनि पर संगीतज्ञों के द्वारा किया जाता है। ये दोनों रचनाएँ सिखों के लिए सदैव प्रोत्साहन का माध्यम बनी रही हैं, तथा अनुयायियों का पथ-प्रदर्शन करतीं एवं उच्च आध्यात्मिक जीवन-प्राप्ति के लिए संघर्ष का संदेश देती हैं। तथापि, इन दो में से 'आसा दी वार' अधिक व्याख्यात्मक और विश्लेषणात्मक है।

गुरु नानक से पूर्व चारणों एवं भाटों के द्वारा अनेक वीर-रसात्मक गीत लिखे गए, जिनमें प्रायः युद्ध-क्षेत्र पर वीरता प्रदर्शन करने वाले वीरों का अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशस्ति-गान किया गया था। इन वीर-गीतों को 'वार' कहा जाता था। लोक-काव्य की इस परम्परा को गुरु नानक ने जन-मानस के नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में साहस प्रदर्शनार्थ काव्य-शैली के रूप में अपनाया। उन दिनों भारत में आध्यात्मिक जीवन पतन की निम्नतम स्थिति में था। गुरु नानक से पूर्व भक्ति आन्दोलन के सन्त-महात्माओं ने अपने-अपने प्रदेश अथवा क्षेत्र में जनता के नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के उत्सर्ग का प्रयत्न किया था। पंजाब अनेक युद्धों की रण-भूमि रहा था, अतः गुरु नानक तथा उनके उत्तराधिकारियों के लिए स्वभावतः ही जनता की वीर-भावना को दिशा-निर्देश देकर आध्यात्मिक उत्थान का आह्वान करना अपेक्षित था।

गुरु नानक ने तीन वारें लिखीं—माझ दी वार, आसा दी वार तथा मलार दी वार—और ये सब गुरु ग्रंथ में संगृहीत हैं। गुरु नानक के उत्तराधिकारियों ने भी 'वारें' लिखने की पद्धति का अनुकरण किया। तृतीय गुरु अमरदास ने चार वारें लिखीं, चतुर्थ गुरु रामदास ने आठ तथा गुरु अर्जन देव ने छः वारें रचीं। कुल मिलाकर आदि ग्रंथ में बाईस वारें हैं, जिनमें एक 'वार' गुरु अर्जुन देव के दरबार के भाटों, सत्ता एवं बलवंड, के द्वारा लिखी गई है। आदि ग्रंथ के दूसरे छन्द पदों की भान्ति ये वारें भी संगीत के सांचे में ढली

तथा विभिन्न राग-रागिनियों की गायन-शैली में बंधी हैं। गुरु नानक रचित तीनों वारों में से 'आसा दी वार' अतीव महत्त्वपूर्ण है। इसकी चौवीस पउड़ियां (पद्य) हैं, प्रत्येक पउड़ी से पूर्व दो अथवा अधिक श्लोक दिए गए हैं। पउड़ियों एवं श्लोकों की कुल संख्या बयासी (८२) है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'वार' को अन्त्य-लेख देते समय द्वितीय गुरु अंगद देव ने कुछ अपने श्लोक भी वार में जोड़ दिये हैं। ऐसे श्लोकों की संख्या पन्द्रह है। चौदहवीं पउड़ी से पूर्व दूसरा श्लोक आदि ग्रंथ में अन्यत्र भी उपलब्ध है, यथा गुरु नानक के 'सहसकृति श्लोकों' का प्रथम श्लोक, जिसमें कतिपय शब्दों के वर्ण-विन्यास में साधारण सा अन्तर है। बारहवीं पउड़ी से पूर्व प्रथम एवं द्वितीय श्लोक गुरु अंगद के नाम से मिलते हैं, जबकि तीसरा और चौथा श्लोक, जिसमें किञ्चित-मात्र ही अन्तर है, नानक के नाम से हैं। यदि यह अनुमान कर लिया जाय कि दोनों सहसकृति श्लोक, जो गुरु अंगद के नाम से मिलते हैं, वास्तव में गुरु नानक-रचित हैं, तथा लिपिक की भूल से गुरु अंगद के नाम चढ़ा दिए गए हैं, तो गुरु अंगद की श्लोक-संख्या तेरह रह जाती है। तात्पर्य वही है, संभवतः 'आसा दी वार' का अन्त्य-लेख तैयार करते समय गुरु अंगद ने स्वरचित कुछ श्लोक क्षेपक रूप में इसमें जोड़ दिए हैं।

आरम्भ में दिए गए आदेश के अनुसार इस वार का गान संगीतज्ञों के द्वारा उसी ध्वनि में किया जाना चाहिए, जिसमें तत्कालीन भाट प्रसिद्ध 'टुण्डा असराजा' की वार गाया करते थे।

टुण्डा असराजा की कथा पूरन-भगत की भारतीय लोक-कथा तथा जोज़फ़ की सामी कथा का विलक्षण मिश्रण है। टुण्डा असराजा के माध्यम से शालीनता तथा पावनता के आदर्श प्रस्तुत किए गए हैं। उसने जीवन में अतीव कठोरता का सामना किया था तथा अकल्याणप्रद शक्तियों से संघर्ष किया था। 'टुण्डा असराजा' की वार की ध्वनि पर गाई जाने से 'आसा दी वार' गायकों तथा श्रोताओं को सुप्रेरित करती एवं भौतिक और नैतिक क्षेत्रों में आध्यात्मिक शान्ति तथा उदात्तता प्राप्ति के लिए संघर्ष-रत होने का दृढ़ निश्चय प्रदान करती है।

'वार' में आने वाले श्लोक, चौपाई, दोहरा, द्विपदा आदि परम्परित छंदों में लिखे गए हैं तथा 'पउड़ियाँ' लोक-प्रिय वीर-गीत की टेक पर रची हुई हैं। श्लोकों में समकालीन सामाजिक तथा धार्मिक जीवन के संदर्भ में दार्शनिक सत्यों को निरूपित किया गया है। 'पउड़ियों' में ईश्वर, गुरु अथवा धार्मिक पथ-प्रदर्शक एवं गुरु-उपदेशों पर आचरण करने वाले सच्चे शिष्य (गुरुमुख) का गुण-गान किया है। इसके विपरीत, सांसारिक धन-लिप्सा की ओर आकर्षित होने वाले जीव तथा उसके जीवन-पथ की भर्त्सना की गई है।

'आसा दी वार' की भाषा अन्य 'वारों' की भाँति पंजाबी है। पंजाबी में 'वार' काव्याभिव्यक्ति की एक विशेष विधा है। 'आसा दी वार' में पंजाबी भाषा के दोनों मुख्य रूप—तत्कालीन प्रचलित रूप एवं 'सहसकृति', इसका प्राचीन रूप—प्रयुक्त हैं। उस युग के विद्वान पंजाबी को गँवारू कहकर इसका तिरस्कार करते एवं उसके सुसंस्कृत रूप 'सहसकृति' को, जो कि पूर्व-काल में सामान्यतः प्रचलित थी, अंगीकार करते थे। गुरु नानक ने विभिन्न स्तर के सामाजिकों के लिए—श्रमिक से शासक तक एवं अशिक्षित गँवार से विद्वान पण्डित तक—काव्य-रचना की थी और इसीलिए उन्होंने भिन्न प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है, जिससे शैली तथा बिम्बविधान, दोनों सम्पन्न हुए हैं।

(२)

'आसा दी वार' के चिन्तन पक्ष के आलोचनात्मक एवं सर्वांगीण अध्ययन के लिए रचना के तीन मुख्य पहलुओं का मूल्यांकन अपेक्षित है—पराभौतिक पहलू, नैतिक पहलू तथा रहस्यात्मक पहलू।

१. पराभौतिक पहलू

गुरु नानक मतानुसार परम सत्य एक है। उसे 'नाम' अथवा 'सत्य' की संज्ञा दी जा सकती है। वह 'अकाल-मूरत' (शाश्वत रूप) स्रष्टा, निर्भय तथा निर्वैर है। वह स्वयम्भू है तथा नाम और रूप के द्वारा अपने को व्यक्त करता है। वह प्रकृति का निर्माण करता एवं अपनी सृष्टि का आनन्द उठाता है। वह सर्व-प्रदाता तथा सर्व-ज्ञाता है। वही जीवन देता और प्राणांत करता है। वह सत्य है, उसका निर्माण भी सत्य है। उसका 'हुकम' परम विधान है। वह जीवों तथा रूप-वर्ण के विलक्षण संसार की रचना करता है। हमारी दृष्टि और श्रवण की सीमाओं में आने वाली प्रत्येक वस्तु उसी की प्रकृति है। इस प्रकृति का दर्शन आकाशों, पातालों तथा महाभूतों में सम्भव है; वेदों, कतेबों तथा अन्य चिन्तन धाराओं में खाने, पीने, पहिनने तथा प्रेम करने में, सद्‌गुणों तथा दुर्गुणों में, पवन, पानी, अग्नि, पृथ्वी आदि में भी इसे देखा जा सकता है। वह अपनी सम्पूर्ण प्रकृति का अवलोकन करता तथा चेतन सक्रियता का दिग्दर्शन करता है।

वह निर्भय है। पवन उसी के भय से प्रसरित होता है। नदियां उसके भय में प्रवाहित हैं, अग्नि उसी कारण जलाती है। धरती उसके भय से बोझ सहन करती एवं देवाधिदेव इन्द्र भी उसी के भय से कार्य-रत है। मृत्यु के देवता यम, सूर्य, चन्द्र, सिद्ध, नाथ तथा बड़े-बड़े शूरवीर उसके ही भय से कार्य-संलग्न हैं।

वह दयालु तथा करुणाशील है। जीव निःशक्त हैं; वे उसी की कृपा से सुरक्षित हैं। वह अपनी प्रकृति में व्याप्त है, फिर भी अबोधगम्य है। वह महान् तथा वर्णनातीत है। वह प्रत्येक निर्मित वस्तु के प्रति सजग और सावधान रहता है। वह जीव के समस्त कर्मों का कारण है। उसकी सृष्टि विस्तृत—असीम—है। प्रत्येक जीव को वही कार्य जुटाता है। यदि सम्राट भी उसकी कृपा से वंचित हों, तो उनका पतन हो जाता है, वे द्वार-द्वार के भिक्षुक बनते एवं भिक्षा के लिए तरसते हैं।

२. नैतिक पहलू

वर्त्तमान संसार में किए गए जीव के कर्मों का मूल्यांकन 'धर्मराज' करता है—सत्कर्मों पर पुरस्कार तथा दुष्कर्मों पर दण्ड दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए विशेष आचरण विधान विद्यमान है। सर्वप्रथम ईश्वरीय पद का सद्गुण 'सत्य' है। सत्यमय जीवन जीने के लिए सत्य को प्रेम करने, सत्पथ पर आचरण करने तथा आत्मा के परिप्रेक्ष्य में इसे स्वभाव बना लेने से अन्तर्मन पर जमी मिथ्या की मलिनता का प्रक्षालन अपेक्षित है। गुरु मतानुसार सत्य जीवन की कला शरीर क्षेत्र में हल चलाने तथा उसमें प्रभु-नाम का बीज बोने के समान है। दूसरों के प्रति करुण तथा सद्भावन अतिरिक्त सम्वल हैं। सत्य सर्व-रोगोपचार है—इससे सब पाप धुल जाते हैं।

सत्य जीवन में विनम्रता का सद्गुण बड़े महत्त्व का है। अंहकारपूर्ण जीवन ही मनुष्य को आवागमन में डालता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को संसार छोड़ना है, फिर अहम् का शिकार क्यों बना जाय? यह अनिवार्य है कि व्यक्ति किसी का दोष-चिन्तन न करे—सदैव प्रियम्वद बने, कठोर एवं अनुदार भाषण न करे—उसके वचन और कर्म समकालिक होने चाहिए। मन के मिथ्यावादी पाप-कर्मों की मलिनता को अढ़सठ तीर्थों पर मज्जन करके भी दूर नहीं कर सकते। इसके विपरीत बाहर से मलिन और मन के पवित्र व्यक्ति वास्तव में उत्तम होते हैं। वे सचमुच प्रभु के जीव हैं। वे विश्व में किसी की अपेक्षा नहीं रखते और सदैव प्रभु-नाम में उन्मत्त रहते हैं। ऊँच, लम्बे सिम्बल के पेड़ की भान्ति, जिसके फल, फूल, पत्ते कुछ भी पक्षियों के खाने में उपयोग नहीं होते, अहम्-भाव से भरे व्यक्ति गुण-रहित होते हैं—केवल विनम्रता ही मधुरता का आधार एवं सद्-गुणों का सार है। उत्थान के इच्छुक मनुष्य को विनम्रता का स्वभाव बनाना तथा सत्कर्म करना चाहिए।

गुरु नानक विधि-विधान तथा सर्व प्रकार के कर्म-काण्ड के विरुद्ध थे। उन्होंने निरर्थक रीति-रिवाजों, मिथ्या-विश्वासों तथा पाखण्डों के विरुद्ध आपत्ति

उठाई है। वे जन-मानस को प्रभु-नाम-स्मरण के सत्पथ की ओर प्रवृत्त करना चाहते थे। ऐसा करने में उनके विलक्षण ढंग को कतिपय विशिष्ट उद्धरणों द्वारा चित्रित किया जा सकता है।

(१) जब गुरु नानक को यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनने को कहा गया, तो उन्होंने उस साधारण सूत के धागे को, जो कि सामान्यतः मलिन और भंग हो जाने योग्य है, धारण करने का कारण पुरोहित से जानना चाहा। जब कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला, तो उन्होंने स्वयं पंडित को बताया कि वह जनेऊ कैसे बनाया जा सकता है, जिसे वे प्रसन्नतापूर्वक आत्मा पर धारण कर सकेंगे। व्याख्या करते समय गुरु नानक ने कहा :—

"दया-कपास में से इन्द्रिय-निग्रह का सूत्र तैयार करो, इस पर आत्म-संयम की गांठ लगाओ तथा इसे सत्य की ऐंठन दो। यदि, ऐ पण्डित, तुम्हारे पास ऐसा जनेऊ तैयार है तो मैं सहर्ष उसे धारण कर लूंगा, क्योंकि वह कभी टूटेगा नहीं, न ही मैला होगा, जलेगा या गुम होगा।"

(२) गुरु नानक ने देवताओं की सन्तुष्टि तथा पितरों की प्रसन्नता के लिए भिक्षा देने की पद्धति का भी विरोध किया है। एक के सत्कर्म किसी दूसरे को क्योंकर लाभ पहुँचा सकते हैं; नियम तो यह है कि व्यक्ति के निजी उत्तम कर्म ही उसे पुरस्कृत कर सकते हैं।

(३) गुरु नानक ने घर में बालक के जन्म अथवा गर्भ-पात से समूचे घर का अपवित्र हो जाना प्रचारित करने वाले अन्ध-विश्वासों एवं अविचारों का उपहास किया है—इस प्रकार की अपवित्रता का समूचा आधार मिथ्या-बोध मात्र था। गुरु नानक ने उन अपवित्रताओं की वास्तविक व्याख्या भी प्रस्तुत की है।

(४) गुरु नानक ने मन से पापों या दुर्गुणों की मलिनता धोने के लिए तीर्थ स्थानों पर जाकर शरीर का प्रक्षालन व्यर्थ बताया। उनके मतानुसार मानसिक पवित्रता केवल 'नाम' भक्ति से ही सम्भव है। प्रभु-भक्ति करने वाले सत्य के अन्वेषक है—वे पवित्र जीवन व्यतीत करते, सत्कर्म करते तथा कुपथ त्याग देते हैं—वे विरक्ति और संयम का जीवन जीते तथा समस्त अमर्यादाओं को छोड़ देते हैं।

गुरु नानक ने देखा कि ऋषियों की इस धरती पर सत्य का अभाव होता जा रहा था—मुसलमान न्याय-संगत नहीं थे, हिन्दू तथा अन्य प्रजा-जन नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों से रहित थे। यहां तक कि योगी लोग भी 'योग' के वास्तविक अर्थ से अनभिज्ञ थे। सामान्य जीवन पतनोन्मुखी था—शासक लोभी और हत्यारे थे। उनके दरबारी भ्रष्ट और पापी-कुत्ते थे (मुकद्दम कुत्ते)। कार्यकर्ताओं के गुण शोषण-उत्पीड़न मिथ्याचार और लोलुपता थे। इस प्रकार जीवन का निम्नतम स्थिति तक पतन हो गया था। स्त्री की सामाजिक स्थिति पतन—सम्मान और उपयोग रहित—थी। उन्हें निकृष्ट समझकर घृणा की दृष्टि से

देखा जाता था। इससे गुरु नानक को दुःख हुआ और उन्होंने कहा: स्त्री को बुरा क्यों कहते हो, वह तो सम्राट और सन्तों की जननी है ? जिस प्रकार का भक्ति-भाव, निःस्वार्थता तथा त्यागपूर्ण प्रेम स्त्री अपने पति से करती है, वह पुरुष के लिए प्रतिमान (आदर्श) होना चाहिए। इसीलिए नानक कहते हैं, "प्रभु से ऐसा प्रेम करो, जैसा स्त्री अपने पति से करती है।"

इस प्रकार गुरु नानक ने जनता के अन्ध-विश्वासों, निरर्थक रीति-रिवाजों, कर्म-काण्डों तथा विधियों की व्यर्थता सिद्ध करने का सबल प्रयास किया। हरिद्वार में उन्होंने अनेक लोगों को गंगा की धारा में खड़े पूर्व दिशा की ओर जल उलीचते देखा जो अपने पितरों को तर्पण दे रहे। वे भी स्नानार्थ नदी में प्रविष्ट हुए और पश्चिम की ओर जल उलीचने लगे। गुरु नानक के पास भीड़ जुड़ गई और लोग चिल्लाने लगे। क्या वे ग़लत दिशा की ओर जल उलीचने का पागलपन कर रहे थे ? नहीं, गुरु नानक ने उनसे पूर्व दिशा में जल फेंकने का कारण पूछा। 'हम पितरों को तर्पण दे रहे हैं' सत्वर उत्तर मिला। 'वे कितनी दूर हैं ?' नानक ने पूछा। 'लाखों कोस दूर।' तब गुरु नानक ने बताया कि करतारपुर से चलते समय उन्होंने अपने खेतों में बीज बोया था, और अब वे उन खेतों को पानी दे रहे हैं। यह उत्तर सुनकर वहाँ एकत्र सब लोग हंस दिए और चिल्लाए: क्या तुम पागल हो गए हो जो यह सोचते हो कि पानी कि ये चुल्लू कभी पंजाब में तुम्हारे खेतों तक पहुँच जाएंगे ! तब गुरु नानक से समझाया कि यदि वह जल दो-अढ़ाई सौ मील की दूरी पर उनके खेतों में नहीं पहुंच सकता, तो लाखों मील दूर दूसरी दुनिया में, तुम्हारा फेंका हुआ यह पानी, कैसे पहुंचेगा ? लोग इस पर अपने कृत्य की व्यर्थता से परिचित हुए और सत्य का समर्थन करने लगे।

इस प्रकार गुरु नानक ने लोक-मानस के भोलेपन से लाभ उठाने वाले, धन-लोलुप पाखण्डी धार्मिक नेताओं की पोल खोल दी। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि मात्र दिव्य नाम-स्मरण से ही आत्मोपलब्धि सम्भव है।

सहज-विश्वासी होने के अतिरिक्त जनता भीरु भी थी—लोग शासकों तथा उनके कारिंदों के शोषण, क्रूरता तथा शठता से आतंकित थे। गुरु नानक ने अपने निजी उदाहरण से लोगों को भय से मुक्त होने का पाठ सिखाया तथा अपनी शिकायतों और दुःखों को अभिव्यक्ति देने को कहा। उन्होंने बताया कि ईश्वर में दृढ़ विश्वास तथा उसके नाम की साधना से मनुष्य निर्भय होता एवं अत्याचार और दमन को साहसपूर्वक सहन करता है। "जिसने परम-सत्य को पहिचान लिया हो, वह किसी भी व्यक्ति या वस्तु से क्योंकर भयातुर हो सकता है," उन्होंने कहा :

सचु करे जिनि गुरजी पछाता,
सो काहे को डरता रे।

३. रहस्यात्मक पहलू

सर्वशक्तिमान् के सम्मुख जीव निःशक्त है, किन्तु प्रभु का अंश होने के नाते वह भी ईश्वरीय सद्गुणों और विशेषताओं को धारण करने, उसका नाम जपने, गुरु अथवा किसी सच्चे धार्मिक पथ-प्रदर्शक के आदेशों का पालन करने से आध्यात्मिकता के उच्चतम शिखरों को प्राप्त कर सकता है। गुरु संसार के लिए ज्योति है—उसके प्रकाश के सामने सूर्यों और चन्द्रों का महत्त्व घट जाता था। गुरु-विहीन हम खेतों में उपजने वाले निरर्थक वूंट मात्र हैं, तथापि ईश्वर-कृपा से ही हम गुरु को प्राप्त कर सकते हैं। अनेक योनियों के चक्र में भ्रमता हुआ जीव अन्ततः 'शवद' रहस्य जानने के लिए गुरु की शरण में आता है। सद्गुरु से अधिक कोई उदार नहीं होता। उसको मिलने से सत्य की अनुभूति मिलती एवं अहम् का नाश होता है।

गुरु के चुनाव में अत्यन्त सावधानी रखने की जरूरत है, क्योंकि संसार में अनेक ऐसे दम्भी भी हैं, जो अपने अनुयायियों को पथ-भ्रष्ट करते हैं। सच्चे गुरु के अभाव में किसी को ईश्वरानुभूति नहीं हुई। अन्तिम निर्वाण सदैव गुरु की संगति से ही मिलता है, इसी से जीव के सांसारिक वंधनों का शमन होता है। घड़े का अस्तित्व अथवा प्रयोग जल के विना कुछ नहीं। इसी प्रकार गुरु के अभाव में ज्ञान का भी कोई अस्तित्व नहीं। गुरु ज्ञान तथा नाम का प्रदाता है। नाम-स्मरण से भक्त जीव प्रभु की ओर अग्रपद होता है। नाम स्मरण करने वाले जीव ही वास्तविक लाभ उठाते हैं। अन्य सब हानि उठाते हैं। सिख सच्चे प्रेमी तथा सच्चे सेवक होते हैं। वे किसी 'किन्तु', 'परन्तु' के विना प्रभु को आत्म-समर्पण कर देते हैं।

(२)

गुरु नानक ने 'आसा दी वार' में चार वेदों का निर्देश किया है। उपनिषद् वेदों के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इन्हें ज्ञान-काण्ड कहा जाता है। गुरुजी ने कर्मकाण्ड तथा उपासना काण्ड का तिरस्कार किया है, किन्तु वे उपनिषदिक विद्या में गम्भीरता पूर्वक निमज्जित हैं। उनकी लम्बी रचनाएं आधुनिक उपनिषद् कही जा सकती हैं। उनमें भी उपनिषदों की भान्ति ब्रह्म के स्वरूप की चर्चा हुई है तथा वैसे ही वे भी परा-विद्या अथवा ब्रह्म-विद्या पर बल देती हैं।

आसा दी वार तथा कठोपनिषद्

कठोपनिषद् तथा आसा दी वार में दूर तक एक समानता दीख पड़ती है,

जिससे प्रत्यक्ष है कि गुरुजी उपनिषदों के ज्ञान से परिचित थे।

कठोपनिषद् में यम और नचिकेता की कथा आती है, जिसमें नचिकेता यम से कहता है, 'कुछ विद्वानों का मत है कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा का अस्तित्व बना रहता है, जबकि कुछ अन्य चिन्तक ऐसा नहीं मानते। मैं इस सम्बन्ध में सत्य को जानना चाहता हूँ। आपसे उत्तम इसका कोई व्याख्याता नहीं मिल सकता और न ही इस सत्य के ज्ञान से अधिक कुछ और मूल्यवान् है।" यम ने नचिकेता से कोई और वरदान चुन लेने को कहा, किन्तु नचिकेता अपनी मांग पर दृढ़ रहा और इस प्रकार आत्मा के रहस्य की तहें खुलने लगीं।

यम 'उत्तम' तथा 'आनन्दप्रद' में अन्तर प्रस्तुत करता है। साधुजन 'उत्तम' के मार्ग का निर्वाचन करते हैं तथा 'आनन्दप्रद' की उपेक्षा कर देते हैं। 'आसा दी वार' में प्रभु-नाम-स्मरण 'उत्तम' पथ है तथा भौतिक वस्तुओं का आकर्षण 'आनन्दप्रद' है। गुरुजी कहते हैं—

१. हमें इस संसार और इसके आनन्दप्रद तथा सुन्दर रूपों को छोड़ना होगा।

२. हमें लोलुपता को त्याग कर ईश्वर-नाम की आराधना करनी चाहिए।

यम कहता है, "अज्ञान के वातावरण में रहने वाले जो लोग अपने को योग्य-विद्वान समझते तथा अनुचित पथ का आचरण करते हैं, वे अन्धे द्वारा अन्धे का पथ-प्रदर्शन करने के समान भ्रम में पड़े रह जाते हैं।" 'आसा दी वार' में गुरु जी का कथन है :

१. मिथ्यावादी कभी सम्मानित नहीं होते, उनके मुख काले हैं और वे नरकगामी होते हैं।

२. जीवन-भर चाहे वे अध्ययन करते रहें, श्वास-श्वास स्वाध्याय करें; किन्तु एक ही वस्तु लाभप्रद है, शेष सब अहम्वादी तथा व्यर्थ है।

यम कहता है : "आगामी लोक की प्राप्ति का अपेक्षित मार्ग ऐसे असावधान नवयुवक के लिए दृश्य नहीं, जोकि मूर्ख तथा धन-सम्पत्ति के भ्रम में अन्धा बना है। इसी विश्व के अस्तित्व को मानता तथा अन्य लोक की उपेक्षा करता हुआ वह बार-बार मेरे द्वारा नाश को प्राप्त होता है। 'आसा दी वार' में इसी प्रकार गुरु नानक कहते हैं—

१. वह चाहे दिल-भर कर अपना हुक्म चलाए, किन्तु मृत्युपरांत उसे संकीर्ण मार्ग से गुज़रना होगा, नंगे पाँव उसे नरक में जाना होगा। उसे भयातुरता तथा अपने पापों पर पश्चाताप होगा।

यम कहता है, "अधिकतर लोग आत्मा को नहीं पा सकते, क्योंकि वे आत्मा की पुकार को नहीं सुनते—आत्मा का वक्ता विलक्षण है, श्रोता भी विचक्षण है और मेधावी गुरु का ज्ञानी शिष्य भी अद्वितीय है।" इस स्थिति का गुरु उपरिचर्चित सद्गुरु ही है, जिसके बिना ईश्वरोपलब्धि सम्भव नहीं है।

यम का कथन है : "मैं जानता हूँ कि सांसारिक आनन्द नश्वर है, और नश्वर शाश्वत को नहीं पा सकता।" गुरु मतानुसार, जैसा कि 'आसा दी वार' में कहा गया है, "बातें बनाने से ज्ञानोपलब्धि नहीं होती...।" आत्मा-सम्बन्धी अपने विचारों को और आगे बढ़ाते हुए यम कहता है, "आत्मा को सवार जानो, शरीर को रथ, बुद्धि को रथवान् एवं मन को लगाम समझो।" यह रथ का दृष्टान्त आसा दी वार में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :—

'नानक मेरु सरीर का इकु रथु इकु रथवाहु'

निर्बुद्धि लोग भौतिक संसार का आनन्द उठाते हैं, अतः, वे जन्म-मरण के चक्र से अपने को मुक्त नहीं कर सकते। यम कहता है, "संयम-रहित अविचारी व्यक्ति की इन्द्रियाँ रथ के मुँह-ज़ोर घोड़ों की भाँति बेक़ाबू होती हैं। अविचारी, अचिन्तक तथा सदा अपवित्र रहने वाला व्यक्ति कभी लक्ष्य को नहीं पा सकता, वरन् पुनः दुनिया में जन्म लेता है।" वही बात 'आसा दी वार' में इस प्रकार कही गई है—

"पवन-त्वरा वाले घोड़े हों, आलीशान सुसज्जित प्रासाद हों !
भव्य-भवन और सम्पत्ति हो, साथियों की स्थायी स्थिति हो !
ऐसे में दिल-भरकर आनन्द करें; किन्तु उन्हें लक्ष्य उपलब्ध
नहीं हो सकता, क्योंकि वे हरि से अनभिज्ञ हैं।"

उपनिषद् के अन्तिम खण्ड में यम नचिकेता से कहता है :

हरि के भय से अग्नि प्रज्वलित होती है,
हरि के भय से सूर्य तप्त होता है,
हरि के भय से इन्द्र, वायु तथा पाँचवीं मृत्यु कार्य-रत हैं।"

इस प्रश्न पर 'आसा दी वार' में एक सम्पूर्ण श्लोक उपलब्ध है :—

भै विचि पवणु वहै सदवाउ। भै विचि चलहि लख दरीआउ।
भै विचि अगनि कढै वेगारि। भै विचि धरती दबी भारि।
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि। भै विचि राजा धरम दुआरु।
भै विचि सूरजु भै विचि चंदु। कोह करोड़ी चलत न अंतु।
भै विचि सिध बुध सुर नाथ। भै विचि आडाणे आकास।
भै विचि जोध महाबल सूर। भै विचि आवहि जावहि पूर।
सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु। नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु।

अतः पुरातन भारतीय धर्मग्रंथों में अंकित विचारधारा तथा 'आसा दी वार' में प्रस्तुत गुरु नानक-चिन्तन में निकट समानता है।

: २२ :

वार आसा

डॉ० तारनसिंह

'जपुजी' में गुरु नानक ने प्रमाणित किया है कि विकास के मान पर मनुष्य का स्थान सर्वोच्च है, और उसका अन्तःकरण ईश्वर का दर्पण है, क्योंकि उसमें प्रभु के 'हुकम' को समझने का सामर्थ्य विद्यमान है। गुरु जी ने, इसीलिए, मनुष्य के उस स्थिति को प्राप्त लेने पर, उसे 'सचियार' (अर्थात् सच्चा व्यक्ति) की उपाधि से विभूपित किया है। 'वार आसा' में उन्होंने जीवन-नायक को देवता अर्थात् ज्योतिर्मान कहा है, जो दूसरों को मार्ग सुझाने के लिए ज्योति-किरणें प्रसारित करता है। वे उसे गुरमुख भी कहते हैं; गुरमुख वह दिव्यात्मा होता है, जो सदैव गुरु-निर्दिष्ट पथ पर आचरण करता है। पुनः, उन्होंने उसे सेवक, अर्थात् स्वामी की वातों को समझने तथा उसकी सेवा में एकाग्र-चित्त रहने वाला कहकर पुकारा है। अस्तुः, गुरुजी की प्रस्तुत दोनों रचनाओं की विपय-वस्तु में अधिकांश समानता देखी जा सकती है। 'जपुजी' के वस्तु-विषयक पहलू अधिकतर परम-पुरुप के स्वरूप, उसकी सृष्टि, भक्ति या भक्त के उसके लिए प्रेम, मनुष्य के लिए नैतिक विधान तथा आध्यात्मिक उत्क्रान्ति से सम्बद्ध हैं। 'वार आसा' का अभिवृत्त भी मूलतः यही है। 'जपुजी' में गुरु नानक ने परम यथार्थ को सत्य का पर्याय माना है। 'वार आसा' में वे यथार्थता तथा दिव्यसत्ता का सारूप्य सिद्ध करते हैं। 'जपुजी' में प्रभु की विस्तृत एवं अपरिमित सृष्टि की झलक पाकर वे परमानन्द को प्राप्त होते हैं, तथा 'वार आसा' में भी उसकी रचना, अपरिमित विस्तार तथा चमत्कारिक सौंदर्य देखकर एवं रचना-क्रम को आश्चर्यजनक सशक्त नियम-विधान में नियन्त्रित जानकर वे उसी मनःस्थिति में हैं। 'जपुजी' में उन्होंने आदर्श योगी का स्वरूप निश्चित किया है, 'वार आसा' में महान् पंडित और सुशिक्षित व्यक्ति की व्याख्या हुई है। 'जपुजी' में उन्होंने मनुष्य के आध्यात्मिक विकास की दशाओं को आध्यात्मिक सीढ़ी के अनेक डण्डों की भान्ति परिगणित किया है। 'वार आसा' में इन दशाओं को वे पड़ाव माना गया है, जहाँ से गुज़र कर मनुष्य देव, पूर्ण पुरुष, सर्व-सम्पन्न सेवक या शिष्य बनता है। वास्तव में सव पवित्र धर्मशास्त्रों का मुख्य लक्ष्य पूर्ण अथवा आदर्श व्यक्ति को चित्रित करना तथा उत्साही जीवात्मा को उस लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग दिखाना है। 'वार आसा' में 'देव' पद को प्राप्त

करने के लिए अपनाए जाने योग्य मार्ग अथवा साधनों का विस्तृत वर्णन किया गया है। उस मार्ग में ज्ञान, कर्म और भक्ति, तीनों का समन्वय उपलब्ध है। 'वार आसा' के पदों और छन्दों (पउड़ियों) में इन्हीं तीनों का संतुलित सम्मिश्रण प्रतिपादित हुआ है।

प्रथम खण्ड के पदों में ज्ञान का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। दूसरे खण्ड में श्लोकों के माध्यम से भक्ति और कर्म के गुणों की व्याख्या की गई है। तीसरे खण्ड में ईश्वर की लीला का चित्रण है; तथा चौथा खण्ड हमें पूर्व-प्रज्ञा के मुक्ता-चयन की शिक्षा देता है। वास्तव में 'वार आसा' में ज्ञान, भक्ति और कर्म के सन्तुलित विकास द्वारा आध्यात्मिक उन्नयन का समर्थन किया गया है।

१. खण्ड प्रथम

(१) परम-सत्ता—'वार आसा' में परमसत्ता को मूल चेतना कहा गया है, और 'जपुजी' में उसी को सत्य कहा है। मूल-चेतना 'शबद', रचयिता, ज्ञाता, संपोषक, विनाशक, अन्तर्यामी आदि के गुणों से सम्पन्न है। इससे परे अथवा इसके ऊपर कुछ भी विद्यमान नहीं। 'वार' के प्रथम पद में ही मूल चेतना का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

> आपीनै आपु साजिओ आपीनै रचिओ नाउ।
> दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ।
> दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाउ।
> तू जाणोई सभसै दे लैसहि जिदु कवाउ।
> करि आसण डिठो चाउ।[1]

परम चेतना अथवा परम आत्मन् का कोई आदि-अन्त नहीं, न ही कोई अन्य उनका निर्माण करता है। वह स्वनिर्मित एवं स्व-प्रकाशित है। वह परम देव अथवा ज्योति है। जो अपने जीवन में उसे पहिचान लेता है, वह ज्योतिर्मान हो जाता एवं देव-पद को प्राप्त होता है। परम सत्ता अरूप तथा अनुभवातीत है, किन्तु स्वेच्छा से वह नाम-रूप को धारण करती तथा निर्माण, पोषण और विनाश करती है। परम देव उसके निर्माण में हर्षानुभव करता, उसमें गहन रुचि रखता, उसके साथ तथा उसमें वास करता है। वह इसीलिए ज्ञान, प्रकाश

१. वार आसा, पउड़ी १। वह स्वयम्भू है और इन्होंने 'नाम' की सृष्टि की है। [illegible] प्रकृति का निर्माण किया, जिसमें वह स्वयं व्याप्त होकर [illegible]। वह सर्व संपोषक है, कर्ता है और वह अपनी लीला से ही [illegible] करता है। [illegible] प्रभु, तुम [illegible] हो, [illegible] देते हो [illegible] [illegible] हो और [illegible] रचना को देखते हो।

तथा सहयोगिता की शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है, जो की जीवन-शक्ति की उन्नति के उपकरण हैं। ज्योति एवं शक्ति मात्र उसके गुण ही नहीं, बल्कि उसका स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

(२) धर्म—'जपुजी' में ईश्वरेच्छा को सर्वोच्च माना गया है। 'वार आसा' में इच्छा के स्वरूप का स्थानान्तरण धर्म के स्वरूप से हुआ है। 'जपुजी' के दूसरे पद का 'हुकम' 'वार आसा' के दूसरे पद का 'धर्म' बन जाता है। अतः इच्छा अथवा हुकम ही धर्म है। मानव-कृत्यों में मूल-चेतना की गहन रुचि है, वह शिक्षक अथवा गुरु की भान्ति उसका मार्ग-प्रदर्शन करती एवं उनके कर्मानुसार निर्णय देती है। इस प्रकार दिव्य न्याय ही धर्म को संगठित करता है।

धर्म कर्तव्य भी है। प्रत्येक मनुष्य की कर्मानुकूल जांच होती है, जिससे पता चलता है कि उसने किस सीमा तक अपने कर्तव्यों का पालन किया। संसार वह स्थान है, जहाँ मनुष्य को धर्म अथवा कर्तव्यों का पालन करना होता है। प्रत्येक मनुष्य के कर्मों का आलेख अपने-आप तैयार होता तथा उसके मन पर अमित अंकन बनता चलता है, जिसके आश्रय ईश्वर निष्पक्ष न्याय करता है—दिव्य विधान में अन्याय को कोई स्थान नहीं।

नानक जीअ उपाइकै लिखि नावै धरमु बहालिआ।
ओथै सचे ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ।
थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह कालै दोजकि चालिआ।
तेरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सिठगण वालिआ।
लिखि नावै धरमु बहालिआ।[1]

पउड़ी २, वार आसा, पृ० ४६३।

(३) कृपा—धर्म-विधान यद्यपि कठोर है, तथापि न्यायाधीश क्रूर अथवा निष्ठुर नहीं है। वह कृपालु भी है। नियम-प्रवर्त्तन से पूर्व वह कृपा-वर्षन करता है। वह गुरु अथवा किसी प्रकाशमान् आत्मा के माध्यम से मनुष्य को जीवन-पथ की शिक्षा देता है। 'जपुजी' में गुरु की भूमिका मिथ्या-दीवाल के विनाशक की है। 'वार आसा' में गुरु की भूमिका का चित्रण निम्न शब्दों में हुआ है:—

नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतगुरु पाइआ।
एहु जीउ बहुते जनम भरमिआ ता सतिगुरि सबदु सुणाइआ।

---

१. नानक कहते हैं, ईश्वर ने मनुष्य की रचना के बाद उसके कर्मों की जाँच के लिए धर्मराज की स्थापना की। धर्मराज के दरबार में एकमात्र सत्य की विजय होती है। आध्यात्मिक क्षेत्र के निकृष्ट जीव निगल कर दिए जाते हैं और पतित जीवों को वहां कोई स्थान नहीं दिया जाता। वे अपमानित करके नरक में प्रेषित होते हैं। हे ईश्वर, वास्तव में तुम्हारे सच्चे साधक ही विजयी होते है, कपटी पराजित हो जाते हैं। हमारे कर्मों की परख धर्मराज ही करता है। ईश्वर का सदन न्याय-सदन है।

सतिगुर जेवडु दाता को नही सभि सुणिअहु लोक सबाइआ।
सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिनी विचहु आपु गवाइआ।
जिनि सचो सचु बुझाइआ।
पउड़ी ४, पृ० ४६४।

नाउ तेरा निरंकारु है नाइलइऐ नरकि न जाईये।
पउड़ी ५, पृ० ४६५।

सतिगुर विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ।[1]
पउड़ी ६, पृ० ४६६।

गुरु ईश्वर का व्यक्त रूप है, क्योंकि वह अपने को गुरु में स्थित करता है। वह शिष्य के मन से अहम् और जागतिक बंधनों का निषेध करके ईश्वर-प्रेम, निस्स्वार्थ भावना तथा सेवा के महत् भावों की स्थापना करता है।

(४) सेवा—गुरु अपने शिष्य को ईश्वर-नाम का भेद बताता है। 'नाम' के प्रति उसकी साधना अन्ततः उसे सेवा-सामर्थ्य प्रदान करती है। सेवा की भावना का एक आध्यात्मिक स्तर होता है, यह केवल क्रियाशीलता का बाह्य स्वरूप ही नहीं है। यह मनुष्य की नाम-भक्ति की उपज है।

अतः वार आसा में ईश्वर के सेवक का आध्यात्मिक स्वरूप निम्न शब्दों में प्रस्तुत किया गया है:—

सेव कीती संतोखीईं जिनी सचो सचु धिआइआ।
ओनी मंदै पैरु न रखिओ करि सुक्रितु धरमु कमाइआ।
ओनी दुनीआ तोड़े बंधना अंनु पाणी थोड़ा खाइआ।
तूं बखसीसी अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ।
वडिआई वडा पाइआ।[2]
पउडी ७, पृ० ४६६-६७।

---

१. यदि ईश्वर-कृपा हो तो मनुष्य किसी सतिगुरु को पा लेता है। अनेक योनियों में भ्रमित आत्मा गुरु की आवाज दत्त-चित होकर सुनती है। इसलिए ऐ मनुष्यो, जान लो कि संसार में गुरु से महान् शुभचिन्तक अन्य कोई नहीं। गुरु-मिलन से सत्योपलब्धि होती तथा मानव-मन से अहम्-नाश होता है। वह परम-तत्त्वा का अन्तर्दर्शन करवाता है। गुरु नाम का उपहार देता है। नाम भी ईश्वर ही के समान अरूप है तथा मनुष्य को नरकाग्नि से बचाता है। गुरु और नाम दोनों ईश्वर-कृपा की देन हैं।

२. उस परम सत्य की सेवा करने वाला तथा उसी में लीन हो जाने वाले व्यक्ति परम संतुष्ट हैं। वे कभी अनीति नहीं करते, सदैव सन्मार्ग पर चलते एवं सुकृत्य करते हैं। वे संसार के बंधनों को तोड़ते और न्यून खान-पान करते हैं। वे ईश्वर को महान प्रदाता मानते हैं। वह दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक देता है। वह महान् है और उसकी महानता के कीर्तन से ही वह मिलता है।

प्रभु और मानवता का सेवक सदैव संतुष्ट, सत्य का साधक, सद्गुणी मार्ग पर अविचलित, सम्यक् जीविकोपार्जक, अनाकर्षक तथा जीवन-चर्या में अति-संयमी होता है। उसकी धारणा है कि जीवन के समस्त उपकरण ईश्वर-प्रदत्त हैं, इसलिए वह ईश्वर प्रशस्ति में सुख अनुभव करता है। केवल ऐसा ही व्यक्ति मानवता का सच्चा सेवक होता है।

"वही सच्चा सेवक है, जिसपर ईश्वर का वरद् हस्त होता तथा जो उसी की अमर इच्छा के अनुरूप रहता है।"[1] 'जपुजी' का सचिआर 'वार आसा' में सेवक कहलाया है। 'हुकम' का प्रबोधन होने पर वह अहम् त्यागी बनता है, ऐसी 'जपुजी' की मान्यता है।

२. खण्ड द्वितीय

(१) देव—देव एक ऐसी उपाधि है, जो महानता प्राप्त करने वाले जीव को प्रदान की जाती है। उच्चाशय लोग देव कहलाते हैं, कदाचित् धन, सौन्दर्य, शक्ति, शिक्षा, जाति-कुल, भौतिक-शक्तियों, गुप्त-चमत्कारों आदि में कुछ विशिष्टता प्राप्त करने वालों को भी देव अथवा महान् कहा जाता है। किन्तु 'वार आसा' में इस धारणा का तिरस्कार किया है। उसमें दावा किया गया है कि धनद व्यक्ति द्वारा वास्तविक महानता प्राप्ति अथवा इसके विपरीत स्थिति अनिवार्य नहीं कही जा सकती—भौतिक सम्पन्नता मनुष्य की आन्तरिक योग्यता का प्रमाण नहीं। वास्तव में ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त कर लेने वाला व्यक्ति ही ज्योतिर्मान् होता है। मनुष्य में विवेक-बुद्धि का दीपक ज्योति-पुत्र गुरु के द्वारा प्रदीप्त किया जाता है :—

नानक गुरु न चेतनी मनि आपणै सुचेत।
छुटे तिल बूआड़ जिउ सुंञे अंदरि खेत।
खेतै अंदरि छुटिआ कहु नानक सउ नाह।
फलीअहि फुलीअहि बपुड़े भी तन विचि सुआह।[1]

'वार आसा' में बल दिया गया है कि धर्मग्रंथों के पाठ एवं मिथ्या अनुष्ठानों मात्र से कोई 'देव' नहीं बन सकता। सैकड़ों चन्द्र और हज़ारों सूर्य भी मानव को ज्योति-दान देने में समर्थ नहीं हैं—यहाँ चन्द्र और सूर्य पवित्र धर्म-ग्रंथों के

---

१. नानक कहते हैं, जो लोग गुरु की उपेक्षा करते तथा अपने को ज्ञानवान् मानते हैं, वे खेतों में नाहक उपजने वाले झूठे तिल की झाड़ियों के समान होते हैं। परित्यक्त होने के कारण सबके द्वारा उनकी उपेक्षा होती है। बाहर से फलने-फूलने वाले भीतर से निकृष्ट और मलिन भी हो सकते हैं (श्लोक, वार आसा, पृ० ४६३)।

प्रतीक हैं। केवल गुरु द्वारा दिए गए ज्ञान-प्रकाश के माध्यम से ईश्वर नाम की साधना ही व्यक्ति को देव पद तक उठाती है।

(२) ज्ञान—गुरु के महत्त्व पर बल देने के बाद 'वार आसा' में उसके द्वारा शिष्य को दिए जाने वाले ज्ञान के विभिन्न पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया है। उस ज्ञान का एक विशेष पहलू ब्रह्माण्ड तथा उसकी रचना की जानकारी है। गुरु नानक बताते हैं कि परमात्मा की रचना अथवा सृष्टि अपरिमित, अति विलक्षण, सशक्त तथा चमत्कारक व्यवस्था सम्पन्न है।

(i) ईश्वर सत्य है और उसके विधान में निर्मित कुछ भी असत्य अथवा भ्रमात्मक नहीं, वरन् मनुष्य परम सत्य की खोज विश्वगत सत्य से ही कर सकता है। विश्वगत सत्य का अनुकूल ज्ञान परम-सत्य सम्बन्धी अन्तर्बोध प्रदान करता है।

(ii) विश्व की विभिन्न अभिव्यक्तियों का सौंदर्य और सम्मोहन मनुष्य को आत्म-विभोर दशा तक पहुँचाता है। इसी सौन्दर्यान्वीक्षण से परम-सत्य को खोजना होता है।

(iii) प्रकृति अति सबल है। उसकी शक्तियाँ अदमनीय हैं। इस जानकारी से भी परम सत्य का विचार उभरता है।

(iv) विश्व अथवा प्रकृति की सब अभिव्यक्तियों से क्रम या व्यवस्था तो स्पष्ट ही है।

गुरु, मनुष्य को प्रकृति तथा विश्व के उक्त तत्त्वों से परिचित करवाता, और इस प्रकार सर्व-सम्बल आत्मा अर्थात् परमात्मा की यथार्थता, विशालता, सौंदर्य, शक्ति तथा व्यवस्थिति की छाप बिठाता है।

(३) **प्रेम और भक्ति**—प्रभु के 'हुकम' अनुसार जीवन-यापन ही भक्ति है। किन्तु 'वार आसा' में गुरु नानक ने सब प्रकार के कर्मकाण्ड का, जोकि अज्ञान के कारण विशुद्ध भक्ति का स्थान ले चुका है, खण्डन किया है।

(i) धार्मिक विधिवाद धर्म का लक्ष्य नहीं, न ही यह भक्ति है।

(ii) कर्मकाण्ड भी भक्ति नहीं है। केवल दाह-संस्कार करने अथवा दफ़नाने की क्रियाओं से कोई हिन्दू या मुसलमान नहीं बनता, ईश्वर-मिलन के लिए मानसिक तड़प ही व्यक्ति को हिन्दू या मुस्लिम होने की योग्यता प्रदान करती है।

(iii) उत्तम कर्म करना श्रेष्ठ है, परन्तु अपने में वे भक्ति के आधार नहीं होते—भक्ति तो उसकी कृपा का परिणाम है, मनुष्य की बुद्धि की उपलब्धि नहीं।

(iv) धर्म-ग्रंथों का सस्वर पाठ भक्ति नहीं, उस लक्ष्य तक पहुँचने के साधन हैं।

(v) साम्प्रदायिक परिधान पहनने तथा विशेष चिह्नों को धारण करने से भक्ति नहीं होती, ये वस्तुएँ किसी के लिए प्रेरणा भले बन जायँ। अपराध-चेतना वाला व्यक्ति वाह्यतः चाहे विनम्र दीखे तथा दूसरों के प्रति आदर-भाव दर्शाए! जनेऊ पहनने वाला चाहे गला काटे! दानी भी निर्धनों से अनुचित लाभ उठाने वाला हो सकता है। अतः वास्तव में मनुष्य का आन्तरिक स्वरूप ही महत्त्वपूर्ण होता है, वाह्य परिधान नहीं।

ईश्वरीय उपस्थिति द्वारा संतृप्त व्यक्ति ही जीवन में सत्य को पहिचानता है।

(४) विवेक—'वार आसा' में गुरु नानक धार्मिक विधि-विधान को विवेक की कसौटी पर कसते हैं। यदि ये विधि-विधान तर्क पर पूरे नहीं उतरते अथवा असंगत सिद्ध होते हैं, तो निश्चय ही वे त्याज्य हैं। उन्होंने हिन्दुओं द्वारा पहने जाने वाले जनेऊ, धार्मिक परिधान तथा पूजन-विधियों का तर्कपूर्ण परीक्षण किया तथा उनके स्वरूप में प्रकटित अन्तर्विरोध का संकेत किया है। उन्होंने कतिपय विधियों का वास्तविक अर्थ तथा महत्त्व भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उनके मतानुसार, उदाहरणार्थ, सूतक अथवा सम्पर्क-विचार की विधि असंगत है, किन्तु सूतक-सिद्धान्त की सार्थकता तब उपयुक्त हो सकती है, यदि—

मन का सूतकु लोभु है जिहवा सूतकु कूड़ु।
अखी सूतकु वेखणा पर त्रिय पर धन रूप।
कंनी सूतकु कंनि पै लाइतबारी खाहि।
नानक हंसा आदमी बधे जमपुरि जाहि।

(श्लोक आ० ग्रंथ, पृ० ४७२)

धर्म कर्तव्य-पालन का नाम है, न कि विधियों, रीतियों तथा कर्मकाण्डों का। धर्म-पालन की वास्तविक सम्भावना जीवन की शुद्धता में है, जिसकी प्राप्ति केवल सत्य की जानकारी से होती है। सत्य को तत्त्व से जान लेने के लिए विवेक अपेक्षित है—

सचु ता परु जाणीऐ जा रिदै सचा होइ।
कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ।
सचु ता परु जाणीऐ जा सचि धरे पिआरु।
नाउ सुणि मनु रहसीऐ ता पाए मोख दुआरु।
सचु ता परु जाणीऐ जा जुगति जाणै जीउ।
धरती काइआ साधि कै विचि देइ करता बीउ।
सचु ता परु जाणीऐ जा आतम तीरथि करे निवासु।
सतिगुरु नो पुछि कै बहि रहै करे निवासु।

सचु सभना होइ दारू पाप कढै धोइ ।
नानक वखाणै बेनती जिन सचु पलै होइ ।[1] २ ।
श्लोक (आ० ग्रं०, पृ० ४६८)

सच्चे विवेक को धारण करने वाला सच्चा व्यक्ति ही धर्म-पालन कर सकता है । अतः गुरु नानक ने मानव-धर्म का स्वरूप बदल दिया है । खेद का विषय है कि मनुष्य पुनः उसी अज्ञानता की स्थिति में पतनोन्मुख है ।

३. खण्ड तृतीय

गुरु नानक ने इस रचना में संसार को मिथ्याभिमान, अहंकार, कपट, दुष्कर्मों आदि से भ्रष्ट हुआ चित्रित किया है । वे कई-एक पदों में इसका अन्धकारमय चित्र खींचते हैं किन्तु वे ऐसे संसार में रहने वाले मनुष्य को निराश नहीं होने देना चाहते । 'वार' उसे आशान्वित करती एवं उज्जवल भविष्य के लिए प्रोत्साहित करती है । गुरु नानक बताते हैं कि संसार में विकास और ह्रास, आध्यात्मिक उत्थान-पतन सदैव एक दूसरे के आगे-पीछे चलते रहे हैं और भविष्य में भी ऐसा होता रहेगा । मानव-अस्तित्व के क्रम में यह सिद्धान्त सदा से कार्यान्वित रहा है । एक समय का प्रबुद्ध व्यक्ति पुनः विपत्ति एवं आध्यात्मिक पतन का शिकार हो सकता है । भला-बुरा समय एक-दूसरे के साथ चलता है । आपकी इच्छा हो तो आप उन्हें सत्य और मिथ्या के विशेष युग कह सकते हैं । इस प्रकार स्थिति कदापि पूर्णतः गर्तगत नहीं होती ।

एक बात और, आध्यात्मिक पतन का स्वाभाविक परिणाम पीड़ा है, किन्तु गुरु नानक पुनः विश्वास दिलाते हैं कि पीड़ा में से ही पुनर्जीवन, आध्यात्मिक शुद्धि और इस प्रकार एक नवीन मानवता का उदय होता तथा नए आध्यात्मिक क्षितिज सहित एक स्वस्थ समाज का निर्माण होता है । पीड़ा सहयोगिनी है,

---

१. सत्य की जानकारी तभी सम्भव है, यदि व्यक्ति सत्य से प्रेम करता एवं मिथ्या की धूल को धोता है, और इस प्रकार तन-मन को शुद्ध कर लेता है ।

सत्य की जानकारी उसी को होती है, जो सत्य से प्रेम करता, नाम-स्मरण द्वारा परमानन्द को पाता और इस प्रकार मोक्ष को अपनाता है ।

सत्य की जानकारी तभी होती है जब मनुष्य जीवन का सुमार्ग पा लेता है, अपने शरीर का [illegible] कर उसमें प्रभु-नाम का बीज बोता है ।

सत्य तभी पहिचाना जाता है, जब मनुष्य आत्मतीर्थ पर स्नान करता तथा गुरु [illegible] पूछा करता है । यह सत्य सब दुःखों की औषधि है तथा सब [illegible] कर देता है । नानक उन्हीं [illegible] प्रार्थना करते हैं [illegible]

यह मनुष्य को परिष्कार की प्रेरणा देती है। यदि यह कहा जाय कि यन्त्रणा उपचारक होती है; सुख अस्वस्थता है, क्योंकि सुख में सत्य विस्मृत हो जाता है, तो कुछ अन्यथा न होगा। यही उसकी लीला है। इसमें निराशा को कोई स्थान नहीं।

४. खण्ड चतुर्थ

'वार' चिन्तन-मणियों की वास्तविक खान है। ये मणियाँ न केवल अभिव्यक्ति में सुन्दर हैं बल्कि अन्तर्ज्ञान और उदात्तता में भी अद्वितीय हैं। रचना की अनेक पंक्तियाँ तो 'उद्धरणीय आप्तवाक्य' बन गई हैं; उनमें व्यावहारिक जीवन की जानकारी उपलब्ध है, तथा वे धर्म-चेता लोगों के लिए अति रुचिकर हैं। वे आस्तिक और नास्तिक, दोनों को समान प्रभावित करती हैं। इन पंक्तियों को किसी भी भाषा में अनुवाद करना बड़ा कठिन है, क्योंकि अनुवाद में काव्याभिव्यक्ति सौंदर्य नहीं आ पाता। बानगी के तौर पर कतिपय मूल पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :—

१. नानक सचु धिआइनि सचु।
२. मनि अंधै जनमु गवाइआ।
३. नानक जिन मनि भउ तिना मनि भाउ।
४. को रहै न भरीऐ पाईऐ।
५. हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि।
६. वडिआई वडा पाइआ।
७. नानक सचे नाम बिनु किआ टिका किआ तगु।
८. सचु सभना होइ दारू पाप कढै धोइ।
९. मति थोड़ी सेव गवाईऐ।
१०. मूरख पंडित हिकमति हुजति संजै करहि पिआरु।
११. सभु को पूरा आपे होवै घटि न कोई आखै।
पति परवाणा पिछै पाईऐ ता नानक तोलिआ जापै।
१२. सभनी छाला मारिआ करता करे सु होइ।
१३. अगै जाति न जोरु है अगै जीउ नवे।
१४. सहजे ही सचि समाइआ।
१५. दुखु दारू सुखु रोगु भइआ जा सुखु तामि न होइ।
१६. जेहा घाले घालणा तेवे हो नाउ पचारीऐ।
१७. ऐसी कला न खेडीऐ जितु दरगह गइआ हारीऐ।
१८. खसम छोडि दूजै लगे डुबे से वणजारिआ।

१९. मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआइआ ततु ।
२०. सीसि निवाईऐ किआ थीऐ जा रिदै कुसुधे जाहि ।
२१. करि अउगण पछोतावणा ?
२२. सुणि वेखहु लोक एहु विडाणु । मनि अंधा नाउ सुजाणु ।
२३. माणसखाणे करहि निवाज । छुरी वगाइनि तिन गलि ताग ।
२४. मनि जूठै चुली भरेनि ।
२५. कहु नानक सचु धिआईऐ । सुचि होवै ता सचु पाईऐ ।
२६. नदरि उपठी जे करे सुलताना घाहु कराइदा ।
२७. नानक अगै सो मिलै जिखटे घाले देइ ।
२८. जरु आई जोवनि हारिआ ।
२९. खाणा पीणा पवित्र है दितोनु रिजकु संबाहि ।
३०. मंदा किसै न आखिए पड़ि अखरु एहो बुझीऐ ।

यह मनुष्य को परिष्कार की प्रेरणा देती है। यदि यह कहा जाय कि यन्त्रणा उपचारक होती है; सुख अस्वस्थता है, क्योंकि सुख में सत्य विस्मृत हो जाता है, तो कुछ अन्यथा न होगा। यही उसकी लीला है। इसमें निराशा को कोई स्थान नहीं।

४. खण्ड चतुर्थ

'वार' चिन्तन-मणियों की वास्तविक खान है। ये मणियाँ न केवल अभिव्यक्ति में सुन्दर हैं बल्कि अन्तर्ज्ञान और उदात्तता में भी अद्वितीय हैं। रचना की अनेक पंक्तियाँ तो 'उद्धरणीय आप्तवाक्य' बन गई हैं; उनमें व्यावहारिक जीवन की जानकारी उपलब्ध है, तथा वे धर्म-चेता लोगों के लिए अति रुचिकर हैं। वे आस्तिक और नास्तिक, दोनों को समान प्रभावित करती हैं। इन पंक्तियों को किसी भी भाषा में अनुवाद करना बड़ा कठिन है, क्योंकि अनुवाद में काव्याभिव्यक्ति सौंदर्य नहीं आ पाता। बानगी के तौर पर कतिपय मूल पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :—

१. नानक सचु धिआइनि सचु।
२. मनि अंधै जनमु गवाइआ।
३. नानक जिन मनि भउ तिना मनि भाउ।
४. को रहै न भरीऐ पाईऐ।
५. हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि।
६. वडिआई वडा पाइआ।
७. नानक सचे नाम विनु किआ टिका किआ तगु।
८. सचु सभना होइ दारू पाप कढै धोइ।
९. मति थोड़ी सेव गवाईऐ।
१०. मूरख पंडित हिकमति हुजति संजै करहि पिआरु।
११. सभु को पूरा आपे होवै घटि न कोई आखै।
पति परवाणा पिछै पाईऐ ता नानक तोलिआ जापै।
१२. सभनी छाला मारिआ करता करे सु होइ।
१३. अगै जाति न जोरु है अगै जीउ नवे।
१४. सहजे ही सचि समाइआ।
१५. दुखु दारू सुखु रोगु भइआ जा सुखु तामि न होइ।
१६. जेहा घाले घालणा तेवे हो नाउ पचारीऐ।
१७. ऐसी कला न खेडीऐ जितु दरगह गइआ हारीऐ।
१८. खसम छोडि दूजै लगे डुबे से वणजारिआ।

१६. मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआईआ ततु ।
२०. सीसि निवाईऐ किआ थीऐ जा रिदै कुसुधे जाहि ।
२१. करि अउगण पछोतावणा ?
२२. सुणि वेखहु लोक एहु विडाणु । मनि अंधा नाउ सुजाणु ।
२३. माणसखाणे करहि निवाज । छुरी वगाइनि तिन गलि ताग ।
२४. मनि जूठै चुली भरेनि ।
२५. कहु नानक सचु धिआईऐ । सुचि होवै ता सचु पाईऐ ।
२६. नदरि उपठी जे करे सुलताना घाहु कराइदा ।
२७. नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ ।
२८. जरु आई जोबनि हारिआ ।
२९. खाणा पीणा पवित्र है दितोनु रिजकु संबाहि ।
३०. मंदा किसै न आखिए पड़ि अखरु एहो बुझीऐ ।

: २३ :

सिद्ध-गोष्ठी

डॉ० शेरसिंह

'सिद्ध-गोष्ठी' गुरु नानक द्वारा, सिद्धों के साथ संवाद रूप में, रचित एक लम्बी दर्शन-प्रधान कविता है, जिसे उन्होंने पन्द्रहवीं शती ईसवी में रावी नदी के उत्तरी तट पर बसाए नगर करतारपुर (ईश्वर-सदन) में लिखा था। (सन् १९४७ में भारत-विभाजन के समय चूंकि उस प्रदेश में यह नदी पाकिस्तान की सीमा-रेखा स्वीकार कर ली गई, इसलिए करतारपुर, जहाँ गुरुजी का देहावसान हुआ तथा ननकाना साहिब, जहाँ गुरुजी का जन्म हुआ था, दोनों अब पश्चिमी पाकिस्तान में स्थित हैं।)

गुरुजी ने इस रचना का प्रणयन बटाला के निकट अचल में सिद्धों से साक्षात्कारोपरांत किया। अचल की यह यात्रा गुरुजी ने अपने जीवन के अन्तिम एक-दो वर्षों में ही की थी। हमें निम्न जानकारी भाई गुरुदास की श्रेण्य रचना से उपलब्ध होती है—भाई गुरुदास, जो पाँचवें सिख गुरु अर्जुन देव के लिपिक थे। आदि गुरु ग्रंथ का सम्पादन गुरु अर्जुन जी ने ही किया था, जिसमें ७३ पदों की यह रचना (सिद्ध-गोष्ठी) पृष्ठ ९३८ से ९४६ तक संकलित है। भाई गुरुदास की प्रथम 'वार' में उक्त काव्य-रचना की पृष्ठभूमि का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

जीवन के चौथे दशाब्द में प्रवेश करने वाले गुरु नानक तब सभी तीर्थ-स्थलों पर गए। उन दिनों के विश्व का समूचा वातावरण ही भ्रामक हो गया था, और मानवता अनेकधा पथ-भ्रष्ट तथा विभ्रान्त थी।[1] मैदानी प्रदेश में सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों की यात्रा के उपरांत गुरुजी उत्तर में पर्वतीय प्रदेश में गए। वहाँ उनकी मुलाकात गोरख के अनुयायी कुछ सिद्धों से हुई।[2] सिद्धों ने गुरुजी से मैदानी इलाके—हमारी मातृ-भूमि—में जीवन-परिस्थितियों के बारे में पूछा।[3]

---

१. बाबा आया तीरथीं तीरथ पूरब सभै फिर देखै।
पुरब धरम बहु करम कर भाउ भगति बिन किते न लेखै।
कलिजुग धंधूकार है भरम भुलाई बहु बिधि भेखै। गुरुदास वार १, पउड़ी २५।

२. चौरासीह सिध गोरखादि मन अंदर गणती वरताई। पउड़ी २८।

३. फिर पुछ्रण सिध नानका मात लोक विच किआ वरतारा। पउड़ी २९।

गुरुजी ने उत्तर दिया, "सिद्ध यहाँ से पहाड़ों में भाग गए हैं और गुफाओं में शान्ति-सदन खोजते हैं, तब यहाँ जन साधारण को [illegible] मार्ग दिखाने वाला कौन रह गया है ? शासक पापी हैं, उन्हीं प्रजा के संरक्षण की अपेक्षा उसका शोषण करते हैं। जनता ना-समझ है, तथा स्त्रियाँ पुरुषों के हस्तक्षेप करती है। काजी (न्यायाधीश) दुराचारी हैं, वे घूस लेते तथा सत्य और न्याय की उपेक्षा करते हैं। स्त्रियाँ और पुरुष, सब धन के लिए अपने सम्मान को भी बेच देते हैं।"[1]

इस स्पष्ट और निष्कपट समीक्षा से सिद्ध बड़े प्रभावित हुए तथा उन्होंने गुरुजी को अपने मत में दीक्षित करना चाहा[2] किन्तु गुरुजी दिव्य नाम की शक्ति से सिद्धों की सभा पर विजयी हुए।

तब गुरुजी मक्का, मदीना, बगदाद गए तथा उन्होंने मुस्लिम देशों के कति-पय प्रसिद्ध नगरों का भ्रमण किया।[3] इन देशों से लौटकर वे करतारपुर आए, और उन्होंने तीर्थयात्री फ़कीर वाली वेष-भूषा का त्याग कर दिया। वे अपनी नई वस्ती में रहने लगे, तथा वहीं उपदेश, चर्चाएँ एवं सभाएँ होने लगीं।[4] बटाला के निकट अचल में, जोकि बटाला के चार मील दक्षिण में जालन्धर-ब्यास-बटाला मार्ग पर पड़ता है, शिवरात्रि का वार्षिक मेला लगा करता था। एक वार गुरुजी ने शिव-मन्दिर पर इस मेले में सम्मिलित होने का निश्चय किया। वे वहाँ गए तथा उन्होंने सिद्धों से वहाँ परिचर्चा भी की। उनमें भंगरनाथ नाम का एक सिद्ध था। उसने गुरुजी से पूछा, "आपने उदासी वेष त्यागकर पुनः गृहस्थ-जीवन क्यों ग्रहण कर लिया है ?" गुरुजी ने उन्हें फटकार बताई और उनके दम्भों को प्रकट करते हुए कहा, "तुम्हारी माता (गुरु) ने तुम्हें उचित पथ-प्रदर्शन नहीं दिया। तुम्हें अपना घर-वार तो छुड़वा दिया गया है और अब

---

१. सिध छिप बैठे परवतीं कौण जगत कउ पार उतारा। पउड़ी २९।
राजे पाप कमावंदे उलटी वाड़ खेत कउ खाई। पउड़ी ३०।
परजा अंधी ग्यान बिन कूड़ कुसत मुखहु आलाई।
चेले साज वजाइंदे नच्चन गुरु बहुत बिध भाई।
काजी होए रिशवती वढी लैके हक गवाई।
इसत्री पुरखै दाम हित भावैं आइ किथाउं जाई।
वरतिआ पाप सभस जग मांही। पउड़ी ३०।

२. सिधीं मने वीचारिआ किवें दरशन एह लेवे वाला।
ऐसा जोगी कली माहि हमरे पंथ करे उजिआला। गुरुदास वार १, पउड़ी ३१।

३. बाबा फिर मक्के गया.........(पउड़ी ३२), बाबा गिआ बगदाद नूं (पउड़ी ३५) आदि आदि।

४. बाबा आया करतारपुर भेख उदासी सगल उतारा।
ग्यान गोष्ट चरचा सदा अनहद सबद उठे धुनीकारा। पउड़ी ३८।

: २३ :

सिद्ध-गोष्ठी

डॉ० शेरसिंह

'सिद्ध-गोष्ठी' गुरु नानक द्वारा, सिद्धों के साथ संवाद रूप में, रचित एक लम्बी दर्शन-प्रधान कविता है, जिसे उन्होंने पन्द्रहवीं शती ईसवी में रावी नदी के उत्तरी तट पर बसाए नगर करतारपुर (ईश्वर-सदन) में लिखा था। (सन् १९४७ में भारत-विभाजन के समय चूंकि उस प्रदेश में यह नदी पाकिस्तान की सीमा-रेखा स्वीकार कर ली गई, इसलिए करतारपुर, जहाँ गुरुजी का देहावसान हुआ तथा ननकाना साहिब, जहाँ गुरुजी का जन्म हुआ था, दोनों अब पश्चिमी पाकिस्तान में स्थित हैं।)

गुरुजी ने इस रचना का प्रणयन बटाला के निकट अचल में सिद्धों से साक्षात्कारोपरांत किया। अचल की यह यात्रा गुरुजी ने अपने जीवन के अन्तिम एक-दो वर्षों में ही की थी। हमें निम्न जानकारी भाई गुरुदास की श्रेण्य रचना से उपलब्ध होती है—भाई गुरुदास, जो पाँचवें सिख गुरु अर्जुन देव के लिपिक थे। आदि गुरु ग्रंथ का सम्पादन गुरु अर्जुन जी ने ही किया था, जिसमें ७३ पदों की यह रचना (सिद्ध-गोष्ठी) पृष्ठ ९३८ से ९४६ तक संकलित है। भाई गुरुदास की प्रथम 'वार' में उक्त काव्य-रचना की पृष्ठभूमि का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

जीवन के चौथे दशाब्द में प्रवेश करने वाले गुरु नानक तब सभी तीर्थ-स्थलों पर गए। उन दिनों के विश्व का समूचा वातावरण ही भ्रामक हो गया था, और मानवता अनेकधा पथ-भ्रष्ट तथा विभ्रान्त थी।[1] मैदानी प्रदेश में सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों की यात्रा के उपरांत गुरुजी उत्तर में पर्वतीय प्रदेश में गए। वहाँ उनकी मुलाकात गोरख के अनुयायी कुछ सिद्धों से हुई।[2] सिद्धों ने गुरुजी से मैदानी इलाके—हमारी मातृ-भूमि—में जीवन-परिस्थितियों के बारे में पूछा।[3]

---

१. बाबा आया तीरथीं तीरथ पूरब सभै फिर देखै।
पुरब धरम बहु करम कर भाउ भगति बिन किते न लेखै।
कलिजुग धंधूकार है भरम भुलाई बहु बिधि भेखै। गुरुदास वार १, पउड़ी २५।

२. चौरासीह सिध गोरखादि मन अंदर गणती वरताई। पउड़ी २८।

३. फिर पुछ्य सिध नानका मात लोक विच किआ वरतारा। पउड़ी २९।

गुरुजी ने उत्तर दिया, "सिद्ध वहाँ से पहाड़ों में चले आए हैं और गुफ़ाओं में शान्ति-सदन खोजते हैं, तब वहाँ जन साधारण की देख-भाल करने तथा उन्हें मार्ग दिखाने वाला कौन रह गया है? शासक पापी हैं, अपनी प्रजा के संरक्षण की अपेक्षा उसका शोषण करते हैं। जनता ना-समझ है तथा मिथ्या कृत्यों में हस्तक्षेप करती है। काज़ी (न्यायाधीश) दुश्चरित्र हैं; वे घूस लेते तथा सत्य और न्याय की उपेक्षा करते हैं। स्त्रियाँ और पुरुष, सब धन के लिए अपने सम्मान को भी बेच देते हैं।"[1]

इस स्पष्ट और निष्कपट समीक्षा से सिद्ध बड़े प्रभावित हुए तथा उन्होंने गुरुजी को अपने मत में दीक्षित करना चाहा[2] किन्तु गुरुजी दिव्य नाम की शक्ति से सिद्धों की सभा पर विजयी हुए।

तब गुरुजी मक्का, मदीना, बगदाद गए तथा उन्होंने मुस्लिम देशों के कतिपय प्रसिद्ध नगरों का भ्रमण किया।[3] इन देशों से लौटकर वे करतारपुर आए और उन्होंने तीर्थयात्री फ़क़ीर वाली वेष-भूषा का त्याग कर दिया। वे अपनी नई बस्ती में रहने लगे, तथा वहीं उपदेश, चर्चाएँ एवं सभाएँ होने लगीं।[4] बटाला के निकट अचल में, जोकि बटाला के चार मील दक्षिण में जालन्धर-ब्यास-बटाला मार्ग पर पड़ता है, शिवरात्रि का वार्षिक मेला लगा करता था। एक बार गुरुजी ने शिव-मन्दिर पर इस मेले में सम्मिलित होने का निश्चय किया। वे वहाँ गए तथा उन्होंने सिद्धों से वहाँ परिचर्चा भी की। उनमें भंगड़नाथ नाम का एक सिद्ध था। उसने गुरुजी से पूछा, "आपने उदासी वेष त्यागकर पुनः गृहस्थ-जीवन क्यों ग्रहण कर लिया है?" गुरुजी ने उन्हें फटकार बताई और उनके दम्भों को प्रकट करते हुए कहा, "तुम्हारी माता (गुरु) ने तुम्हें उचित पथ-प्रदर्शन नहीं दिया। तुम्हें अपना घर-बार तो छुड़वा दिया गया है और अब

---

१. सिध छिप बैठे परबतीं कौण जगत कउ पार उतारा। पउड़ी २९।
राजे पाप कमावंदे उलटी वाड़ खेत कउ खाई। पउड़ी ३०।
परजा अंधी ग्यान बिन कूड़ कुसत मुखहु आलाई।
चेले साज वजाइंदे नच्चन गुरु बहुत बिध भाई।
काजी होए रिशवती वढी लैके हक गवाई।
इसत्री पुरखै दाम हित भावैं आइ किथाउं जाई।
वरतिआ पाप सभस जग मांही। पउड़ी ३०।

२. सिधीं मने वीचारिआ किवें दरशन एह लेवे बाला।
ऐसा जोगी कली माहि हमरे पंथ करे उजिआला। गुरुदास वार १, पउड़ी ३१।

३. बाबा फिर मक्के गया.........(पउड़ी ३२), बाबा गिआ बगदाद नूं (पउड़ी ३५) आदि आदि।

४. बाबा आया करतारपुर भेख उदासी सगल उतारा।
ग्यान गोष्ट चरचा सदा अनहद सबद उठे धुनीकारा। पउड़ी ३८।

तुम दूसरे गृहस्थों से भीख माँगकर खाते हो।" इसके पश्चात् लम्बी चर्चा चलती रही। गुरुजी ने अपनी सरल शिक्षाओं तथा प्रभावशाली तर्कों से सिद्धों को परास्त कर दिया, उनकी शंकाओं का समाधान किया गया, वहम मिटा दिए गए तथा उन्हें मानसिक शान्ति लाभ हुई।[1]

अचल-बटाला से गुरुजी मुलतान गए और वहाँ के फकीरों से परिचर्चा की। वहाँ से वे करतारपुर लौट आए और अचल में सिद्धों से हुई परिचर्चा के संक्षेप को ७३ पदों में आबद्ध कर 'सिद्ध-गोष्ठी' नामक लम्बी कविता का प्रणयन किया। शीघ्र ही उन्होंने भाई लहना को अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित करके उसे अंगद का नाम प्रदान किया। उसी वर्ष वे अपने भौतिक शरीर का विसर्जन करके परम आत्म-तत्त्व में विलीन हो गए।[2]

अतः भाई गुरदास की प्रामाणिकता के आश्रय हम निर्णयात्मक ढंग से कह सकते हैं कि 'सिद्ध-गोष्ठी' की रचना गुरु नानक ने करतापुर में (जोकि अब पाकिस्तान में है) एप्रिल-मई १५३९ ई० में की, जहाँ उसी वर्ष सितम्बर मास में उन्होंने अपने भौतिक शरीर का त्याग किया। सिद्धों के साथ ये गोष्ठियाँ अथवा परिचर्चाएँ गुरु नानक की सुनिश्चित और परिपक्व विचार-धारा का स्रोत हैं, इनमें उनके समूचे जीवन के अनुभवों का सार विद्यमान है।

ये सिद्ध कौन थे ? जिस प्रकार बुद्ध उसे कहते हैं जो बोध अथवा ज्ञान प्राप्त कर चुका हो, उसी प्रकार सिद्ध उसे कहते हैं जो सिद्धि अथवा पूर्णता लाभ कर चुका हो। ऐतिहासिक दृष्टि से सिद्ध उत्तरी भारत के गुरु गोरख नाथ तथा पश्चिमी भारत के धरमनाथ का अनुयायी कहा जाता है। ये दोनों मत्स्येन्द्र नाथ (गुरुजी के पदों में इसे 'मछेन्दर नाथ' कहा गया है) के शिष्य और गुरु भाई थे। मत्स्येन्द्रनाथ आदिनाथ का शिष्य था। नेपाली बौद्धों का विश्वास है कि आदिनाथ तथा बौद्ध इष्ट देवता आर्य अवलोकितेश्वर एक ही व्यक्ति थे। अस्तुः, सिद्ध सम्प्रदाय का उत्स भले बुद्ध-मत में खोजा जाय; किन्तु सत्य के अधिक निकट गोरखनाथ ही है, जोकि आदिनाथ का लोक-जनित प्रसिद्ध शिष्य तथा शक्ति-योगी था। गुरु नानक युग का सिद्धि सम्प्रदाय शैव-मत, बौद्धमत, पतंजलि के योग तथा वेदान्त का विचित्र मिश्रण था। गोरख-तन्त्र के अनुसार परम सत्ता स्वयं शिव है। उसकी उपलब्धि मन तथा शरीर के कठोरतम संयमन हठयोग द्वारा सम्भव है। गुरु नानक ने अपने धार्मिक

---

१. बाबे कीती सिध गोष्ट शबद शांति सिधां विच आई।
जिण मेला शिवरात दा खट दरसन आदेस कराई।
सिध बोलन शुभ बचन धनं नानक तेरी वड़ी कमाई। पउड़ी ४४।

२. थापिआ लहिणा जींवदे गुरिआई सिर छत्र फिराया।
जोती जोत मिलाइकै सतिगुर नानक रूप वटाइआ। पउड़ी ४५।

तथा सामाजिक सुधार के मिशन में तीन प्रकार के धर्म-प्रचारकों की अतिरिक्त तथा पाखण्डपूर्ण व्यवस्थाओं का उन्मूलन करने का प्रयास किया। ये ब्राह्मण, मुल्ला या क़ाज़ी तथा सिद्ध अथवा योगी थे। उन्होंने प्रत्येक मत के उत्तम तत्त्वों की सराहना की, परन्तु वे दम्भ, मात्र व्याख्यान तथा आडम्बर और कर्मकाण्ड पर दिए जाने वाले वल के कटु विरोधी थे; क्योंकि वे मानते थे कि इनसे जनता का नैतिक जीवन उन्नत नहीं होता और न ही साधक को मानसिक शान्ति लब्ध होती है। इस गोष्ठी में गुरु नानक ने इन सत्यों का अनावरण किया है तथा सिद्धों पर स्पष्ट किया है कि आध्यात्मिक शान्ति जीवन की समस्याओं से बचने के लिए घर से भागने से प्राप्त नहीं हो सकती, वरन् उसकी उपलब्धि विरक्त मन से सक्रिय जीवन जीने में ही सम्भव है। अपने कथन को चित्रित करने के लिए गुरु नानक ने कमल पुष्प तथा हंस के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जो कि दोनों रहते तो जल में हैं, किन्तु निर्लिप्त होने के कारण जल से प्रभावित नहीं होते। ऐसी अभिवृत्ति का विकास निरन्तर, प्रभु-भजन तथा पावनात्माओं की संगति में ही हो सकता है।

इस संवाद की रचना शुद्ध मध्यकालीन पंजाबी में हुई है और इसकी भाषा फारसी अरबी आदि विदेशी भाषाओं के प्रभाव से लगभग मुक्त है। इसमें योग सम्प्रदाय से सम्वन्वित साधु-सन्तों की मौलिक भारतीय शैली का प्रयोग हुआ है, और लगभग अट्ठाईस प्रश्न तथा उनके उत्तर गुरु जी ने प्रस्तुत किए हैं।

एक-दूसरे को सम्बोधन करते हुए योगियों तथा गुरुजी ने पण्डितोपयुक्त आदर तथा भद्र शिष्टता का ध्यान रखा है। उदाहरणार्थ गुरुजी ने योगियों को 'पावन-आत्माएँ', 'मुक्तात्माएँ' या 'संयत महात्मा' कहकर सम्बोधन किया है। इसी प्रकार योगी-जन गुरुजी को 'आदरणीय व्यक्ति', 'पुरख', 'नवयुवक' या 'वाला' तथा 'विरक्तिपूर्ण सन्त' कहते हैं। 'यदि आप बुरा न मानें', 'कृपया' और 'प्रार्थना' आदि भाव व्यक्त करने वाले शब्द भी 'गोष्ठी' में प्राप्त हैं। प्रश्न वड़े सरल और स्पष्ट हैं तथा उनके उत्तर भी सुव्यक्त, बोधगम्य और संक्षिप्त हैं—किसी प्रकार का कोई घुमाव नहीं।

उक्त अट्ठाईस प्रश्नों में से दो व्यक्तिगत प्रकृति के हैं तथा इन्हीं से आरम्भ होता है। सिद्ध गुरुजी से उनका नाम, अता [illegible] आदि के सम्बन्ध में पूछते हैं। शेष छब्बीस प्रश्नों में से [illegible] जो कि गोष्ठी के उत्तरार्द्ध में प्रस्तुत किए गए हैं, पराभौतिक प्रकृ[illegible] शेष सब मानव के धार्मिक और नैतिक जीवन से सम्बद्ध हैं। [illegible] कि हम इन प्रश्नों को पराभौतिक, धार्मिक या नैतिक स[illegible]स्या[illegible] वर्गों में नहीं बांट सकते, क्योंकि वे परस्पर एक-दूसरे में मि[illegible]

तुम दूसरे गृहस्थों से भीख मांगकर खाते हो।" इसके पश्चात् लम्बी चर्चा चलती रही। गुरुजी ने अपनी सरल शिक्षाओं तथा प्रभावशाली तर्कों से सिद्धों को परास्त कर दिया, उनकी शंकाओं का समाधान किया गया, वहम मिटा दिए गए तथा उन्हें मानसिक शान्ति लाभ हुई।[1]

अचल-बटाला से गुरुजी मुलतान गए और वहाँ के फकीरों से परिचर्चा की। वहाँ से वे करतारपुर लौट आए और अचल में सिद्धों से हुई परिचर्चा के संक्षेप को ७३ पदों में आबद्ध कर 'सिद्ध-गोष्ठी' नामक लम्बी कविता का प्रणयन किया। शीघ्र ही उन्होंने भाई लहना को अपना उत्तराधिकारी निर्वाचित करके उसे अंगद का नाम प्रदान किया। उसी वर्ष वे अपने भौतिक शरीर का विसर्जन करके परम आत्म-तत्त्व में विलीन हो गए।[2]

अतः भाई गुरदास की प्रामाणिकता के आश्रय हम निर्णयात्मक ढंग से कह सकते हैं कि 'सिद्ध-गोष्ठी' की रचना गुरु नानक ने करतापुर में (जोकि अब पाकिस्तान में है) एप्रिल-मई १५३९ ई० में की, जहाँ उसी वर्ष सितम्बर मास में उन्होंने अपने भौतिक शरीर का त्याग किया। सिद्धों के साथ ये गोष्ठियाँ अथवा परिचर्चाएँ गुरु नानक की सुनिश्चित और परिपक्व विचार-धारा का स्रोत हैं, इनमें उनके समूचे जीवन के अनुभवों का सार विद्यमान है।

ये सिद्ध कौन थे? जिस प्रकार बुद्ध उसे कहते हैं जो बोध अथवा ज्ञान प्राप्त कर चुका हो, उसी प्रकार सिद्ध उसे कहते हैं जो सिद्धि अथवा पूर्णता लाभ कर चुका हो। ऐतिहासिक दृष्टि से सिद्ध उत्तरी भारत के गुरु गोरख नाथ तथा पश्चिमी भारत के धरमनाथ का अनुयायी कहा जाता है। ये दोनों मत्स्येन्द्र नाथ (गुरुजी के पदों में इसे 'मछेन्दर नाथ' कहा गया है) के शिष्य और गुरु भाई थे। मत्स्येन्द्रनाथ आदिनाथ का शिष्य था। नेपाली बौद्धों का विश्वास है कि आदिनाथ तथा बौद्ध इष्ट देवता आर्य अवलोकितेश्वर एक ही व्यक्ति थे। अस्तु:, सिद्ध सम्प्रदाय का उत्स भले बुद्ध-मत में खोजा जाय; किन्तु सत्य के अधिक निकट गोरखनाथ ही है, जोकि आदिनाथ का लोक-जनित प्रसिद्ध शिष्य तथा शक्ति-योगी था। गुरु नानक युग का सिद्धि सम्प्रदाय शैव-मत, बौद्धमत, पतंजलि के योग तथा वेदान्त का विचित्र मिश्रण था। गोरख-तन्त्र के अनुसार परम सत्ता स्वयं शिव है। उसकी उपलब्धि मन तथा शरीर के कठोरतम संयमन हठयोग द्वारा सम्भव है। गुरु नानक ने अपने धार्मिक

---

१. बाबे कीती सिध गोष्ट शबद शांति सिधां विच आई।
जिण मेला शिवरात दा खट दरसन आदेस कराई।
सिध बोलन शुभ बचन धनं नानक तेरी वड्डी कमाई। पउड़ी ४४।

२. थापिआ लहिणा जींवदे गुरिआई सिर छत्र फिराया।
जोती जोत मिलाइकै सतिगुर नानक रूप वटाइआ। पउड़ी ४५।

तथा सामाजिक सुधार के मिशन में तीन प्रकार के धर्म-प्रचारकों की अतिरिक्त तथा पाखण्डपूर्ण व्यवस्थाओं का उन्मूलन करने का प्रयास किया। ये ब्राह्मण, मुल्ला या क़ाज़ी तथा सिद्ध अथवा योगी थे। उन्होंने प्रत्येक मत के उत्तम तत्त्वों की सराहना की, परन्तु वे दम्भ, मात्र व्याख्यान तथा आडम्बर और कर्मकाण्ड पर दिए जाने वाले बल के कटु विरोधी थे; क्योंकि वे मानते थे कि इनसे जनता का नैतिक जीवन उन्नत नहीं होता और न ही साधक को मानसिक शान्ति लब्ध होती है। इस गोष्ठी में गुरु नानक ने इन सत्यों का अनावरण किया है तथा सिद्धों पर स्पष्ट किया है कि आध्यात्मिक शान्ति जीवन की समस्याओं से बचने के लिए घर से भागने से प्राप्त नहीं हो सकती, वरन् उसकी उपलब्धि विरक्त मन से सक्रिय जीवन जीने में ही सम्भव है। अपने कथन को चित्रित करने के लिए गुरु नानक ने कमल पुष्प तथा हंस के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जो कि दोनों रहते तो जल में हैं, किन्तु निर्लिप्त होने के कारण जल से प्रभावित नहीं होते। ऐसी अभिवृत्ति का विकास निरन्तर, प्रभु-भजन तथा पावनात्माओं की संगति में ही हो सकता है।

इस संवाद की रचना शुद्ध मध्यकालीन पंजाबी में हुई है और इसकी भाषा फारसी अरबी आदि विदेशी भाषाओं के प्रभाव से लगभग मुक्त है। इसमें योग सम्प्रदाय से सम्बन्धित साधु-सन्तों की मौलिक भारतीय शैली का प्रयोग हुआ है, और लगभग अट्ठाईस प्रश्न तथा उनके उत्तर गुरु जी ने प्रस्तुत किए हैं।

एक-दूसरे को सम्बोधन करते हुए योगियों तथा गुरुजी ने पण्डितोपयुक्त आदर तथा भद्र शिष्टता का ध्यान रखा है। उदाहरणार्थ गुरुजी ने योगियों को 'पावन-आत्माएँ', 'मुक्तात्माएँ' या 'संयत महात्मा' कहकर सम्बोधन किया है। इसी प्रकार योगी-जन गुरुजी को 'आदरणीय व्यक्ति', 'पुरख', 'नवयुवक' या 'बाला' तथा 'विरक्तिपूर्ण सन्त' कहते हैं। 'यदि आप बुरा न मानें', 'कृपया' और 'प्रार्थना' आदि भाव व्यक्त करने वाले शब्द भी 'गोष्ठी' में प्राप्त हैं। प्रश्न बड़े सरल और स्पष्ट हैं तथा उनके उत्तर भी सुव्यक्त, बोधगम्य और संक्षिप्त हैं—किसी प्रकार का कोई घुमाव नहीं।

उक्त अट्ठाईस प्रश्नों में से दो व्यक्तिगत प्रकृति के हैं तथा वास्तविक संवाद इन्हीं से आरम्भ होता है। सिद्ध गुरुजी से उनका नाम, अता-पता तथा विश्वास आदि के सम्बन्ध में पूछते हैं। शेष छब्बीस प्रश्नों में से लगभग बारह-तेरह जो कि गोष्ठी के उत्तरार्द्ध में प्रस्तुत किए गए हैं, पराभौतिक प्रकृति के हैं तथा शेष सब मानव के धार्मिक और नैतिक जीवन से सम्बद्ध हैं। सत्य तो यह है कि हम इन प्रश्नों को पराभौतिक, धार्मिक या नैतिक समस्याओं से सम्बन्धित वर्गों में नहीं बांट सकते, क्योंकि वे परस्पर एक-दूसरे में मिश्रित हो गए हैं।

सामान्यत: कहा जा सकता है कि इन प्रश्नों में ब्रह्माण्ड में मनुष्य का स्थान, उसके जीवन का वास्तविक लक्ष्य तथा लक्ष्य-पूर्ति के साधनों पर प्रकाश डाला गया है।

दोनों व्यक्तिगत प्रश्नों को गुरुजी ने बड़े अवैयक्तिक ढंग से भुगताया—उन्होंने बताया कि वे व्यापक सत्य के एक विनम्र और लघु अंग हैं तथा उस सत्य को प्राप्त कर लेने वालों के दास हैं। जब उनसे ये प्रश्न किए गए कि उनका स्थान कहां है और वे कहां रहते हैं? वे कैसे आए हैं तथा उनके सम्बन्ध क्या हैं? तो उन्होंने इनके उत्तर साधारण भौतिक शब्दों में नहीं दिए। वे अपने को 'सम्भवन' की प्रक्रिया में विशेष 'तत्त्व' स्वीकार करते हैं और तदोपरांत संवाद को एकदम उच्च कक्षा में ले जाते हैं। उन्होंने बताया कि ईश्वर सर्व-व्यापक है और वे स्वयं भी उसी में सम्मिलित हैं। उनकी जीवन-प्रक्रिया सर्वत्र प्रकटित ईश्वरेच्छा द्वारा अनुशासित है। वे भी इसी में रहते, नियमों में बंधे तथा उसी के चिन्तन में लीन हैं।

प्रश्न-कर्त्ताओं में से दो योगियों के नाम विशेषकर उल्लिखित हैं—चरपट तथा लोहारीपा। गुरुजी के साधारण उत्तरों को सुनकर चरपट ने सीधा प्रश्न किया, "यह संसार दुस्तर सागर कहा जाता है। इसे कैसे पार किया जा सकता है? ऐ नानक—विरक्त जीव—कृपया कोई निश्चित उत्तर दो।" गुरुजी ने योगी की प्रशंसा करते हुए, प्रत्येक धर्म सत्य और शान्ति के अन्वेषकों के इस मूल तथा महत्त्वपूर्ण प्रश्न का संक्षिप्त और सरल ढंग से उत्तर दिया। कमल पुष्प जल में उत्पन्न होता तथा विकसता है, किन्तु उसकी पंखुड़ियां नहीं भीगतीं। इसी प्रकार जल पर तैरती मुर्गाबी (जल-मुर्गी) के पंख सूखे रहते हैं। सत्यान्वेषी को भी ऐसा ही दृष्टिकोण अपनाना चाहिए—इस संसार में रहते तथा इसकी देन का भोग करते हुए भी मनुष्य को सांसारिक भोग-विलास में खो नहीं जाना चाहिए। प्रत्युत उसे अपने मन को परमात्मा में लीन कर विरक्त रहना चाहिए। जीवन में आशाओं-इच्छाओं का स्थान है, किन्तु उन सबके पोषण में मनुष्य को अपने वास्तविक 'स्व' को विस्मृत नहीं करना चाहिए और न ही सफलता या असफलता से प्रभावित होना चाहिए। जीवन में इस प्रकार के अभ्यास द्वारा अदृश्य सर्वव्यापक का अनुभव मिल सकता है—सर्वात्मा अथवा परमात्मा उस पर अपने को प्रकट करता है और उसकी 'अंश' आत्मा 'अंशी' आत्मा से तादात्म्य प्राप्त कर लेती है। परन्तु इस पथ की अन्तर्दृष्टि तथा इस पर चलने की योग्यता की उपलब्धि गुरु-लोक पर ध्यान लगाने से ही संभव है।[1]

---

१. दुनिआ सागरु दुतरु कहीऐ किउ करि पाईऐ पारो।
चरपट बोलै अउध नानक देहु सचा बीचारो।

तब योगी ने गुरु से पूछा कि गुरु-लोक पर एकाग्रता की स्थिति को पा लेने का विश्वास कैसे किया जा सकता है ? गुरुजी ने बताया कि जब मनुष्य गुरु के शब्दों पर एकाग्र-मन होता तथा ईश्वर तथा उसकी कृपा में पूर्ण विश्वास द्वारा मन की चंचलता को दमित कर लेता है, तो उसे शान्ति मिलती है और आत्मोपलब्धि होती है। इससे वस्तुओं के सार-तत्त्व के प्रति लगाव बढ़ता है और अन्ततोगत्वा ईश्वरैक्य होता है।[1] यह सुनकर एक अन्य योगी लोहारीपा ने, जो कि गोरख नाथ का शिष्य था, योगमार्ग की व्याख्या की और बताया कि योग की उपलब्धि मानव-बस्ती तथा भीड़-भब्बड़ से दूर जंगलों में रहने, बनों में प्राप्य कंद-मूलादि खाने, देश में भ्रमण करने, पवित्र तीर्थों पर स्नान द्वारा अपवित्रता से बचने और मानसिक शान्ति पा जाने में ही संभव है।[2]

गुरुजी घर-गृहस्थी के त्याग तथा संसार-विरक्ति की इस जीवन-चर्या के विरुद्ध थे। वे चाहते थे कि मनुष्य जीवन के सभी पहलुओं में सक्रिय भाग ले, किन्तु अपने को या अपने वास्तविक लक्ष्य को विस्मृत न करे। गुरुजी ने लोहारीपा को बताया कि व्यक्ति को सचेतन-मन गृहस्थी में रहना चाहिए, शारीरिक वासनाओं, सुन्दरता तथा धन के मोह में पड़ना उचित नहीं। उन्होंने बलपूर्वक कहा कि मन को स्थिर तथा सुव्यवस्थित बनाए रखने के लिए भौतिक दूरी अथवा संसार से विरक्ति अनिवार्य नहीं है। मानसिक शान्ति की प्राप्ति प्रभु-नाम के स्मरण से ही सम्भव है। नाम-विहीन मनुष्य की सांसारिक आकांक्षाएँ कभी सन्तुष्ट नहीं होतीं। तथापि यदि कोई सत्य व्यवहार करता, सम्यक् भोजन

आपे आखै आपे समझै तिसु किआ उतरु दीजै।
साचु कहहु तुम पारगरामी तुझु किआ बैसणु दीजै।४।
जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे।
सुरति सबदि भवसागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे।
रहहि इकांति एको मनि वसिआ आसा माहि निरासो।
अगमु अगोचरु देखि दिखाए नानक ताका दासो।५।
सिद्ध गोष्ठी, रामकली म० १, आदि ग्रंथ, पृ० ९३८।

१. सुणि सुआमी अरदासि हमारी पूछउ साचु बीचारो।
रोसु न कीजै उतरु दीजै किउ पाईऐ गुरदुआरो।
इहु मनु चलतउ सच घरि बैसै नानक नामु अधारो।
आपे मेलि मिलाए करता लागै साचि पिआरो।६।

२. हाटी बाटी रहहि निराले रूखि बिरखि उदिआने।
कंद मूलु अहारो खाईऐ अउधू बोलै गिआने।
तीरथि नाईऐ सुखु फलु पाईऐ मैलु न लागै काई।
गोरख पूतु लोहारीपा बोलै जोग जुगति बिधि साई।७।
आदि ग्रंथ, पृ० ९३८-३९।

और निद्रा लेता तथा परम-सत्य की खोज करता है, तो गुरु की कृपा से गृहस्थ जीवन में ही उसे अपने भीतर परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। योगियों द्वारा अपनाया यह विशेष वेष—उलझी जटाएँ, लम्बी टोपी, मुद्राएं, गुदड़ी, लंगोटी, भिक्षा-पात्र तथा कुशासन—वास्तव में आध्यात्मिक अथवा पवित्र जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। तथा गुरु नानक ने उन्हें स्पष्टतापूर्वक कहा कि ये बाह्य चिह्न व्यक्ति की यौनेच्छा, आक्रामक-स्वभाव, क्रोध, अहंकार, आत्म-ग्राहकता तथा स्वार्थपरता सरीखे मनोभावों, शारीरिक वासनाओं एवं मनोकामनाओं को संयमित करने में कोई सहायता नहीं देते। व्यक्ति के मन को शिक्षित, प्रशिक्षित तथा अनुशासित होना चाहिए ; तथा गुरु लोक पर ध्यानस्थ होने के लिए सचेतन-प्रयास भी अपेक्षित है। मनुष्य निरन्तर प्रयत्नों तथा अभ्यास से अपनी स्वार्थपरक इच्छाओं और अहम् पर विजयी हो सकता है तथा व्यापक प्रेम और सेवा की अभिवृत्ति को विकसित कर सकता है। 'गोष्ठी' के दसवें और ग्यारहवें पद में गुरुजी ने चिह्नों को धारण करने तथा अनुष्ठानों को मनाने की अपेक्षा नैतिक सद्गुणों की अभिवृद्धि का मार्मिक सुझाव दिया है।

गुरुजी सब प्रकार की औपचारिकता के भी विरुद्ध थे। उन्होंने आध्यात्मिक मूल्यों से रिक्त सब प्रकार के चिह्नों की भर्त्सना की, फिर भले वे चिह्न ब्राह्मणों, मुसलमानों, जैनियों के हों, या योगियों की जीवनचर्या के। वे कृत्रिम चिह्न दम्भ के प्रतीक थे। अतः उन्होंने योगियों को ऐसे उपकरणों की अपेक्षा, मन को पावन 'शबद' पर स्थिर करने का परामर्श दिया और इस प्रकार अभिमान तथा स्वार्थ से मुक्त होने को कहा। झोली और गुदड़ी की बजाय 'शबद' योगी की पाशविक वासनाओं को संयमित करने में सहयोगी होगा और वह जड़ और चेतन में दिव्य-तत्त्व की उपस्थिति का आभास पाने लगेगा। कामनाओं से विरक्त हृदय ही उसका वास्तविक भिक्षा-पात्र है तथा पंच-तत्व के दैवी गुणों को ग्रहण करना ही टोपी है। योगी को अपना शरीर पवित्र और निर्मल रखना चाहिए तथा कुशासन और लंगोटी को उसे आत्म-संयम के प्रतीक बना लेना चाहिए। इन आन्तरिक विशेषताओं को ग्रहण करने वाला मनुष्य जब गुरु के शब्द से मानसिक ऐक्य स्थापित करेगा, तो गुरमुख बनेगा। गुरमुख अर्थात् सत्य, समन्वय तथा संयम का पोषक। नैतिक पूर्णता लिए हुए एक गुरमुख, जो जीवन्मुक्त होगा, अपने घर और परिवार में रहता हुआ भी शान्ति भोगेगा, किन्तु अनेक चिह्नों को धारण करने तथा जंगलों में घूमने वाला योगी मन तथा पाशविक वासनाओं को नियंत्रित करके आत्म-निरोध के अभ्यास के बिना उससे वंचित ही रह जायगा।

मोक्ष

बारहवें पद में योगियों ने एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा है: मुक्त कौन है

या मोक्ष की प्राप्ति किसे हुई है ? इस प्रश्न में एक अन्य पराभौतिक शंका सम्बद्ध है और उसकी चर्चा भी वाद में हुई है। मुक्ति अथवा मोक्ष के सम्बन्ध में गुरुजी की धारणा बड़ी स्पष्ट है और यदि इसके परम्परित स्वरूप से तुलना करें, तो यह धारणा क्रान्तिकारी है। उनके अनुसार मुक्ति अथवा मोक्ष मृत्युपरांत किसी स्थिति का नाम नहीं है। मुक्तात्मा इसी जीवन में मोक्ष लाभ करती है, मृत्युपरांत वह वैसी ही बनी रहती है और दिव्यात्मा, तत्त्वों के तत्त्व, में विलीन हो जाती है।

गुरमुख बनाम मनमुख

गुरुजी के मतानुसार गुरमुख मुक्तात्मा होता है तथा शाश्वत शान्ति और मोक्ष का आनन्द लेता है जबकि मनमुख अपनी वासनाओं से वंधा होता है और सदैव जन्म-मरण के चक्र में आबद्ध रहता है।[1]

गुरुजी ने अपनी शिक्षाओं में गुरमुख वनने के साधन सुझाए हैं। उनकी दृष्टि में गुरमुख एक ऐसा पूर्ण पुरुष है कि जिसने मानवता की सेवा में अपने व्यक्तित्व को विकसित किया होता है। ऐसे ईश्वर की सत्ता में उसका अटल एवं दृढ़ विश्वास होना अपेक्षित है, जो सर्व-शक्तिमान्, परम, एकमात्र यथार्थ अस्तित्व, स्वयं अरचित होते हुए भी समूचे दृश्य जगत का रचयिता, तत्त्वों का तत्त्व, सर्व-व्यापक, सर्वज्ञ तथा समस्त गुणों तथा विषयान्तरों का दिव्य उत्स है। ऐसी सत्ता मनुष्य की साधना का विषय है; मनुष्य को उसके गुणों और स्तोत्रों का गान करते हुए अपनी मर्यादानुसार उन गुणों को आत्मसात् करना चाहिए तथा इस प्रकार मन, वचन और कर्म से उसे ईश्वर-सम बन जाना चाहिए। वही मनुष्य गुरमुख होगा उसका मन गुरु के 'शब्दों' पर स्थित होता है और वह साधना द्वारा अपने ही अन्तर में ईश्वर को पा लेता है; तब वह भीतरी प्रेरणा ही उसकी गुरु वन जाती है। जीवन के प्रत्येक पहलू में यह आन्तरिक ईश्वर उसका पथ-प्रदर्शन करता है। यही अन्तः-ईश्वर उसका विधायक, सार्व-लौकिक नियामक और आदेशक होता है, किन्तु इस आन्तरिक विधायक की सम्मति गुरु शब्दों से प्रामाणिक होना अनिवार्य है। गुरमुख पुरुष के लिए नित्य-प्रति पूजा-गृह—गुरुद्वारा—में पवित्र लोगों की संगति में बैठकर पर-सेवा का अवसर लेना चाहिए। उसे गुरुवाणी के सम्बन्ध में भी निरन्तर अधिक प्रकाश और स्पष्टता प्राप्त करनी चाहिए ताकि उसका दृष्टिकोण धुंधला तथा संकीर्ण न

---

१. घटि घटि गुपता गुरमुखि मुकता। अंतरि वाहरि सवदि सु जुगता।
मनमुखि विनसै आवै जाइ। नानक गुरमुखि साचि समाइ। १३, आदि ग्रंथ, पृ० ९३९।

हो जाय। वह पवित्र सभाओं में उत्साह और शक्ति लाभ करेगा तथा इस अपनी स्वार्थपरकता एवं अहंमन्यता पर विजयी होकर अपने को परमात्मा के निरन्तर प्रकटित रूप विश्व का एक अभिन्न अंग समझने लगेगा। गुरु नानक के अनुसार ऐसा गुरमुख व्यक्ति ही सिद्ध अथवा योगी का विकल्प हो सकता है।

गुरमुख का विपरीत रूप मनमुख है, जोकि आत्म-केन्द्रित एवं स्वेच्छाचारी होता है। वह अपनी वासनाओं का दास तथा शारीरिक सुखों से सम्बद्ध होता है। उसे जीवन के उत्तम मूल्यों में कोई विश्वास नहीं होता और न ही वह गुरु अथवा ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखता है।

'गोष्ठी' में गुरमुख के गुणों, विशेषताओं और उपलब्धियों को दर्शाने तथा मनमुख के दोषों की व्याख्या करने के लिए लगभग पच्चीस पदों में चर्चा चलाई गई है। कतिपय स्थानों पर गुरमुख को गुरु तथा ईश्वर से आत्मसात् दर्शाया है।

गुरु नानक के सम्मुख जब योगी द्वारा हठ-योग विधि का परामर्श प्रस्तुत किया गया, तो गुरुजी ने उसे अस्वीकार करते हुए दिव्यज्योति प्रभूत व्यक्ति गुरमुख के योग को ही सत्य बतलाया। बारहवें-तेरहवें पद में गुरुजी ने सिद्धों के प्रश्नों के उत्तर में कहा है कि केवल गुरमुख ही स्वातन्त्र्य एवं मोक्ष का आनन्द लेता है जबकि मनमुख जन्म-मरण के चक्र में दुःखी होता है। कारण यह है कि पूर्वोक्त (गुरमुख) वास्तविक मार्ग पा लिया होता है और उत्तरोक्त (मनमुख) पथभ्रष्ट होकर सन्मार्ग से पिछड़ जाता है। (पद १५-१६) "इसीलिए मैं यात्रा पर निकला हूँ—मेरी इच्छा किसी गुरमुख को पाने की है, जो मुझे सत्य के व्यापार में अपनी संचित पूंजी दे सके" गुरुजी ने कहा। बीसवें पद में उन्होंने बताया कि जब गुरमुख गुरु द्वारा सुझाए मार्ग पर चल पड़ता है, तब उसका अन्तरात्मा सर्वव्यापी के साथ बंध जाता है। परिणामतः, गुरु शब्द की सहायता से वह अपनी इच्छाओं तथा मनोविकारों को संयत कर मुक्ति लाभ करता है। ऐसा गुरमुख ही वेदों का वास्तविक अर्थ समझता है और अन्तरात्मा के भीतरी पहलुओं का अन्तर्दर्शन करके वह अनन्त से साक्षात्कृत होता है।[1]

बाद के चौदह पदों में (२८-३१, ३५-३७, ४०-४२, ६५, ६६, ७१, ७३) गुरु नानक ने सिद्धों के प्रति यह स्पष्ट किया है कि दिव्य ज्योतिर्मान् मनस्-गुरमुख क्योंकर गुरु-शब्दों से जीवन तथा उसकी समस्याओं के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण अपनाता तथा विश्व के रहस्यों की जानकारी प्राप्त करता है। वह

---

१. गुरमुख का शाब्दिक अर्थ वह व्यक्ति है जो गुरु-ईश्वर की ओर मुँह करे, ईश्वरेच्छा के अनुकूल रहे। दूसरी ओर मनमुख ऐसा व्यक्ति होता है जो मन अर्थात कामातुर भावुकता की ओर मुंह करता है। गुरुजी उपयोगितावादी थे इसलिए उन्होंने मनमुख के गुणों और विशेषताओं की चर्चा करना आवश्यक नहीं समझा।

ग्रादर्श चरित्र का विकास करता तथा ग्रहमन्यता पर विजयी होता है (२६)। वह जानता है कि यह विश्व एक क्रीड़ाङ्गण है, जिसमें निर्माण ग्रौर विनाश की विविध प्रक्रियाग्रों द्वारा सत्य प्रकट हो रहा है (३०)। वह ज्योतिर्मान ग्रात्मा समस्त मानसिक क्षमताग्रों तथा उचित-ग्रनुचित की शक्तियों के तत्वयुक्त ज्ञान लाभार्थ ग्रवतरित होती है। इस प्रकार न केवल वह निजी मोक्ष प्राप्त करती है, बल्कि गुरु-शब्द की सहायता से ग्रन्यात्माग्रों को भी इस पथ पर प्रोत्साहित करती है (३१)। वह (गुरमुख) सत्य जीवन व्यतीत करता है; ईश्वरेच्छा पर ग्राश्रित रहता तथा सब प्रकार के पतनों से सुरक्षित होता है (३५)। वह मन, वचन ग्रौर कर्म से पवित्र होता है। उसका मन स्वभाव-वश ईश्वर में लीन होता है, जबकि बाह्य रूप में वह मानवीय क्रियाग्रों में निमग्न दीखता है (३६)। वह ग्राक्रामक तथा विरोधी भावनाग्रों पर विजयी होता है, क्योंकि वह परमात्मा से प्रेम करता हुग्रा प्रभु को पा जाता है (३७)। गुरुजी ने राम तथा रावण के उदाहरण क्रमशः गुरमुख ग्रौर मनमुख रूप में दिए हैं (४०) पूर्वोक्त ने सद्-गुणों का प्रसार ग्रौर संरक्षण किया जबकि उत्तरोक्त ने पापाचार का प्रसार किया (४०)। ज्योतिर्मान् ग्रात्मा भले ग्रौर बुरे, सत्य ग्रौर मिथ्या में ग्रन्तर देखने में समर्थ होती है, इसलिए पापाचार के बंधनों से बच जाती है (४१)। वह सत्य का साकार रूप बन जाती है (४२)। परन्तु गुरुजी के कथनानुसार कोई विरल ही ग्राध्यात्मिक पूर्णता के इस परिमाण तक ऊँचा उठ पाता है। ऐसा ग्रपवादी व्यक्ति ही सच्चा योगी होता है। वह नाम के ही माध्यम से ईश्वरै-क्य प्राप्त करता है, नाम के बिना कोई योग सम्भव नहीं (६८-६९)।

मनमुख की व्याख्या करते हुए गुरुजी ने उसे स्वेच्छाचारी, मिथ्याभिमानी, स्वार्थी, ग्रात्म-केन्द्रित तथा ग्रज्ञान ग्रौर संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण भ्रान्ति एवं मरीचिका में जीने वाला बताया है। केवल एक पद (छब्बीसवें) में गुरु नानक ने मनमुख को पथभ्रष्ट तथा जड़-पूजा के कारण किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में बताया है। पथ-विचलित होने के कारण वह ग्रन्धविश्वासों के मरुस्थल में भटकता रह जाता है। उसके समस्त उत्तम गुण शेष हो जाते हैं ग्रौर उसकी दशा उजड़-ग्राम में नट सरीखी होती है। वह गुरु के शब्दों पर कान नहीं धरता ग्रौर ग्रनीतिकर प्रकृति तथा ग्रशुद्ध व्यवहार में लिप्त रहता है। वह नहीं जानता कि दिव्य शान्ति की उपलब्धि मात्र सत्य के ज्ञान से ही सम्भव है।

इस परिचर्चा में गुरुजी ने गुरु, 'शबद', माया तथा हउमैं (ग्रहम्) के तत्त्वों का स्वरूप भी स्पष्ट किया है। 'नाम' जीवन का लक्ष्य है ग्रौर गुरु, 'शबद', माया तथा हउमैं के तत्त्वों का मूल्य इसी नाम पर ग्राश्रित है। ग्रस्तुः, गुरमुख, जैसा कि उपरिवर्णित है, नामाभ्यासी होता है, ग्रौर मनमुख इससे विमुख।

ऐसा भी समय था, जब कुछ भी ग्रस्तित्व में न था। यहां तक कि काल

का भी कोई अस्तित्व न था, और न ही दिशा-बोध था। स्वयं ईश्वर अथवा परम के सम्बन्ध में 'अस्तित्व' का स्वरूप अनुपयुक्त एवं कल्पनातीत था। इसी लिए तो गुरु नानक के तेईसवें पद में आदि स्थिति 'अस्तित्व-पूर्व की दशा' अतीव विस्मयपूर्ण है—तब ईश्वर निरन्तर शून्यावस्था में, निष्क्रिय, निर्माण-रहित और आत्म-केन्द्रित वृत्ति में मग्न था। वह अफर ब्रह्म था। किन्तु ब्रह्म की प्रकृति ही ऐसी है कि अचेतन, निष्क्रिय दशा से अपने आप—बिना किसी बाह्य प्रेरणा के (वास्तव में उस स्थिति में बाह्य कुछ था ही नहीं)—वह साकार अथवा सफर, चेतन और सांकल्पिक बन सकता है। इस सांकल्पिक स्थिति में वह इच्छा करता है। यह इच्छा, हुकम या चेतन-आग्रह विश्व की सृष्टि का कारण है—समूची 'विद्यमानता' का आधार है। प्रकटीकरण, उत्क्रान्ति अथवा उद्करखन (उत्कर्षण) की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। इससे माया, दृश्य जगत की उत्पत्ति होती है। यदि कोई व्यक्ति इसको समझता या इसकी कल्पना करता है, वह आश्चर्य-चकित रह जाता है। यह सब 'विस्मादि' है। अचेतन ब्रह्म क्योंकर चेतन होता है जिससे संकल्प-प्रक्रिया अस्तित्व में आती तथा इच्छा कर्म और प्रवृत्ति मूर्त रूप लेते हैं। यथार्थता का ज्ञान तथा हुकम-प्रकृति की जानकारी भी उसी की कृपा से होती है। इसका ज्ञाता सत्य का आनन्द उठाता है; उसके सत्त्व से आत्म-सात होता है, अहंमन्यता पर विजय पाता तथा विरक्त अभिवृत्ति को ग्रहण करता है। ऐसा व्यक्ति ही वास्तविक योगी है (२३)। अगले पद में गुरुजी बताते हैं कि विशुद्ध, निर्विशेष तथा अदृश्य स्वयमेव आकार धारण करता है—निर्गुण सगुण हो जाता है। इस प्रकिया में वैयक्तिकता अथवा विशिष्टता का तत्त्व प्रकट होता है, जिसे यदि सुढंगपूर्ण समझा न जाय, तो हउमै—आत्मचेतना, अहम्वाद—उपजता है और यह मनोदशा व्यक्ति को व्यापकता से पृथक कर देती है। तब यथार्थता में एक की अपेक्षा अनेकत्व दिखता है, जिसमें पृथकत्व भी बना रहता है। 'पर' की भावना जन्म लेती है। ऐक्य की पुनस्थापना तभी हो सकती है, जब मन में गुरु-शब्दों की ज्योति प्रदीप्त हो। तब हृदय-कमल खिलता है (२४)। समूचा 'पर' व्यक्ति के 'आत्म' में ही विलीन हो जाता है। मनोधारणा में परिवर्तन आता है तथा अनेकता में एकता की भावना प्रतिष्ठित होती है। वही 'नाम' है।

'नाम' का स्वरूप शब्दों में समझना आसान है किन्तु उसे आत्मसात् करना बड़ा कठिन है; इससे भी सहस्रों गुणा अधिक कठिनाई उसके अभ्यास में है। इसीलिए निरन्तर सतर्कता तथा पथ-प्रदर्शन अपेक्षित है। यह व्यक्ति के सम्पूर्ण सत्त्व का कायाकल्प है—अभिवृत्ति का परिवर्तन, दृष्टिकोण का परिवर्तन, दृश्य जगत की उपेक्षा तथा वस्तुओं के तत्व पर ध्यान-मग्नता—सबका समीकरण हो जाता है। दृश्य जगत के सभी तत्त्वों—मनुष्यों, पशुओं, पेड़-पौधों, वनों, पत्थरों, जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश—की अनेकता में एकता का

आभास होता है। इस एक के सम्पर्क में क्षण भी युग और कल्प बन जाता है। हमें पुनः कहना पड़ता है कि यह सब कहने में बड़ा सरल है, समझने में कठिन तथा अभ्यास में अति-कठिन है। इसीलिए अरदास (प्रार्थना) की आवश्यकता पड़ती है,—किसी जानकार से उसके पथ-प्रदर्शन तथा कृपा की याचना की जाती है, पवित्र सभाओं में तब तक निरन्तर प्रार्थना की जाती है, जब तक कि ज्योति का प्रसार नहीं होता, भ्रम की काई नहीं फटती एवं मन में ज्ञान का उजाला नहीं हो जाता, तथा अन्ततः 'अन्तर्निहित' को 'बाह्य के अन्तर' से सूत्र-बद्ध कर ज्ञानी नामाभ्यास नहीं करने लगता।

नामाभ्यास की कठिनाइयों तथा मिथ्या आकर्षणों और मायावी फंदों से भरे इस भौतिक संसार में विरक्त धारणा के विकास की कठोरता को भली भान्ति समझकर सिद्धों ने गुरुजी से पूछा : "मोम के दांत लौहे और फौलाद क्योंकर चबा सकते हैं ?" या "अग्नि-गढ़ में हिम कुटिया का अस्तित्व कब तक रह सकता है ?" (४५)

इन प्रश्नों के उत्तर में गुरुजी ने ४६वें तथा ४७वें पद में बताया है कि व्यक्ति को आत्म-श्लाघा तथा स्वार्थपरकता को नियंत्रित कर अपने आप को, द्वैत पर विजय तथा नाम-चिन्तन के द्वारा, तत्त्व में आत्मसात् कर लेना चाहिए। तब ज्ञानी दिव्य को सर्व-व्याप्त रूप में देख सकता है। हमारा दूषित ज्ञान तथा अशुद्ध नेतृत्व हमें पथ-भ्रष्ट करता है। यथार्थ मग का अनुगमन केवल गुरु वाणी पर एकाग्र होने से सम्भव है और तब हम वस्तुओं को उनके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में देखने लगते हैं।

कतिपय योगिक शब्दावली तथा रूपों पर भी चर्चा हुई थी। उदाहरणार्थ मानव शरीर की श्वास-प्रक्रिया तथा इसके नियन्त्रण से प्राप्त गुप्त शक्ति। गुरुजी ने योगियों को परामर्श दिया कि वे शारीरिक हठ द्वारा मानसिक शक्तियों को संयमित करना छोड़ दें। इसके विपरीत उन्होंने चेतन प्रयासों से प्राप्त आत्मानुशासन और हउमै (अहम्) तथा व्यक्तिगत इच्छाओं को ईश्वरेच्छा पर अर्पण द्वारा मानसिक नियंत्रण की वकालत की।

अन्त में समूची परिचर्चा का सारतत्त्व देते हुए गुरुजी कहते हैं : "ओ योगी, सुनो, वस्तुस्थिति यह है कि नाम के बिना कोई योग नहीं हो सकता। जो जीव नाम में मग्न हैं वे रात-दिन मस्त रहते और चिर-शान्ति लाभ करते हैं। नाम-स्मरण से व्यक्ति को पता चलता है कि सबका उत्स नाम ही है। समस्त मूल्यों तथा सद्गुणों की प्राप्ति नाम से ही होती है। साधना के अन्य सब प्रकार पाखण्डपूर्ण हैं। नाम के बिना कोई शान्ति नहीं, मोक्ष नहीं। (७२)

गुरुजी इस परिचर्चा का उपसंहार विनम्रता तथा ईश्वरेच्छा-समर्पण पर टिप्पणी देते हुए करते हैं।

"तुम्हीं अपनी शक्ति के सर्व-रहस्यों के जानकार हो। कोई उनकी व्याख्या कैसे कर सकता है ? तुम स्वयं अपने सब रूपों का आनन्द लेते हो—वे प्रकट हों या अप्रकट, अनेक गुरु और अनेक शिष्य, अनेक सिद्ध और साधु तुम्हारी इच्छा से तुम्हारी खोज में संलग्न हैं। नाम की भिक्षा का उपहार पाकर मैं तुम्हारी एक झलक पर बलिहार हूँ। अविनाशी प्रभु ने यह खेल रचाया है। केवल गुरमुख ही, गुरु के शब्दों से, अर्न्तदृष्टि प्राप्त करता है। नानक कहते हैं कि प्रत्येक युग में मात्र ईश्वर ही अश्येत होता है। उसके अतिरिक्त और कोई नहीं।"[१]

---

१. तेरी गति मिति तूहै जाणहि किआ को आखि वखाणै ।
तू आपे गुपता आपे परगटु आपे सभि रंग माणै ।
साधिक सिद्ध गुरु बहु चेले खोजत फिरहि फुरमाणै ।
समहि वघु पाइ इह भिखिआ तेरे दरसन कउ कुरवाणै ।
उसी की प्रभि खेलु रचाइआ गुरमुखि सोझी होई ।
नानक सभि जुग आपे वरतै दूजा अवरु न कोई ।७३।
सिद्ध गोष्ठी, रामकली म० १, पृ० ९४६ ।